श्रीगणेशाय नमः ।

गुरुमण्डल ग्रन्थमालाया नवमम्पुष्पम्

# स्मृति-सन्दर्भः

श्रीमन्महर्षिप्रणीत—धर्मशास्त्रसंग्रहः
पराशरादिचतुष्टयस्मृत्यात्मकः

## द्वितीयो भागः

श्रीनाथादिगुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयम्भैरवम् ,
सिद्धौघं बटुकत्रयम्पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम् ।
वीरान्द्व्यष्ट चतुष्कषष्टिनवकं वीरावली पञ्चकम् ,
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्देगुरोर्मण्डलम् ॥

५, क्लाइव रो,
कलकत्ता ।

| | | |
|---|---|---|
| वैक्रमाब्द | प्रथम संस्करणम् | खृष्टाब्द |
| २००९ | ५००० | १९५२ |



Gurumandal Series No. IX

# THE SMRITI SANDARBHA

*COLLECTION OF THE FOUR DHARMASHASTRIC TEXTS BY MAHARSHIES.*

## Volume II

5, Clive Row,
CALCUTTA.

| *Vikram Era* | *First Edition* | *Christian Era* |
|---|---|---|
| 2009. | 5000. | 1952. |

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

# अथ स्मृतिसन्दर्भस्य द्वितीयभागस्थ मुद्रितस्मृतीनां नामनिर्देशः ।



मुद्रा करकाराघातकातरा कापि भारती ।
करुणार्द्रकरस्पर्शैः सुधियः सान्त्वयन्तु ताम् ॥१॥
स्मृतिवचनमयेऽस्मिन् संग्रहेचेदशुद्धिः ।
सदय हृदयमद्भिः शोधनीया महद्भिः ॥
प्रभवतु परितुष्टिः सर्वथाऽलोकनेन ।
मिलितकरयुगाभ्यां याचये श्रीमहेशः ॥२॥

इतिविदुषामनुचरस्य—
श्रीमहेश्वरमिश्रस्य
( मैथिलस्य )

६

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

# स्मृतिसन्दर्भ द्वितीयभाग की विषय-सूची

## पराशरस्मृति के प्रधान विषय ।

| अध्याय | प्रधानविषय | पृष्ठाङ्क |
|---|---|---|

वर्तमान कलियुग में पराशर स्मृति का मुख्य स्थान माना गया है। पराशर संहिता दो उपलब्ध हैं पराशरस्मृति और वृहत्पराशर। पराशर स्मृति में द्वादश अध्याय हैं, वृहत्पराशर में भी उतनी ही। प्रथमाध्याय में दोनों स्मृतियों में एक जैसा वर्णन "कलौपाराशरीस्मृता" दूसरे अध्याय से वृहत्पराशर में कुछ विशेष बातें और विचार वर्णन किया है। पराशरस्मृति किस देश विशेष, सम्प्रदाय विशेष, जाति विशेष को लेकर धर्माख्या नहीं करती है, अपि तु मनुष्यमात्र का पथ-प्रदर्शित यह स्मृति करती है। इसके प्रारम्भ में ऋषियों ने इस प्रकार प्रश्न किया।

"मानुषाणां हितं धर्मं वर्तमाने कलौयुगे
शौचाचारं यथावच्च वद सत्यवतीसुत !"

वर्तमान कलियुग में मनुष्यमात्र का हित जिससे हो वह धर्म कहिए और ठीक ठीक रीति से शौचाचार की रीति भी बतला दीजिये—ऋषियों के प्रश्न करने पर व्यासजी ने उत्तर दिया कि कलियुग के सार्वभौम धर्म के विकाश करने में अपने पिता पराशरजी की प्रतिभा शक्ति की सामर्थ्य कही यत पराशरजी निरन्तर एकान्त वदरिकाश्रम की तपोभूमि में आसीन हैं। तपोमय भूमि में तपस्यारूपी साधन के बिना कलियुग के धर्म, व्यवहार, मर्यादा पद्धति का पर्पदीकरण अवैध सूचित किया ऋषियों ने इस बात पर विचार किया कि कलियुग के मनुष्य किसी धर्म मर्यादा की पर्षद बुलाने की क्षमता नहीं रख सकते है यावत् तपोमय जीवन से इन्द्रियों की उपरामता न हो जाय यत इन्द्रिय भोग विलासिता के जीवनवाले वेद शास्त्रपारंगता प्राप्त करने पर भी धर्म, न्याय विधिको नहीं बना सकते है। अत विधि, नियम रूपी धर्म व्यवहार के लिये

## वृहद् पराशरस्मृति के प्रधान विषय

इसमें १२ अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में पराशर संहिता के क्रमानुसार ही विभिन्न अध्यायों में वर्णित आचार प्रायश्चित्त आदि विषयों का वर्णन किया है।

आदि ऋषि पराशरजी के पास गये (१-२०)। पराशरजी ने कहा कि वेद और धर्मशास्त्र इन दोनों का कर्ता कोई नहीं है। ब्रह्माजी को जिस प्रकार वेदों का स्मरण हुआ था उसी प्रकार युग-प्रति-युग में मनुजी को धर्मस्मृतियों का स्मरण हुआ। पराशरजी ने कलियुग की विप्लव दशा में खेद प्रगट किया कि धर्म दम्भ के लिये, तपस्या पाखण्ड के लिये एवं बड़े-बड़े प्रवचन लोगों की प्रवंचना (ठगी) के लिये किये जाते हैं। गायों का दूध कम हो जाता है, कृषि में उर्वरा शक्ति कम हो जाती है, स्त्रियों के साथ केवलमात्र रति की कामना से सहवास करते हैं न कि पुत्रोत्पत्ति के लिये। पुरुष स्त्रियों के वशीभूत होते हैं। राजाओं को प्रवंचक अपने वश में कर लेते हैं। धर्म का स्थान पाप ले लेता है। शूद्र ब्राह्मणों का आचार पालते हैं तथा ब्राह्मण शूद्रवत् आचरण करने लगते हैं। धनी लोग अन्याय मार्ग पर चलते हैं। इस प्रकार कलियुग की विषमता पर अत्यन्त खेद प्रगट किया है (२१-३५)।



इसमें आचार वर्णन दिखाया और युगों का नाम बताया

६। सत्युग को ब्राह्मण युग, त्रेता को क्षत्रिय युग, द्वापर को वैश्य युग तथा कलियुग को शूद्र युग बताया है। वर्णाश्रम धर्म की क्षमता उस भूमि में बताई है जिसमें कृष्णसार मृग स्वभावतः स्वतंत्रता पूर्वक विचरण करते हैं। हिमालय और विन्ध्याचल के मध्य देश को पावन देश बताया है और अन्य देश जहाँ से नदियाँ साक्षात् समुद्रगामिनी हैं उन्हें भी तीर्थस्थान बताया है। इसमें पराशरजीने अपने पुत्र व्यास को द्विज कर्म और षट्कर्म वर्ण धर्म की प्रशंसा और गो वृषभ का पालन पशुपालन विधि

षट्कर्म वर्णधर्मश्च प्रशंसा गोवृषस्य च।
अदोह्य-वाह्यौ यौ तत्र क्षीरं क्षीरप्रयोक्त्रिणा॥
अमावास्या निषिद्धानि ततश्च पशुपालनम्॥

विवाह संस्कार, व्रतचर्यादि, पुत्रजन्म, अखिल गृहस्थधर्म का उपदेश, भक्ष्याभक्ष्य की व्यवस्था, द्रव्य शुद्धि, अध्ययनाध्यापन का समय, श्राद्ध कर्म, नारायणवली, सूतक तथा अशौच, प्रायश्चित्त विधान, दानविधि तथा फल, भूमिदान की प्रशंसा, इष्टापूर्त कर्म, ग्रहों की शान्ति, वानप्रस्थ धर्म, चारों आश्रम, दो मार्ग, अर्चि तथा धूम मार्ग इन सबका वर्णन यथानुपूर्व बृहत् पराशर के द्वादश अध्याय में बताया है ( ३६-६४ )।

चित्तप्रसाद बलरूप तपांसिमेधा,
मायुष्यशौच सुभगत्व मरोगितां च ।
ओजस्वितां त्विपमदात् पुरुषस्यचीर्णं,
स्नानं यशो-विभव-सौख्यमलोलुपत्वम् ॥

यस्याः शिरसि ब्रह्माऽऽस्ते स्कन्धदेशे शिवः स्थितः।
पृष्ठे नारायणस्तस्थौ श्रुतयश्चरणेषु च ॥
या अन्या देवताः काश्चित्तस्या लोमसुताःस्थिताः।
सर्वदेवमया गावस्तुष्येत्तद्भक्तितो हरिः ॥

स्पृष्टाश्च गावः शमयन्ति पापं,
संसेविताश्चोपनयन्ति वित्तम्।
ता एव दत्तास्त्रिदिवं नयन्ति,
गोभिर्नतुल्यं धनमस्ति किञ्चित् ॥

| अध्याय | प्रधानविषय | पृष्ठाङ्क |
|---|---|---|
| | कृषिकृच्छ्रुद्धिकरण वर्णनम्, | ७५० |
| | कृषिकर्मकरण स सीतायज्ञ वर्णनम्। | ७५१ |

कृषि के सम्बन्ध मे बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है। अन्त में यह बताया है—

५ "कृपेरन्यतमोऽधर्मो न लभेत्कृषितोऽन्यतः।
न सुखं कृषितोऽन्यत्र यदि धर्मेण कर्षति"॥

अर्थात् कृषि के तुल्य दूसरा कोई धर्म नहीं एवं कृषि के तुल्य और कोई व्यवहार इतना लाभदायक नहीं। कृषि करने में ही बड़ा सुख है यदि धर्मानुकूल कृषि की जाय। (१५६-१६५)।

| | | |
|---|---|---|
| ६ | कन्या विवाह वर्णनम्। | ७५५ |

कन्याओं के आठ प्रकार के विवाह होते है। अपनी जाति मे वर के लक्षण देखकर वस्त्राभूषण से सुसज्जित कर जो कन्या दी जाती है उसको ब्राह्म विवाह कहते हैं। लड़के का लक्षण देखना परमावश्यक है। जिसके पेशाब में फेन निकले वह पुरुष होता है। ऐसा न होने पर नपुंसक होता है। यज्ञ करते हुए यज्ञ करनेवाले को वस्त्राभूषण से सुसज्जित जो कन्या दी जाती है इसे दैव विवाह कहते हैं। वर कन्या के समान हो और गुण-

यान, विद्वान हो ऐसे पुरुष को दो गाय के साथ जो कन्या दी जाती है वह आर्ष विवाह होता है। कन्या और वर स्वेच्छा से धर्मचारी हो यह कर जो कन्या का दान किया जाय वह मनुष्य विवाह होता है। जिस जगह पर वर से रुपये की संख्या लेकर कन्या दी जाती है उसे दैत्य विवाह कहते हैं। जहां वर कन्या दोनों अपनी इच्छा पूर्वक विवाह कर लें उसे गन्धर्व विवाह कहते हैं। जहां हरण करके कन्या ले जाई जावे उसे राक्षस विवाह कहते हैं। सोई हुई कन्या को जो मद्य इत्यादि के नशे में जबरदस्ती ले जाया जावे उसे पैशाच विवाह कहते हैं (१-१७)। विवाह के पहले जिन बातों का विचार करना चाहिये उनका निर्देश किया गया है। १ वर, २ कन्या की जाति, ३ वयस, ४ शक्ति, ५ आरोग्यता, ६ वित्त सम्पत्ति, ७ सम्बन्ध बहुपक्षता तथा अर्थित्व (१८)।

६ विवाहे वरगुण वर्णनम्। ७५६

वर के लक्षण बताये हैं (१६-२१)। लड़की—जाति, विद्या, धन तथा आचरण की इतनी परवाह नहीं करती है जितनी प्रीति की, अतः लड़का प्रीतिमान होना चाहिये इसलिये सगोत्र की कन्या से विवाह करने पर वह धर्म

अध्याय प्रधानविषय पृष्ठाङ्क

७ श्राद्ध कर सकती है; इष्ट परिजन अपने मित्रों का भी श्राद्ध कर सकते हैं। लड़की का लड़का अर्थात् दौहित्र भी श्राद्ध कर सकता है और पार्वण श्राद्ध का वर्णन आया है। एकोद्दिष्ट श्राद्ध पुत्र ही अपने पिता और पितामह का कर सकता है (४०-६१)। श्राद्ध मे शूद्रान्न का निषेध और स्त्री को भोजन करना निषेध बताया गया है (६२-८३); एकोद्दिष्ट श्राद्ध का विधान तथा किस किस काल मे श्राद्ध करना चाहिये उन कालों का वर्णन। जैसा कुतुप, (मध्याह्न) रोहिणी, संक्रान्ति अमावास्या, व्यतीपात आदि का है (८४-१०१)। मलमास मे भी श्राद्ध कर सकते है इसका निर्णय किया गया है और नित्य श्राद्ध का भी निर्णय किया है (१०२-१०५)। श्राद्ध की तिथि का निर्णय, सगोत्र ब्राह्मण को श्राद्ध मे भोजन कराने का निषेध (१०६-११६)। वृद्धि श्राद्ध (नान्दीमुख) शुभ कार्य मे जो पितरों का श्राद्ध होता है उनके उपयुक्त जो पात्र है, उनका निर्णय, वट वृक्ष की लकड़ी और विल्वपत्र के पत्ते पर भोजन करने का निषेध बताया है (११७-१२२)। श्राद्ध मे कौन पुष्प किसको चढ़ाने चाहिये अथवा नहीं

वर्णन, श्राद्ध मे जो जो विधान करने हैं उनका पूरा वर्णन, श्राद्ध के सम्बन्ध मे जितनी बातो की जानकारी चाहिये उन सबका वर्णन इस अध्याय मे सविस्तर दिखाया गया है ( १७३-३६६ )।

८ शुद्धि वर्णनम् । ८२६

सूतक और अशौच का निर्णय किया गया है। सूतक बच्चे के जन्म होने से जो छूत होती है उसे कहते है। अशौच मृत्यु की छूत को कहते हैं ( १-२ )। किसको कितने दिन का सूतक पातक लगता है उसका विचार किया गया है ( ३-२५ )। अनाथ मनुष्य की क्रिया करने से अनन्त फल होता है तथा स्नान करने पर ही शुद्धि बताई गई है ( २६-२७ )। गर्भपात का सूतक जितने महीने का गर्भ हो उतने दिन के सूतक का निर्णय, अग्नि, अङ्गार, विदेश आदि मे जो मर जाते है उनका सद्य शौच अर्थात् तत्काल स्नान करने से शुद्धि कही गई है। जिन बच्चो को दाँत नहीं निकले हैं उनके मरने पर सद्य शौच और जो जन्मते ही मर गये हैं उनका भी सद्य शौच कहा है। इनका अग्नि संस्कार आदि कुछ नहीं होता। किसी के घर मे विवाह उत्सव आदि हो और यदि वहाँ

अध्याय | प्रधानविषय | पृष्ठाङ्क

८ आया है [ १७२-१७४ ]। हंस, कौआ, गीध, बन्दर आदि के वध का प्रायश्चित [ १७५-१७८ ]। तोता, मैना, चिड़ी इनके वध करने का प्रायश्चित्त बताया है [ १७९-१८० ]। बाज, चील के मारने का प्रायश्चित्त [ १८१ ]। मंडूक, गीदड़, शाखा-मृग (बंदर) महिष, ऊँट आदि जंगली जानवरों के मारने का प्रायश्चित्त [ १८२-१८७ ]। अभक्ष्य के खाने का प्रायश्चित्त और रजस्वला स्त्री के छूये हुए खाने का प्रायश्चित्त बताया है [ १८८-१९१ ]। दांतों के अन्दर गया हुआ उच्छिष्टावशेष को खाने का तथा अपना ही जूठा जल पीने का प्रायश्चित्त है [ १९२ ]। जिस जल में कपड़े धोये जाते हैं उस पानी के पीने से प्रायश्चित्त बताया है [ १९३-१९४ ]। वेश्या, नट की स्त्री, धोबी की स्त्री आदि के सहवास के पापों का प्रायश्चित्त बताया है [ १९५-२०० ]। कसाई के हाथ का मांस खाने का प्रायश्चित्त [ २०१-२०२ ]। जिनके घर का अन्न नहीं खाना चाहिये जैसे वेश्या आदि के घर खाने का प्रायश्चित्त कहा है [२०३-२०८]। बाएँ हाथ से भोजन करने का दोष बताया है [ २०९ २११ ]। बाएँ हाथ से भोजन करना सुरा तुल्य

| अध्याय | प्रधानविषय | पृष्ठाङ्क |
|---|---|---|
| ८ | बताया है और उसका चान्द्रायण [ २१२-२१३ ]। चान्द्रायण और पादकृच्छ्र व्रत का विधान [ २१४-२१५ ]। वेश्याओं के साथ रहनेवाला; जो अज्ञात कुलशील हो और चाण्डाल नौकर रखनेवाले को पुनः संस्कार का निर्णय दिया है [ २१६-२२१ ]। अभक्ष्य भक्षण, अपेय पान ( जिसका छूआ पानी नहीं पीना उसके पीने ) करने पर प्रायश्चित्त का विधान बताया गया है [ २२२-२३० ]। रज-स्वला के सम्पर्क से शुद्धि का विधान [२३१-२४२]। धोबी के स्पर्श से शुद्धि का विधान [ २४३ ]। वर्णक्रम से ( ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि ) रज-स्वला स्त्रियों के गमन करने पर प्रायश्चित्त बताया है [ २४४-२५३ ]। अन्त्यज स्त्री के गमन से प्रायश्चित्त कहा है [ २५४ ]। गुरुपत्नी आदि के गमन का पाप और उसके प्रायश्चित्त का उल्लेख है [ २५५-२६३ ]। रजस्वला के छुये हुए अन्न खाने का प्रायश्चित्त [ २६४-२६६ ]। उन्हीं पापों के प्रायश्चित्तों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है [२६७-२७५]। दुःस्वप्न देखने और हजामत (क्षौर) करने पर स्नान की विधि [ २७६ ]। सूअर, कुत्ता आदि के छूने पर शुद्धि [ २७७-२७६ ]। | |

८ कन्या कुमारी को कोई कुत्ता यदि चाट ले तो उसकी शुद्धि जिधर सूर्य आ रहा हो उधर देखने से हो जाती है [ २८०-२८१ ]। कोई कुत्ता किसी को काट देवे तो उसकी शुद्धि की विधि बताई है [ २८२-२८४ ]। गुरु को 'तू' बोलना और अपने से बड़ों को 'हूँ हूँ' बोलना इस पाप की शुद्धि बताई है [ २८५ ]। विवाद में स्त्री से जीतकर और स्त्री को मारना उसका प्रायश्चित्त [ २८६-२८७ ]। प्रेत को देखकर स्नान से शुद्धि का वर्णन [ २८८-२९३ ]। १०८ बार गायत्री मंत्र जपने से शुद्धि वर्णन [ २९४-२९५ ]। मुंह से गिरे हुए को फिर खा ले तो उसकी शुद्धि बताई है [२९६-२९८] कहीं जल पर पेशाब आदि के छींटे पड़ जायें तो उसकी शुद्धि [ २९९-३०० ]। नीच पुरुष, पापी पुरुष और पतित के साथ बात करने से जो पाप लगता है तो अपने दाहिने कान को तीन बार छू लेने से शुद्धि [३०१-३०४]। घर में मक्खियों के आने से, बच्चों, स्त्रियों और वृद्धों के बोलने से यदि थूक के छींटे पड़ जाये तो कोई दोष नहीं होता है [ ३०५-३१० ]। जो पलास वृक्ष और शीशम के वृक्ष की दन्तधावन करता है और नाई के देखे

| अध्याय | प्रधान विषय | पृष्ठाङ्क |
|---|---|---|
| १० | पृथक्-पृथक् दान करने का विवरण जैसे अन्नदान, जलदान, गृहदान, बैलदान, गोदान, तिलधेनु, घृतधेनु, जलधेनु, हेमधेनु, गजदान, अश्वदान, कृष्णाजिन दान, सुखासन ( पालकी ) दान, आदि का विस्तार बताया है [३-६]। भूमिदान, तुलादान, धातुदान, विद्यादान, प्राणदान, अभयदान और अन्नदान का वर्णन बताया है [ १०-१७ ]। अपूप ( मालपुए ) के दान का उल्लेख है, पृथक्-पृथक् दान के प्रकार और उनकी महिमा [ १८-२४ ]। गोदान का माहात्म्य, गोदान की विधि और बैल के दान की विधि बताई गई है [ २५-४० ]। उभयमुखी (जो गाय बच्चे को उत्पन्न कर रही है) उस दशा में गोदान की विधि और उसका माहात्म्य [ ४१-४५ ]। तिलधेनु दानविधि और माहात्म्य तथा विशेष सामग्री का वर्णन बताया है [ ४६-७० ]। घृतधेनु की विधि एवं उसकी सामग्री और उसके फल का वर्णन [ ७१-८६ ]। जलधेनु विधि और उनके फल का वर्णन [ ८७-१०३ ]। हेमधेनु, स्वर्ण की धेनु बनाने का प्रकार पूजाविधि और दानविधि तथा दान के माहात्म्य का उल्लेख है। स्वर्णधेनु की रचना किस प्रकार | |

श्री बृहत्पराशर स्मृतिस्थ विषयानुक्रमणिका समाप्ता।

---

## लघुहारीतस्मृति के प्रधान विषय

४ देना लिखा है। मरीचि आदि ऋषि और सनकादि योगियों ने भी प्रातःकाल सूर्य को अर्घ्यदान देना बताया है। जो मनुष्य अर्घ्यदान नहीं करता है वह नरक में जाता है (४-१६)। स्नान करने की विधि और स्नान करने के मन्त्र बताये गये हैं (१७-३३)। तीन पानी की चुल्लू पीना और पानी की अञ्जली सिर पर डालना। कुशा को हाथ में लेकर पूर्व की ओर मुख करके प्रोक्षण करे (३४-३८)। प्राणायाम और गायत्री के मन्त्र जपने की विधि। जपके मन्त्र का उच्चारण करने का विधान। जप के तीन मुख्यभेद वाचिक, उपांशु और मानस। जप करने से देवता प्रसन्न होते हैं यह बताया गया है। जो नित्य गायत्री का जप करता है वह पापों से छूट जाता है। गायत्री जप करने के बाद सूर्य को पुष्पाञ्जलि दे और सूर्य की प्रदक्षिणा कर नमस्कार करे पश्चात् तीर्थ के जल से तर्पण करे (३९-५०)। ब्रह्मयज्ञ के मंत्रों का वर्णन (५१-५४)। अतिथि पूजन और बलिवैश्वदेव की विधि बताई है (५५-६२)। पहले सुवासिनी स्त्री और कुमारी को भोजन करावे फिर बालक और वृद्धों को भोजन करावे तब

## वृद्धहारितस्मृति के प्रधान विषय

है। चोरी करना, परस्त्री हरण, हिंसा सबके लिये पाप बताया है ( १४१-१७४ )।

४ प्राप्तकालभगवत्समाराधनविधौ राजधर्मवर्णनम् १०६७

राजधर्म का वर्णन, दण्डनीति विधान—प्रायः वही है जो याज्ञवल्क्य में है। इसमें विशेषता यह है कि धर्मच्युत को सहस्र दण्ड विधान बताया है। स्त्री के साथ व्यभिचार करनेवाले का अंगच्छेदन, सर्वस्वहरण और देश निष्कासन बताया है ( १७५-२१३ )। युद्ध का वर्णन और युद्ध में राज्य जीतकर उसे अपने आधीन कर राज्य समर्पित कर देना इसकी बड़ी प्रशंसा की गई है एवं विजय की हुई भूमि सत्पात्र को देनी चाहिये। सत्पात्र के लक्षण–तपस्या और विद्या की सम्पन्नता है ( २१४-२२३ )। राज्यशासन का विधान कर लगाना, याचित, अनाहित और ऋणदान देने का विधान, पुत्र को पिता का ऋण देना, स्त्री धन की रक्षा, पतिव्रता स्त्री का पालन, व्यभिचारिणी को पति के धन का भाग न मिलने का वर्णन और बारह प्रकार के पुत्रों का वर्णन इस तरह संक्षेप

८ वैष्णव धर्माभिधानेतच्छास्त्रस्यफलश्रुति वर्णनम्— १२३३

पौराणिक तथा स्मृति के मन्त्रों से भगवान् विष्णु का पूजन और नवधा भक्ति का वर्णन, ध्यानजप, मन्त्रजप का वर्णन, तप्तचक्रांक धारण का माहात्म्य और वैष्णव धर्मवालों की प्रशस्ति बताई है।

"दानं दमः तपः शौचं आर्जवं शान्तिरेव च
आनृशंसं सतां संग पारमैकान्त्य हेतवः।
वैष्णवः परमेकान्तो नेतरो वैष्णवःस्मृतः॥

पूजा का माहात्म्य और भिन्न भिन्न प्रकार से जो भगवान् विष्णु की पूजा उत्सव यज्ञ दान बताये हैं, इन सबका तात्पर्य यह है कि भक्त पर विष्णु भगवान् की कृपा हो जाय। जिसपर वैष्णव संस्कारों से विष्णु भगवान् की कृपा या आशिर्वाद हो जाता है उनका जीवन-चरित्र ऐसा होता है—दान करना, दम इन्द्रियों का दमन, तप तपस्या, शौच पवित्रता, आर्जव सरलता, शान्ति क्षमा, आनृशंसं सत्य वचन, सज्जनों का

स्मृति सन्दर्भ द्वितीय भाग की विषय-सूची समाप्त।

॥ शुभम् ॥



॥ ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥

श्रीमन्महर्षि पराशरप्रणीता-

# ॥ पराशरस्मृतिः ॥

—:०००:—

प्रथमोऽध्यायः।

—००—

श्रीगणेशायनमः।

तत्रादौ–धर्मोपदेशविलक्षणञ्चाह–

अथातो हिमशैलाग्रे देवदारुवनालये।
व्यासमेकाग्रमासीनमपृच्छन्नृषयः पुरा॥१
मानुषाणां हितं धर्मं वर्त्तमाने कलौ युगे।
शौचाचारं यथावच्च वद सत्यवतीसुत!॥२
तच्छ्रुत्वा ऋषिवाक्यन्तु समिद्धाग्न्यर्कसन्निभः।
प्रत्युवाच महातेजाः श्रुतिस्मृतिविशारदः॥३
नचाहं सर्वतत्त्वज्ञः कथं धर्मं वदाम्यहं।
अस्मन् पितैव प्रष्टव्य इति व्यासः सुतोऽवदत्॥४

ततस्ते ऋषयः सर्व्वे धर्मतत्त्वार्थकाङ्क्षिणः।
ऋषिं व्यासं पुरस्कृत्य गता बदरिकाश्रमे ॥५
नानावृक्षसमाकीर्णं फलपुष्पोपशोभितम्।
नदीप्रस्रवणाकीर्णं पुण्यतीर्थैरलङ्कृतम् ॥६
मृगपक्षिगणाक्रान्तं देवतायतनावृतम्।
यक्षगन्धर्व्वसिद्धैश्च नृत्यगीतसमाकुलम् ॥७
तस्मिन्नृषिसभामध्ये शक्तिपुत्रं पराशरम्।
सुखासीनं महात्मानं मुनिमुख्यगणावृतम् ॥८
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा व्यासस्तु ऋषिभिः सह।
प्रदक्षिणाभिवादैश्च स्तुतिभिः समपूजयत् ॥९
अथ सन्तुष्टमनसाः पराशरमहामुनिः।
आह सुस्वागतं ब्रूहीत्यासीनो मुनिपुङ्गवः ॥१०
व्यासः सुस्वागतं ये च ऋषयश्च समन्ततः।
कुशलं कुशलेत्युक्त्वा व्यासः पृच्छत्यतः परम् ॥११
यदि जानासि मे भक्तिं स्नेहाद्वा भक्तवत्सल!
धर्मं कथय मे तात। अनुग्राह्योऽहं तव ॥१२
श्रुता मे मानवा धर्म्मा वाशिष्ठाः काश्यपास्तथा।
गार्गेया गौतमाश्चैव तथा चौशनसाः स्मृताः ॥१३
अत्रेर्विष्णोश्च साम्वर्त्ता दाक्षा आङ्गिरसास्तथा।
शातातपाश्च हारीता याज्ञवल्क्यकृताश्च ये ॥१४
कात्यायनकृता श्चैव प्राचेतसकृताश्च ये।
आपस्तम्बकृता धर्म्माः शङ्खस्य लिखितस्य च ॥ १५

श्रुता ह्येते भवत्प्रोक्ताः श्रौतार्थास्तेन विस्मृताः ।
अस्मिन्मन्वन्तरे धर्म्माः कृतत्रेतादिके युगे ॥१६
सर्व्वे धर्म्माः कृते जाताः सर्वे नष्टाः कलौ युगे ।
चातुर्वर्ण्यसमाचारं किञ्चित् साधारण वद ॥१७
व्यासवाक्यावसाने तु मुनिमुख्यः पराशरः ।
धर्मस्य निर्णयं प्राह सूक्ष्मं स्थूलञ्च विस्तरात् ॥१८
शृणु पुत्र ! प्रवक्ष्येऽहं शृण्वन्तु मृषयस्तथा ॥१९
कल्पे कल्पे क्षयोत्पत्तौ ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
श्रुतिः स्मृतिः सदाचारा निर्णेतव्याश्च सर्वदा ॥२०
न कश्चिद्वेदकर्त्ता च वेदस्मर्त्ता चतुर्मुखः ।
तथैव धर्मं स्मरति मनु कल्पान्तरान्तरे ॥२१
अन्ये कृतयुगे धर्म्मास्त्रेताया द्वापरे परे ।
अन्ये कलियुगे नृणा युगरूपानुसारतः ॥२२
तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ।
द्वापरे यज्ञमित्यूचुर्दानमेकं कलौ युगे ॥२३
कृते तु मानवो धर्मस्त्रेतायां गौतमः स्मृतः ।
द्वापरे शाङ्खलिखितः कलौ पाराशरः स्मृतः ॥२४
त्यजेद्देशं कृतयुगे त्रेताया ग्राममुत्सृजेत् ।
द्वापरे कुलमेकन्तु कर्त्तारञ्च कलौ युगे ॥२५
कृते सम्भाषणात् पापं त्रेतायाञ्चैव दर्शनात् ।
द्वापरे चान्नमादाय कलौ पतति कर्मणा ॥२६

कृते तु तत्क्षणाच्छापस्त्रेतायां दशभिर्दिनैः।
द्वापरे मासमात्रेण कलौ सम्वत्सरेण तु ॥२७
अभिगम्य कृते दानं त्रेतास्वाहूय दीयते।
द्वापरे याचमानाय सेवया दीयते कलौ ॥२८
अभिगम्योत्तमं दानमाहूतञ्चैव मध्यमम्।
अधमं याच्यमानं स्यात् सेवादानञ्च निष्फलम् ॥२९
कृते चास्थिगताः प्राणास्त्रेतायां मांससंस्थिताः।
द्वापरे रुधिरं यावत् कलावन्नादिषु स्थिताः ॥३०
धर्मो जितो ह्यधर्मेण जितः सत्योऽनृतेन च।
जिता भृत्यैस्तु राजानः स्त्रीभिश्च पुरुषा जिताः ॥३१
सीदन्ति चाग्निहोत्राणि गुरुपूजा प्रणश्यति।
कुमार्य्यश्च प्रसूयन्ते तस्मिन् कलियुगे सदा ॥३२
युगे युगे च ये धर्मास्तत्र तत्र च ये द्विजाः।
तेषां निन्दा न कर्त्तव्या युगरूपाहि ते द्विजाः ॥३३
युगे युगे च सामर्थ्य शेषं मुनिविभाषितम्।
पराशरेण चाप्युक्तं प्रायश्चित्तं प्रधीयते ॥३४
अहमद्यैव तद्धममनुस्मृत्य ब्रवीमि वः।
चातुर्वर्ण्यसमाचारं शृणुध्वं मुनिपुङ्गवाः ! ॥३५
पाराशरमतं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम्।
चिन्तितं ब्राह्मणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥३६
चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालकः।
आचारभ्रष्टदेहानां भवेद्धर्मः पराङ्मुखः ॥३७

षट्कर्माभिरतो नित्यं देवतातिथिपूजकः ।
हुतशेषन्तु भुञ्जानो ब्राह्मणो नावसीदति ॥३८
सन्ध्यास्नानं जपो होम स्वाध्यायो देवतार्चनम् ।
वैश्वदेवातिथेयञ्च षट्कर्म्माणि दिने दिने ॥३६
प्रियो वा यदि वा द्वेष्यो मूर्ख पण्डित एव वा ।
वैश्वदेवे तु संप्राप्तः सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः ॥४०
दूराद्ध्वानं पथि श्रान्तं वैश्वदेवे उपस्थितम् ।
अतिथिं तं विजानीयान्नातिथिः पूर्वमागतः ॥४१
न पृच्छेद्गोत्रचरणं न स्वाध्यायव्रतानि च ।
हृदयं कल्पयेत्तस्मिन् सर्वदेवमयोहि सः ॥४२
नैकग्रामीणमतिथिं विप्रं साङ्गमिकं तथा ।
अनित्यं ह्यागतो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥४३
अपूर्वः सुव्रती विप्रो ह्यपूर्वो वातिथिस्तथा ।
वेदाभ्यासरतो नित्यं त्रयोऽपूर्वा दिने दिने ॥४४
वैश्वदेवे तु संप्राप्ते भिक्षुके गृहमागते ।
उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्वा विसर्जयेत् ॥४५
यती च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ ।
तयोरन्नमदत्वा च भुक्त्वा चान्द्रायणञ्चरेत् ॥४६
यतिहस्ते जलं दद्याद्भैक्षं दद्यात् पुनर्जलम् ।
तद्भैक्षं मेरुणा तुल्यं तज्जलं सागरोपमम् ॥४७
वैश्वदेवकृतान् दोषान् शक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम् ।
नहि भिक्षु कृतान् दोषान् वैश्वदेवो व्यपोहति ॥४८

हलमष्टगवं धर्म्यं षड्गवं मध्यमं स्मृतम् ।
चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं वृषघातिनाम् ॥३
क्षुधितं तृषितं श्रान्तं बलीवर्दं न योजयेत् ।
हीनाङ्गं व्याधितं क्लीबं वृषं विप्रो न वाहयेत् ॥४
स्थिराङ्गं नीरुजं दृप्तं वृषभं षण्डवर्जितम् ।
वाहयेद्दिवसस्यार्द्धं पश्चात् स्नानं समाचरेत् ॥५
जपं देवार्चनं होमं स्वाध्यायं साङ्गमभ्यसेत् ।
एकद्वित्रिचतुर्विप्रान् भोजयेत् स्नातकान् द्विजः ॥६
स्वयंकृष्टे तथा क्षेत्रे धान्यैश्च स्वयमर्जितैः ।
निर्वपेत् पञ्च यज्ञानि क्रतुदीक्षाञ्च कारयेत् ॥७
तिला रसा न विक्रेया विक्रेया धान्यतत्समाः ।
विप्रस्यैवंविधा वृत्तिस्तृणकाष्ठादिविक्रय ॥८
ब्राह्मणस्तु कृषिं कृत्वा महादोषमवाप्नुयात् ।
सम्वत्सरेण यत्पापं मत्स्यघाती समाप्नुयात् ।
अयोमुखेन काष्ठेन तदेकाहेन लाङ्गली ॥९
पाशको मत्स्यघाती च व्याधः शाकुनिकस्तथा ।
अदाता कर्षकश्चैव पञ्चैते समभागिनः ॥१०
कण्डनी पेषणी चुल्ली उदकुम्भोऽथ मार्जनी ।
पञ्च शूना गृहस्थस्य अहन्यहनि वर्त्तते ॥११
वृक्षान् छित्त्वा महीं हत्वा हत्वा तु कृमिकीटकान् ।
कर्षकः खलु यज्ञेन सर्वपापात् प्रमुच्यते ॥१२

यो न दद्याद् द्विजातिभ्यो राशिमूलमुपागतः ।
स चौरः स च पापिष्ठो ब्रह्मघ्नं तं विनिर्दिशेत् ॥१३
राज्ञे दत्वा तु षड्भागं देवानाञ्चैकविंशकम् ।
विप्राणां त्रिंशकं भागं कृषिकर्त्ता न लिप्यते ॥१४
क्षत्रियोऽपि कृषिं कृत्वा द्विजान् देवांश्च पूजयेत् ।
वैश्यः शूद्रः सदा कुर्यात् कृषिवाणिज्यशिल्पकान् ॥१५
विकर्म कुर्वते शूद्रा द्विजसेवाविवर्जिताः ।
भवन्त्यल्पायुषस्ते वै पतन्ति नरकेषु च ॥१६
चतुर्णामपि वर्णानामेष धर्मः सनातनः ॥१७

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥

---

॥ तृतीयोऽध्यायः ॥

अशौचव्यवस्थावर्णनम् ।

अतः शुद्धिं प्रवक्ष्यामि जनने मरणे तथा ।
दिनत्रयेण शुद्ध्यन्ति ब्राह्मणाः प्रेतसूतके ॥१॥
क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पञ्चदशाहकैः ।
शूद्रः शुद्धति मासेन पराशरवचो यथा ॥२
उपासने तु विप्राणामङ्गशुद्धिस्तु जायते ।
ब्राह्मणानां प्रसूतौ तु देहस्पर्शो विधीयते ॥३
जाते विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिप ।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥४

एकाहाच्छुद्ध्यते विप्रो योऽग्निवेदसमन्वितः।
त्र्यहात् केवलवेदस्तु द्विहीनो दशभिर्दिनैः ॥५
जन्मकर्मपरिभ्रष्टः सन्ध्योपासनवर्जितः।
नामधारकविप्रस्य दशाहं सूतकं भवेत् ॥६
एकपिण्डास्तु दायादाः पृथग्दारनिकेतनाः।
जन्मन्यपि विपत्तौ च भवेत्तेषाञ्च सूतकम् ॥७
उभयत्र दशाहानि कुलस्यान्नं न भुज्यते।
दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायश्च निवर्त्तते ॥८
प्राप्नोति सूतकं गोत्रे चतुर्थपुरुषेण तु।
दायाद्विच्छेदमाप्नोति पञ्चमो वात्मवंशजः ॥९
चतुर्थे दशरात्रं स्यात् षण्निशाः पुंसि पञ्चमे।
षष्ठे चतुरहाच्छुद्धिः सप्तमे तु दिनत्रयम् ॥१०
पञ्चभिः पुरुषैर्युक्ता अश्राद्धेया सगोत्रिणः।
ततः षट्पुरुषाश्चैव श्राद्धे भोज्याः सगोत्रिणः ॥११
भृग्वग्निमरणे चैव देशान्तरमृते तथा।
बाले प्रेते च सन्न्यासे सद्यः शौचं विधीयते ॥१२
दशरात्रेष्वतीतेषु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते।
ततः सम्वत्सरादूर्द्ध्वं सचैलं स्नानमाचरेत् ॥१३
देशान्तरमृतः कश्चित् सगोत्रः श्रूयते यदि।
न त्रिरात्रमहोरात्रं सद्यः स्नात्वा विशुद्ध्यति ॥१४
आत्रिपक्षात्त्रिरात्रं स्यात्षण्मासाच्च पक्षिणी।
अहः सम्वत्सरादर्वाक् सद्यः शौचं विधीयते ॥१५

अजातदन्ता ये बाला ये च गर्भाद्विनिःसृताः ।
न तेषामग्निसंस्कारो नाशौचं नोदकक्रिया ॥१६
यदि गर्भोविपद्येत स्रवते वापि योषिताम् ।
यावन्मासं स्थितोगर्भो दिनं तावत् स सूतकः ॥१७
आ चतुर्थाद्भवेत् स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः ।
अत ऊर्द्ध्वं प्रसूतिः स्याद्दशाहं सूतकं भवेत् ॥१८
प्रसूतिकाले संप्राप्ते प्रसवे यदि योषिताम् ।
जीवापत्ये तु गोत्रस्य मृते मातुश्च सूतकम् ॥१६
रात्रावेव समुत्पन्ने मृते रजसि सूतके ।
पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नोदयते रविः ॥२०
दन्तजातेऽनुजाते च कृतचूड़े च संस्थिते ।
अग्निसंस्करणं तेषां त्रिरात्रं सूतकं भवेत् ॥२१
आ दन्तजननात् सद्य आचूडान्नैशिकी स्मृता ।
त्रिरात्रमाव्रतात्तेषां दशरात्रमतः परम् ॥२२
गर्भे यदि विपत्तिः स्याद्दशाहं सूतकं भवेत् ।
जीवन् जातो यदि प्रेत सद्य एव विशुद्ध्यति ॥२३
स्त्रीणां चूड़ाञ्च आदानात् संक्रमात्तद्धःक्रमात् ।
सद्यः शौचमथैकाहं त्रिरहः पितृबन्धुषु ॥२४
ब्रह्मचारी गृहे येषां हूयते च हुताशने ।
सम्पर्कं न च कुर्वन्ति न तेषां सूतकं भवेत् ॥२५
सम्पर्काद्दुष्यते विप्रो नान्यो दोषोऽस्ति ब्राह्मणे ।
सम्पर्केषु निवृत्तस्य न प्रेतं नैव सूतकम् ॥२६

शिल्पिनः कारुका वैद्या दासीदासाश्च नापिताः।
श्रोत्रियाश्चैव राजानः सद्यः शौचाः प्रकीर्तिताः ॥२७
सव्रती मन्त्रपूतश्च आहिताग्निश्च यो द्विजः।
राज्ञश्च सूतकं नास्ति यस्य चेच्छति पार्थिवः ॥२८
उद्यतो निधने दाने आर्तो विप्रो निमन्त्रितः।
तदैव ऋषिभिर्दृष्टं यथाकालेन शुद्ध्यति ॥२९
प्रसवे गृहमेधी तु न कुर्यात् सङ्करं यदि।
दशाहाच्छुद्ध्यते माता अवगाह्य पिता शुचिः ॥३०
सर्वेषां शावमाशौचं मातापित्रोर्दशाहिकं।
सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः ॥३१
यदि पत्न्यां प्रसूतायां सम्पर्कं कुरुते द्विजः।
सूतकन्तु भवेत्तस्य यदि विप्रः षडङ्गवित् ॥३२
सम्पर्काज्जायते दोषो नान्यो दोषोऽस्ति ब्राह्मणे।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सम्पर्कं वर्जयेद्द्विजः ॥३३
विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरा मृतसूतके।
पूर्वं सङ्कल्पितं द्रव्यं दीयमानं न दुष्यति ॥३४
अन्तरा तु दशाहस्य पुनर्मरणजन्मनी।
तावत् स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तत् स्यादनिर्दशम् ॥३५
ब्राह्मणार्थे विपन्नानां बन्दिगोग्रहणे तथा।
आहवेषु विपन्नानामेकरात्रन्तु सूतकम् ॥३६
द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदकौ।
परिव्राड्योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखे हतः ॥३७

यत्र यत्र हतः शूरः शत्रुभिः परिवेष्टितः।
अक्षयांल्लभते लोकान् यदि क्लीवं न भाषते ॥३८
जितेन लभते लक्ष्मीं मृतेनापि सुराङ्गनाः।
क्षणविध्वंसिकेऽस्मिन् का चिन्ता मरणे रणे ॥३९
यस्तु भग्नेषु सैन्येषु विद्रवत्सु समन्ततः।
परित्राता यदा गच्छेत् स च क्रतुफलं लभेत् ॥४०
यस्य च्छेदक्षतं गात्रं शरशक्त्यृष्टिमुद्गरैः।
देवकन्यास्तु तं वीरं गायन्ति रमयन्ति च ॥४१
वराङ्गनासहस्राणि शूरमायोधने हतं।
नागकन्याश्च धावन्ति मम भर्त्ता भवेदिति ॥४२
ललाटदेशाद्रुधिरं हि यस्य
तत्तस्य जन्तोः प्रविशेच वक्त्रे।
तत् सोमयानेन हि तस्य तुल्यं
संग्रामयज्ञे विधिवच्च दृष्टम् ॥४३
यं यज्ञसंघैस्तपसा च विद्यया
स्वर्गैषिणो यान्ति यथैव विप्राः।
तथैव यान्त्येयहि तत्र वीराः
प्राणान् सुयुद्धेन परित्यजन्त. ॥४४
अनाथं ब्राह्मणं प्रेतं ये वहन्ति द्विजातयः।
पदे पदे यज्ञफलमानुपूर्वाल्लभन्ति ते ॥४५
असगोत्रमबन्धुञ्च प्रेतीभूतञ्च ब्राह्मणं।
नीत्वा च दाहयित्वा च प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥४६

न तेषामशुभं किञ्चिद्द्विजानां शुभकर्मणि ।
जलावगाहनात्तेषां शुद्धिः स्मृतिभिरीरिता ॥४७
अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव वा ।
स्नात्वा चैव तु स्पृष्ट्वाग्निं घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥४८
क्षत्रियं मृतमज्ञानाद्ब्राह्मणो योऽनुगच्छति ।
एकाहमशुचिर्भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥४९
शवञ्च वैश्यमज्ञानाद्ब्राह्मणो योऽनुगच्छति ।
कृत्वा शौचं द्विरात्रञ्च प्राणायामान् षडाचरेत् ॥५०
प्रेतीभूतन्तु यः शूद्रं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ।
नयन्तमनुगच्छेत त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥५१
त्रिरात्रे तु ततः पूर्णे नदीं गत्वा समुद्रगाम् ।
प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥५२
विनिर्वर्त्य यदा शूद्रा उदकान्तमुपस्थिताः ।
द्विजैस्तदानुगन्तव्या इति धर्मविदो विधिः ॥५३
तस्माद्द्विजो मृतं शूद्रं न स्पृशेन्न च दाहयेत् ।
दृष्टे सूर्यावलोकेन शुद्धिरेषा पुरातनी ॥५४

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥



## ॥ चतुर्थोऽध्यायः ॥

### अनेकविधप्रकरणप्रायश्चित्तम्।

अतिमानादतिक्रोधात् स्नेहाद्वा यदि वा भयात्।
उद्‌बध्नीयात् स्त्री पुमान् वा गतिरेषा विधीयते ॥१
पूयशोणितसंपूर्णे अन्धे तमसि मज्जति।
षष्टिं वर्षसहस्राणि नरकं प्रतिपद्यते।
नाशौचं नोदकं नाग्निं नाश्रुपातञ्च कारयेत् ॥२
वोढारोऽग्निप्रदातारः पाशच्छेदकरास्तथा।
तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यन्तीत्येवमाह प्रजापतिः ॥३
गोभिर्हतं तथोद्‌बद्धं ब्राह्मणेन तु घातितम्।
संस्पृशन्ति तु ये विप्रा वोढारश्चाग्निदाश्च ये ॥४
अन्येऽपि वानुगन्तारः पाशच्छेदकराश्च ये।
तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यन्ति कुर्य्युर्ब्राह्मणभोजनम् ॥५
अनडुत्सहितां गाश्च दद्युर्विप्राय दक्षिणाम्।
त्र्यहमुष्णं पिबेदापस्त्र्यहमुष्णं पयः पिबेत्।
त्र्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षो दिनत्रयम् ॥६
यो वै समाचरेद्विप्रः पतितादिष्वकामतः।
पञ्चाहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा ॥७
मासार्द्धं मासमेकं वा मासद्वयमथापि वा।
अब्दार्द्धमब्दमेकं वा तदूर्ध्वं चैव तत्समः ॥८

दाराग्निहोत्रसंयोगं यः कुर्य्यादग्रजे सति।
परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥२०
द्वौ कृच्छ्रौ परिवित्तेस्तु कन्यायाः कृच्छ्र एव च।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ दातुश्च होता चान्द्रायणञ्चरेत् ॥२१
कुब्जवामनषण्डेषु गद्गदेषु जडेषु च।
जात्यन्धे बधिरे मूके न दोषः परिवेदने ॥२२
पितृव्यपुत्रः सापत्न्यः परनारीसुतस्तथा।
दाराग्निहोत्रसंयोगे न दोषः परिवेदने ॥२३
ज्येष्ठो भ्राता यदा तिष्ठेदाधानं नैव चिन्तयेत्।
अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शङ्खस्य वचनं यथा ॥२४
नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो न विद्यते ॥२५
मृते भर्तरि या नारी ब्रह्मचर्य्ये व्यवस्थिता।
सा मृता लभते स्वर्गं यथा सद् ब्रह्मचारिणः ॥२६
तिस्रः कोटयर्द्धकोटी च यानि रोमाणि मानुषे।
तावत् कालं वसेत् स्वर्गे भर्त्तारं यानुगच्छति ॥२७
व्यालग्राही यथा व्यालं बिलादुद्धरते बलात्।
एवमुद्धृत्य भर्त्तारं तेनैव सह मोदते ॥२८

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥



॥ अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥

प्रायश्चित्तवर्णनम् ।

श्ववृकाभ्यां शृगालाद्यैर्यदि दष्टस्तु ब्राह्मणः ।
स्नात्वा जपेत गायत्रीं पवित्रां वेदमातरम् ॥१
गवां शृङ्गोदके स्नातो महानद्यास्तु सङ्गमे ।
समुद्रदर्शनाद्वापि शुना दष्टः शुचिर्भवेत् ॥२
वेदविद्याव्रतस्नातः शुना दष्टस्तु ब्राह्मणः ।
स हिरण्योदके स्नात्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥३
सव्रतस्तु शुना दष्टस्त्रिरात्रं समुपोषितः ।
घृतं कुशोदकं पीत्वा व्रतशेषं समापयेत् ॥४
अव्रतः सव्रतो वापि शुना दष्टो भवेद्द्विजः ।
प्रणिपत्य भवेत् पूतो विप्रैश्चानुनिरीक्षितः ॥५
शुना घ्रातावलीढस्य नखैर्विलिखितस्य च ।
अद्भिः प्रक्षालनाच्छुद्धिरग्निना चोपचूलनम् ॥६
शुना च ब्राह्मणी दष्टा जम्बुकेन वृकेण वा ।
उदितं सोमनक्षत्रं दृष्ट्वा सद्यः शुचिर्भवेत् ॥७
कृष्णपक्षे यदा सोमो न दृश्येत कदाचन ।
यां दिशं व्रजते सोमस्तां दिशञ्चावलोकयेत् ॥८
असद्ब्राह्मणके ग्रामे शुना दष्टस्तु ब्राह्मणः ।
वृषं प्रदक्षिणीकृत्य सद्यः स्नानाद्विशुध्यति ॥९
चाण्डालेन श्वपाकेन गोभिर्विप्रैर्हतो यदि ।

आहिताग्निर्मृतो विप्रो विषेणात्महतो यदि ।
दहेत्तं ब्राह्मणं विप्रो लोकाग्नौ मन्त्रवर्जितम् ॥१०
स्पृष्ट्वा चोद्य च दग्ध्वा च सपिण्डेषु च सर्व्वथा ।
प्राजापत्यं चरेत् पश्चाद्विप्राणामनुशासनात् ॥११
दग्ध्वास्थीनि पुनर्गृह्य क्षीरैः प्रक्षालयेद्द्विजः ।
पुनर्दहेत् स्वकाग्नौ तन्मन्त्रेण च पृथक् पृथक् ॥१२
आहिताग्निर्द्विजः कश्चित् प्रवसन् कालचोदितः ।
देहनाशमनुप्राप्तस्तस्याग्निर्वर्त्तते गृहे ॥१३
श्रौताग्निहोत्रसंस्कारः श्रूयतामृषिसत्तमाः । ॥
कृष्णाजिनं समास्तीर्य्य कुशैश्च पुरुषाकृतिम् ॥१४
षट् शतानि शतञ्चैव पलाशानाञ्च वृन्तकम् ।
चत्वारिंशच्छिरे दद्यात् षष्टिं कण्ठे विनिर्द्दिशेत् ॥१५
बाहुभ्याञ्च शतं दद्यादङ्गुलीषु दशैव तु ।
शतञ्चोरसि संदद्यात् त्रिंशच्चैवोदरे न्यसेत् ॥१६
अष्टौ वृषणयोर्दद्यात् पञ्च मेढ्रे च विन्यसेत् ।
एकविंशतिमूरुभ्यां जानुजङ्घे च विंशतिम् ॥१७
पादाङ्गुल्योः शतार्द्धञ्च पात्राणि च तथा न्यसेत् ।
शम्यां शिश्ने विनिक्षिप्य अरणीं वृषणे तथा ॥१८
जुहूं दक्षिणहस्तेन वामहस्ते तथोपसत् ।
कर्णेचोलूखलं दद्यात् पृष्ठे च मुषलं ततः ॥१९
निक्षिप्योरसि दृषदं तण्डुलाज्यतिलान्मुखे ।
श्रोत्रे च प्रोक्षणीं दद्यादाज्यस्थालीञ्च चक्षुषोः ॥२०

कर्णे नेत्रे मुखे घ्राणे हिरण्यशकलं क्षिपेत्।
अग्निहोत्रोपकरणं गात्रे शेषं प्रविन्यसेत्॥२१
असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति च घृताहुतीः।
दद्यात् पुत्रोऽथवा भ्राता ह्यन्ये वापि स्वधर्मिणः॥२२
यथा दहनसंस्कारस्तथा कार्य्यं विचक्षणैः।
ईदृशन्तु विधिं कुर्य्याद्ब्रह्मलोके गतिर्ध्रुवम्॥२३
ये दहन्ति द्विजास्तन्तु ते यान्ति परमां गतिम्।
अन्यथा कुर्व्वते किञ्चिदात्मबुद्धिप्रबोधिताः॥२४
भवन्त्यल्पायुषस्ते वै पतन्ति नरके ध्रुवम्॥२५

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः।

---

## ॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

### प्राणिहत्याप्रायश्चित्तवर्णनम्।

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्राणिहत्यासु निष्कृतिम्।
पराशरेण पूर्व्वोक्तां मन्वर्थेऽपि च विस्तृताम्॥१
हंससारसक्रौञ्चांश्च चक्रवाकं सकुक्कुटम्।
जालपादांश्च शरभमहोरात्रेण शुध्यति॥२
बलाकाटिट्टिभानाञ्च शुकपारावतादिनाम्।
आटिनाञ्च बकानाञ्च शुद्ध्यते नक्तभोजनात्॥३

भासकाकपोतानां सारीतित्तिरिघातकः ।
अन्तर्जले उभे सन्ध्ये प्राणायामेन शुध्यति ॥४
गृध्रश्येनशशादाद्यासोलूकनिपातने ।
अपक्वाशी दिनं तिष्ठेत्त्रिकालं मारुताशनः ॥५
वल्गुणीचटकानाञ्च कोकिलाखञ्जरीटकान् ।
लावकारुणपादांश्च शुद्ध्यत्यन्ते नक्तभोजनात् ॥६
कारण्डवचकोराणां पिङ्गलाकुररस्य च ।
भारद्वाजनिहन्ता च शुद्ध्यते शिवपूजनात् ॥७
भेरुण्डश्येनभासांश्च पारावतकपिञ्जलान् ।
पक्षिणामेव सर्वेषामहोरात्रेण शुध्यति ॥८
हत्वा नकुलमार्जारसर्पाजगरडुण्डुभान् ।
कृशरं भोजयेद्विप्रान् लोहदण्डञ्च दक्षिणाम् ॥९
शल्लकीशशकगोधामत्स्यकूर्म्माभिपातने ।
वृन्ताकफलभोक्ता च ह्यहोरात्रेण शुध्यति ॥१०
वृकजम्बूकऋक्षाणां तरक्षूणाञ्च घातने ।
तिलप्रस्थं द्विजे दद्याद्वायुभक्षो दिनत्रयम् ॥११
गजगवयतुरङ्गानां महिषोष्ट्रनिपातने ।
शुद्ध्यते सप्तरात्रेण विप्राणां तर्पणेन च ॥१२
मृगं रुरुं वराहञ्च अज्ञानाद्यस्तु घातयेत् ।
अकालकृष्टमश्नीयादहोरात्रेण शुध्यति ॥१३
एवं चतुष्पदानाञ्च सर्वेषां वनचारिणाम् ।
अहोरात्रोषितस्तिष्ठेज्जपन् वै जातवेदसम् ॥१४

शिल्पिनं कारुकं शूद्रं स्त्रियं वा यस्तु घातयेत्।
प्राजापत्यद्वयं कुर्य्याद्वृषैकादशदक्षिणा ॥१५
वैश्यं वा क्षत्रियं वापि निर्दोषमभिघातयेत्।
सोऽतिकृच्छ्रद्वयं कुर्य्याद्गोविंशं दक्षिणां ददेत् ॥१६
वैश्यं शूद्रं क्रियासक्तं विकर्मस्थं द्विजोत्तमम्।
हत्वा चान्द्रायणं कुर्य्याद्दद्याद्गोस्त्रिंशद्दक्षिणाम् ॥१७
क्षत्रियेणापि वैश्येन शूद्रेणैवेतरेण वा।
चाण्डालवधसंप्राप्तः कृच्छ्रार्द्धेन विशुध्यति ॥१८
चौराः श्वपाकचाण्डाला विप्रेणापि हता यदि।
अहोरात्रोपवासेन प्राणायामेन शुध्यति ॥१९
श्वपाकं वापि चाण्डालं विप्रः सम्भाषते यदि।
द्विजसम्भाषणं कुर्य्याद्गायत्रीं वा सकृज्जपेत् ॥२०
चाण्डालैः सह सुप्तन्तु त्रिरात्रमुपवासयेत्।
चाण्डालैकपथङ्गत्वा गायत्रीस्मरणाच्छुचिः ॥२१
चाण्डालदर्शनेनैव आदित्यमवलोकयेत्।
चाण्डालस्पर्शने चैव सचैलं स्नानमाचरेत् ॥२२
चाण्डालखातवापीषु पीत्वा सलिलमग्रजः।
अज्ञानाच्चैव भक्तेन त्वहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥२३
चाण्डालभाण्डसंस्पृष्टं पीत्वा कूपगतं जलम्।
गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्राच्छुद्धिमाप्नुयात् ॥२४
चाण्डालोदकभाण्डे तु अज्ञानात् पिबते जलम्।
तत्क्षणात् क्षिपते यस्तु प्राजापत्यं समाचरेत् ॥२५

यदि न क्षिपते तोयं शरीरे यस्य जीर्य्यति ।
प्राजापत्यं न दातव्यं कृच्छ्रं सान्तपनञ्चरेत् ॥२६
चरेत् सान्तपनं विप्र प्राजापत्यन्तु क्षत्रियः ।
तदर्द्धन्तु चरेद्वैश्य पादं शूद्रस्य दापयेत् ॥२७
भाण्डस्थमन्त्यजानान्तु जलं दधि पयः पिबेत् ।
ब्राह्मण क्षत्रियो वैश्य शूद्रश्चैव प्रमादतः ॥२८
ब्रह्मकूर्च्चोपवासेन द्विजातीनान्तु निष्कृतिः ।
शूद्रस्य चोपवासेन तथा दानेन शक्तितः ॥२९
ब्राह्मणो ह्यज्ञानतो भुङ्क्ते चाण्डालान्नं कदाचन ।
गोमूत्रयावकाहाराद्दशरात्रेण शुध्यति ॥३०
एकैकं ग्रासमश्नीयाद्गोमूत्रयावकस्य च ।
दशाहनियमस्थस्य व्रत तत्र निनिर्द्दिशेत् ॥३१
अविज्ञातश्च चाण्डाल सन्तिष्ठत्तस्य वेश्मनि ।
विज्ञाते तूपसन्नस्य द्विजा कुर्वन्त्यनुग्रहम् ॥३२
ऋषिवक्त्राच्च्युता धर्म्मा गायन्ते वेदपावना ।
पतन्तमुद्धरेयुस्ते धर्मज्ञा पापसङ्कटात् ॥३३
दध्ना च सर्पिषा चैव क्षीरगोमूत्रयावकम् ।
भुञ्जीत सह सर्वैश्च त्रिसन्ध्यमवगाहनम् ॥३४
त्र्यहं भुञ्जीत दध्ना च त्र्यहं भुञ्जीत सर्पिषा ।
त्र्यहं क्षीरेण भुञ्जीत एकैकेन दिनत्रयम् ॥३५
भावदुष्टं न भुञ्जीयान्नोच्छिष्टं कृमिदूषितम् ।
त्रिपलं दधिदुग्धस्य पलमेकन्तु सर्पिषः ॥३६

भस्मना तु भवेच्छुद्धिरुभयोस्ताम्रकांस्ययोः।
जलशौचेन वस्त्राणां परित्यागेन मृण्मयम् ॥३७
कुसुम्भगुडकार्पासलवणं तैलसर्पिषी।
द्वारे कृत्वा तु धान्यानि गृहे दद्याद्धुताशनम् ॥३८
एवं शुद्धस्ततः पश्चात् कुर्य्याद्ब्राह्मणभोजनम्।
त्रिशतं गा वृषञ्चैकं दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम् ॥३९
पुनर्लेपनखातेन होमजप्येन शुध्यति।
आधारेण च विप्राणां भूमिदोषो न विद्यते ॥४०
रजकी चर्मकारी च लुब्धकस्य च पुक्कसी।
चातुर्वर्ण्यगृहे यस्य ह्यज्ञानादधितिष्ठति ॥४१
ज्ञात्वा तु निष्कृतिं कुर्य्यात् पूर्वोक्तस्यार्द्धमेव च।
गृहदाहं न कुर्वीताप्यन्यत् सर्वञ्च कारयेत् ॥४२
गृहस्याभ्यन्तरे गच्छेच्चाण्डालो यस्य कस्यचित्।
तस्माद्गृहाद्विनिःसृत्य गृहभाण्डानि वर्जयेत् ॥४३
रसपूर्णन्तु यद्भाण्डं न त्यजेच्च कदाचन।
गोरसेन तु संमिश्रैर्जलैः प्रोक्षेत् समन्ततः ॥४४
ब्राह्मणस्य व्रणद्वारे पूयशोणितसम्भवे।
कृमिरुत्पद्यते यस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥४५
गवां मूत्रपुरीषेण दध्ना क्षीरेण सर्पिषा।
त्र्यहं स्नात्वा च पीत्वा कृमिदुष्टः शुचिर्भवेत् ॥४६
क्षत्रियोऽपि सुवर्णस्य पञ्च माषान् प्रदापयेत्।
गोदक्षिणान्तु वैश्यस्याप्युपवासं विनिर्द्दिशेत् ॥४७

शूद्राणां नोपवास स्याच्छूद्रो दानेन शुध्यति ।
ब्राह्मणांस्तु नमस्कृत्य पञ्चगव्येन शुध्यति ॥४८
अच्छिद्रमिति यद्वाक्यं वदन्ति क्षितिदेवता ।
प्रणम्य शिरसा धार्य्यं मग्निष्टोमफलं हि तत् ॥४६
व्याधिव्यसनिनि श्रान्ते दुर्भिक्षे डामरे तथा ।
उपवासो व्रतो होमो द्विजसम्पादितानि वा ॥५०
अथवा ब्राह्मणास्तुष्टा. स्वयं कुर्वन्त्यनुग्रहम् ।
सर्वधर्ममवाप्नोति द्विजैः सम्वर्द्धिवाशिषा ॥५१
दुर्व्वलेऽनुग्रह कार्य्यस्तथा वै वालवृद्धयो ।
अतोऽन्यथा भवेद्दोषस्तस्मान्नानुग्रह स्मृत ॥५२
स्नेहाद्वा यदि वा लोभाद्भयादज्ञानतोऽपि वा ।
कुर्व्वन्त्यनुग्रहं ये वै तत्पापं तेषु गच्छति ॥५३
शरीरस्यात्यये प्राप्ते वदन्ति नियमन्तु ये ।
महत्कार्य्योपरोधेन न स्वस्थस्य कदाचन ॥५४
स्वस्थस्य मूढा. कुर्वन्ति नियमन्तु वदन्ति ये ।
ते तस्य विघ्नकर्त्तार· पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥५५
स एव नियमस्याज्यो ब्राह्मणं योऽवमन्यते ।
वृथा तस्योपवास स्यान्न स पुण्येन युज्यते ॥५६
स एव नियमो ग्राह्यो यं यं कोऽपि वदेद्द्विजः ।
कुर्य्याद्वाक्यं द्विजानाञ्च अकुर्वन् ब्रह्महा भवेत् ॥५७
उपवासो व्रतञ्चैव स्नानं तीर्थं जपस्तप ।
विप्रैः सम्पादितं यस्य सम्पन्नं तस्य तद्भवेत् ॥५८

व्रतच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं यज्ञकर्मणि।
सर्वं भवति निच्छिद्रं ब्राह्मणैरुपपादितम् ॥५६
ब्राह्मणा जङ्गमं तीर्थं निर्जलं सर्वकामदम्।
तेषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यन्ति मलिना जनाः ॥६०
ब्राह्मणा यानि भाषन्ते भाषन्ते तानि देवताः।
सर्वदेवमया विप्रा न तद्वचनमन्यथा ॥६१
अन्नाद्ये कीटसंयुक्ते मक्षिकाकीटदूषिते।
अन्तरा संस्पृशेच्चापस्तदन्नं भस्मना स्पृशेत् ॥६२
भुञ्जानो हि यदा विप्रः पादं हस्तेन संस्पृशेत्।
उच्छिष्टं हि स वै भुङ्क्ते यो भुङ्क्ते भुक्तभाजने ॥६३
पादुकास्थो न भुञ्जीत पर्य्यङ्के संस्थितोऽपि वा।
शुना चाण्डालदृष्टो वा भोजनं परिवर्जयेत् ॥६४
पक्वान्नञ्च निषिद्धं यदन्नशुद्धिस्तथैव च।
यथा पराशरेणोक्तं तथैवाहं वदामि वः ॥६५
सिद्धं द्रोणाढकस्यान्नं काकश्वानोपघातितम्।
केनैतच्छुद्ध्यते चान्नं ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ॥६६
काकश्वानावलीढन्तु द्रोणान्नं न परित्यजेत्।
वेदवेदाङ्गविद्विप्रैर्धर्मशास्त्रानुपालकैः ॥६७
प्रस्था द्वात्रिंशतिर्द्रोणः स्मृतो द्विप्रस्थ आढकः।
ततो द्रोणाढकस्यान्नं श्रुतिस्मृतिविदो विदुः ॥६८
काकश्वानावलीढं तु गवाघ्रातं खरेण वा।
स्वल्पमन्नं त्यजेद्विप्रः शुद्धिर्द्रोणाढके भवेत् ॥६६

अन्यस्योद्धृत्य तन्मात्रं यच्च नोपहतं भवेत् ।
सुवर्णोदकमभ्युक्ष्य हुताशेनैव तापयेत् ॥७०
हुताशनेन संस्पृष्टं सुवर्णसलिलेन च ।
विप्राणां ब्रह्मघोषेण भोज्यं भवति तत्क्षणात् ॥७१

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥



॥ अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

द्रव्यशुद्धिवर्णनम् ।

अथातो द्रव्यसंशुद्धिं पराशरवचो यथा ।
दारवाणान्तु पात्राणां तक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥१
मार्ज्जनाद्यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि ।
चमसानां ग्रहाणाञ्च शुद्धिः प्रक्षालनेन तु ॥२
चरूणां श्रुक्स्रुवाणाञ्च शुद्धिरुष्णेन वारिणा ।
भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुध्यति ॥३
रजसा शुद्ध्यते नारी विकलं या न गच्छति ।
नदी वेगेन शुद्ध्येत लेपो यदि न दृश्यते ॥४
वापीकूपतडागेषु दूषितेषु कथञ्चन ।
उद्धृत्य वै घटशतं पञ्चगव्येन शुध्यति ॥५
अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा तु रोहिणी ।
दशवर्षा भवेत् कन्या अत ऊर्द्ध्वं रजस्वला ॥६

प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे यः कन्या न प्रयच्छति ।
मासि मासि रजस्तस्याः पिवन्ति पितरः स्वयम् ७
माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥८
यस्तां समुद्वहेत् कन्यां ब्राह्मणोऽज्ञानमोहितः ।
असम्भाष्यो ह्यपाङ्क्तेय. स विप्रो वृषलीपतिः ॥६
यः करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनं द्विजः ।
स भैक्षभुग्जपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्विशुध्यति ॥१०
अस्तं गते यदा सूर्ये चाण्डालं पतितं स्त्रियम् ।
सूतिकास्पृशतश्चैव कथं शुद्धिर्विधीयते ॥११
जातवेदं सुवर्णञ्च सोममार्गं विलोक्य च ।
ब्राह्मणानुगतश्चैव स्नानं कृत्वा विशुध्यति ॥१२
स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी ब्राह्मणी तथा ।
तावत्तिष्ठेन्निराहारा त्रिरात्रेणैव शुध्यति ॥१३
स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी क्षत्रिया तथा ।
अर्द्धकृच्छ्रं चरेत् पूर्वा पादमेकमनन्तरा ॥१४
स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी वैश्यजा तथा ।
पादोनं चैव पूर्वायाः परायाः कृच्छ्रपादकम् ॥१५
स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी शूद्रजा तथा ।
कृच्छ्रेण शुद्ध्यते पूर्वा शूद्रा दानेन शुध्यति ॥१६
स्नाता रजस्वला या तु चतुर्थेऽहनि शुध्यति ।
कुर्य्याद्रजोनिवृत्तौ तु दैवपित्र्यादिकर्म च ॥१७

रोगेण यद्रजः स्त्रीणामन्वहन्तु प्रवर्त्तते।
नाशुचिः सा ततस्तेन तत् स्याद्वैकालिकं मतम्॥१८
प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी।
तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुध्यति॥१९
आतुरे स्नानमुत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः।
स्नात्वा स्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुद्ध्येत् स आतुरः॥२०
उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः शुना शूद्रेण वा द्विजः।
उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुध्यति॥२१
अनुच्छिष्टेन शूद्रेण स्नानं स्पर्शे विधीयते।
उच्छिष्टेन च संस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत्॥२२
भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं सुरया यन्न लिप्यते।
सुरामात्रेण संस्पृष्टं शुद्ध्यतेऽग्न्युपलेपनैः॥२३
गवाघ्रातानि कांस्यानि श्वकाकोपहतानि च।
शुद्ध्यन्ति दशभिः क्षारैः शूद्रोच्छिष्टानि यानि च॥२४
गण्डूषं पादशौचञ्च कृत्वा वै कांस्यभाजने।
षण्मासाद् भुवि निक्षिप्य उद्धृत्य पुनराहरेत्॥२५
आयसेष्वयसारेण सीसस्याग्नौ विशोधनम्।
दन्तमस्थि तथा शृङ्गं रौप्यं सौवर्णभाजनम्॥२६
मणिपाषाणशङ्खाश्च एतान् प्रक्षालयेज्जलैः।
पाषाणे तु पुनर्घृष्टिरेषा शुद्धिरुदाहृता॥२७
मृद्भाण्डदहनाच्छुद्धिर्धान्यानां मार्जनादपि।
अद्भिस्तु प्रोक्षणं शौचं बहूनां धान्यवाससाम्॥२८

प्रक्षालनेन त्वल्पानामद्भिः शौचं विधीयते।
वेणुवल्कलचीराणां क्षौमकार्पासवाससाम् ॥२९
और्णानां नेत्रपट्टानां जलाच्छौचं विधीयते।
तूलिकाद्युपधानानि पीतरक्ताम्बराणि च ॥३०
शोषयित्वार्कतापेन प्रोक्षयित्वा शुचिर्भवेत्।
मुञ्जोपस्करसूर्पाणां शाणस्य फलचर्मणम् ॥३१
तृणकाष्ठादिरज्जूनां शुद्धकप्रोक्षणं मतम्।
मार्जारमक्षिकाकीटपतङ्गकृमिदर्दुराः ॥३२
मेध्यामेध्यं स्पृशन्त्येव नोच्छिष्टान् मनुरब्रवीत्।
भूमिं स्पृष्ट्वा गतं तोयं यश्चाप्यन्योन्यविप्रुषः ॥३३
भुक्तोच्छिष्टं तथास्नेहं नोच्छिष्टं मनुरब्रवीत्।
ताम्बूलेक्षुफले चैव भुक्तस्नेहानुलेपने ॥३४
मधुपर्के च सोमे च नोच्छिष्टं मनुरब्रवीत्।
रथ्याकर्दमतोयानि नावः पन्थास्तृणानि च ॥३५
मरुतार्केण शुद्ध्यन्ति पक्वेष्टकचितानि च।
अदुष्टा सन्तता धारा वातोद्धूताश्च रेणव ॥३६
स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च न दुष्यन्ति कदाचन।
क्षुते निष्ठेवने चैव दन्तोच्छिष्टे तथानृते ॥३७
पतितानाञ्च सम्भाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत्।
अग्निरापश्च वेदाश्च सोमसूर्य्यानिलास्तथा ॥३८
एते सर्व्वेऽपि विप्राणां श्रोत्रे तिष्ठन्ति दक्षिणे।
प्रभासादीनि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा ॥३९

विप्रस्य दक्षिणे कर्णे सान्निध्यं मनुरब्रवीत्।
देशभङ्गे प्रवासे वा व्याधिषु व्यसनेष्वपि ॥४०
रक्षेदेव स्वदेहादि पश्चाद्धर्मं समाचरेत्।
येन।केन च धर्मेण मृदुना दारुणेन च ॥४१
उद्धरेद्दीनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत्।
आपत्काले तु सम्प्राप्ते शौचाचारं न चिन्तयेत्।
स्वयं समुद्धरेत् पश्चात् स्वस्थो धर्मं समाचरेत् ॥४२

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः।

॥ अष्टमोऽध्यायः ॥

धर्माचरणवर्णनम्।

गवां बन्धनयोक्त्रेतु भवेन्मृत्युरकामतः।
अकामात् कृतपापस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥१
वेदवेदाङ्गविदुषा धर्मशास्त्रं विजानताम्।
स्वकर्मरतविप्राणा स्वकं पापं निवेदयेत् ॥२
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि उपस्थानस्य लक्षणम्।
उपस्थितो हि न्यायेन व्रतदेशनमर्हति ॥३
सद्योनिःसंशये पापे न भुञ्जीतानुपस्थितः।
भुञ्जानो वर्द्धयेत् पापं पर्षद्यत्र न विद्यते ॥४
संशये तु न भोक्तव्यं यावत् कार्यविनिश्चयः।
प्रमादश्च न कर्त्तव्यो यथैवासंसयस्तथा ॥५

कृत्वा पापं न गूहेत गुह्यमानं विवर्द्धते।
स्वल्पं वाथ प्रभूतं वा धर्मविद्भ्यो निवेदयेत् ॥६
ते हि पापे कृते वैद्या हन्तारश्चैव पाप्मनाम।
व्याधितस्य यथा वैद्या बुद्धिमन्तो रुजापहाः ॥७
प्रायश्चित्ते समुत्पन्ने ह्रीमान् सत्यपरायणः।
मृदुरार्जवसम्पन्न शुद्धिं गच्छेत मानवः ॥८
सचैलं वाग्यतः स्नात्वा क्लिन्नवासाः समाहितः।
क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा ततः पर्षद मावजेत् ॥६
उपस्थाय तत शीघ्रमार्त्तिमान् धरणीं व्रजेत्।
गात्रैश्च शिरसा चैव न च किञ्चिदुदाहरेत् ॥१०
सावित्र्याश्चापि गायत्र्याः सन्ध्योपास्त्यग्निकार्ययोः।
अज्ञानात् कृषिकर्त्तारो ब्राह्मणा नामधारकाः ॥११
अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम्।
सहस्रश समेतानां परिपत्त्वं न विद्यते ॥१२
यद्वदन्ति तमोमूढा मूर्खा धर्ममतद्विदः।
तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तॄन्धि गच्छति ॥१३
अज्ञात्वा धर्मशास्त्राणि प्रायश्चित्तं ददाति यः।
प्रायश्चित्तीभवेत् पूत किल्विषं परिपद्व्रजेत् ॥१४
चत्वारो वा त्रयो वापि यं ब्रूयुर्वेदपारगाः।
स धर्म इति विज्ञेयो नेतरैस्तु सहस्रशः ॥१५
प्रमाणमार्गं मार्गन्तो ये धर्मं प्रवदन्ति वै।
तेषामुद्विजते पापं सम्भूतगुणवादिनाम् ॥१६

यथाश्मनि स्थितं तोयं मारुतार्केण शुद्धयति।
एवं परिषदादेशान्नाशयेद्देव दुष्कृतम् ॥१७
नैव गच्छति कर्त्तारं नैव गच्छति पर्षदम्।
मारुतार्कादिसंयोगात् पापं नश्यति तोयवत् ॥१८
अनाहिताग्नयो येऽन्ये वेदवेदाङ्गपारगाः।
पञ्च त्रयो वा धर्मज्ञाः परिषत् सा प्रकीर्त्तिता ॥१९
मुनीनामात्मविद्यानां द्विजानां यज्ञयाजिनाम्।
वेदव्रतेषु स्नातानामेकोऽपि परिषद्भवेत् ॥२०
पञ्च पूर्वं मया प्रोक्तास्तेषाञ्चैव त्वसम्भवे।
स्ववृत्तिपरितुष्टा ये परिषत् सा प्रकीर्त्तिता ॥२१
अत ऊर्ध्वन्तु ये विप्राः केवलं नामधारकाः।
परिषत्त्वं न तेषां वै सहस्रगुणितेष्वपि ॥२२
यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः।
ब्राह्मणास्त्वनधीयानास्त्रयस्ते नामधारकाः ॥२३
ग्रामस्थानं यथा शून्यं यथा कूपस्तु निर्जलः।
यथा हुतमनग्नौ च अमन्त्रो ब्राह्मणस्तथा ॥२४
यथा षण्ढोऽफलः स्त्रीषु यथा गौरूषराफला।
यथा चाज्ञेऽफलं दानं यथा विप्रोऽनृचोऽफलः ॥२५
चित्रं कर्म यथानेकैरङ्गैरुन्मीलयते शनैः।
ब्राह्मण्यमपि तद्वत् स्यात् संस्कारैर्विधिपूर्वकः ॥२६
प्रायश्चित्तं प्रयच्छन्ति ये द्विजा नामधारकाः।
ते द्विजाः पापकर्माणः समेता नरकं ययुः ॥२७

ये पठन्ति द्विजा वेदं पञ्चयज्ञरताश्च ये।
त्रैलोक्यं धारयन्त्येते पञ्चेन्द्रियरताश्रयाः ॥२८
सम्प्रणीतः श्मशानेषु दीप्तोऽग्निः सर्वभक्षकः।
तथैव ज्ञानवान् विप्रः सर्वभक्षश्च दैवतम् ॥२६
अमेध्यानि च सर्वाणि प्रक्षिपन्त्युदके यथा।
तथैव किल्विषं सर्वं प्रक्षेप्तव्यं द्विजेऽमले ॥३०
गायत्रीरहितो विप्रः शूद्रादप्यशुचिर्भवेत्।
गायत्रीब्रह्मतत्त्वज्ञाः संपूज्यन्ते द्विजोत्तमाः ॥३१
दुःशीलोऽपि द्विजः पूज्यो न शूद्रो विजितेन्द्रियः।
कः परीत्यज्य दुष्टाङ्गां दुहेच्छीलवतीं खरीम् ॥३२
धर्मशास्त्ररथारूढा वेदखड्गधरा द्विजाः।
क्रीडार्थमपि यद्ब्रूयुः स धर्मः परमः स्मृतः ॥३३
चातुर्वेद्यो विकल्पी च अङ्गविद्धर्मपालकः।
प्रपञ्चाश्रमिणो मुख्याः परिषत् स्युर्दशावराः ॥३४
राज्ञाश्चानुमते चैव प्रायश्चित्तं द्विजो वदेत्।
स्वयमेव न वक्तव्या प्रायश्चित्तस्य निष्कृतिः ॥३५
ब्राह्मणांश्च व्यतिक्रम्य राजा यत् कर्तुमिच्छति।
तत्पापं शतधा भूत्वा राजानमुपगच्छति ॥३६
प्रायश्चित्तं सदा दद्याद्देवतायतनाग्रतः।
आत्मानं पावयेत् पश्चाज्जपन् वै वेदमातरम् ॥३७
सशिखं वपनं कृत्वा त्रिसन्ध्यमवगाहनम्।
गोषु गोष्ठे वसेद्रात्रौ दिवा ताः समनुव्रजेत् ॥३८

उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम्।
न कुर्व्वीतात्मनस्त्राण गोरकृत्वा तु शक्तित.॥३६
आत्मनो यदि वान्येषां गृहे क्षेत्रेऽथवा खले।
भक्षयन्तीं न कथयेत् पिबन्तञ्चैव वत्सकम्॥४०
पिबन्तीषु पिबेत्तोयं संविशन्तीषु संविशेत्।
पतितां पङ्कमग्नां वा सर्वप्राणै समुद्धरेत्॥४१
ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा यस्तु प्राणान् परित्यजेत्।
मुच्यते ब्रह्महत्यायागोंप्ता गोब्राह्मणस्य च॥४२
गोवधस्यानुरूपेण प्राजापत्यं विनिर्दिशेत्।
प्राजापत्यन्तु यत्कृच्छ्रं विभजत्तच्चतुर्विधम्॥४३
एकाहमेकभक्ताशी एकाहं नक्तभोजन ।
अयाचिताश्येकमहदेकाहं मारुताशन.॥४४
दिनद्वयं चैकभक्तोद्विदिनं नक्तभोजन ।
दिनद्वयमयाची स्याद्द्विदिनं मारुताशन ॥४५
त्रिदिनञ्चैकभक्ताशी त्रिदिनं नक्तभोजन ।
दिनत्रयमयाची स्यात्त्रिदिनं मारुताशनः॥४६
चतुरहञ्चैकभक्ताशी चतुरहं नक्तभोजन ।
चतुर्दिनमयाची स्याच्चतुरहं मारुताशन ॥४७
प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्य्याद्ब्राह्मणभोजनम्।
विप्राय दक्षिणां दद्यात् पवित्राणि जपेद्द्विज ॥४८
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु गोघ्न· शुद्धो न संशयः॥४६

इति पाराशरे धर्मशास्त्रेऽष्टमोऽध्याय ।

॥ नवमोऽध्यायः ॥

गोसेवोपदेशवर्णनम्।

गवां संरक्षणार्थाय न दुष्येद्रोधबन्धयोः।
तद्वधन्तु न तं विद्यात् कामात् कामकृतन्तथा ॥१
अङ्गुष्ठमात्रः स्थूलो वा बाहुमात्रः प्रमाणतः।
आर्द्रस्तु सपलाशश्च दण्ड इत्यभिधीयते ॥२
दण्डादूर्द्ध्वं यदन्येन प्रहरेद्वा निपातयेत्।
प्रायश्चित्तं चरेत् प्रोक्तं द्विगुणं गोव्रतञ्चरेत् ॥३
रोधबन्धनयोक्त्राणि घातनञ्च चतुर्विधम्।
एकपादञ्चरेद्रोधे द्विपादं बन्धने चरेत् ॥४
योक्त्रेषु पादहीनं स्याच्चरेत् सर्वं निपातने।
गोचारे च गृहे वापि दुर्गेष्वपि समेष्वपि ॥५
नदीष्वपि समुद्रेषु खातेऽप्यथ दरीमुखे।
दग्धदेशे स्थिताः गावः स्तम्भनाद्रोध उच्यते ॥६
योक्त्रदामकडोरैश्च घण्टाभरणभूषणैः।
गृहे वापि वने वापि बद्धा स्याद्गौर्मृता यदि ॥७
तदेव बन्धनं विद्यात् कामाकामकृतञ्च यत्।
मृल्लेखे शकटे पंक्तौ भारे वा पीड़ितो नरैः ॥८
गोपतिर्मृत्युमाप्नोति योक्त्रो भवति तद्वधः।
मत्तः प्रमत्त उन्मत्तश्चेतनो वाप्यचेतनः ॥९
कामाकामकृतक्रोधोदण्डैर्हन्यदथोपलैः।
प्रहता वा मृता वापि तद्धि हेतुर्निपातने ॥१०

यद्यसम्पूर्णसर्वाङ्गो हीनदेहो भवेत्तदा।
गोघातकस्य तस्यार्द्धं प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥२२
काष्ठलोष्ट्रकपाषाणैः शस्त्रेणैवोद्धतो बलात्।
व्यापादयति यो गान्तु तस्य शुद्धिं विनिर्दिशेत् ॥२३
चरेत् सान्तपनं काष्ठे प्राजापत्यन्तु लोष्ट्रके।
तप्तकृच्छ्रन्तु पाषाणे शस्त्रे चैवातिकृच्छ्रकम् ॥२४
पञ्च सान्तपने गावः प्राजापत्ये तथा त्रयः।
तप्तकृच्छ्रे भवन्त्यष्टावतिकृच्छ्रे त्रयोदश ॥२५
प्रमापणे प्राणभृतां दद्यात्तत्प्रतिरूपकम्।
तस्यानुरूपं मूल्यं वा दद्यादित्यब्रवीन्मनुः ॥२६
अन्यत्राङ्कनलक्ष्मभ्यां वाहने मोहने तथा।
सायं संयमनार्थं तु न दुष्येद्रोधबन्धयोः ॥२७
अतिदाहेऽतिवाहे च नासिकाभेदने तथा।
नदीपर्वतसञ्चारे प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥२८
अतिदाहे चरेत्पादं द्वौ पादौ वाहने चरेत्।
नासिके पादहीनं तु चरेत्सर्वं निपातने ॥२९
दहनाच्च विपद्येत अनड्वो वापि यन्त्रितः।
उक्तं पाराशरेणैव ह्येकपादं यथाविधि ॥३०
रोधबन्धनयोक्त्रञ्च भारः प्रहरणन्तथा।
दुर्गप्रेरणयोक्त्रञ्च निमित्तानि वधस्य षट् ॥३१
बन्धपाशसुगुप्ताङ्गो म्रियते यदि गोपशुः।
भवने तस्य नाशस्य पापं कृच्छ्रार्द्धमर्हति ॥३२

न नारिकेलैर्न च शाणवालै-
र्नचापि मौञ्जेन च बन्धशृङ्खलैः।
एतैस्तु गावो न निबन्धनीया-
बद्ध्वा तु तिष्ठेत् परशुं गृहीत्वा ॥३३
कुशैः काशैश्च बध्नीयाद्गोपशुं दक्षिणामुखम्।
पाशलग्नाग्निदग्धेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥३४
यदि तत्र भवेत् काष्ठं प्रायश्चित्तं कथं भवेत्।
जपित्वा पावनीं देवीं मुच्यते तत्र किल्बिषात् ॥३५
प्रेरयन् कूपवापीषु वृक्षच्छेदेषु पातयन्।
गवाशनेषु विक्रीणंस्ततः प्राप्नोति गोवधम् ॥३६
आराधितस्तु यः कश्चिद्भिन्नकक्षो यदा भवेत्।
श्रवणं हृदयं भिन्नं मग्नो वा कूटसङ्कटे ॥३७
कूपादुत्क्रमणे चैव भग्नो वा ग्रीवपादयोः।
स एव म्रियते तत्र त्रीन् पादांस्तु समाचरेत् ॥३८
कूपखाते तटीबन्धे नदीबन्धे प्रपासु च।
पानीयेषु विपन्नाना प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥३९
कूपखाते तटीखाते दीर्घखाते तथैव च।
अन्येषु धर्मखातेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥४०
वेश्मद्वारे निवासेषु यो नरः खातमिच्छति।
स्वकार्यगृहखातेषु प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥४१
निशि बन्धनिरुद्धेषु सर्पव्याघ्रहतेषु च।
अग्निविद्युद्विपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥४२

यद्यसम्पूर्णसर्वाङ्गो हीनदेहो भवेत्तदा ।
गोघातकस्य तस्यार्द्धं प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥२२
काष्ठलोष्ट्रकपाषाणैः शस्त्रेणैवोद्धतो वलात् ।
व्यापादयति यो गान्तु तस्य शुद्धिं विनिर्दिशेत् ॥२३
चरेत् सान्तपनं काष्ठे प्राजापत्यन्तु लोष्ट्रके ।
तप्तकृच्छ्रन्तु पाषाणे शस्त्रे चैवातिकृच्छ्रकम् ॥२४
पञ्च सान्तपने गावः प्राजापत्ये तथा त्रयः ।
तप्तकृच्छ्रे भवन्त्यष्टावतिकृच्छ्रे त्रयोदश ॥२५
प्रमापणे प्राणभृतां दद्यात्तत्प्रतिरूपकम् ।
तस्यानुरूपं मूल्यं वा दद्यादित्यब्रवीन्मनुः ॥२६
अन्यत्राङ्कनलक्ष्मभ्यां वाहने मोहने तथा ।
सायं संयमनार्थं तु न दुष्येद्रोधवन्धयोः ॥२७
अतिदाहेऽतिवाहे च नासिकाभेदने तथा ।
नदीपर्वतसञ्चारे प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥२८
अतिदाहे चरेत्पादं द्वौ पादौ वाहने चरेत् ।
नासिके पादहीनं तु चरेत्सर्वं निपातने ॥२९
दहनाच्च विपद्येत अवद्धो वापि यन्त्रितः ।
उक्तं पाराशरेणैव ह्येकपादं यथाविधि ॥३०
रोधवन्धनयोक्त्रञ्च भारः प्रहरणन्तथा ।
दुर्गप्रेरणयोक्त्रञ्च निमित्तानि वधस्य षट् ॥३१
वन्धपाशसुगुप्ताङ्गो म्रियते यदि गोपशुः ।
भवने तस्य नाशस्य पापं कृच्छ्रार्द्धमर्हति ॥३२

न नारिकेलैर्नच शाणवालै-
नंचापि मौञ्जेन च बन्धशृङ्खलैः ।
एतैस्तु गावो न निबन्धनीया-
बद्धास्तु तिष्ठेत् परशुं गृहीत्वा ॥३३
कुशैः काशैश्च बध्नीयाद्गोपशुं दक्षिणामुखम् ।
पाशलग्नाग्निदग्धेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥३४
यदि तत्र भवेत् काण्डं प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ।
जपित्वा पावनीं देवीं मुच्यते तत्र किल्बिषात् ॥३५
प्रेरयन् कूपवापीषु वृक्षच्छेदेषु पातयन् ।
गवाशनेषु विक्रीणंस्ततः प्राप्नोति गोवधम् ॥३६
आराधितस्तु यः कश्चिद्भिन्नकक्षो यदा भवेत् ।
श्रवणं हृदयं भिन्नं मग्नो वा कूपसङ्कटे ॥३७
कूपादुत्क्रमणे चैव भग्नो वा ग्रीवपादयोः ।
स एव म्रियते तत्र त्रीन् पादांस्तु समाचरेत् ॥३८
कूपखाते तटीबन्धे नदीबन्धे प्रपासु च ।
पानीयेषु विपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥३९
कूपखाते तटीखाते दीर्घखाते तथैव च ।
अन्येषु धर्मखातेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥४०
वेश्मद्वारे निवासेषु यो नरः खातमिच्छति ।
स्वकार्यगृहखातेषु प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥४१
निशि बन्धनिरुद्धेषु सर्पव्याघ्रहतेषु च ।
अग्निविद्युद्विपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥४२

ग्रामघाते शरौघेण वेश्मबन्धनिपातने।
अतिवृष्टिहतानाञ्च प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥४३
संग्रामे प्रहतानाञ्च ये दग्धा वेश्मकेषु च।
दावाग्नि ग्रामघाते वा प्रायश्चित्तं न्च विद्यते ॥४४
यन्त्रिता गौश्चिकित्सार्थं मूढगर्ब्भविमोचने।
यत्ने कृते विपद्येत प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥४५
व्यापन्नानां बहूनाञ्च बन्धने रोधने ऽपिवा।
भिषग्मिथ्याप्रचारे च प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥४६
गोवृषाणां विपत्तौ च यावन्तः प्रेक्षका जनाः।
न वारयन्ति तां तेषां सर्वेषां पातकं भवेत् ॥४७

एको हतोयैर्बहुभिः समेतै-
 र्नज्ञायते यस्य हतोऽभिधानात्।
दिव्येन तेषामुपलभ्य हन्ता
 निवर्त्तनीयो नृपसन्नियुक्तैः ॥४८

का चेद्बहुभिः कापि दैवाद्व्यापादिता भवेत्।
ादं पादश्च हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक् पृथक् ॥४६
तेषु रुधिरं दृश्यं व्याधिग्रस्तः कृशो भवेत्।
ााना भवति दृष्टेषु एवमन्वेषणं भवेत् ॥५०
मनुना चैवमेकेन सर्वशास्त्राणि जानता।
प्रायश्चित्तन्तु तेनोक्तं गोषु चान्द्रायणं चरेत् ॥५१
केशानां रक्षणार्थाय द्विगुणं गोव्रतं चरेत्।
द्विगुणे व्रत आदिष्टे दक्षिणा द्विगुणा भवेत् ॥५२

## ॥ दशमोऽध्यायः ॥

### अगम्यागमनप्रायश्चित्तवर्णनम्।

चातुर्वर्ण्यस्य सर्वत्र हीयं प्रोक्ता तु निष्कृतिः।
अगम्यागमने चैव शुद्धौ चान्द्रायणञ्चरत्॥१
एकैकं ह्रासयेत् पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्द्धयेत्।
अमावास्यां न भुञ्जीत एष चान्द्रायणो विधिः॥२
कुक्कुटाण्डप्रमाणन्तु ग्रासञ्च परिकल्पयेत्।
अन्यथा भावदुष्टस्य न धर्मो नैव शुद्ध्यति॥३
प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद्‌ब्राह्मणभोजनम्।
गोद्वयं वस्त्रयुग्मञ्च दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम्॥४
चाण्डालीञ्च श्वपाकीञ्च ह्यभिगच्छति यो द्विजः।
त्रिरात्रमुपवासी स्याद्विप्राणामनुशासनात्॥५
सशिखं वपनं कुर्यात् प्राजापत्यत्रयञ्चरेत्।
ब्रह्मकूर्चं ततः कृत्वा कुर्याद्‌ब्राह्मणतर्पणम्॥६
गायत्रीञ्च जपेन्नित्यं दद्याद्गोमिथुनद्वयम्।
विप्राय दक्षिणां दद्याच्छुद्धिमाप्नोत्यसंशयम्॥७
क्षत्रियश्चापि वैश्यो वा चाण्डालीं गच्छतो यदि।
प्राजापत्यद्वयं कुर्याद्दद्याद्गोमिथुनन्तथा॥८
श्वपाकीमथ चाण्डालीं शूद्रो वै यदि गच्छति।
प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं दद्याद्गोमिथुनन्तथा॥६

मातरं यदि गच्छेत भगिनीं पुत्रिकान्तथा ।
एतास्तु मोहितो गत्वा त्रीन् कृच्छ्रांस्तु समाचरेत् ॥१०
चान्द्रायणत्रयं कुर्याच्छिश्नच्छेदेन शुद्ध्यति ।
मातृस्वसृगमे चैव आत्ममेढ्रनिदर्शनम् ॥११
अज्ञानात्तान्तु यो गच्छेत् कुर्याच्चान्द्रायणद्वयम् ।
दशगोमिथुनन्दद्याच्छुद्धिं पाराशरोऽब्रवीत् ॥१२
पितृदारान् समारुह्य मातुराप्ताञ्च भ्रातृजाम् ।
गुरुपत्नीं स्नुषाञ्चैव भ्रातृभार्य्यां तथैव च ॥१३
मातुलानीं सगोत्राञ्च प्राजापत्यत्रयञ्चरेत् ।
गोद्वयं दक्षिणां दत्त्वा शुद्ध्यते नात्र संशयः ॥१४
पशुवेश्यादिगमने महिष्युष्ट्रीकपीस्तथा ।
खरीञ्च शूकरीं गत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ॥१५
गोगामी च त्रिरात्रेण गामेकं ब्राह्मणे ददत् ।
महिष्युष्ट्रीखरीगामी त्वहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥१६
डामरे समरे वापि दुर्भिक्षे वा जनक्षये ।
बन्दिग्राहे भयार्त्ते वा सदा स्वस्त्रीं निरीक्षयेत् ॥१७
चाण्डालैः सह सम्पर्कं या नारी कुरुते तत ।
विप्रान् दश वरान् गत्वा स्वकं दोषं प्रकाशयेत् ॥१८
आकण्ठसम्मिते कूपे गोमयोदककर्दमे ।
तत्र स्थित्वा निराहारा त्वेकरात्रेण निष्क्रमेत् ॥१९
सशिरस्कं वपनं कृत्वा भुञ्जीयाद्यावकौदनम् ।
त्रिरात्रमुपवासित्वा ह्येकरात्रं जले वसेत् ॥२०

शङ्खपुष्पीलतामूलं पत्रञ्च कुसुमं फलम्।
सुवर्णं पञ्चगव्यञ्च क्वाथयित्वा पिबेज्जलम् ॥२१
एकभक्तं चरेत् पश्चाद्यावत् पुष्पवती भवेत्।
व्रतं चरति सद्यावत्तावत् संवसते बहिः ॥२२
प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्य्याद्ब्राह्मणभोजनम्।
गोद्वयं दक्षिणा दद्याच्छुद्धिं पाराशरोऽब्रवीत् ॥२३
चातुर्वर्ण्यस्य नारीणां कृच्छ्रचान्द्रायणं व्रतम्।
यथा भूमिस्तथा नारी तस्मात्तां न तु दूषयेत् ॥२४
बन्दिग्राहेण या भुक्ता हत्वा बद्धा बलाद्भयात्।
कृत्वा सान्तपनं कृच्छ्रं शुद्ध्येत् पाराशरोऽब्रवीत् ॥२५
सकृद्भुक्ता तु या नारी नेच्छन्ती पापकर्मभिः।
प्राजापत्येन शुद्ध्येत ऋतुप्रस्रवणेन तु ॥२६
पतत्यर्द्धं शरीरस्य यस्य भार्य्या सुरां पिबेत्।
पतितार्द्धं शरीरस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥२७
गायत्रीं जपमानस्तु कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥२८
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।
एकरात्रुपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम् ॥२९
जारेण जनयेद्गर्भं गते त्यक्ते मृते पतौ।
तां त्यजेदपरे राष्ट्रे पतितां पापकारिणीम् ॥३०
ब्राह्मणी तु यदा गच्छेत् परपुंसा समन्विता।
सा तु नष्टा विनिर्दिष्टा न तस्यां गमनं पुनः ॥३१

कामान्मोहाद्यदा गच्छेत्त्यक्त्वा बन्धून् सुतान् पतिम्।
सा तु नष्टा परे लोके मानुषेषु विशेषतः ॥३२
दशमे तु दिने प्राप्ते प्रायश्चित्तं न विद्यते।
दशाहं न त्यजेन्नारी त्यजेन्नष्टश्रुता तथा ॥३३
भर्त्ता चैव चरेत् कृच्छ्रं कृच्छ्रार्द्धं चैव बान्धवाः।
तेषां भुक्त्वा च पीत्वा च अहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥३४
ब्राह्मणी तु यदा गच्छेत् परपुंसा विवर्जिता।
गत्वा पुंसां शतं याति त्यजेयु स्तान्तु गोत्रिणः ॥३५
पुंसो यदि गृहं गच्छेत्तदशुद्धं गृहं भवेत्।
पितृमातृगृहं यच्च जारस्यैव तु तद्गृहम् ॥३६
उल्लिख्य तद्गृहं पश्चात् पञ्चगव्येन शुद्ध्यति।
त्यजेन्मृण्मयपात्राणि वस्त्रं काष्ठञ्च शोधयेत् ॥३७
सम्भारान् शोधयेत् सर्वान् गोकेशैश्च फलोद्भवान्।
ताम्राणि पञ्चगव्येन कास्यानि दश भस्मभिः ॥३८
प्रायश्चित्तं चरेद्विप्रो ब्राह्मणै रुपपादितम्।
गोद्वयं दक्षिणा दद्यात् प्राजापत्यं समाचरेत् ॥३६
इतरेषा महोरात्रं पञ्चगव्येन शोधनम्।
सपुत्रः सह भृत्यश्च कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥४०
आकाशं वायुरग्निश्च मेध्यं भूमिगतं जलम्।
न दुष्यन्तीह दर्भाश्च यज्ञेषु च समास्तथा ॥४१
उपवासैर्व्रतैः पुण्यैः स्नानसन्ध्यार्चनादिभिः।
जपैर्होमैस्तथा दानैः शुद्ध्यन्ते ब्राह्मणा सदा ॥४२

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः।

॥ एकादशोऽध्यायः ॥

अभक्ष्यभक्षणप्रायश्चित्तवर्णनम् ।

अमेध्यरेतोगोमांसं चाण्डालान्नमथापि वा ।
यदि भुक्तन्तु विप्रेण कृच्छ्रं चान्द्रायणञ्चरेत् ॥१
तथैव क्षत्रियो वैश्य स्तदर्द्धन्तु समाचरेत् ।
शूद्रोऽप्येवं यदा भुङ्क्ते प्राजापत्यं समाचरेत् ॥२
पञ्चगव्यं पिबेच्छूद्रो ब्रह्मकूर्च्चं पिबेद्द्विजः ।
एकद्वित्रिचतुर्गांश्च दद्याद्विप्रादनुक्रमात् ॥३
शूद्रान्नं सूतकस्यान्न मभोज्यस्यान्नमेव च ।
शङ्कितं प्रतिषिद्धान्नं पूर्वोच्छिष्टं तथैव च ॥४
यदि भुक्तन्तु विप्रेण अज्ञानादापदापि वा ।
ज्ञात्वा समाचरेत् कृच्छ्रं ब्रह्मकूर्चन्तु पावनम् ॥५
व्यालैर्नकुलमार्जारै रन्नमुच्छिष्टितं यदा ।
तिलदर्भोदकै प्रोक्ष्य शुद्ध्यते नात्र संशय ॥६
शूद्रोऽप्यभोज्य भुक्त्वान्नं पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ।
क्षत्रियो वापि वैश्यश्च प्राजापत्येन शुद्ध्यति ॥७
एकपंक्त्युपविष्टानां विप्राणां सहभोजने ।
यद्येकोऽपि त्यजेत् पात्रं शेषमन्नं न भोजयेत् ॥८
मोहाद्वा लोभतस्तत्र पंक्तावुच्छिष्टभोजने ।
प्रायश्चित्तं चरेद्विप्र कृच्छ्रं सान्तपनन्तथा ॥९
पीयूषश्वेतलसुनवृन्ताकफलगृञ्जनम् ॥१०

पलाण्डुं वृक्षनिर्य्यासं देवस्वं कवकानि च।
उष्ट्रीक्षीर मविक्षीर मज्ञानाद्भुञ्जति द्विज.॥११
त्रिरात्रमुपवासी स्यात् पञ्चगव्येन शुद्ध्यति।
मण्डूकं भक्षयित्वा च मूषिकामासमेव च॥१२
ज्ञात्वा विप्रस्त्वहोरात्रं यावकान्नेन शुद्ध्यति।
क्षत्रियोवापि वैश्योवा क्रियावन्तौ शुचिव्रतौ।
तद्गृहेषु द्विजैर्भोज्यं हव्यकव्येषु नित्यशः॥१३
घृतं तैलं तथा क्षीरं गुडं तैलेन पाचितम्।
गत्वा नदीतटे विप्रो भुञ्जीयाच्छूद्रभोजनम्॥१४
अज्ञानाद्भुञ्जते विप्राः सूतके मृतकेऽपिवा।
प्रायश्चित्तं कथं तेषां वर्णे वर्णे विनिर्दिशेत्॥१५
गायत्र्यष्टसहस्रेण शुद्धः स्याच्छूद्रसूतके।
वैश्ये पञ्चसहस्रेण त्रिसहस्रेण क्षत्रिय॥१६
ब्राह्मणस्य यदा भुङ्क्ते प्राणायामेन शुद्ध्यति।
अथवा वामदेव्येन साम्ना चैकेन शुद्ध्यति॥१७
शुष्कान्नं गोरसं स्नेहं शूद्रवेश्मन आगतम्।
पक्वं विप्रगृहे पूतं भोज्यं तन्मनुरब्रवीत्॥१८
आपत्काले तु विप्रेण भुक्तं शूद्रगृहे यदि।
मनस्तापेन शुद्ध्येत द्रुपदां वा शतं जपेत्॥१९
दासनापितगोपालकुलमित्रार्द्धसीरिणः।
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत्॥२०

शूद्रकन्यासमुत्पन्नो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः।
संस्कृतस्तु भवेद्दास्यो ह्यसंस्कारैस्तु नापितः ॥२१
क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां समुत्पन्नस्तु यः सुतः।
स गोपाल इतिज्ञेयो भोज्यो विप्रैर्न संशयः ॥२२
वैश्यकन्यासमुत्पन्नो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः।
आर्द्धिकश्च स तु ज्ञेयो भोज्यो विप्रैर्न संशयः ॥२३
भाण्डस्थित मभोज्येषु जलं दधि घृतं पयः।
अकामतस्तु यो भुङ्क्ते प्रायश्चित्तं क ˙ .ेत् ॥२४
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वाप्युपसर्पति।
ब्रह्मकूर्चोपवासेन यथावर्णस्य निष्कृतिः ॥२५
शूद्राणां नोपवासः स्याच्छूद्रो दानेन शुद्ध्यति।
ब्रह्मकूर्चमहोरात्रं श्वपाकमपि शोधयेत् ॥२६
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।
निर्दिष्टं पञ्चगव्यन्तु पवित्रं पापनाशनम् ॥२७
गोमूत्रं कृष्णवर्णायाः श्वेताया गोमयं हरेत्।
पयश्च ताम्रवर्णाया रक्ताया दधि चोच्यते ॥२८
कपिलाया घृतं ग्राह्यं सर्वं कापिलमेव वा।
गोमूत्रस्य फलं दद्यादधनत्रिपलमुच्यते ॥२९
आज्यस्यैकपलं दद्यादङ्गुष्ठार्द्धन्तु गोमयम्।
क्षीरं सप्तदलं दद्यात् पलमेकं कुशोदकम् ॥३०
गायत्र्यागृह्य गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम्।
आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि ॥३१

तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम्।
पञ्चगव्यमृचा पूतं स्थापयेदग्निसन्निधौ ॥३२
आपोहिष्ठेति चालोड्य मानस्तोकेति मन्त्रयेत्।
सप्तावरास्तु ये दर्भा अच्छिन्नाग्राः शुकत्विषः ॥३३
एभिरुद्धृत्य होतव्यं पञ्चगव्यं यथाविधि।
इरावती इदं विष्णुर्मानस्तोके च शंवती ॥३४
एतैरुद्धृत्य होतव्यं हुतशेषं स्वयं पिबेत्।
आलोड्य प्रणवेनैव निर्म्मथ्य प्रणवेन तु।
उद्धृत्य प्रणवेनैव पिबेच्च प्रणवेन तु ॥३५
यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति देहिनाम्।
ब्रह्मकूर्चो दहेत् सर्वं यथैवाग्निरिवेन्धनम् ॥३६
पिबतः पतितं तोयं भाजने मुखनिःसृतम्।
अपेयं तद्विजानीयाद्भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥३७
कूपे च पतितं दृष्ट्वा श्वशृगालौ च मर्कटम्।
अस्थि चर्म्मादि पतितं पीत्वा मेध्या अपो द्विजः ॥३८
नारन्तु कूपे काकञ्च विड्वराहखरोष्ट्रकम्।
गावयं सौप्रतीकञ्च मायूरं खाड्गकं तथा ॥३९
वैयाघ्रमार्क्षं सैंहं वा कूपं यदि मज्जति।
तडागस्याथ दुष्टस्य पीतं स्यादुदकं यदि ॥४०
प्रायश्चित्तं भवेत् पुंसः क्रमेणैतेन सर्वशः।
विप्रः शुद्ध्येत्त्रिरात्रेण क्षत्रियस्तु दिनद्वयात् ॥४१
एकाहेन तु वैश्यस्तु शूद्रो नक्तेन शुद्ध्यति ॥४२

परपाकनिवृत्तस्य परपाकरतस्य च।
अपचस्य च भुक्त्वान्नं द्विजश्चान्द्रायणञ्चरेत् ॥४३
अपचस्य च यद्दानं दातुश्चास्य कुतः फलम्।
दाता प्रतिग्रहीता च द्वौ तौ निरयगामिनौ ॥४४
गृहीत्वाग्निं समारोप्य पञ्च यज्ञान्न वर्त्तयेत्।
परपाकनिवृत्तोऽसौ मुनिभिः परिकीर्त्तितः ॥४५
पञ्चयज्ञं स्वयं कृत्वा परान्नेनोपजीवति।
सततं प्रातरुत्थाय परपाकरतो हि सः ॥४६
गृहस्थधर्मी यो विप्रो ददाति परिवर्ज्जितः।
ऋषिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैरपचः परिकीर्त्तितः। ४७
युगे युगे च ये धर्मास्तेषु धर्मेषु ये द्विजाः।
तेषां निन्दा न कर्त्तव्या युगरूपा हि ब्राह्मणाः ॥४८
हुङ्कारं ब्राह्मणस्योक्ता त्वङ्कारञ्च गरीयसः।
स्नात्वा तिष्ठन्नहःशेषमभिवाद्य प्रसादयेत् ॥४९
ताडयित्वा तृणेनापि कण्ठे वा बध्वा वाससा।
विवादेनापि निर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥५०
अवगूर्य्य त्वहोरात्रं त्रिरात्रं क्षितिपातने।
अतिकृच्छ्रञ्च रुधिरे कृच्छ्रमन्तरशोणिते ॥५१
नवाहमतिकृच्छ्रं स्यात् पाणिपूरान्नभोजनम्।
त्रिरात्रमुपवासः स्यादतिकृच्छ्रः स उच्यते ॥५२
सर्व्वेषामेव पापानां सङ्करे समुपस्थिते।
शतसाहस्रमभ्यस्ता गायत्री शोधनं परम् ॥५३
इति पाराशरे धर्मशास्त्रे एकादशोऽध्यायः।

॥ द्वादशोऽध्यायः ॥

तत्रादौ–पुनः संस्कारादिप्रायश्चित्तवर्णनम्।

दुःस्वप्नं यदि पश्येत्तु वान्ते वा क्षुरकर्मणि ।
मैथुने प्रेतधूमे च स्नानमेव विधीयते ॥१
अज्ञानात् प्राश्य विण्मूत्रं सुरां वा पिबते यदि ।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥२
अजिनं मेखला दण्डो भैक्षचर्य्या व्रतानि च ।
निवर्त्तन्ते द्विजातीनां पुनःसंस्कारकर्मणि ॥३
स्त्रीशूद्रस्य तु शुद्ध्यर्थं प्राजापत्यं विधीयते ।
पञ्चगव्यं ततः कृत्वा स्नात्वा पीत्वा विशुध्यति ॥४
जलाग्निपतने चैव प्रव्रज्यानाशकेषु च ।
प्रत्यवसितमेतेषां कथं शुद्धिर्विधीयते ॥५
प्राजापत्यद्वयेनापि तीर्थाभिगमनेन च ।
वृषैकादशदानेन वर्णाः शुद्ध्यन्ति ते त्रयः ॥६
ब्राह्मणस्य प्रवक्ष्यामि वनं गत्वा चतुष्पथम्।
सशिरः वपनं कृत्वा प्राजापत्यत्रयञ्चरेत् ॥७
गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धिः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ।
मुच्यते तेन पापेन ब्राह्मणत्वञ्च गच्छति ॥८
स्नानानि पञ्च पुण्यानि कीर्त्तितानि मनीषिभिः ।
आग्नेयं वारुणं ब्राह्मं वायव्यं दिव्यमेव च ॥९
आग्नेयं भस्मना स्नानमवगाह्य तु वारुणम्।
आपोहिष्ठेति च ब्राह्मं वायव्यं रजसा स्मृतम् ॥१०

यत्तु सातपवर्षेण स्नान तद्दिव्यमुच्यते ।
तत्र स्नाने तु गङ्गाया स्नातो भवति मानव ॥११
स्नानार्थं विप्रमायान्त देवा पितृगणे सह ।
वायुभूता हि गच्छन्ति तृषात्ता सलिलार्थिन ॥१२
निराशास्ते निवर्त्तन्ते वस्त्रनिष्पीडने कृते ।
तस्मान्न पीडयेद्वस्त्रमकृत्वा पितृतर्पणम् ॥१३
विधुनोति हि य केशान् स्नात प्रस्त्रवतोद्विज ।
आचामेद्वा जलस्थोऽपि स बाह्य पितृदैवतै ॥१४
शिर प्रावृत्य क यद्ध्वा मुक्तकच्छशिखोऽपिवा ।
विना यज्ञोपवीतेन आचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥१५
जले स्थलस्थो नाचामेज्जलस्थश्च यहि स्थले ।
उभे स्पृष्ट्वा समाचान्त उभयत्र शुचिर्भवेत् ॥१६
स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्ते रथ्योपसर्पणे ।
आचान्त पुनराचामेद्वासोनिपरिधाय च ॥१७
क्षुते निष्ठीविते चैव दन्तोच्छिष्टे तथानृते ।
पतितानाञ्च सम्भाष दक्षिण श्रवण स्पृशेत् ॥१८
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च सोम सूर्योऽनिलस्तथा ।
ते सर्वे ह्यपि तिष्ठन्ति कर्णे विप्रस्य दक्षिणे ॥१९
दिवाकरकरै पूत दिवास्नान प्रशस्यते ।
अप्रशस्त निशि स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनात् ॥२०
मरुतो वसवो रुद्रा आदित्याश्चादिदेवता ।
सर्वे सोमे विलीयन्ते तस्मात् स्नानन्तु तद्ग्रहे ॥२१

एलयज्ञे विवाहे च संक्रान्तौ ग्रहणेषु च।
शर्वर्यां दानमतेषु नान्यत्रेति विनिश्चयः ॥२२
पुत्रजन्मनि यज्ञे च तथा चात्ययकर्मणि।
राहोश्च दर्शने दानं प्रशस्तं नान्यदा निशि ॥२३
महानिशा तु विज्ञेया मध्यस्थप्रहरद्वयम्।
प्रदोषपश्चिमौ यामौ दिनवत् स्नानमाचरेत् ॥२४
चैत्यवृक्षश्चितिस्थश्च चण्डालः सोमविक्रयी।
एतांस्तु ब्राह्मणः स्पृष्ट्वा सवासा जलमाविशेत् ॥२५
अस्थिसञ्चयनात् पूर्वं रुदित्वा स्नानमाचरेत्।
अन्तर्दशाहे विप्रस्य पर्वमाचमनं भवेत् ॥२६
सर्वं गङ्गासमं तोयं राहुग्रस्ते दिवाकरे।
सोमग्रहे तथैवोक्तं स्नानदानादिकर्मसु ॥२७
कुशपूतन्तु यत्स्नानं कुशेनोपस्पृशेद्द्विजः।
कुशेनोद्धृततोयं यत् सोमपानसमं स्मृतम् ॥२८
अग्निकार्य्यात् परिभ्रष्टाः सन्ध्योपासनवर्जिताः।
वेदञ्चैवानधीयानाः सर्वे ते वृषलाः स्मृताः ॥२९
तस्माद्वृषलभीतेन ब्राह्मणेन विशेषतः।
अध्येतव्योऽप्येकदेशो यदि सर्वं न शक्यते ॥३०
शूद्रान्नरसपुष्टस्याप्यधीयानस्य नित्यशः।
जपतो जुह्वतो वापि गतिरुक्ता न विद्यते ॥३१
शूद्रान्नं शूद्रसम्पर्कः शूद्रेण तु सहासनम्।
शूद्राज्ज्ञानागमश्चापि ज्वलन्तमपि पातयेत् ॥३२

ब्रह्महत्यादिभिर्मर्त्यो मनोवाकायकर्मजैः ।
एतद्गोचर्मदानेन मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥४४
कुटुम्बिने दरिद्राय श्रोत्रियाय विशेषतः ।
यद्दानं दीयते तस्मै तदायुर्वृद्धिकारकम् ॥४५
आषोड़शादिनादर्वाक् स्नानमेव रजस्वला ।
अत ऊर्द्ध्वं त्रिरात्रं स्यादुशना मुनिरब्रवीत् ॥४६
युगं युगद्वयञ्चैव त्रियुगञ्च चतुर्युगम् ।
चाण्डालसूतिकोदक्यापतितानामधः क्रमात् ॥४७
ततः सन्निधिमात्रेण सचैलं स्नानमाचरेत् ।
स्नात्वावलोकयेत् सूर्य्यमज्ञानात् स्पृशते यदि ॥४८
वापीकूपतड़ागेषु ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ।
तोयं पिबति वक्त्रेण श्वयोनौ जायते ध्रुवम् ॥४९
यस्तु मूढ़ पुमान् भार्य्यां प्रतिज्ञायाऽप्यगम्यताम् ।
पुनरिच्छति ताङ्गन्तुं विप्रमध्ये तु श्रावयेत् ॥५०
श्रान्तः क्रुद्धस्तमोऽन्धो वा क्षुत्पिपासाभयार्दितः ।
दानं पुण्यमकृत्वा च प्रायश्चित्तं दिनत्रयम् ॥५१
उपस्पृशेत्त्रिषवणं महानद्युपसङ्गमे ।
चीर्णान्ते चैव गां दद्याद्ब्राह्मणान् भोजयेद्दश ॥५२
दुराचारस्य विप्रस्य निषिद्धाचरणस्य च ।
अन्नं भुक्त्वा द्विजः कुर्य्याद्दिनमेकमभोजनम् ॥५३
सदाचारस्य विप्रस्य तथा वेदान्तवादिनः ।
भुक्त्वान्नं मुच्यते पापादहोरात्रन्तु वै नरः ॥५४

उर्द्धोच्छिष्टमधोच्छिष्टमन्तरीक्षमृतौ तथा ।
कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत आशौचमरणे तथा ॥५५
कृच्छ्रदेव्ययुतञ्चैव प्राणायामशतत्रयम् ।
पुण्यतीर्थे नार्द्रशिरः स्नानं द्वादशसंख्यया ।
द्वियोजनं तीर्थयात्रा कृच्छ्रमेवं प्रकल्पितम् ॥५६
गृहस्थः कामतः कुर्य्याद्रेतसः सेचनं भुवि ।
सहस्रन्तु जपेद्देव्याः प्राणायामैस्त्रिभिः सह ॥५७
चातुर्वेद्योपपन्नस्तु विधिवद्ब्रह्मघातके ।
समुद्रसेतुगमनप्रायश्चित्तं विनिर्द्दिशेत् ॥५८
सेतुबन्धपथे भिक्षां चातुर्वर्ण्यात् समाचरेत् ।
वर्जयित्वा विकर्मस्थांश्छत्रोपानद्विवर्जितः ॥५९
अहं दुष्कृतकर्मा वै महापातककारकः ।
गृहद्वारेषु तिष्ठामि भिक्षार्थी ब्रह्मघातकः ॥६०
गोकुलेषु वसेच्चैव ग्रामेषु नगरेषु च ।
तथा वनेषु तीर्थेषु नदीप्रस्रवणेषु च ॥६१
एतेषु ख्यापयन्नेनः पुण्यं गत्वा तु सागरम् ।
दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ॥६२
रामचन्द्रसमादिष्टं नलसञ्चयसञ्चितम् ।
सेतुं दृष्ट्वा समुद्रस्य ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥६३
यजेत वाश्वमेधेन राजा तु पृथिवीपतिः ॥६४
पुनः प्रत्यागतो वेश्म वासार्थं मुपसर्पति ।
सपुत्रः सह भृत्यैश्च कुर्य्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥६५

गाश्चैवैकशतं दद्याच्चातुर्वेद्येषु दक्षिणाम् ।
ब्राह्मणानां प्रसादेन ब्रह्महा तु विमुच्यते ॥६६
सवनस्थां स्त्रियं हत्वा ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ।
मद्यपश्च द्विजः कुर्य्यान्नदीं गत्वा समुद्रगाम् ॥६७
चान्द्रायणे ततश्चीर्णे कुर्य्याद्ब्राह्मणभोजनम् ।
अनडुत्सहितां गाञ्च दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम् ॥६८
अपहृत्य सुवर्णन्तु ब्राह्मणस्य ततः स्वयम् ।
गच्छेन्मुषलमादाय राजाभ्यासं वधाय तु ॥६६
ततः शुद्धिमवाप्नोति राज्ञासौ मुक्त एव च ।
कामकारकृतं यत् स्यान्नान्यथा वधमर्हति ॥७०
आसनाच्छयनाद्यानात् सम्भाषात् सहभोजनात् ।
संक्रामति हि पापानि तैलबिन्दुरिवाम्भसि ॥७१
चान्द्रायणं यावकञ्च तुलापुरुष एव च ।
गवाञ्चैवानुगमनं सर्वपापप्रणाशनम् ॥७२
एतत् पराशरं शास्त्रं श्लोकानां शतपञ्चकम् ।
द्विनवत्या समायुक्तं धर्मशास्त्रस्य संग्रहः ॥७३
यथाध्ययनकर्माणि धर्मशास्त्रमिदं तथा ।
अध्येतव्यं प्रयत्नेन नियतं स्वर्गगामिना ॥७४

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे द्वादशोऽध्यायः ॥

समाप्ता चेयं पराशरसंहिता ॥

ॐ तत्सत् ।

---

॥ अथ ॥

( सुव्रतमुनिप्रोक्ता )

# * बृहत्पराशरस्मृतिः *

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

—:०००:—

## ॥ प्रथमोऽध्यायः ॥

—००—

### तत्रादौ-वर्णाश्रमप्रश्नम् ।

व्यक्ताव्यक्ताय देवाय वेधसेऽनन्ततेजसे ।
नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि धर्मान् पाराशरोदितान् ॥१
अथातो हिमशैलाग्रे देवदारुवनाश्रमे ।
व्यासमेकाग्रमासीन मृषयः प्रष्टुमागताः ॥२
मनुष्याणां हितं धर्मं वर्तमाने कलौ युगे ।
वर्णानामाश्रमाणाञ्च किञ्चित्साधारणं वद ॥३
युगे युगेषु ये प्रोक्ता धर्मा मन्वादिभिर्मुने ! ।
शक्यं तेनैव ते कर्तुं वर्णैराश्रमवासिभिः ॥४
स पृष्टो मुनिभिर्व्यासो मुनिभिः परिवेष्टितः ।
प्रष्टुं जगाम पितरं धर्मान् पराशरं ततः ॥५
सर्वेषामाश्रमाणाञ्च वरे बदरिकाश्रमे ।
स विवेशाश्रमे तस्मिन् तनुं योगीव वेधसः ॥६

नानापुष्पलताकीर्णे फलपुष्पैरलङ्कृते।
नदी प्रस्रवणानेकैः पुण्यतीर्थोपशोभिते ॥७
मृगपक्षिभिराकीर्णे देवतायतनावृते।
यक्ष गन्धर्व सिद्धैश्च नृत्यगीतसमाकुले ॥८
तस्मिन्नपि सभामध्ये शक्तिपुत्रः पराशरः।
सुखासीनो महातेजा मुनिमुख्यगणावृतः ॥९
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा व्यासस्तु मुनिभिः सह।
प्रदक्षिणाभिवादैश्च मुनिभिः प्रतिपूजितः ॥१०
ततः सन्तुष्टमनसा पाराशरमहामुनि।
व्यासस्य स्वागतं ब्रूयाद् आसीनो मुनिपुङ्गवः ॥११
व्यासस्य स्वागतं तेऽस्तु महर्षीणां समन्ततः।
कुशलं कुशलेत्युक्त्वा व्यासो पृच्छत्ततः परम् ॥१२
यदि जानासि मा भक्तं स्नेहोवा यदि वत्सल।
धर्मं कथय मे तातः अनुग्राह्यो ऽस्म्यहं यदि ॥१३
श्रुतास्तु मानवा धर्मा गार्गीया गौतमास्तथा।
वासिष्ठाः काश्यपाश्चैव तथा गोपालकस्य च ॥१४
आत्रेया विष्णु सम्वर्ता दाक्षाश्चाङ्गिरसास्तथा।
शातातपाश्च हारीता याज्ञवल्क्यकृतास्तथा ॥१५
आपस्तम्बकृता धर्माः शङ्खलिखितास्तथा।
कात्यायनकृताश्चैव प्रचेतसकृतास्तथा ॥१६
श्रुतिरात्मोद्भवा तात! श्रुत्यर्था मानवाः स्मृताः।
मन्वर्थः सर्वधर्माणां कृतादि त्रियुगेषु च ॥१७

धर्मं तु त्रियुगाचारं स शक्यं हि कलौ युगे।
वर्णानामाश्रमाणाञ्च किञ्चित्साधारणं वद ॥१८
व्यासवाक्यावसाने तु मुनिमुख्यः पराशरः।
सुखासीनो महातेजा इदं वचनमब्रवीत् ॥१६
क्रियन्ते नैव वेदाश्च नैवाति प्रभवन्ति ते।
न कश्चिद्वेदकर्ताऽस्ति वेदस्मर्ता चतुर्मुखः ॥२०
तथा स धर्मं स्मरति मनुः कल्पान्तरान्तरे।
अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरे परे ॥२१
अन्ये कलियुगे नृणां युगह्रासानुरूपतः।
तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ॥२२
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे।
कृते तु मानवा धर्मास्त्रेतायां गौतमस्य च ॥२३
द्वापरे शङ्ख-लिखिताः कलौ पाराशराः स्मृताः।
त्यजेद्देशं कृतयुगे त्रेतायां ग्राममुत्सृजेत् ॥२४
द्वापरे कुलमेकं तु कर्त्तारञ्च कलौ युगे।
कृते सम्भाष्य पतति त्रेतायां स्पर्शनेन च ॥२५
द्वापरे भक्षणेऽन्नस्य कलौ पतति कर्मणा।
अभिगम्य कृते दानं त्रेतास्वाहूय दीयते ॥२६
द्वापरे याच्यमानन्तु सेवया दीयते कलौ।
अभिगम्योत्तमं दानमाहूतञ्चैव मध्यमम् ॥२७
अधमं याच्यमानं स्यात् सेवादानञ्च निष्फलम्।
कृते त्वस्थिगताः प्राणास्त्रेतायां मांसमेव च ॥२८

द्वापरे रुधिरं यावत्कलौत्वन्नाद्यमेव च ।
कृते तात्क्षणिकः शापस्त्रेतायां दशभिर्दिनैः ॥२६
मासेन द्वापरे ज्ञेयः कलौ सम्वत्सरेण तु ।
युगे युगेषु ये धर्मास्तेषु धर्मेषु ये द्विजाः ॥३०
ते द्विजा नावमन्तव्या युगरूपा द्विजोत्तमाः ।
धर्मश्च सत्यमायुश्च तुर्य्यांशेन कलौ युगे ॥३१
अदनात्तदनाद्यस्य तुच्छमायुरकार्य्यतः ।
धर्मश्च लोकदम्भार्थं पाषण्डार्थं तपस्विनः ॥३२
विविधा वाग्वञ्चनार्थं कलौ सत्यानुसारिणी ।
अल्पक्षीर-घृता गावो ह्यल्पसस्या च मेदिनी ॥३३
स्त्रीजनन्यः स्त्रियः सर्वा रत्यर्थं कृतमैथुनाः ।
पुरुषाश्च जिताः स्त्रीभी राजानो दस्युभिर्जिताः ॥३४
जितो धर्मश्च पापेन अनृतेन तथा श्रुतम् ।
शूद्राश्च ब्राह्मणाचाराः शूद्राचारास्तथा द्विजाः ॥३५
अन्त्यानुयायिनश्चाढ्या वर्णास्तदुपजीविनः ।
कृतन्तु ब्राह्मणयुगं त्रेता तु क्षत्रियं युगम् ॥३६
वैश्यं तु द्वापरयुगं कलिः शूद्रयुगं स्मृतम् ।
चातुर्वर्णिकनारीणां तथा तुरीयजन्मनी ॥३७
यति(पति)द्विजा(त्युपास्त्यापि)भ्युपास्त्यादि धर्मर्द्धिर्महतीकलौ ।
शतेन या कृते दत्ते फलाप्तिः पुरुषस्य सा ॥३८
दत्तेषु दशभिर्नृणां फलाप्तिः स्यात् कलौ युगे ।
कृते यत् कोटिदस्य स्यात् त्रेतायां लक्षदस्य तत् ॥३९

द्वापरेऽयुतदस्य स्यात् शतदस्य कलौ फलम् ।
युगान्तरमाख्यातमन्यं निगदतः शृणु ॥४०
वर्णानामाश्रमाणाञ्च सर्वेषां धर्मसाधनम् ।
मृगः कृष्णश्चरेत्यत्र स्वभावेन महीतले ॥४१
वसेत्तत्र द्विजातिस्तु शूद्रो यत्र तु तत्र तु ।
हिमपर्वतविन्ध्याद्र्योर्विनशन-प्रयागयोः ॥४२
मध्ये तु पावनो देशो म्लेच्छदेशस्ततः परम् ।
देशेष्वन्येषु या नद्यो धन्याः सागरगाः शुभाः ॥४३
तीर्थानि यानि पुण्यानि मुनिभिः सेवितानि च ।
वसेयुस्तदुपान्तेऽपि शमिच्छन्तो द्विजातयः ॥४४
मुनिभिः सेवितत्वाच्च पुण्यदेशः प्रकीर्तितः ।
यत्र पानमपेयस्य देशेऽभक्ष्यस्य भक्षणम् ॥४५
अगम्यागामिता यत्र तं देशं परिवर्जयेत् ।
एवं देशः समाख्यातो यत्रिवासो द्विजन्मनाम् ॥४६
एवमेवानुवर्त्तेरन्देशधर्मानुकाङ्क्षिणः ।
वसन् वा यत्र तत्रापि स्वाचारं न विवर्जयेत् ॥४७
षट्कर्माणि च कुर्वीरन्निति धर्मस्य निश्चयः ।
पराशरः स्वयमाह शास्त्रं पुत्रस्य वत्सलः ॥४८
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि द्विजकर्माह्निकं द्विजाः ।
षट्कर्म-वर्णधर्मांश्च प्रशंसा गोवृषस्य च ॥४९
अदोह्य-वाह्यौ यौ तत्र क्षीरं क्षीरप्रयोक्तृणा ।
अमावास्यानिषिद्धानि सतश्च पशुपालनम् ॥५०

नियुक्तः सुव्रतः शेषं विप्राणां स्थापनाय च ॥६२

पराशरो व्यास वचो निशम्य
यदाह शास्त्रं चतुराश्रमार्थम्।
युगानुरूपञ्च समस्तवर्ण-
हिताय वक्ष्यत्यथ सुव्रतस्तत् ॥६३

शक्तिसूनोरनुज्ञातः सुतपाः सुव्रतस्त्विदम्।
चतुर्वर्णाश्रमाणाञ्च हितं शास्त्रमथाब्रवीत् ॥६४

इति श्रीबृहत्पाराशरीये धर्मशास्त्रे व्यासप्रश्ने सुव्रतप्रोक्तायां शास्त्रसंग्रहोद्देशकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः।

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥

आचारधर्मवर्णनम्।

पराशरमतं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम्।
चिन्तितं ब्राह्मणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥१

चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालनम्।
आचारभ्रष्टदेहानां भवेद्धर्मः पराङ्मुखः ॥२

षट्कर्माभिरतो नित्यं देवताऽतिथिपूजकः।
हुतशेषन्तु भुञ्जानो ब्राह्मणो नावसीदति ॥३

(व्यासउवाच)

कर्माणि कानीह कथञ्च तानि
कार्याणि वर्णैश्च क्रियाद्यकानि ।
तेषामनेहाकरणे विधिश्च
सर्वं प्रसादात् प्रतनुष्व मह्यम् ॥४

(पराशर उवाच)

कर्मषट्कं प्रवक्ष्यामि यत् कुर्वन्तो द्विजातयः ।
गृहस्था अपि मुच्यन्ते संसारे बन्धहेतुभिः ॥५
अथोद्देशक्रमं शास्त्रं यच्छ्रुतं श्रुतिदृष्टिकृत् ।
तदुक्तं कर्म यत् पुंसां शृणुध्वं पापनाशनम् ॥६
सन्ध्या स्नानं जपश्चैव देवतानाञ्च पूजनम् ।
वैश्वदेवं तथाऽऽतिथ्यं षट्कर्माणि दिने दिने ॥७
प्रियो वा यदि वा द्वेष्यो मूर्खः पण्डित एव वा ।
वैश्वदेवे तु सम्प्राप्तः सोऽतिथि स्वर्गसङ्क्रमः ॥८
सन्ध्यामथ प्रवक्ष्यामि देवता-काल-नामभिः ।
वर्णर्षि-च्छन्दसा युक्ता यद्विधानं यथार्चनम् ॥६
यावन्मन्त्रा यथोपास्तिरुपस्पर्शनमेव च ।
आवाहनं विसर्गञ्च यावन्मानं(मन्त्र)क्रमेण तु ॥१०
दिवसस्य च रात्रेश्च सन्धिः सन्ध्येति कीर्त्तिता ॥११
सोपास्या सद्द्विजैर्यत्नात् स्यात्सैर्विश्वमुपासितम् ।
मध्याह्नेऽपि च सन्धिः स्यात् पूर्वस्याह्नः परस्य च ॥१२

पूर्वाह्णो ह्यपराह्णस्तु क्षपा चेति श्रुतिक्रम ।
पूर्वा सन्ध्या तु गायत्री ब्रह्माणी हंसवाहना ॥१३
रक्तपद्मारणा देवी रक्तपद्मासनस्थिता ।
रक्ताभरणभासाङ्गा रक्तमाल्याम्बरा तथा ॥१४
अक्षमाला स्रुग्धरा च वरहस्ताऽमरार्चिता ।
प्रागादित्योदयाद्विद्वान् मुर्त्ते वैधसे सति ॥१५
"प्रात सन्ध्यां सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि ।
सादित्यां पश्चिमां सन्ध्यामर्धास्तमितभास्कराम् ॥"
इत्थयोपासयेत्सन्ध्यां यावत् स्यादर्कदर्शनम् ।
विश्वमात । सुराभ्यर्च्ये । पुण्ये । गायत्रि । वेधसि । ॥१६
आवाहयाम्युपास्त्यर्थं पद्मोनोऽग्नि पुनीहि माम् ।
सन्ध्या माध्यादिकी श्वेता सावित्री रुद्रदेवता ॥१
वृषेन्द्रवाहना देवी डमलत्रिशिखधारिणी ।
श्वेताम्बरधरा श्वेता नानाभरणभूषिता ॥१८
श्वेतस्रगक्षमाला च कृतानुरक्तिशङ्करा ।
जलाधारा धरा धात्री धरेन्द्राङ्कभवा तथा ॥१९
स्वभाविभातभूराधा सुरौघनुतपादद्वया ।
मातर्भगानि । विश्वेशि । विश्वे विश्वजनार्चिते । ॥२०
शुभे । वरे । वरेण्येहि आहूतासि पुनीहि माम् ॥२१
सन्ध्या सायन्तनी कृष्णा विष्णुदेवी सरस्वती ।
खगगा कृष्णवस्त्रा तु शङ्खचक्रगदाधरा ॥२२

कृष्णाम्बरभूषणैर्युक्ता सर्वज्ञानमया वरा।
सर्वरागदेवता सर्वा ब्रह्मादिवचसि स्थिता ॥२३
वीणा-ऽक्षमालिका चापहस्ता स्मितवरानना।
चतुर्दशजनाऽध्यक्षा वरयाणी शुभवाक्प्रदा ॥२४
मातर्मा देवि! वरदे! वरेण्ये! वचनप्रदे!।
मर्यमरूद्रणस्तुत्ये! आहुतेहि! पुनीहि माम् ॥२५
प्रथंशार्क हरीणां तु सङ्गमोऽस्तूभयोर्भवेत्।
मध्यादिकायां मन्ध्यायां सर्वदेवसमागम. ॥२६
पूजाभिकाङ्क्षिणो ये च ये च किञ्चिल्लाभार्थिन.।
श्राद्धाग्रभागधेया ये ये चाग्निहुतभागिन ॥२७
अन्यान्युपायपानीह स्थावराणि चराणि च।
माध्यन्दिनीमपेक्षन्ते तेषामप्याधिका हि मा ॥२८
यातस्यां नार्चयेद्देवांस्तर्पयेन्न पितृंस्तथा।
भूतान्युपायपानीह सोऽन्नह्मामित्रमृत्स्रुति ॥२९
ईशान्याभिमुखो भूत्वा द्विज पूर्वमुखोऽपि वा।
सन्ध्यामुपासयेद्यद्वत्तथावत्तन्नियोधत ॥३०
आ मणेर्बन्धनाद्धस्तौ पादौ चा ऽऽजानुतः शुचि.।
प्रक्षाऽऽल्याचमेद्विद्वानन्तर्जानुकरो द्विज ॥३१
निर्मलात् फेनपूताभि मनोज्ञाभि' प्रयत्नवान्।
आचामेद्ब्रह्मतीर्थेन पुनराचमनाच्छुचिः ॥ ३२
वक्त्रनिर्माजन कृत्वा द्विस्तेनैवाधरान्यथा।
अद्भिश्च संस्पृशेत् खानि सर्वाण्यपि विशुद्धये ॥३३

अङ्गुष्ठेन प्रदेशिन्या सव्यपाणिस्थवारिणा।
घ्राणं संस्पृश्य नेत्रे च तेनानामिकया श्रुतीः ॥३४
नाभिञ्च तत्कनिष्ठाभ्यां वक्षः करतलेन च।
शिरः सर्वाभिरंसौ च ह्यङ्गुल्यग्रैश्च संस्पृशेत् ॥३५
आचम्य प्राणसंरोधं कृत्वा चोपस्पृशेत्पुनः।
अत्रोपस्पर्शने मन्त्रं प्रातः केचित्पठन्ति हि ॥३६
सूर्यश्चमेति मन्त्रेण प्रातराचमनं स्मृतम्।
'आपः पुनन्तु' मध्याह्ने सायमग्निश्चमेति च।
मन्त्राभिमन्त्रितं कृत्वा कुशापूतञ्च सञ्जलम् ॥३७
आचम्य विधिवद् धीमान् सन्ध्योपासनमाचरेत् ॥३८
सोङ्कारां चैव गायत्रीं जप्त्वा व्याहृतिपूर्वकम्।
आपोहिष्ठादि जल्पन्वि च्छन्दो-देवर्षिपूर्वकम् ॥३९
छन्दोभिर्विनियोगैश्च मन्त्र-ब्राह्मणसंयुतम्।
एतद्धीने न कुर्वीत कुर्य्यात् ह्येतत्तदासुरम् ॥४०
मृत्युभीतैः पुरा देवैरात्मनश्छादनाय च।
छन्दांसि संस्मृतानीह च्छादितास्तैस्ततोऽमराः ॥४१
छादनाच्छन्द उद्दिष्टं वाससी कृत्तिरेव वा।
छन्दोभिरावृतं सर्वं विद्या सर्वत्र नान्यतः ॥४२
यस्मिन्मन्त्रे तु ये देवा स्तेन मन्त्रेण चिह्नितम्।
मन्त्रं तद्देवतं विद्यात् सैव तस्य तु देवता ॥४३
येन यदृषिणा दृष्टं सिद्धिः प्राप्ता तु येन वै।
मन्त्रेण तस्य स प्रोक्तो मुनेर्भावस्तदात्मकः ॥४४

यत्र कर्मणि चारब्धे जपहोमार्चनादिके।
क्रियते येन मन्त्रेण विनियोगस्तु स स्मृतः ॥४५
अस्य मन्त्रस्य चाऽर्थोऽयमयं मन्त्रोऽत्र वर्तते।
तत्तस्य ब्राह्मणं ज्ञेयं मन्त्रस्येति श्रुतिक्रमः ॥४६
एतद्धि पञ्चकं ज्ञात्वा क्रियते कर्मयद्द्विजैः।
तदनन्तफलं तेषां भवेद्वेदनिदर्शनात् ॥४७
अकामेनापि यन्न्यूनं कुर्य्यात् कर्म द्विजोऽपि यः।
तेनासौ हन्यते कर्त्ताऽमृतो गन्तायमृच्छति ॥४८
कुर्वन्नज्ञो द्विजः कर्म जपहोमादि कञ्चन।
नासौ तस्य फलंविन्देत् कर्म(क्लेश)मात्रं हि तस्य तत् ॥४९
आपद्यते स्थाणु गर्तं स्वयं वापि प्रलीयते।
यातयामानि च्छन्दांसि भवन्त्यफलदान्यपि ॥५०
सिन्धुद्वीप ऋषिश्छन्दो गायत्री ऋक्षु विस्तृषु।
आपो हि दैवतं प्राहुरापोहिष्ठादिषु द्विजाः ॥५१
गोभिलो (गाधिजो) राजपुत्रस्तु द्रुपदायामृषिर्भवेत्।
आनुष्टुभं भवेच्छन्द आपश्चैव तु दैवतम् ॥५२
सौत्रामण्यावभृतके विनियोगोऽस्य कल्पितः।
उदुत्यमृषिः प्रस्कण्वो गायत्रं सूर्य्यदेवता ॥५३
चित्रमित्यत्र कुत्सस्तु शाकरी सूर्य्यदेवता।
प्रणवो भूर्भुवः स्वश्च गायत्र्यापो ऋचां त्रयम् ॥५४
अघमर्षणसूक्तस्य ऋषिरेवाघमर्षणः।
छन्दोऽस्यानुष्टुभं प्राहुरापश्चैव तु दैवतम् ॥५५

द्रुपदाद्यमर्षणं सूक्तं मार्जने व्याहरेदिति ।
स्मृतिभिः परिशिष्टैश्च विशेषस्तोयसेचने ॥५६
उक्तोऽधोर्ध्वं विभागेन कर्तव्यः सोऽपि सद्द्विजैः ।
आपोहिष्ठेति च ऋचामष्टाक्षरपदेन च ॥५७
पादान्ते प्रक्षिपेद्वापि पादमध्ये न च क्षिपेत् ।
भूमौ मूर्ध्नि तथाऽऽकाशे मूर्ध्न्याकाशे पुनर्भुवि ॥५८
एवं वारि द्विजः सिञ्चन् तर्पयेत् सर्वदेवताः ।
ऋगन्ते मार्जनं कुर्यात् पादान्ते वा समाहितः ॥५९
ऋगर्धे वा प्रकुर्वीत शिष्टात्मा मतमीदृशम् ।
उदुत्यं चित्रं देवानामुपस्थाने नियोजयेत् ॥६०
हंसः शुचिः षदित्यादि केचिदिच्छन्ति सूरयः ।
अव्याकृतमिदं ह्यासीत् सदेवासुर-मानुषम् ॥६१
सङ्क्षोभायासृजद् ब्रह्मा, सप्तेमा व्याहृती. पुरा ।
भूर्भुवः स्वर्महर्जनस्तपः सत्यं तथैव च ॥६२
आद्यास्तिस्रो महाप्रोक्ताः सर्वत्रैव नियोजनात् ।
अग्निर्वायुस्तथा सूर्यो बृहस्पत्याप एव च ॥६३
इन्द्रश्च विश्वेदेवाश्च देवताः समुदाहृता. ।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पङ्क्तिरेव च ॥६४
त्रिष्टुप् च जगती चैव च्छन्दांस्येतान्यनुक्रमात् ।
भरद्वाजः कश्यपश्च गौतमोऽत्रिस्तथैव च ॥६५
विश्वामित्रो जमदग्निर्वसिष्ठश्चर्षयः क्रमात् ।
एताभिः सकलं व्याप्तमेताभ्यो नास्ति चापरम् ॥६६

सप्तैते स्वर्गलोका वै सत्याद्वृद्ध्न विद्यते ।
तस्माल्लोकात्परा मुक्तिरर्वाचीनादपेक्षया ॥६७
प्राणसंयमनेष्वेता अभ्यस्या पूरकादिभिः ।
ओमापोज्योतिरित्येतच्छिरः पश्चात्प्रयुज्यते ॥६८
प्रत्योङ्कारसमायुक्तो मन्त्रोऽयं तैत्तिरीयके ।
अत्रोङ्कारवदार्षादि विदु र्ब्रह्मविदो जनाः ॥६९
प्रणवाद्यन्त गायत्रीप्राणायामेऽप्ययं विधिः ।
गायत्र्यादि ऋचिप्रान्तैर्मन्त्रैश्च प्रागुदीरितः ॥७०
उपासीरन्द्विजास्तावद्यावन्नोदेति भास्करः ।
यतो यत्नपवित्रेण यस्तु सन्ध्यामुपासते ॥७१
सर्वतीर्थाभिषेकं तु लभते नात्र संशयः ।
गोवालं दर्भसारश्च ताम्रं कनकमेव च ॥७२
दर्भ-ताम्र-तिलैर्वापि एतैस्तर्पणकृद्-द्विजाः ।
स सन्तर्प्य पितृन्देवानात्मानं त्रिदिवं नयेत् ॥७३
त्रिंशत्कोट्यस्तु विख्याता मन्देहा नाम राक्षसाः ।
उद्यन्तं ते निवस्वन्तं बलाद्विघ्नन्ति खादितुम् ॥७४
दिने दिने सहस्रांशु रलक्ष्यैस्तैरभिद्रुत ।
भानुर्हीन. कृतस्तूर्णं तद्वशत्वमिवागत ॥७५
अतस्तस्य च तेषां तु ह्यभूद्युद्धं सुदारुणम् ।
किं भविष्यति युद्धेऽस्मिन् नित्यभूत्सुरविस्मय ॥७६
अरुणस्य च ये प्राणा ज्वलन्तो ये च भास्वत ।
विलक्ष्यास्ते निवर्तन्ते मन्देहानामदर्शनात् ॥७७

रवेरप्यंशवो ह्यस्मात् यातायाता ह्यशक्तितः ।
अप्राप्त्या च शरीराणां स्वामिनैव लयं गताः ॥७८
हेषाशब्दमकुर्वाणाः शफस्फुरणवर्जिताः ।
स्तब्धाङ्गा निर्जयाज्जाताः सूर्यस्यन्दनवाजिनः ॥७९
ततो देवगणाः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः ।
यस्सन्ध्याते उपासीत प्रक्षिपन्ति जलं महत् ॥८०
ॐकारब्रह्मसंयुक्तं गायत्र्या चाभिमन्त्रितम् ।
दहेरन् तेन ते दैत्या वज्रीभूतेन वारिणा ॥८१
सहस्रांशुरथे तिष्ठन् योऽधीयानश्चतुः श्रुतीः ।
याज्ञवल्क्य. समाप्त्यैतत्त्रिशानुकवास्तथा ॥ ८२
सत्ते त्वनुदिवादित्ये सन्ध्योपास्तिकरो भवेत् ।
उदिते सति या सन्ध्या बालक्रीडोपमा च सा ॥८३
सन्ध्या येन न विज्ञाता ज्ञात्वा नैव ह्युपासिता ।
स जीवन्नेव शूद्रश्च ह्याशु गच्छति सान्वयः ॥८४
मान्त्रं पार्थिवमाग्नेयं वायव्यं दिव्यमेव च ।
वारुणं मानसञ्चेति सप्त स्नानान्यनुक्रमात् ॥८५
शं न आपस्तु वै मान्त्रं मृदालम्भं तु पार्थिवम् ।
भस्मना स्नानमाग्नेयं गोरेणूनाऽऽनिलं स्मृतम् ॥८६
आतपे सति या वृष्टि दिव्यस्नानं तदुच्यते ।
वहिर्नद्यादिके स्नानं वारुणं प्रोच्यते बुधैः ॥८७
यद्ध्यानं मनसा विष्णोर्मानसं तत्प्रकीर्तितम् ।
असामर्थ्येन कायस्य कालशक्त्याद्यपेक्षया ॥८८

तुल्यफलानि सर्वाणि स्युरित्याह पराशरः ।
स्नानाना मानसं स्नानं मन्वाद्यैः परमं स्मृतम् ॥८६
कृतेन येन मुच्यन्ते गृहस्था अपि तु द्विजाः ।
दिव्यादीनां त्रयाणां तु स्नानानामौपसं परम् ॥६०
सद्य पापहरं प्राहुः प्राजापत्यव्रताधिकम् ।
उषस्युषसि यत्स्नानं क्रियतेऽनुदितेऽरवौ ॥६१
प्राजापत्येन तत्तुल्यं महापातकनाशनम् ।
प्रातरुत्थाय यो विप्रः प्रातःस्नायी सदा भवेत् ॥६२
सर्वपापविनिर्मुक्तः परं ब्रह्माधिगच्छति ।
अस्नातो नाचरेत्कर्म जपहोमादि किञ्चन ॥६३
विद्यन्ते (छिद्यन्ते) च सुसुमानि (सुगुप्तानि) इन्द्रियाणि क्षरन्ति च ।
अङ्गानि समतां यान्ति उत्तमान्यधमैः सह ॥६४
अत्यन्तमलिनः कायो नवच्छिद्रसमन्वितः ।
स्रवत्येव दिवारात्रौ प्रातः स्नानेन शुध्यति ॥६५
उषःस्नानं प्रशंसन्ति सर्वे च पितरोऽमराः ।
दृष्टादृष्टकरं पुण्यं शंसन्ति पितरो(ऋषयो)ऽपि हि ॥६६
प्रातःस्नायी हि यो विप्रः सोऽर्हः स्यात्सर्वकर्मसु ।
तत्कृतं कर्म यत्किञ्चित्तत्सर्वं स्याद्यथार्थवत् ॥ ६७
अविद्वान् स्नानकाले तु यः कुर्याद्दन्तधावनम् ।
पापीयान् रौरवं याति पितृशापहतो ध्रुवम् ॥ ६८
यच्च श्मश्रुषु केशेषु यज्जलं देहलोमसु ।
हस्ताभ्यां न तु वस्त्रेण जलं विद्वान् हि मार्जयेत् ॥६६

मार्जिते पितरः सर्वे सर्वा अपि च देवताः।
तथा सर्वे मनुष्याश्च त्यजेरन् नियतं द्विजम् ॥१००
स्नातृसञ्चिन्तितं सर्वे तीर्थं पितृदिवौकसः।
ततो नश्यत्यसौ गच्छन्निराशास्ते शपन्ति हि ॥१०१
ये तु स्नानार्थिनस्तीर्थं सञ्चिन्तन्ति जलाश्रयान्।
तद्देहमुपतिष्ठन्ति तृप्त्यै पितृदिवौकसः ॥१०२
अतो न चिन्तयेत्तीर्थं व्रजेदेव तु चिन्तितम्।
देवखातनदीस्रोतःसरस्सु स्नानमाचरेत् ॥१०३
स्नानं नद्यादिष्वन्येषु सद्भिः कार्यं सदम्बुषु।
कृत्रिमं तोयकूपस्थं तोयं तत्र त्वकृत्रिमम् ॥१०४
न तीर्थे स्त्र्याकुले स्नायान्नासज्जनसमावृते।
दर्भहीनोऽन्यचित्तस्तु न नग्नो न शिरोविना ॥१०५
कदाचिद्विदुषा मिथ्या न स्नातव्यं पराम्भसा।
अम्भःकृद्दुष्कृतांशेन स्नानकर्तापि लिप्यते ॥१०६
पञ्च वा सप्त वा पिण्डान् स्नायादुद्धृत्य तत्र तु।
वृथास्नानादिकानीह विशेषेण विवर्जयेत् ॥१०७
वृथा चोष्णोदकस्नानं वृथा जाप्यमवैदिकम्।
वृथा चाश्रोत्रिये दानं वृथा भुक्तमसाक्षिकम् ॥१०८
मासे नभसि न स्नायात्कदाचिन्निम्नगासु च।
रजस्वला भवन्त्येता वर्जयित्वा समुद्रगाः ॥१०९
नापो मूत्रपुरीषाभ्यां नाग्निर्दहति कर्मणा।
न स्त्री दुष्यति जारेण न विप्रो वेदकर्मणा ॥११०

न स्नायात् क्षोभितास्वप्सु स्वयं न क्षोभयेच्च ताः।
निर्गतासु तीर्थाच्च पतन्तीष्वाहृतासु च ॥१११
रविसंक्रान्तिवारेषु ग्रहणेषु शशिक्षये।
व्रतेषु चैव षष्ठीषु न स्नायादुष्णवारिणा ॥११२
न स्नायाच्छूद्रहस्तेन नैकहस्तेन वा तथा।
उद्धृताभिरपि स्नायादाहृताभिर्द्विजातिभिः ॥११३
स्वभावाभिरनुष्णाभिः सहस्राभिस्तथा द्विजः।
नयाभिनिर्दशाहाभिरसंस्पृष्टाभिरन्त्यजैः ॥११४
यः स्नानमाचरेन्नित्यं तं प्रशंसन्ति देवताः।
तस्माद्बहुगुणं स्नानं सदा कार्यं द्विजातिभिः ॥११५
उत्साहाध्यायनस्वान्तप्रशान्ति-शक्ति-वृद्धिदम्।
कीर्ति-कान्ति-वपुः पुष्टि-सौभाग्या-ऽऽयुःप्रवर्धनम् ॥११६
स्वर्ग्यंश्च दशभिर्युक्तं गुणैः स्नानं प्रशस्यते।
सूर्यादिदिनवारोक्तं तैलाभ्यञ्जनपूर्वकम् ॥११७
हृत्ताप-कीर्तिमरण-सुत(लक्ष्मी)स्थानाप्ति मृत्यवः।
आयुश्चार्कादिवारेषु तैलाभ्यङ्गे फलं क्रमात् ॥११८
जलावगाहनं नित्यं स्नानं सर्वेषु वर्णिषु।
शक्तैरहरहः कार्यं तस्याथ विधिरुच्यते ॥११९
गोशकृन्मृत्कुशांश्चैव पुष्पाणि पत्रिकाँ तथा।
स्नानार्थी प्रयतो नित्यं स्नानकाले समाहरेत् ॥१२०
स्वमनोऽभिमतं तीर्थं गत्वा प्रक्षाल्य पादयोः।
हस्तौ चाचम्य विधिवच्छिखां बध्वैकचेतसा ॥१२१

मृदम्बुभिः स्वगात्राणि क्रमात्प्रक्षालयेद्यथा ।
पादौ जङ्घे कटिञ्चैव क्रमाद्घ्राणं जलैस्त्रिभिः १२२
प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य नमस्कृत्य च तज्जलम् ।
गुह्योपगुह्यमित्येतद्यजुषा प्रयताञ्जलिः ॥१२३
ऊरु ७ ह्रीति च मन्त्रेण कुर्यादापोऽभिमन्त्रिताः ।
विधिज्ञाः कवयः केचिन्मन्त्रतत्त्वार्थवेदिनः ॥१२४
यत्र स्थाने तु यत्तीर्थं नदी पुण्यतरा तथा ।
तां ध्यायेन्मनसा नित्यमन्यतीर्थं न चिन्तयेत् ॥१२५
गङ्गादिपुण्यतीर्थानि कृत्रिमादिषु संस्मरेत् ।
तां ध्यायेन्मनसा वापि अन्यतीर्थं न चिन्तयेत् ॥१२६
महाव्याहृतिभिः पश्चादाचामेत्प्रयतोऽपि सन् ।
उदुत्तममिति ह्यप्सु मन्त्रेण प्राङ्मुखो विशेत् ॥१२७
येऽप्सयो दिवि चेत्येतत्कुर्यादालम्भनं ततः ।
सूर्ये परयं जलं मुक्त्वा समुत्तीर्य ततः स्वयम् ॥१२८
आचम्याथ हरेन्मृत्स्नां तथा कार्यं समालभेत् ।
अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे ॥१२९
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया पूर्वसञ्चितम् ।
मृत्तिकाहरणे मन्त्रमिति वासिष्ठोऽब्रवीत् ।
समालभेत्त्रिभिर्मन्त्रैरिदं विष्णुरिति द्विजः ॥१३०
शिरस्यासावुरस्योरू पादौ जङ्घे क्रमेण तु ।
भास्कराभिमुखो मज्जेदापो ह्यस्मानिति त्रिभिः ॥१३१

उन्मृज्य सर्वगात्राणि निमज्जेच्च पुनः पुनः।
उत्तीर्य्याऽऽचम्य गात्राणि गोमयेनाथ लेपयेत् ॥१३२
मानस्तोक इति ह्युक्त्वा प्राग्वदङ्गक्रमेण तु।
इमं मे वरुण, त्वन्नः, सत्यं नय, उदुत्तमम् ॥१३३
मुञ्च स्वयभूपेत्येभैरात्मानमभिषेचयेत्।
निमज्ज्याऽऽचम्य चाऽऽत्मानं दर्भैर्मन्त्रैश्च पावयेत् ॥१३४
सर्वपापापनोदार्थं प्राग्वदङ्गक्रमेण तु।
आपोहिष्ठादिकैर्मन्त्रैस्त्रिभिरुग्भैश्च पावयेत् ॥१३५
हविष्मतीरिमा आप इदमापस्तथैव च।
देवीराप इति द्वाभ्यामापो देवीरिति त्र्यृचा ॥१३६
संस्मृत्य द्रुपदो देवी शन्नो देवीरपां रसम्।
प्रत्यङ्गं मन्त्रनवकमापोदेवी पुनन्तु माम् ॥१३७
चित्पतिं मा पुनात्वेतन्मन्त्रेणापि च पावयेत्।
हिरण्यवर्णा इति च पावमान्यस्तथापरम् ॥१३८
तत्समन्द्रीधावति पवित्र्याण्यपि शक्तितः।
स्नानकर्मात्मकैर्मन्त्रैरन्यैरप्यम्बुदैवतैः ॥१३९
प्राण्यात्मानं निमज्ज्याथ आचान्तस्त्वन्यदाचरेत्।
काल-काय-प्रदेशाना तथा चैवोदकस्य च ॥१४०
प्राकृत्ये सति चैवायं विधिरन्यो विपर्यये।
सोंकारां चैव गायत्रीं महाव्याहृतिभिः सह ॥१४१
त्रिषण्णवैकधाऽऽवर्त्य स्नायाद्विद्वानपि द्विजः।
छन्दो-मुन्यमरैर्युक्तं स्वशाखास्वरसंयुतम् ॥१४२

आवर्त्य प्रणवं स्नायाच्छ्रुतमघर्षशतं दश।
चिद्रूपं परमं ज्योतिर्निरालम्बमनामयम् ॥१४३
अव्यक्तमव्ययं शान्तं स्नायाद्वापि हरिं स्मरन्।
गायत्रीवारिसंस्नातः प्रणवैर्निर्मलोऽथवा ॥१४४
विष्णुस्मरणसंशुद्धो योग्यः सर्वेषु कर्मसु।
योऽधीतवेदवेदार्थः स स्नातः सर्ववारिषु ॥१४५
शुद्धवेदशुचिनः स्यान्तास्तच्छुद्धस्तु शुचिर्यतः।
मन्त्रैश्च मनसा स्नानं न गोमय-मृदम्बुभिः ॥१४६
तैश्चेद्गो-खर-मत्स्याश्च स्नानस्य फलमाप्नुयुः।
भावपूतः पवित्रः स्यान्मन्त्रपूतस्तथा नरः ॥१४७
उभयेन पवित्रस्तु नित्यस्नायी शुचिर्नरः।
विधिदृष्टं तु यत् कर्म करोत्यविधिना तु यः ॥१४८
न किंचित् फलमाप्नोति क्लेशमात्रं हि तस्य तत्।
उत्पद्यन्ते जले मत्स्या विपद्यन्ते तु तत्र च ॥१४९
तिष्ठन्तोऽपि च ते स्नानफलं नैवाप्नुयुर्यतः।
विधिहीनं भावदुष्टं कृतमश्रद्धयापि च ॥१५०
तद्धरन्त्यसुरास्तस्य मूढस्याकृतात्मनः।
श्रद्धा-विधिसमायुक्तं यत् कर्म क्रियते नृभिः।
शुचिभिरेकचित्तैश्च तदानन्त्याय कल्पते ॥१५१
उदात्तमनुदात्तं च स्वरितं प्लुतमेव च।
द्रुतं च स्वरितोदात्तं स्वरं विद्यात्तथा प्लुतम् ॥१५२

स्वरान्तं व्यञ्जनान्तं च विसर्गान्तं तथैव च ।
सानुस्वारं पृथक्त्वं च ज्ञातव्यमपरं च यत् ॥१५३
वृत्रं शतक्रतुर्हन्ति वज्रेण शतपर्वणा ।
यथा तथा प्रयत्नारं मन्त्रो हीन. स्वरादिभिः ॥१५४
स्वरतो वर्णतः सम्यक् सन्ध्या-ध्यान-जपादिषु ।
सर्वे मन्त्राः प्रयोक्तव्या हीनाः स्युरफला नृणाम् ॥१५५
नाभेरधस्तादङ्गानि क्षालयित्वा मृदम्भसा ।
उपरिष्टात् सिक्तवस्त्रो मन्त्री प्रोक्ष्य शुचिर्भवेत् ॥१५६
चतुश्चतुरस्त्यङ्घ्र्योर्द्वौ द्वौ च जङ्घयोस्तथा ।
द्वौ द्वौ च जानुनोर्न्यस्य ऊर्वोः पञ्च च पञ्च च ॥१५७
द्वावप्येवं तथा गुह्ये दशदशोदर-वक्षसोः ।
द्वौ द्वौ गले च बाह्वोश्च द्वौ द्वावंस मुखेषु च ॥१५८
द्वौ द्वौ च चक्षुषोः श्रुत्योः सप्तोङ्काराश्च मूर्धनि ।
न्यस्तप्रणवसर्वाङ्गः स्नातः स्यात् सर्ववारिषु ॥१५९
अकारं मूर्ध्नि विन्यस्य उकारं नेत्रमध्यतः ।
मकारं कण्ठदेशे तु ब्रह्मीभवति वै द्विजः ॥१६०
अभ्यङ्गाक्लिष्टधौते तु विद्वाञ्छुक्ले च वाससी ।
परिधाय मृदम्बुभ्यां करौ पादौ च मार्जयेत् ॥१६१
तद्वाससोरसम्पत्तौ शाण-क्षौमा-ऽऽविकानि च ।
कुतपं योगपट्टं वा द्विवासास्तु यथा भवेत् ॥१६२
न जीर्ण-नील-काषाय-माञ्जिष्ठेन तु वाससा ।
मूत्राद्युपगतेनैव शुचिः स्यान्नैकवाससा ॥१६३

एकं वासो यथाप्राप्तं परिधाय मन शुचिः।
अन्यत् कृत्वोत्तरासङ्गमाचम्य प्राङ्मुखः स्थितः ॥१६४
प्रत्योङ्कारसमायुक्ताः प्रणवाद्यन्तकास्तथा।
महाव्याहृतयः सप्त दैवतार्षादिसंयुताः ॥१६५
प्रणयान्ता च गायत्री शिरस्तस्यास्तथैव च।
त्रिरावर्तनमेतस्याः प्राणायामो विधीयते ॥१६६
शक्त्याऽसुसंयमं कृत्वा तथाचम्य विधानतः।
उपास्य विधिवत् सन्ध्यामुपस्थाय च भास्करम् ॥१६७
गायत्रीं शक्तितो जप्त्वा तर्पयेद्देवताः पितॄन्।
अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु ॥१६८
तृप्यतामिति सेक्तव्यं नाम्ना तु प्रणवादिना।
ब्रह्मेश-केशवान् पूर्वं प्रजापतिमथो श्रुती. ॥१६९
छन्दो यज्ञानृषीन् सिद्धानाचार्यांस्तनयानपि।
गन्धर्व-वत्सरर्तूंश्च मासान् दिन-निशास्तथा १७०
देवान् देवानुगांश्चैव नागान्नागकुलानि च।
सरितः सागरांस्तीर्थान् पर्वतान् कुलपर्वतान् ॥१७१
किन्नरान् खेचरान् यक्षान् मनुष्यानथ तर्पयेत्।
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः ॥१७२
आसुरिः कपिलश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा।
मानुषान् यातुधानांश्च तेषां चैव कुलान्यपि ॥१७३
सुपर्णांश्च पिशाचांश्च भूतान्यथ पशूंस्तथा।
वनस्पतीनोषधीश्च भूतग्रामं चतुर्विधम् ॥१७४

ब्रह्मादयो मयाहूता आगच्छन्त्वाददन्त्वपः ।
अनृणं मां प्रकुर्वन्तु प्रसीदन्तु ममोपरि ॥१७५
ततः पूर्वाग्रदर्भेषु साग्रेषु सकुशेषु च ।
प्रादेशिकेषु शुद्धेषु ब्रह्मादिभ्योऽम्बु सेचयेत् ॥१७६
अन्वारब्धापसव्येन पाणिना दक्षिणे न तु ।
भूस्थदक्षिणजानुः सन् देवेभ्यः सेचयेज्जलम् ॥१७७
देवेभ्यश्च नमः स्वाहा पितृभ्यश्च नमः स्वधा ।
मन्यन्ते कवयः केचिदित्ययं तर्पणक्रमः ॥१७८
तर्प्यमाणेषु कर्मत्वं णिजन्तं च क्रियापदम् ।
तर्पयामि पितॄन् देवानित्याहुरपरे पुनः ॥१७९
सिञ्चमानेन तोयेन मन्यन्ते मुनयो परे ।
देवास्तृप्यन्तु पितरस्तृप्यन्त्विति निदर्शनम् ॥१८०
उशीरसामाङ्गिरस आयन्तु नोर्जमित्यपि ।
पितृभ्यश्च स्वधायिभ्यो ये चेह पितरस्तथा ॥१८१
अग्निष्वात्तोपहूताश्च तथा बर्हिषदोऽपि च ।
येन पूर्वे च पितरः सोमपानामुदीरयेत् ॥१८२
आयाद्य च पितृनेतेरपसव्योपवीतिना ।
दक्षिणाभिमुखो द्वाभ्यां कराभ्यामम्बु सेचयेत् १८३
भूलग्नसव्यजानुश्च दक्षिणाग्रकुशेषु च ।
रुक्म-रौप्य-तिलैस्ताम्र-दर्भ-मन्त्रैः क्षिपेत् पयः ॥१८४
विना रौप्य-सुवर्णाभ्यां विना-ताम्र-तिलैरपि ।
विना दर्भैश्च मन्त्रैश्च पितॄणां नोपतिष्ठति ॥१८५

दर्भैर्लोहितदर्भैश्च काश-वीरण-वल्वजैः ।
शूकधान्यतृणैर्वापि दर्भकार्यं श्रयेद् द्विजः ॥१८६
न तर्पयेत् पतन्तीभिर्विद्वानद्भिः कथंचन ।
प्राग्रस्थाभिः सदर्भाभिः सतिलाभिश्च तर्पयेत् ॥१८७
वसून् रुद्रांस्तथाऽऽदित्यान्नमस्कारसमन्वितान् ।
एते च दिव्याः पितर एतदायत्तमानुषाः ॥१८८
ध्रुवो धरश्च सोमश्च आपश्चैवानलोऽनिलः ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥१८९
अजैकपादहिर्बुध्न्यो विरूपाक्षोऽथ रैवतः ।
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्च सुरेश्वरः ॥१९०
सावित्रश्च जयन्तश्च पिनाकी चापराजितः ।
एते रुद्राः समाख्याता एकादश सुरोत्तमाः ॥१९१
इन्द्रो धाता भगः पूषा मित्रोऽथ वरुणोऽर्यमा ।
अंशुर्विवस्वांस्त्वष्टा च सविता विष्णुरेव च ॥१९२
एते वै द्वादशादित्या देवानां परमाः स्मृताः ।
एवं हि दिव्याः पितरः पूज्याः सर्वे प्रयत्नतः ॥१९३
कव्यवाहो नलः सोमो यमश्चैव तथार्यमा ।
अग्निष्वात्ताः सोमपाश्च तथा बर्हिषदोऽपि च ॥१९४
एते चान्ये च पितरः पूज्याः सर्वे प्रयत्नतः ।
एतैस्तु तर्पितैः सर्वैः पुरुषास्तर्पिता नृप ॥१९५
यमश्च धर्मराजश्च मृत्युश्चैव तथान्तकः ।
वैवस्वतश्च कालश्च सर्वभूतक्षयस्तथा ॥१९६

औदुम्बरश्च नीलश्च दध्नश्च परमेष्ठ्यपि ।
चित्रश्च चित्रगुप्तश्च वृकोदरस्तथार्यमा ॥१९७
एतैस्तु तर्पितैः सद्भिर्विश्वं स्यात्तर्पितं शुभैः ।
तस्मात् प्राक् तर्पयित्वैतान् पित्रादीन् तर्पयेत्ततः ॥१९८
मातामहान् मातुलांश्च सखि-सम्बन्धि-बान्धवान् ।
स्वजनान् ज्ञातिगोत्रीयानुपाध्यायान् गुरूनपि ॥१९९
मित्रान् भृत्यानपत्यांश्च ये भवन्ति तदाश्रिताः ।
तान् सर्वांस्तर्पयेद्विद्वानीहन्ते ते यतो जलम् ॥२००
जलस्थश्च जले सिञ्चेत् स्थलस्थश्च तथा स्थले ।
पादौ स्थाप्योऽभयोश्चैव प्रक्षाल्योभयतः शुचिः ॥२०१
यज्जले शुष्कवस्त्रेण स्थले चैवार्द्रवाससा ।
कुर्याद्धोमं जपं दानं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥२०२
नार्द्रवासाः स्थलस्थस्तु कुर्वंस्तर्पणमाचरेत् ।
जानुदघ्नजलस्थो वा विगलत्स्नानवस्त्रकः ॥२०३
गोशृङ्गमात्रमुद्धृत्य करौ विप्रो जले स्थितः ।
अम्बरे तु क्षिपेद्वारि पितॄणां तृप्तिमावहन् ॥२०४
उभाभ्यां सेचयेद्वारि आकाशे दक्षिणामुखः ।
पितॄणां स्थानमाकाशं दक्षिणा दिक् तथैव च ॥२०५
स्थलगो नार्द्रवासास्तु कुर्याद्धि तर्पणक्रियाम् ।
प्रेतादते नार्द्रवासा नैकवासा समाचरेत् ॥२०६
एवं हि तर्पणं कृत्वा सर्वेषां विधिवद्द्विजाः ।
निष्पीडयेत् स्नानवस्त्रं येन स्नातो भवेद्द्विजः ॥२०७

निष्पीडयति यः पूर्वं स्नानवस्त्रमबुद्धिमान्।
निराशाः पितरस्तस्य यान्ति देवाः सहर्षिभिः २०८
निष्पीडयेत् स्नानवस्त्रं तिल-दर्भसमन्वितम्।
न पूर्वं तर्पणाद्वस्त्रं नैवाम्भसि न पादयोः ॥२०९
अप्सु चेत् पीडयेद्वस्त्रं राक्षसं तदतिक्रमात्।
वस्त्रनिष्पीडने विप्र इमं श्लोकमुदाहरेत् ॥२१०
ये मे कुले लुप्तपिण्डा पुत्र-दार-विवर्जिताः।
तेषां प्रदत्तमक्षय्यमिदमस्तु तिलोदकम् ॥ २११
पितृवंशे मृता ये च मातृवंशे कुमृत्युना।
तेषां तृप्तिर्भवत्वेषा तिलमिश्रेण वारिणा ॥२१२
जलमध्ये च यः कश्चिद्ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः।
निष्पीडयति चेद् वस्त्रं स्नानं तस्य वृथा भवेत् ॥२१३
यदप्सु मलनिक्षेपः शौच-स्नानादिकुर्वताम्।
तत्पापस्य व्यपोहार्थमिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥२१४
यन्मया दूषितं तोयं मलैः शारीरसम्भवैः।
तस्य पापस्य निष्कृत्यै यक्ष्मणस्तत्र तर्पणम् ॥२१५
अम्बुपेभ्यो ऽथ यक्ष्मभ्यो ददामीदं जलाञ्जलिम्।
अन्यथा घ्नन्ति ते सर्वं सुकृतं पूर्वसञ्चितम् ॥२१६
अपुत्रा ये मृताः केचित् पुमांसो योषितो ऽपि वा।
अस्मद्वंशेऽपि तेभ्यो वै दत्तं वस्त्रजलं मया ॥२१७
नास्तिक्येनापि यो विप्रस्तर्पयेत् पितृ-देवताः।
स तत्तृप्तिकृतो धर्मान् प्राप्नुयात् परमां गतिम् ॥२१८

नास्तिक्यादथवाऽऽलस्यात्स्थितो यस्तु तर्पयेन्न पितॄन् द्विजः ।
पिबन्ति देहनिस्रावं पितरस्तज्जलार्थिनः ॥२१६

पितॄणां पितृतीर्थेन देवानां दैविकेन तु ।
इति मत्वा प्रकुर्वाणा मुच्यते गृहमेधिनः ॥२२०

पञ्च तीर्थानि विप्रस्य करे तिष्ठन्ति दक्षिणे ।
ब्राह्मं दैवं तथा पित्र्यं प्राजापत्यं तु सौमिकम् ॥२२१

ब्राह्मं पश्चिमलेखायां दैवं ह्यङ्गुलिमूर्धनि ।
प्राजापत्यं कनिष्ठादौ मध्ये सौम्यं विजानतः ॥२२२

अङ्गुष्ठस्य प्रदेशिन्या मध्ये पित्र्यं प्रतिष्ठितम् ।
कुर्याद्यो ऽहरहश्चैवं सम्यग्ज्ञात्वा विधानतः ॥२२३

स प्राप्नुयाद्गृहस्थोऽपि ब्रह्मणः पदमव्ययम् ।
स्नात्वा जप्त्वा च हुत्वा च दत्त्वा चैव तु योऽश्नुते ॥२२४

सो ऽमृतं नित्यमश्नाति तस्य स्थानमनामयम् ।
अस्नात्वाऽश्नन् मलं भुङ्क्ते अजप्त्वा पूय-शोणितम् ।
अहुत्वश्च कृमीन् कीटानदत्त्वश्च शकृत्तथा ॥२२५

आह्लादकारणं स्नानं दुःख-शोकापहं तथा ।
दुःस्वप्ननाशनं चैव कार्यं स्नानमतः सदा ॥२२६

चित्तप्रसाद-बल-रूप-तपांसि-मेधा-
मायुष्य-शौच-सुभगत्वमरोगितां च ।
ओजस्विता त्विषमदात् पुरुषस्य चीर्णं
स्नानं यशो-विभव-सौख्यमलोलुपत्वम् ॥२२७

गीर्वाणेन्द्रद्विजसत्तमसंस्तुतः ।
प्राप्तो मया यस्तु वसिष्ठपौत्रतः ।
पापप्रणाशं वितनोति यः श्रुतः
प्रोदीरितः स्नानविधिः स लेशतः २२८

उद्देशतो मया प्रोक्तः स्नानस्य परमो विधिः ।
द्विजन्मनो हितार्थं तु जपस्यातः परो विधिः ॥२२९

इति श्रीबृहत्पराशरीये धर्मशास्त्रे सुव्रतप्रोक्तायां स्मृतायां स्नानविधिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ तृतीयोऽध्यायः ॥

ॐकारमन्त्रवर्णनम् ।

जपस्याथ प्रवक्ष्यामि विधिं पाराशरोदितम् ।
यावद्विधो जपो यस्तु यथा कार्यो द्विजातिभिः ॥१
जप्यानि ब्रह्मसूक्तानि शिवसूक्तानि चैव हि ।
वैष्णवानि च सूक्तानि तथा सौरण्यनेकधा ॥२
सारस्वतानि शौर्याणि वारुणान्याग्निकानि च ।
पौराणिकानि जप्यानि तथा सिद्धान्तिकानि च ॥३

सर्वेषां जप्यसूक्तानामृचां च यजुषां तथा।
साम्नां चैकाक्षरादीनां गायत्री परमो जपः ॥४
तस्याश्चैव तु ॐकारो ब्रह्मणा यमुपासते।
आभ्यां तु परमं जप्यं त्रैलोक्येऽपि न विद्यते ॥५
तयोस्तु देवतादीनि समासेनाभिधीयते।
येन विज्ञातमात्रेण द्विजो ब्रह्मत्वमाप्नुयात् ॥६
आसीन्नैव यदा किंचित् सदेवाऽसुर-मानुषम्।
तदैकाक्षर एवासीदात्मविन्यस्तविश्वकः ॥७
गतभीरद्वितीयोऽपि एकाकी-स न मोदते।
चिन्तयामास गायत्रीं प्रत्यक्षा साऽभवत्तदा ॥८
गायत्री साऽभवत् पत्नी प्रणवोऽभूत् पतिस्तदा।
पुनरन्यौ च दम्पत्याविति ताभ्यामभूज्जगत् ॥९
प्रणवो हि परं तत्त्वं त्रिवेदं त्रिगुणात्मकम्।
त्रिदैवतं त्रिधामं च त्रिप्रह्वं त्रिरवस्थितम् ॥१०
त्रिमात्रं च त्रिकालं च त्रिलिङ्गं कवयो विदुः।
सर्वमेतत्त्रिरूपेण व्याप्तं तु प्रणवेन हि ॥११
ऋग्यजुः-सामवेदाश्च त्रिवेद इति कीर्तितः।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव त्रिगुणस्तेन चोच्यते ॥१२
ब्रह्मा विष्णुस्तथेशानस्त्रिदैवत इतीर्यते।
अग्निः सोमश्च सूर्यश्च त्रिधामेति प्रकीर्तितः ॥१३
अन्तःप्रह्वं बहिःप्रह्वं घनप्रह्वमुदाहृतम्।
हृत्कण्ठ-तालुके चेति त्रिस्थानं इति कीर्त्यते ॥१४

अकारोकारौ मश्चेति त्रिमात्रः प्रोच्यते बुधैः।
भूतं भव्यं भविष्यं च त्रिकाल इति स स्मृतः ॥१५
स्त्री-पुंन्नपुंसकं चेति त्रिलिङ्ग इति कीर्तितः।
त्रितत्त्वभाव. स्थितो देवो मर्त्तव्यो ब्रह्मवादिभिः ॥१६
पर्यवस्यति यत्रैतद्विश्वमुत्पद्यते यत·।
निर्मात्रकः समात्रोऽपि सादिरेव निरादिकः ॥१७
स जप्यः सर्वदा सद्भिर्ध्यातव्यश्च विधानत·।
वेदेषु चैव शास्त्रेषु बहुधा स व्यवस्थित. ॥१८
तथा सत्यपि चैकोऽयं घटाकाश इव स्थितः।
कर्मारम्भेषु सर्वेषु त्रिमात्र सम्प्रकीर्तितः ॥१९
स्थितो यत्र यथोक्तश्च स्मर्तव्यः स तथैव हि।
ऋग्वेदे स्वरितोदात्त उदात्तस्तु यजुःश्रुतौ ॥२०
सामवेदे स विज्ञेयो दीर्घ स प्लुत एव च।
सनत्कुमारसिद्धान्ते प्रणवो त्रिगुणरुच्यते ॥२१
यस्मिंस्तस्य च विश्रान्तिस्तत् परं ब्रह्मसंज्ञितम्।
उच्चारितस्य तस्याथ विश्रान्तौ च यदक्षरम् ॥२२
तदक्षरं सदा ध्यायेद्यस्तत्रैव प्रलीयते।
घण्टास्वनिसवत्तस्य विश्रान्ति· शब्दवेधस· ॥२३
कुर्वीत ब्रह्मविद्विप्रो यदीच्छेद्योगमात्मनः।
सर्वस्यापि च शब्दस्य ह्यन्त उच्चारितस्य यत् ॥२४
तद्ध्यायेद्यस्तु स ज्ञानी शब्दब्रह्मविदुच्यते।
याज्ञवल्क्यो मुनीनां प्रागब्रवीज्जनकस्य च ॥२५

वासिष्ठजो ऽपि तं ब्रूयात् स्वभावं शब्दवेधसः।
तैलधारामिवाच्छिन्नं दीर्घं घण्टानिनादवत् ॥२६
अवाग्जं प्रणवस्यायं यस्तं वेद स वेदवित्।
स्थिरया सर्वेषु शब्देषु सर्वं व्याप्तमनेन हि।
न तेन हि विना किंचिद्वक्तुं याति गिरा यतः ॥२७
उद्गीथमक्षरं ह्येतदुद्गीथं च उपासते।
उपास्यो मध्यतस्तेन नादं विश्रामयेद्धृदि ॥२८
प्रणवाद्याः स्मृता वेदाः प्रणवे पर्यवस्थिताः।
वाङ्मयं प्रणवे सर्वं तस्मात् प्रणवमभ्यसेत् ॥२९
ब्रह्मार्षं तत्र विज्ञेयमग्निश्च दैवतं महत्।
आद्यं छन्दः स्मरेत्तत्र नियोगो ह्यादिकर्मणि ॥३०
उत्पन्नमेतत्तु यतः समस्तं व्याप्यैव तिष्ठेत् प्रलये ऽपि यत्र।
एकाक्षरेणापि जगन्ति येन व्याप्तानि कोऽन्यः परमोऽस्ति तस्मात् ॥
ध्येयं न जप्यं नच पूजनीयं तस्मान्न देवादपरणीयमन्यम्।
दुस्तारसंसारपयोधिमग्नतारणाय विष्णुः प्रणवः स पूज्यः ॥३२
उपस्युदेशतो ह्येतद् रूपमेकाक्षरस्य च।
जप्या च सततं देवी गायत्री साऽधुनोच्यते ॥३३

इति श्रीबृहत्पराशरीये धर्मशास्त्रे सुव्रतप्रोक्तायां स्मृतौ
षट्कर्मनिरूपणे प्रणवस्वरूपवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥

—:ॐ:—

## ॥ चतुर्थोऽध्याय ॥

### गायत्रीमन्त्रपुरश्चरणवर्णनम् ।

गायत्र्या संप्रवक्ष्यामि देवर्ष्यादि क्रमेण तु ।
अक्षराणा च विन्यासं तेपा चैव तु देवता ॥१
जप्ये यथाविधा कार्या यथारूपा च साऽर्चने ।
होमे यथा च कर्तव्या यथा वा चाऽऽभिचारिके ॥२
यत् फलं जपहोमादौ यदर्थं जप्यते तु सा ।
ध्यातव्या च यथा देवी यथावत्तन्निबोधत ॥३
गायत्री तु परं तत्त्वं गायत्री परमा गति ।
सर्वाङ्गैरियं ध्याता सर्वं व्याप्तं तया जगत् ॥४
उत्पद्यते त्रिपादाया, पुनस्तस्या विशेदिदम् ।
गायत्री प्रकृतिर्ज्ञेया ॐकार पुरुष स्मृत ॥५
एतयोरेव सयोगाज्जगत् सर्वं प्रवर्तते ।
पादास्त्रयस्त्रयो वेदास्तेषु तत्त्वाक्षराणि च ॥६
चतुर्विंशतिरेवास्यां तैर्हि व्याप्तमिदं जगत् ।
आदाय चैकं प्रथमं तु पादमृग्भ्यो द्वितीयं तु तथा यजुर्भ्य ।
साम्नस्तृतीयं तु ततोऽभवत् सा सावित्रिदेवी स्वयमेव सर्गे ॥७
दैवतमेष्यां सविता सुराः ध्येयश्च सोऽपि गायत्रमभूत्त तस्याः ।
विश्वस्य मित्रो द्विजराजपूज्यो मुनिर्नियोगस्तु जपादिकेषु ॥८
अस्यां तु तत्त्वाक्षरविंशतिस्तु चत्वारि पादत्रियतं तु देव्याम् ।
भूरादिभिस्तिसृभि संप्रयुक्तं सोङ्कारमेतद्वदनं च तस्या ॥९

केचिद्धुताशं वदनं वदन्ति सावित्रिदेव्यो श्रुतितत्त्वविज्ञाः ।
इदं च वक्त्रं सकलामराणामित्येतया व्याप्तमशेषमेतत् ॥१०
भूरादिकेन त्रितयेन पादं पादं च वेदत्रितयेन चास्याः ।
प्राणादिकेन त्रितयेन पादं पादैस्त्रिभिर्व्याप्तमशेषमस्याः ॥११
यस्तुर्यमस्या द्विज वेत्ति पादं स वेत्ति विद्वन् परमं पदं तु ।
व्याप्तिं परास्याः सकलापि चैषा यो वेत्ति चैनां स तु वित्तमः स्यात् ॥

गायत्रीं यो न जानाति ज्ञात्वा नैव उपासयेत् ।
नामधारकमात्रोऽसौ न विप्रो वृषलो हि सः ॥१३
किं वेदैः पठितैः सर्वैः सेतिहास-पुराणकैः ।
साङ्गैः सावित्रिहीनेन न विप्रत्वमवाप्यते ॥१४
गायत्रीमेव यो ज्ञात्वा सम्यगभ्यसते पुनः ।
इहामुत्र च पूज्योऽसौ ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥१५
गायत्री च तथा वेदा ब्रह्मणा तुलिताः पुरा ।
वेदेभ्योऽपि षडङ्गेभ्यो गायत्र्यतिगरीयसी ॥१६
यदक्षरेषु दैवत्यं चतुर्विंशतिरुच्यते ।
संन्यासं यद्विशेषेन कुर्वन् ब्रह्मत्वमाप्नुयात् ॥१७
जानीयादक्षरं देव्याः प्रथमं त्वाशुशुक्षणम् ।
प्राभञ्जनं द्वितीयं तु तृतीयं शशिदैवतम् ॥१८
विद्युतश्च तुरीयं तु पञ्चमं तु यमस्य च ।
षष्ठं तु वारुणं तत्त्वं सप्तमं तु बृहस्पतेः ॥१९
पार्जन्यमष्टमं तत्त्वं नवमं चेन्द्रदैवतम् ।
गान्धर्वं दशमं विन्द्याद्द्वेकादशं तथा ॥२०

मैत्रावरुणमन्त्याद्वै तथा पूष्णस्त्रयोदशम् ।
चतुर्दशं सुरेशस्य भागिदं ब्रह्मणः स्मृतम् ॥२१
मरुद्दैवतकं ज्ञेयं पञ्चदशं यदक्षरम् ।
सौम्यं च षोडशं तत्त्वं तथा चाङ्गिरसं परम् ॥२२
विश्वेषां चैव देवानामष्टादशमथाक्षरम् ।
अश्विनोश्चोनविंशं तु विंशं प्रजापतेर्विदुः ॥२३
एकविंशं कुबेरस्य द्वाविंशं शंकरस्य च ।
त्रयोविंशं तथा ब्राह्मं चातुर्विंशं तु वैष्णवम् ॥२४
इति ज्ञात्वा द्विजः सम्यग्सर्वाश्चाक्षरदेवताः ।
कुर्वन् जपादिकं विप्रः परं श्रेयोऽधिगच्छति ॥२५
पादाङ्गुष्ठादिमूर्द्धान्तमात्मनो वपुषि न्यसेत् ।
अक्षराणि च सर्वाणि कान्क्रमे ब्रह्मत्वमात्मनः ॥२६
पादाङ्गुष्ठयुगे त्वेकमेकैकं गुल्फयोर्द्वयोः ।
जानुनोश्च द्वयोरेकमेकमूरुकयोर्द्वयोः ॥२७
गुह्ये कट्यां तथैकैकमेकैकं जठरोरसोः ।
स्तनद्वये तथैकं तु न्यसेदेकं गले तथा ॥२८
वक्त्रे तालुनि दृक्-श्रुत्योश्चतुर्ष्वेकैकमेव च ।
भ्रुवोर्मध्ये तथैकं तु ललाटे चैकमेव हि ॥२९
याम्य-पश्चिम-सौम्येषु एकैकमेकमूर्धनि ।
गायत्रीन्र्यस्तसर्वाङ्गो गायत्रो विप्र उच्यते ॥३०
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ।
प्रोक्तः प्रणवविन्यासो व्याहृतीनामथोच्यते ॥३१

सप्तापि व्याहृतीर्न्यस्याः स्वदेहे जपादिषु।
भूर्लोकं पादयोर्न्यस्य भुवर्लोकं तु जानुनोः॥३२
स्वर्लोकं कटिदेशे तु नाभिदेशे महस्तथा।
जनलोकं तु हृदये कण्ठदेशे तपस्तथा॥३३
भ्रुवोर्ललाटसन्ध्योस्तु सत्यलोकः प्रतिष्ठितः।
हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्॥३४
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः।
देवस्य सवितुर्भर्गो वरेण्यं चैव धीमहि॥३५
तदस्माकं धियो यस्तु ब्रह्मत्वे च प्रचोदयात्।
छन्दोदैवतमार्षं च विनियोगं च ब्राह्मणम्॥३६
मन्त्रं पञ्चविधं ज्ञात्वा द्विजः कर्म समाचरेत्।
स्वरतो वर्णतश्चैव परिपूर्णं भवेद्यथा॥३७
हीनं न विनियुञ्जीत मन्त्रं तु मात्रयापि च।
देवतायतने कुर्याज्जपं नद्यादिकेषु च॥३८
आश्रमेषु यतीनां वा गोष्ठे वा स्वगृहेऽपि वा।
चतुर्ष्वन्तिमपूर्वेषु द्युत्तमादिक्रमेण तु॥३९
दशगुणं सहस्रं स्यात् फलं विष्णावनन्तकम्।
अप्समीपे जपं कुर्यात् ससङ्ख्यं सङ्ख्येयया॥४०
असङ्ख्यमासुरं यस्मात्तस्मात्तद्गणयेद्ध्रुवम्।
स्फाटिकेन्द्राक्ष-रुद्राक्षैः पुत्रजीवसमुद्भवैः॥४१
अक्षमाला प्रकर्तव्या प्रशस्ता चोत्तरोत्तरा।
अभावे त्वक्षमालाया कुशग्रन्थ्याऽथ पाणिना॥४२

यथा कथंचिद्गणयेत् ससङ्ख्यं तद्वेद्यथा ।
प्रणवो भूर्भुवः स्वश्च पुनः प्रणवसंयुतम् ॥४३
अन्त्योऽङ्कारसमायुक्ता मन्यन्ते मुनयोऽपरे ।
प्रणवोऽन्ते तथा चादावाहुरन्ये जपे क्रमम् ॥४४
आदावेव तु चोङ्कार आवृत्तावादिवोऽन्ततः ।
तदाद्य च तदन्तं च कुर्यात् प्रणवसम्पुटम् ॥४५
आद्यन्तरक्षिता कुर्यादिति पाराशरोऽब्रवीत् ।
यो न याञ्छति सन्तान मोक्षमिच्छति केवलम् ॥४६
मत्योङ्कारमसौ कुर्वन्नक्षरं मोक्षमाप्नुयात् ।
अक्षरप्रातिलोम्येन सोङ्कारेण क्रमेण तु ॥४७
फट्कारान्ता च कुर्वीत प्रेच्छन्नरिवधायुध ।
होमे चापि पठन् कुर्यात् प्रणवावर्तनं द्विजः ।
अभिप्रेतार्थहोमादौ स्वाहान्ता तामुदीरयेत् ॥४८
सर्पोऽर्णवा यदा पश्येद्रोगाद्वा द्विपतोऽपि वा ।
सदा जपेच्च गायत्रीं सर्वदोषापनुत्तये ॥४९
रुद्रजाप्यानि कार्याणि सूक्तं च पुरुषस्य च ।
शिवसंकल्पजाप्य च सर्वं कुर्याद्विधानतः ॥५०
जप्यानि घ्नन्ति पापानि श्रेयो दद्युस्तदर्थिनाम् ।
अतो जपं सदा कुर्याद्यदीच्छेच्छुभमात्मन ॥५१
द्रुपदां वा जपेद्देवीमजपां जम्बुकां तथा ।
प्रणव च सदाभ्यस्येद्यदि महत्त्वमिच्छति ॥५२

प्राणानामयुताभ्यां च तथा षोडशभि शतै ।
पुंसो गच्छत्यहोरात्रं तत्संख्यामजपां विदुः ॥५३
रविमण्डलमध्यस्थे पुरुषे लोकसाक्षिणि ।
समर्पितं मया चेदं सूर्याख्ये ब्रह्मण पदे ॥५४
न जप्यं प्रसभं कुर्यात् प्रसभं घ्नन्ति राक्षसा ।
ब्राह्मणा भागधेयास्तु तेषां देवो विधिक्रम ॥५५
उपांशु तु जपं कुर्यात् ब्रह्मणो याथ मानसम् ।
निवृत्तोदमुपांशु स्यादचलोष्ठं तु मानसम् ॥५६
द्विविधस्तु जप प्रोक्त उपांशुर्मानसस्तथा ।
उपांशु स्याच्छतगुण साहस्रो मानस. स्मृत. ॥५७
उपांशुजपयुक्तस्तु मानसे च रतस्तथा ।
इहैव याति यैयस्त्वमिति पाराशरोऽब्रवीत् ॥५८
विधियज्ञा पाकयज्ञा ये चान्ये बहवो मखाः ।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥५६
जप्येनैकेन सिद्धेन किं न सिद्धं भवेदिह ।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥६०
शतेन जन्मजनितं सहस्रेण पुराकृतम् ।
अयुतेन त्रिजन्मोत्थं गायत्री हन्ति पातकम् ॥६१
दशभिर्जन्मजनितं शतेन तु पुराकृतम् ।
सहस्रेण त्रिजन्मोत्थं गायत्री हन्ति पातकम् ॥६२
अस्मिन् कलौ च विदुषा विधिवत् कर्म यत् कृतम् ।
भवेद्दशगुणं तद्धि कृतादेर्युगतो ध्रुवम् ॥६३

न च शक्यते कर्तुं मन्त्राम्नायेऽस्य दूषणात् ।
अयथार्थकृतात् पाठात् मन्त्रसिद्धिर्गरीयसी ॥६४

न च भ्रमश्च च हसञ्च पार्श्वमवलोकयन् ।
नान्यसक्तो न जल्पंश्च न चैवोर्ध्वशिरास्तथा ॥६५

नाङ्घ्रिणा पीडयेत् पादं न चैव हि तथा करम् ।
नैवंविधं जपं कुर्यान्न च संचालयेत् करम् ॥६६

प्रच्छन्नानि च दानानि ज्ञानं च निरहंकृतम् ।
जप्यानि च सुगुप्तानि तेषां फलमनन्तकम् ॥६७

य एवमभ्यसेन्नित्यं ब्राह्मणः संयतेन्द्रियः ।
स ब्रह्मलोकमाप्नोति तथा ध्यानार्चनादपि ॥६८

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि यथा तात पितामहः ।
लब्धवान् वेधसः पृष्टाद्गायत्र्योध्यानमुत्तमम् ॥६९

यदक्षरेषु यद्वर्णं यत्र यत्र च यः स्मरेत् ।
यत्फलं लभते कृत्वा यथा तस्याः समर्चनम् ॥७०

तत् प्रकृतिः स स्यातं विकारो बुद्धिरेव च ।
बुरित्येतदहंकारं वशाब्दं विद्धि पापहम् ॥७१

रे स्पर्शं तु णि रूपं च यं रसं गधमत्र भम् ।
र्गो श्रोत्रं दे त्वचं वा व चक्षु स्य रसना तथा ॥७२

धी नासा च म वाचा च हि हस्तौ धि च पादद्वयम् ।
यो उपस्थं मुखं यो ऽन्यो नः खं प्रकारमारुतम् ॥७३

घो तेजो द् जलं यात् क्ष्मा गायत्र्यास्तत्त्वचिंतनम् ।
चतुर्विंशतितत्त्वानि प्रत्येकमक्षरेषु यः ॥७४
गायत्र्याः संस्मरेद्योगी स याति ब्रह्मणः पदम् ।
तत्कारं पादयोर्न्यस्य ब्रह्म-विष्णु-शिवाकृतिम् ॥७५
शान्तं पद्मासनारूढं ध्यानाद्दहति किल्बिषम् ।
सकारं गुल्फयोर्न्यस्येद्तसीपुष्पसन्निभम् ॥७६
पद्ममध्यस्थितं सौम्यं दहते चोपपातकम् ।
विकारं जङ्घयोर्दीनं ध्यायेदेतद्विचक्षणः ॥७७
महाहत्याकृतं पापं हन्यात्तद्धि स्मृतं क्षणात् ।
तुर्कारं जानुदेशे तु इन्द्रनीलसमप्रभम् ॥७८
निर्दहेत् सर्वपापानि महारोगमुपद्रवम् ।
ऊर्वोर्वं विमलं ध्यायेच्छुद्धस्फटिकविद्युतिम् ॥७९
विज्ञातं हन्ति तत्पापमगम्यागमनात् कृतम् ।
रेकारं वृषणे प्रोक्तं विद्युत्स्फुरिततेजसम् ॥८०
मित्रद्रोहकृतं पापं स्मरणादेव नाशयेत् ।
णि गुह्यं श्वेतवर्णं तु जातिपुष्पसमद्युतिम् ।
गुरुहत्याकृतं पापं शोधयेद्ध्यानचिन्तनात् ॥८१
यं कट्यां तारकावर्णं चन्द्रवह्निण्यभूषितम् ।
योगिनां वरदं प्राहुर्ब्रह्महत्याविशोधनम् ॥८२
भं (भकारंचालि) नमोवलिवर्णाभं मेघोन्नतिसमद्युतिम् ।
ध्यात्वा कमलमध्यस्थं महद् दहति पातकम् ॥८३

जठरे रक्तवर्णं तु मात्राद्वयविभूषितम् ।
गोहत्यादिकृतं पापं गोंकारस्तु विशोधयेत् ॥८४
श्यामरक्तं च देकारं ध्यानं तद्देशयेद्धृदि ।
हिम कुन्देन्दुवर्णाभं वकारममृतं स्रवत् ॥८५
पितृ मातृ-वधोद्भूतं मित्रावरुणदैवतम् ।
गुरुहत्याकृतं पापं यकारेण प्रणश्यति ॥८६
स्यकारं विन्यसेत् कण्ठे स्वाग्रं स्फटिकसन्निभम् ।
मनसोपार्जितं पापं स्यकारेण प्रणश्यति ॥८७
धीकारं वसुदैवत्यं वदन्ति स्वर्णसन्निभम् ।
प्रतिग्रहकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥८८
मकारं पद्मरागाभं शिरस्थं दीप्ततेजसम् ।
पूर्वजन्मकृतं पापं मकारेण प्रणश्यति ॥८९
हिकारं नासिकाग्रे तु पूर्णचन्द्रसमप्रभम् ।
पूर्वापूर्वतरं पापं स्मरणादेव नश्यति ॥९०
धिकारं शान्तमव्यग्रं पीतवर्णं सुधांशुवत् ।
मनो-वाक्कायजं पापं चिन्तनादेव नश्यति ॥९१
योकारौ द्वौ धूम्र-नीलौ भ्रू ललाटे च संस्थितौ ।
ध्यायन्नित्यं द्विजो नूनं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९२
नकारं तु मुखे पूर्वं द्वादशादित्यसन्निभम् ।
सकृद्ध्यात्वा द्विजश्रेष्ठ प्राप्नोति ब्रह्मणः पदम् ॥९३
प्रकारं दक्षिणे वक्त्रे कालाग्नि-रुद्रसन्निभम् ।
सकृद्ध्यात्वा द्विजश्रेष्ठ ऐन्द्रं पदमाप्नुयात् ॥९४

चोकारं पश्चिमे वक्त्रे विद्युद्दीप्तिसमप्रभम्।
एकाक्षरं द्विजो ध्यात्वा वैष्णवं पदमाप्नुयात् ॥९५
दकारमुत्तरे वक्त्रे शुक्लवर्णसमद्युतिम्।
तद्रूपध्यानात् द्विजश्रेष्ठ प्राप्नुयात् पदमव्ययम् ॥९६
याकारस्तु शिरः प्रोक्तं चतुर्वदनसंयुतम्।
स एष त्रिगुणः प्रोक्तश्चतुर्विंशतिमः स्मृतः ॥९७
यं यं पश्यति चक्षुर्भ्यां यं यं स्पृशति पाणिना।
यं यं च भाषते किञ्चित्तत्सर्वं पूतमेव च ॥९८
जाप्ये तु त्रिपदा ज्ञेया पूजने तु चतुष्पदा।
न्यासे जप्ये तथा ध्याने अग्निकार्ये तथार्चने ॥९९
सर्वत्र त्रिपदा ज्ञेया ब्राह्मणैस्तत्त्वचिन्तकैः।
जम्बुका नाम सा देवी यजुर्वेदे प्रतिष्ठिता ॥१००
सा देवी द्रुपदा नाम मन्त्रे वाजसनेयके।
अन्तर्जले त्रिरावर्त्य मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥१०१
सोऽपनीय समस्तानि अंहांसि द्विजोत्तमः।
ब्रह्मणः पदमाप्नोति यद्गत्वा न निवर्तते ॥१०२
विना श्रद्धां प्रमादाद्वा जपं कुर्वंस्त्ववैधवत्।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति स्मृतिः ॥१०३
तद्विष्णोरिति मन्त्रोऽयं स्मर्तव्यः सर्वकर्मसु।
आवर्त्य प्रणवो वापि सर्वस्यादिर्यतो हि सः ॥१०४
अभ्यसेत् प्रणवं नित्यमेकचित्तः समाहितः।
गायत्रीं च तथा देवीमभ्यस्यन् मुक्तिमाप्नुयात् ॥१०५

वैदिकं तु जपं कुर्यात् पौराणां पाञ्चरात्रिकम्।
यो वेदस्तानि चैतानि यान्येतानि च सा श्रुतिः ॥१०६
जपेन येनेह कृतेन पुंसो ददाति मार्गं सवितापि कर्त्तुः।
अयं हि सर्वेष्टिकृतां वरिष्ठो विधेः पदं यास्यति निर्विकल्पम् ॥१०७
यदुक्तं सर्वशास्त्रेषु तथा सर्वश्रुतिष्वपि।
उपनिषन्मतं तद्वो विप्रा ह्येतत् प्रकीर्तितम् ॥१०८
न्यासं ततुत्रं न ववन्ध देहे जग्राह नोङ्कारमसिं च तीक्ष्णम्।
विप्रो वशी यस्त्रिपदां न चक्रे लोके स रुग्णः किमु यस्य कुर्यात् ॥१०६
उद्देशेन मया प्रोक्तो विधिर्जप्यस्य पावनः।
देवार्चनविधानं तु सम्प्रवक्ष्याम्यतः परम् ॥११०
इति श्रीबृहत्पराशरीये धर्मशास्त्रे जपनिर्णयः।

अथ देवार्चनविधिवर्णनम्।

देवार्चनं प्रवक्ष्यामि यदुक्तमृषिभिः पुरा।
वैदिकैरेव तन्मन्त्रैर्यस्य ये तस्य तैरिति ॥१११
अर्चयन् वैदिकैर्मन्त्रैर्नानुग्रहमपेक्षते।
वैदिकोऽनुग्रहस्तस्य वेदस्वीकरणेन तु ॥११२
ब्रह्माणं वैधसैर्मन्त्रैर्विष्णुं स्वैः शंकरं स्वकैः। -
अन्यानपि तथा देवानार्चयेत् स्वीयमन्त्रकैः ११३
मन्त्रन्यासं पुरा कृत्वा स्वदेहे देवतासु च।
गायत्र्योंकारन्यस्ताङ्गः पूजयेद्विष्णुमव्ययम् ॥११४
न्यस्य तु व्याहृतीः सर्वाः प्रोक्तस्थानक्रमेण तु।
ब्रह्मभूतः शुचिः शान्तो देवयागमुपक्रमेत् ॥११५

विष्णुरादिरयं देवः सर्वामरगणार्चितः।
नामग्रहणमात्रेण पापपाशं छिनत्ति यः ॥११६
तदर्चनं प्रवक्ष्यामि विष्णोरमिततेजसः।
यत् कृत्वा मुनयः सर्वे परं सायुज्यमाप्नुयुः ॥११७
षड्स्वेतेषु हरेः सम्यगर्चनं मुनिभिः स्मृतम्।
अप्स्वग्नौ हृदये सूर्ये स्थण्डिले प्रतिमासु च ॥११८
अग्नौ क्रियावतां देवो दिवि देवो मनीषिणाम्।
प्रतिमास्वल्पबुद्धीनां योगिनां हृदये हरिः ॥११९
आपो ह्यायतनं तस्य तस्मात्तासु सदा हरिः।
सर्वगत्वेन विष्णोस्तु स्थण्डिले भावितात्मनाम् ॥१२०
दद्यात् पुरुषसूक्तेन आपः पुष्पाणि चैव हि।
अर्चितं स्यादिदं तेन नित्यं भुवनसप्तकम् १२१
आनुष्टुभस्य सूक्तस्य त्रैष्टुभस्य च दैवतम्।
पुरुषो यो जगद्वीजमृषिर्नारायणः स्मृतः ॥१२२
तस्य सूक्तस्य सर्वस्य ऋचां न्यासं यथाक्रमम्।
देवे चैवात्मनि तथा सम्प्रवक्ष्याम्यतः परम् ॥१२३
हस्तन्यासं पुरा कृत्वा स्मृत्वा विष्णुं तथाऽव्ययम्।
शिखाबन्धं च दिग्बन्धं सञ्चिन्त्य विष्णुमात्मनि ॥१२४
प्रथमां विन्यसेद्वामे द्वितीयां दक्षिणे करे।
तृतीयां वामपादे तु चतुर्थीं दक्षिणे न्यसेत् ॥१२५
पञ्चमीं वामजानौ तु षष्ठीं च दक्षिणे न्यसेत्।
सप्तमीं वामकट्यां च दक्षिणायां तथाऽष्टमीम् ॥१२६

नवमीं नाभिमध्ये तु दशमीं हृदि विन्यसेत्।
एकादशीं वामपादे द्वादशीं दक्षिणे न्यसेत् ॥१२७
कण्ठे त्रयोदशीं न्यस्य तथा वक्त्रे चतुर्दशीम्।
अक्ष्णोः पञ्चदशीं न्यस्य षोडशीं मूर्ध्नि विन्यसेत् ॥१२८
एवं न्यासविधिं कृत्वा पश्चाद्यागं समाचरेत्।
आसनं चिन्तयेन्मेरुमष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥१२९
व्याहृतीनामथ न्यासं कुर्य्याच्च विधिवद् द्विजः।
भूर्लोकं पादयोर्न्यस्य भुवर्लोकं तु जानुनोः ॥१३०
स्वर्लोकं कटिदेशे तु नाभिदेशे महस्तथा।
जनोलोकं तु हृदये कण्ठदेशे तपस्तथा ॥१३१
भ्रुवोर्ललाटमध्योस्तु सत्यलोकः प्रतिष्ठितः।
हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् ॥१३२
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः।
आवाहनमथ आहुर्विष्णोरमिततेजसः ॥१३३
यथार्चा क्रियते तस्य स्वदेहे चिन्तयेत्तथा।
आद्ययाऽऽवाहयेद्देवमृचा तु पुरुषोत्तमम् ॥१३४
यथा देवे तथा देहे न्यासं कुर्याद्विधानत।
द्वितीययाऽऽसनं दद्यात् पाद्यं चैव तृतीयया ॥१३५
चतुर्थ्यार्घ्यः प्रदातव्यः पञ्चम्याऽऽचमनं तथा।
षष्ठ्या स्नानं प्रकुर्वीत सप्तम्या वसनं तथा ॥१३६
यज्ञोपवीतं चाष्टम्या नवम्या गन्धमेव च।
पुष्पं देयं दशम्या तु एकादश्या च धूपकम् ॥१३७

द्वादश्या दीपकं दद्यात्त्रयोदश्या नैवेद्यकम्।
चतुर्दश्याञ्जलिं कुर्यात् पञ्चदश्या प्रदक्षिणम् ॥१३८
षोडश्योद्वासनं कुर्यात्क्षेपकर्मणि पूर्ववत्।
स्नाने वस्त्रे च नैवेद्ये दद्यादाचमनं हरेः।
षण्मासात् सिद्धिमाप्नोति एवमेवहि योऽर्चयेत् ॥१३९
आदित्यमण्डले देवं ध्यात्वा विष्णुं मनोमयम्।
स याति ब्रह्मणः स्थानं नात्र कार्या विचारणा ॥१४०

ध्येयो दिनेशपरिमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्ख-चक्रः ॥१४१
सूक्तेन विष्णुविधिना समुदीरितेन
योऽनेन नित्यमजमादिमनन्तमूर्तिम्।
भक्त्याऽर्चयेत् पठति यश्च स विष्णुदेहं
विप्रो विशेद्धरिवरेण कृतार्थदेहः ॥१४२

पञ्चरात्रविधानेन स्थण्डिले वापि पूजयेत्।
जलमध्यगतो वापि पूजयेज्जलमध्यतः ॥१४३
द्वादशारं नवव्यूहं पञ्चरात्रक्रमेण तु।
अभावे धौतवस्त्रस्य पत्रिकायास्तथा द्विजः ॥१४४
जलेऽपि हि जलेनैव मन्त्रैरेवार्चयेद्धरिम्।
विष्णुर्विष्णुरित्यजस्रं चिन्तयेद्धरिमेव तु ॥१४५

तिष्ठन् व्रजंस्तथाऽऽसीनः शयानोऽपि हरिं सदा।
संस्मरन्ना ऽशुभं पश्येदिहाऽमुत्र च वै द्विजः ॥१४६
रुद्रं रुद्रविधानेन ब्रह्माणं च विधानतः।
सूर्यं संहितमन्त्रैश्च तदीरितविधानतः ॥१४७
दुर्गां कात्यायनीं चैव तथा वाग्देवतामपि।
स्कन्दं विनायकं चैव योगिनीं क्षेत्रपालकान् ॥१४८
विधिवदर्चयेत् सर्वान्यो विप्रो भक्तितत्परः।
विष्णुना सुप्रसन्नेन विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥१४९
ग्रहांश्च पूजयेद्विद्वान् ब्राह्मणः शान्तितत्परः।
आरोग्य-पुष्टिसंयुक्तो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥१५०
गुरुः गावो नृपा विप्राः सद्भिः पूज्याः सदा नरैः।
पूजिताः पूजयन्त्येते निर्दहन्त्यपमानिताः ॥१५१
यो हितः सर्वसत्त्वेषु नृप-गो ब्राह्मणेषु च।
इहाऽमुत्र च पूज्योऽसौ विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥१५२
उक्तो गृहस्थस्य सुरार्चनस्य धन्यो विधिर्विष्णुपदोपलब्ध्यै।
कार्यो द्विजातेः प्रतिवासरं यो वेदोक्तमन्त्रैः स मया हिताय ॥१५३
देवपूजाविधिः प्रोक्त एष उद्देशतो यथा।
वैश्वदेवस्य वक्तव्यो विधिर्विप्रा मयाधुना ॥१५४

इति देवपूजाविधिः।

अथ वैश्वदेवविधिवर्णनम्।

वैश्वदेवं प्रवक्ष्यामि यथाकार्यं द्विजातिभिः।
स्वगृह्योक्तविधानेन जुहुयाद्वैश्वदैविकम् ॥१५५

हविष्यस्य द्विजोऽभावे यथालाभं स्मृतं हविः।
जुहुयाद्विधिवद्भक्त्या यथा स्याद्वित्तनिर्वृतिः ॥१५६
यद्वा तद्वापि होतव्यमग्नौ किंचिद् द्विजातिभिः।
फलं वा यदि वा मूलं धासं वा यदि वा पयः ॥१५७
अहुत्वा च द्विजोऽश्नीयाद्यदिकिंचित् स्वयमश्नुते।
अश्नीयाचेदहुत्वापि नरकं स समाविशेत् ॥१५८
जुहुयाद्व्यञ्जन-क्षारवर्ज्यमन्नं हुताशने।
अनुज्ञातो द्विजैस्तेषु त्रिःकृत्वा पुरुषर्षभः ॥१५६
यस्त्वग्नौ हूयते नैव यस्य चाग्रं न दीयते।
अभोज्यं तद् द्विजातीनां भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥१६०
लौकिके वैदिके चैव वैश्वदेवो हि नित्यशः।
लौकिके पापनाशाय वैदिके स्वर्गमाप्नुयात् ॥१६१
अभावादग्निहोत्रस्य आवसथ्यस्य वा तथा।
यस्मिन्नग्नौ पचेदन्नं तत्र होमो विधीयते ॥१६२
अग्नि सोमरसमस्तौ तौ विश्वेदेवास्तथैव च।
धन्वन्तरिः कुहूश्चैवानुमतिः प्रजापतिः ॥१६३
द्यावाभूम्योः स्विष्टकृते हुत्वैतेभ्यः पुनस्तत।
कुर्याद्वलिहरिति पश्चात् सर्वदिक्षु प्रदक्षिणम् ॥१६४
सुनाम्ने तस्य पुंभ्यश्च यमाय च सहानुगैः।
वरुणाय सहैतैश्च सोमाय च सहानुगैः ॥१६५
मरुद्भिश्च क्षिपेद्द्वारि अद्भिर्भ्यो च तथा हरेत्।
वनस्पतिभ्यः सर्वेभ्यो मुसलोलूखले हरेत् ॥१६६

श्रियै च भद्रकाल्यै च तच्छीर्षे पादयोः क्रमात्।
मध्ये सानुगायेति मन्त्रे चैव बलिं हरेत् ॥१६७
वास्तवे सानुगायेति वास्तुमध्ये बलिं हरेत्।
८ : विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो बलिमाकाश उत्क्षिपेत् ॥१६८
ध्रुवरेभ्यश्च भूतेभ्यो नक्तंचारिभ्य एव च।
वास्तोः पृष्ठे च कुर्वीत बलिं सर्वानुतृप्तये ॥१६९
पितृभ्यो बलिशेषं तु सर्वं दक्षिणतो हरेत्।
पतितेभ्यः श्वपाकेभ्यः पापानां पापरोगिणाम् ॥१७०
कृमि-कीट-पतङ्गानां सर्वेभ्योऽपि बलिं हरेत्।
एवं सर्वाणि भूतानि यो विप्रो नित्यमर्चयेत् ॥१७१
तत् स्थानं परमाप्नोति यज्ज्योतिः परवेधस.।
गृहे ऽसौ वैश्वदेवं तु प्रोक्तमेतन्मनीषिभिः ॥१७२
अनग्निकस्तु कुर्वीत वैश्वदेवं कथं त्विति ?।
महाव्याहृतिभिस्तिस्रः समस्ताभिस्तथाऽपरा ॥१७३
इत्याहुतीश्चतस्रस्तु तथा देवकृते ऽपि च।
त्रियम्बकं यजामह इत्यादि चाहुतिद्वयम् १७४
वैश्वदेवेन जुहुयाद्धिशेषोऽन्यत्र वै पुनः
अपमृत्युनिवृत्त्यर्थमायु. पुष्टिविवृद्धये ॥१७५
जुहुयात् त्र्यम्बकं देवं विल्वपत्रैस्तिलैस्तथा।
विनायकाय होतव्या घृतस्याहुतयस्तथा ॥१७६
सर्वविघ्नोपशान्त्यर्थं पूजयेद्यत्नतस्तु तम्।
गणानां त्वेति मन्त्रेण स्वाहाकारान्तमादृतः ॥१७७

चतस्रो जुहुयात्तस्मै गणेशाय तथाऽऽहुतीः।
तद्विष्णोरिति जुहुयाद्विविसम्पूर्णताकृते ॥१७८
प्रणवेन च गायत्र्या केचिज्जुह्वति तद् द्विजाः।
एतौ वै सर्वदैवत्यौ एतत्परं न किंचन ॥१७९
एताभ्यां तु हुतेनैव सर्वेभ्योऽपि हुतं भवेत्।
जुहुयात् सर्पिषाऽभ्यक्तं गव्येन पयसाऽथ वा ॥१८०
क्षीरेण गोविकारेण तिलतैलेन वा पुनः।
सम्प्रोक्ष्य पायसा वाऽन्नं नाभ्यक्तं चाश्नुयादपि ॥१८१
अस्नेहा यव-गोधूमाः शालयो हवनीयकाः।
हविस्तु हविरभ्यक्तमहविस्तु हवियतः ॥१८२
अभ्यक्तमेव होतव्यमतो रूक्षं विवर्जयेत्।
दारिद्र्यं श्वित्रितामेके रूक्षान्नहवने विदुः ॥१८३
जठराग्नेः क्षयं चेके रूक्षमन्नं न हूयते।
ओंकारपूर्विका सर्वाः स्वाहाकारान्तिकास्तथा ॥१८४
जुहुयादग्निको विप्रो गृहमेधी हि नित्यशः।
बलिं चोपान्तभूतेभ्यः सर्वेभ्यो ऽप्यविशेषतः ॥१८५
हुत्वाऽथ कृष्णवर्त्मानं [illegible]ञ्जलिं प्रसादयेत्।
स्वमाने शुभिरेतेन मन्त्रेण भक्तिमान् द्विजः ॥१८६
आब्रह्मन्निति मन्त्रं तु जपेद्वै सार्वकामिकम्।
आहाव्यग्न इति ह्येनं मन्त्रं च प्रयतो जपेत् ॥१८७
अन्यं होतारांनं मन्त्रं जपित्वाथ क्षमापयेत्।
अन्यानि चैव सूक्तानि पवित्राणि ततो जपेत्।
सर्वशान्तिकृत्यर्थं तथाग्निर्देवतेति च ॥१८८

दानं धनमरोगित्वं गतिमिच्छंस्तथा द्विजः।
शम्भुमपि रविं विष्णुमर्चयेद्भक्तितः क्रमात् ॥१८९
अजानन् यो द्विजो नित्यमहुत्वाऽत्ति शृतं हविः।
पितृ-देव-मनुष्याणामृणयुक्तः स यात्यधः ॥१९०
शाकं वाऽपि तृणं वापि हुत्वाप्राश्नुते द्विजः।
सर्वकामसमायुक्तः सोऽत्रैव सुखमश्नुते ॥१९१
स्वरेण वर्णेन च यद्विहीनं तथैव हीनं क्रिययापि यच्च।
तथातिरिक्तं मम तत् क्षमस्व तदस्तु चाग्ने परिपूर्णमेतत् ॥१९२
सर्वपापापनोदाय सर्वकामाय वै द्विजाः।
द्विजन्मनां हितार्थाय वैश्वदेव उदाहृतः ॥१९३

इति वैश्वदेवविधिः।

अथातिथ्यविधिवर्णनम्।

आतिथ्यं सम्प्रवक्ष्यामि चातुर्वर्ण्यफलप्रदम्।
चातुर्वर्ण्योऽतिथिः प्रोक्तः काले प्राप्तोऽध्वगोऽश्रुतः १९४
अदृष्टऽश्रुतगोत्रादिरज्ञाताचार-विप्रकः।
सन्ध्यामात्रकृताचारस्तज्ज्ञैः सोऽतिथिरुच्यते ॥१९५
क्षुत्तृष्णा-ऽध्वश्रमश्रान्तः प्राणत्राणान्नयाचकः।
गृहीतपात्रमात्रः सन् गृहद्वारमुपागतः ॥१९६
विष्णुरूपोऽतिथिः सोयमुत्तरार्थमुपागतः।
इति मत्वा महाभक्त्या वृणुयाद्भोजनाय तम् ॥१९७
एष स्वर्ग्यः समायातः सर्वदेवमयोऽतिथिः।
निर्दह्य सर्वपापानि ममायं सम्प्रयास्यति ॥१९८

ब्राह्मणैः सह भोक्तव्यो भक्त्या प्रक्षाल्य पादद्वयम्।
आसनार्घ्यादिकं दत्वा कृत्वा स्रक्-चन्दनादिकम् ॥१९९
योगिनो विविधै रूपैर्भ्रमन्ति धरणीतले।
नराणामुपकाराय ते चाज्ञाततत्त्वरूपिणः ॥२००
तस्मादभ्यर्चयेत् प्राप्तं श्राद्धकालेऽतिथिं द्विजः।
श्राद्धक्रियाफलं हन्ति तत्रैवापूजितोऽतिथिः ॥२०१
तस्मादपूर्वमेवात्र पूजयेदागताऽतिथिम्।
कदाचित् कश्चिदागच्छेत्तारयेद्यस्तु पूर्वजान् ॥२०२
यतिश्चैवाग्निहोत्री च तथा च सत्तरद् द्विजः।
सदैतेऽतिथयः प्रोक्ता अपूर्वाश्च दिने दिने ॥२०३
अतिथेऽमरदेहस्त्वं मत्तारार्थमिहागत।
संसारपङ्कमग्नं मामुद्धरस्वाऽघनाशन ॥२०४
नैकाश्रमे वसन् विप्रो मुनीन्द्रैरुच्यतेऽतिथिः।
अन्यत्र दृष्टपूर्वो यो नासावतिथिरुच्यते ॥२०२०६
क्षत्रियो यदि वा गच्छेदतिथिस्तेन वेश्मनि।
भुक्तेषु सत्सु विप्रेषु कामतस्तु तमाशयेत् ॥२०६
वैश्यो वा यदि वा शूद्रो विप्रगेहं समाव्रजेत्॥
तौ भृत्यैः सह भोक्तव्याविति पाराशरोऽब्रवीत् ॥२०७
क्लीबो वा यदि वा काणः कुष्ठी वा व्याधितोऽपि वा।
आगतो वैश्वदेवान्ते द्रष्टव्यः सर्वदेववत् ॥२०८
क्षत्त्रियेणापि वैश्येन तथैव वृषलेन च।
आतिथ्यं सर्ववर्णानां कर्त्तव्यं स्यादसंशयम् ॥२०९

योऽतिथिं पूजयेद्भक्त्या अन्याभ्यागतमेव च ।
बाल वृद्धादिकं चैव तस्य विष्णुः प्रसीदति ॥२१०
देवा मनुष्याः पितरश्च सर्वे स्युर्येन तृप्तेन च भूरि दिष्टम् ।
तस्मान्न दातुरमराङ्गनाभिस्तस्यातिथेः केन समत्वमस्ति ॥२११

इति आतिथ्यविधिः ।

अथ वर्णाश्रमधर्मवर्णनम् ।

वर्णधर्मान् प्रवक्ष्यामि यत् कृत्यं ब्राह्मणादिभिः ।
निबोधध्वं द्विजास्तद्वै संक्षेपेण पृथक् पृथक् ॥२१२
यजनं याजनं विप्रे तथा दान-प्रतिग्रहौ ।
अध्यापनमध्ययनं कर्माण्येतानि षट् तथा ॥२१३
प्रजानां रक्षणे दानमरीणां निग्रहस्तथा ।
यजना ऽध्ययने राज्ञि विषयासक्तिवर्जनम् ॥२१४
यजना-ऽध्ययने दानं पशुपाल्यं तथा विशि ।
वाणिज्यं च कुसीदं च कर्मषट्कं प्रकीर्तितम् ॥२१५
शुश्रूषा ब्राह्मणादीनां तदाज्ञापालनं तथा ।
एष धर्मः स्मृतः शूद्रे वाणिज्येन च जीवनम् ॥२१६
सर्वेषां जीवनं प्रोक्तं धर्मेणैव च वर्तनम् ।
[1]भिन्नवृत्तिर्यथा न स्यात् कुर्याद्विप्रस्तथा च सन् ॥२१७
कुर्वन्नुक्तानि कर्माणि वृत्त्या वा क्षत्रियस्य च ।
वृत्त्यभावे द्विजो जीवेद्विप्रवृत्तिं विवर्जयेत् ॥२१८
प्रजानां पालनं दानं शस्त्रभृत्त्वं प्रचण्डता ।
निर्जय परसैन्यानामेष धर्मः स्मृतो नृपे ॥२१९

पुष्पं पुष्पं विचिनुयात् मूलच्छेदं न कारयेत् ।
मालाकार इवाऽऽरामे प्रजासु स्यात्तथा नृपः ॥२२०
लोहचर्मरथानां च गवां च प्रतिपालनम् ।
गोरक्षा कृषि-वाणिज्यं वैश्यवृत्तिरुदाहृता ॥२२१
शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा परो धर्मः प्रकीर्तितः ।
अन्यथा कुरुते यत्तु तद्भवेत्तस्य निष्फलम् ॥२२२
लवणं मधु तैलं च दधि तक्रं घृतं पयः ।
न दुष्येच्छूद्रजातीनां कुर्यात् सर्वस्य विक्रयम् ॥२२३
विक्रयं मद्य मांसानामभक्ष्यस्य च भक्षणम् ।
अगम्यागामिता चौर्यं शूद्रे स्युः पातहेतवः ॥२२४
कपिलाक्षीरपानेन ब्राह्मणीगमनेन च ।
वेदाक्षरविचारेण शूद्रस्य नरको ध्रुवम् २२५

इति श्रीबृहत्पराशरीये धर्मशास्त्रे सुव्रतप्रोक्तायां संहितायां चतुर्थो ऽध्यायः ॥४॥

## ॥ पञ्चमोऽध्यायः ॥

### अथ गोमहिमावर्णनम् ।

अत परं गृहस्थस्य धर्माचारं कलौ युगे।
वर्णमाधारण साक्षाच्चातुर्वर्ण्यक्रमेण ॥१
गृहस्थार्थं सम्प्रवक्ष्यामि पराशरवचोदितम् ।
षट्कर्मसहिते विप्रः कृषिकर्म समाचरेत् ॥२

हीनाङ्गं व्याधिसंयुक्तं प्राणहीनं च दुर्बलम्।
क्षुद्युक्तं तृषितं श्रान्तमनड्वाहं न वाहयेत् ॥३
स्थिराङ्गं नीरुजं दृप्तं साण्डं पण्ढविवर्जितम्।
अधृष्यं सबलप्राणमनड्वाहं तु वाहयेत ॥४
वाहयेद् दिवसस्यार्धं ततः स्नानं समाचरेत्।
क्षुद्वधैर्न कृषिं कुर्यात् सर्वथा धेनुसंग्रहम् ॥५
यत्नतः पालनं रक्षां द्विजः कुर्याद्गृही गवाम्।
वत्साश्च यत्नतो रक्ष्या वर्धन्ते ते यथा क्रमात् ॥६
न दूरे तास्तु नेतव्याश्चारणाय कदाचन।
दूरे गावश्चरन्त्यो हि न भवन्ति शुभावहाः ॥७
प्रातरेव हि दोग्धव्या दुह्यात् सायं न ता गृही।
दोग्धृभिः पयसो नैव वर्धन्ते ताः कदाचन ॥८
अनादेयतृणान्यत्त्वा स्रवन्त्यनुदिनं पयः।
तुष्टिदा देवतादीनां पूज्या गावः कथं न ताः ॥९

स्पृष्टाश्च गावः शमयन्ति पापं
संसेविताश्चोपनयन्ति वित्तम्।
ता एव दत्तास्त्रिदिवं नयन्ति
गोभिर्न तुल्यं धनमस्ति किंचित् ॥१०

यस्याः शिरसि ब्रह्माऽऽस्ते स्कन्धदेशे शिवः स्थितः।
पृष्ठे नारायणस्तस्थौ श्रुतयश्चरणेषु च ॥११
या अन्या देवताः काश्चित्तस्या लोमसु ताः स्थिताः।
सर्वदेवमया गावस्तुष्येत्तद्भक्तितो हरिः ॥१२

हरन्ति स्पर्शनात् पापं पयसा पोषयन्ति याः ।
प्रापयन्ति दिवं दत्ताः पूज्या गावः कथं न ताः ॥१३
यत्खुराहतभूमेर्ये उत्पद्यन्ते रजः कणाः ।
प्रलीनं पातकं तैस्तु पूज्या गावः कथं न ताः ॥१४
शकृन्मूत्रं हि यस्यास्तु पीतं दहति पातकम् ।
किमपूज्यं हि तस्या गोरिति पाराशरो ऽब्रवीत् ॥१५
गौरवत्सा न दोग्धव्या न चैवं गर्भसन्धिनी ।
प्रसूता च दशाहार्वाग्दोग्धि चेन्नरकं व्रजेत् ॥१६
दुर्बला ऽव्याधिसंयुक्ता पुष्पिता या द्विवत्सका ।
साधुभिर्न च दोग्धव्या धार्मिकैर्धनमीप्सुभिः ॥१७
कुलान्ते पुष्पिता गावः कुलान्ते बहवस्त्रियः ।
कुलान्ते चलचित्ता स्त्री कुलान्ते बन्धुविग्रहः ॥१८
एकत्र पृथिवी सर्वा सशैल-वन-कानना ।
तस्या गौर्ज्यायसी साक्षादेकत्रोभयतोमुखी ॥१९
यथोक्तविधिना चैता वर्णैः पाल्याः सुपूजिताः ।
पालयन् पूजयन्नेताः स प्रेत्येह च मोदते ॥२०
दक्षिणाभिमुखा गाव उत्तराभिमुखा अपि ।
बन्धनीयास्तथैताः स्युर्न प्राक्-पश्चिमतोमुखा ॥२१
वाजि-गो-वृषशालायां सुतीक्ष्णं लोहदात्रकम् ।
स्थाप्यं तु सर्वदा तत् स्याद्बलुकविमोक्षकम् ॥२२
गावो देयाः सदा रक्ष्याः पाल्याः पोष्याश्च सर्वदा ।
ताडयन्ति च ये पापा ये चाक्रोशन्ति ता नराः ॥२३

नरकाग्नौ प्रपच्यन्ते गोनिःश्वासप्रपीडिताः।
सपलाशेन शुष्केण वा दण्डेन निवर्तयेत् ॥२४
गच्छ गच्छेति तां ब्रूयान् मा मा मैवेति वारयेत्।
संस्पृशन् गां नमस्कृत्य कुर्यात्तां च प्रदक्षिणम् ॥२५
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा।
तृणोदकादिसंयुक्तं यः प्रदद्याद्गवाह्निकम् ॥२६
सोऽश्वमेधसमं पुण्यं लभते नात्र संशयः।
गवां कण्डूयनं स्नानं गवां दानसमं भवेत् ॥२७
तुल्यं गोशतदानस्य भयतो गां प्रपाति च।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि आसमुद्रं सरांसि च ॥२८
गवां शृङ्गोदकस्नानकलां नार्हन्ति षोडशीम्।
पातकानि कुतस्तेषां येषां गृहमलंकृतम् ॥२९
सततं बालवत्साभिर्गोभिः श्रीभिरिव स्वयम्।
ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम् ॥३०
तिष्ठन्त्येकत्र मन्त्रास्तु हविरेकत्र तिष्ठति।
गोभिर्यज्ञाः प्रवर्तन्ते गोभिर्देवाः प्रतिष्ठिताः ॥३१
गोभिर्वेदाः समुद्गीर्णाः षडङ्गाः सपदक्रमाः।
सौरभेयास्तु यस्याग्रे पृष्ठतो यस्य ताः स्थिताः ॥३२
वसन्ति हृदये नित्यं तासां मध्ये वसन्ति ये।
ते पुण्यपुण्याः क्षोण्यां नाकेऽपि दुर्लभाश्च ते ॥३३
ये गोभक्तिकरा नित्यं भवन्ते ये च गोप्रदाः।
शृङ्गमूले स्थितो ब्रह्मा शृङ्गमध्ये तु केशवः।
शृङ्गाग्रे शंकरं विद्यात्त्रयो देवाः प्रतिष्ठिताः ॥३४

शृङ्गाग्रे सर्वतीर्थानि स्थावराणि चराणि च।
सर्वे देवाःस्थिता देहे सर्वदेवमयी हि गौः ॥३५
ललाटाग्रे स्थिता देवी नासमध्ये तु षण्मुखः ।
कम्बलाऽश्वतरौ नागौ तत्कर्णाभ्यां व्यवस्थितौ ॥३६
स्थितौ तस्याश्च सौरभ्याश्चक्षुषोः शशिभास्करौ ।
दन्तेषु वसवश्चाष्टौ जिह्वाया वरुणः स्थितः ॥३७
सरस्वती च हुंकारे यम-यक्षौ च गण्डयोः ।
भ्रुवयो रोमकूपेषु प्रस्त्रावे जाह्नवीजलम् ॥३८
कालिन्दी गोमये तस्या अपरा देवतास्तथा ।
अष्टाविंशतिदेवानां कोट्यो लोमसु ताः स्थिताः ॥३९
उदरे गार्हपत्योऽग्निर्हृदये दक्षिणस्तथा ।
मुखे चाहवनीयस्तु सभ्याऽऽवसथ्यौ च कुक्षिषु ॥४०
एवं यो वर्तते गोषु ताडनक्रोधवर्जितः ।
महतीं श्रियमाप्नोति स्वर्गलोके महीयते ॥४१
कुलं तस्या न शङ्केत पूतिगन्धं न वर्जयेत् ।
यावत् पिबति तद्दुग्धं तावत् पुण्यं प्रवर्धते ।.४२
यो गां पयस्विनीं वृद्धात्तरुणीं वत्ससंयुताम् ।
शिवस्यायतने दत्त्वा दत्तं तेन तु विश्वकम् ॥४३

इति गोमहिमावर्णनम् ।

अथ समहत्त्ववृषभपूजनवर्णनम् ।

उक्षाणो वेधसा सृष्टाः सस्यस्योत्पादनाय च ।
तैरुत्पादितसस्येन सर्वमेतद्धिधार्यते ॥४४

यश्चैतान् पालयेद्यत्नाद्वर्धयेच्चैव यत्नतः ।
जगन्ति तेन सर्वाणि साक्षात् स्युः पालितानि च ॥४५
यावद्गोपालने पुण्यमुक्तं पूर्वमनोषिभिः ।
उक्ष्णोऽपि पालने तेषां फलं दशगुणं भवेत् ॥४६
जगदेतद्धृतं सर्वमनडुद्भिश्चराचरम् ॥४७
वृप एव ततो रक्ष्यः पालनीयश्च सर्वदा ।
धर्मोऽयं भूतले साक्षाद् ब्रह्मणा ह्यवतारितः ॥४८
त्रैलोक्यधारणायालमन्नानां च प्रसूतये ।
अनादेयानि घासानि विघसन्ति स्वकामतः ॥४९

भ्रमित्वा भूतलं दूरमुक्षाण को न पूजयेत् ।
उत्पादयन्ति सस्यानि मर्दयन्ति वहन्ति च ।
आनयन्ति दवीयस्तदुक्षतः कोऽधिको भुवि ॥५०

स्कन्धेन दूराद्वहन्ति भारमाख्याति पत्युर्न च भारयुक्ताः ।
स्वीयेन देहेन परस्य जीवान्पुष्यन्ति रक्षन्ति च वर्धयन्ति ॥५१
पुण्यास्तु गावो वसुधातले या बिभ्रत्यमुं गोवृषगर्भभारम् ।
भारःपृथिव्या दशसाडिताया एकस्य चोक्ष्णो ह्यपि साधुवाचः ॥५२
एकेन दत्तेन वृषेण येन भवन्ति दत्ता दश सौरभेय्यः ।
माहेत्म्यपीयं धरणीसमाना तस्माद्वृषात् पूज्यतमोऽस्ति नान्यः॥५३

उत्पाद्य सस्यानि तृणं चरन्ति तदेव भूयः सततं वहन्ति ।
न भारखिन्ना प्रवदन्ति किंचिदहो वृषैर्जीवति जीवलोक ॥५४

तृतीयेऽब्दे चतुर्थे वा यदा वत्सो दृढो भवेत् ।
तदा नासाऽस्य भेत्तव्या नैव प्राग्, दुर्बलस्य च ॥५५
नासावेधनकीलं तु खादिरं वाथ शैशपम् ।
द्वादशाङ्गुलकं कार्यं तज्ज्ञैस्तैश्च समं च वा ॥५६

शाला द्विजेन्द्रा वृष गो-हयाना
तां याम्यदिग्द्वारवतीं निदध्यात् ।
सौम्याककुब्द्वारवतीं सुशोभां
तेषां शमिच्छन् ध्रुवमात्मनश्च ॥५७
गावो वृषा वा हय-हस्तिनो वा
अन्येऽपि सर्वे पशवो द्विजेन्द्रा ।
याम्यामुखा वोत्तरदिङ्मुखा वा
नान्याशकास्ते खलु बन्धनीया ॥५८
शालाप्रवेशे वृष-गो-पशूनां
राजा ऽपि यत्नाद्धय कुञ्जराणाम् ।
होमं च सप्तार्चिषि शास्त्रयुक्तं
कुर्याद्विधिज्ञो द्विजपूजनं च ॥५९

इति समहत्त्ववृषभपूजनवर्णनम् ।

अथ हल ( वेध ) करण वर्णनम् ।

लाङ्गलं सम्प्रवक्ष्यामि यत्कार्यं यत्प्रमाणत ।
हलेषायास्तथोन्मानं प्रतोदस्य युगस्य च ॥६०

चत्वारिंशत्तथा चाष्टावङ्गुलानि बुधैः स्मृतः ।
अर्धार्धमङ्गुलैर्भाव्यो हलेपावधतश्च यः ॥६१
षोडशैव तु तस्याधः षड्विंशति तथोपरि ।
वेधन्तरयाश्च कर्तव्यं प्रमाणेन षडङ्गुलः ॥६२
अङ्गुलैश्चाष्टभिस्तस्माद्वेध स्यात् प्रातिहारिकः ।
तस्याधस्ताच्च चत्वारि वधश्च चतुरङ्गुलः ॥६३
अष्टाङ्गुलमुरस्तस्य वधादूर्ध्वं प्रकल्पयेत् ।
ग्रीवा दशाङ्गुला चोर्ध्वं हस्तग्राही तत स्मृता ॥६४
साऽपि तज्ज्ञैः शुभा कार्या सद्वधस्त्र्यङ्गुलो भवेत् ।
पञ्चाङ्गुलं पुरस्तस्य शिरसोऽपि विभाजनम् ॥६५
पृथुत्वं शिरसो धार्यं हस्ततलप्रमाणकम् ।
अङ्गुलानि तथा चाष्टौ उरसः पृथुता भवेत् ॥६६
यथावृद्धिः प्रतीकारी षट्त्रिंशदङ्गुला भवेत् ।
सुतीक्ष्णलोहफलका मृत्काष्ठादिविदारकृत् ॥६७
न सीरं क्षीरवृक्षस्य न बिल्वपिचुमन्दयोः ।
इत्यादीनां हि कुर्वाणो न नन्दति चिरं गृही ॥६८
प्लक्षाक्षयोर्न तत् कुर्यात् कीर्तिघ्नौ तौ प्रकीर्तितौ ।
तयोः काष्ठस्य तत् कुर्वन्सस्यं नश्यति ध्रुवम् ॥६९
प्राञ्जला समदृष्टा च चतुरस्राऽप्यवर्तुला ।
सालादिशुभकाष्ठानां हलीषा विदुषा मता ॥७०
अस्या वेधः सकर्णाया कार्यो नवविततिस्तिभिः ।
नीचोच्चरूपमानेन तज्ज्ञा एव वदन्ति हि ॥७१

चतुर्हस्तं युगं कार्यं स्कन्धस्थानेऽर्द्ध चन्द्रवत् ।
मेषशृंग्याः कदम्बस्य सालाद्यन्यतमस्य वा ॥७२
शम्या वेधाद् बहिः कार्या दशाङ्गुलप्रमाणिका ।
तन्मानेन प्रणाली च तदन्तरदशाङ्गुलम् ॥७३
प्रतोदश्च समग्रन्थिर्वैणवश्च चतुष्करः ।
तदग्रे चापि कर्तव्यो यथाकारस्तु लोहजः ॥७४
हीनातिरिक्तं कर्तव्यं नैव किञ्चित् प्रमाणतः ।
कुर्यादनडुहोऽदैन्याद्दैन्यात्तु नरकं व्रजेत् ॥७५
यथा दृढं यथाशोभं वाहकस्य प्रमाणत ।
भूमेश्च कर्षणायालं तज्ज्ञाः सीरं वदन्ति हि ॥७६
योजनं तु हलस्याथ प्रवक्ष्यामि यथा तथा ।
ज्येष्ठानक्षत्रसंयुक्ते पुण्येऽन्हि त्वद्विधीयते ॥७७
अन्यत्र या शुभे भे च तत्र कार्यं विपश्चिता ।
यत्तु कृत्यं हितं चापि पुण्यं वा मनसि स्फुरेत् ॥७८
मातृश्राद्धं द्विजः कुर्याद्यथोक्तविधिना गृही ।
द्रव्य-कालानुसारेण कुर्वाणो धर्मत कृषिम् ॥७९
प्रोल्लिख्य मण्डलं पुष्प-धूप-दीपैः समर्च्य तत् ।
इन्द्राय च तथाऽश्विभ्यां मरुद्भ्यश्च तथा द्विजः ॥८०
कुर्याद्बलिहूर्ति विद्वान् उदग्रै कश्यपाय च ।
तथा कुमार्यै सीतायै अनुमत्यै तथा बलिः ॥८१
नम स्वाहेति मन्त्रेण स चेच्छन्नात्मनो हितम् ।
दधि-गन्धा-ऽक्षतैः पुष्पैः शमीपत्रैस्तिलैस्तथा ॥८२

दद्याद्वलिं ग्रहाणां च मध्वाज्यप्राशनं तथा।
सद्गृह्य सीरफालाग्रं हेम्ना च रजतेन वा ॥८३
प्रलिप्य मधु-सर्पिर्भ्यां कुर्याच्च तत्प्रदक्षिणम्।
अग्न्युक्ष्णोर्मण्डलं कृत्वा कुर्यात्सीरप्रवाहणम् ॥८४
पुण्य लाङ्गल कल्याण कल्याणाय नमोऽस्त्विति।
सीतायाः स्थापनं कृत्वा पराशरमृषिं स्मरन् ॥८५
सीरा युञ्जन्ति इत्याद्यैर्मन्त्रैः सीरं प्रवाहयेत्।
दधि-दूर्वा-ऽक्षतैः पुष्पैः शमीपत्रैश्च पुण्यदैः ॥८६
सीतां पूज्य वृषौ भक्त्या रक्तवस्त्रविषाणकौ।
सप्तधान्यानि चादाय प्रोक्ष्य पूर्वामुखो हली।
तानि कृत्वोक्ष्णोः क्षेत्रे च किरन् भूमिं कृषेद्द्विजः ॥८७
न तिलैर्न यवैर्हीनं द्विजः कुर्वीत कर्षणम्।
तद्विहीनं तु कुर्वाणं न प्रशंसन्ति देवताः ॥८८
तिलपात्रच्युतं तोयं दक्षिणस्यां पतेद्दिशि।
तेन तृप्यन्ति पितरो यावन्न तिलविक्रयः ॥८९
विक्रीणीते तिलान्यस्तु मुक्त्वाऽन्यद्धान्यसामकान्।
विमुच्य पितरस्तं तु प्रयान्ति हि तिलैः सह ॥९०
तुषाजलं यवार्थं च पात्रेभ्यो भूतले पतत्।
पयो-दधि-घृताद्यैस्तु तर्पयेत्सर्वदेवताः ॥९१
दैव-पर्जन्य-भू-सीरयोगात् कृषिः प्रजायते।
व्यापारात् पुरुषस्यापि तस्मात्तत्रोद्यतो भवेत् ॥९२

शालीक्षु शण कार्पास वार्ताकप्रभृतीनि च ।
वापयेत् सस्यबीजानि सर्वं चापि न सीदति ॥९३
चन्द्रक्षये ऽमतिर्विप्रो यो युनक्ति वृष कचित ।
स पञ्चदशवर्षाणि त्यजन्ति पितरो द्विजम् ॥९४
चन्द्रक्षये तु योऽविद्वान् द्विजो भुङ्क्ते पराशनम् ।
मीसुर्मासार्जित पुण्य भवेद्दशनदस्य वै ॥९५
चन्द्रार्कयोस्तु सयोगे कुर्याद्य स्त्रीनिषेवणम् ।
स्यूरेतोभोजनास्तस्य तन्मास पितरो द्विजा ॥९६
चन्द्रक्षये तु य कुर्यात्तरुस्तम्भनिकृन्तनम् ।
तत्पर्णसख्यया तस्य भवन्ति भ्रूणहत्यका ॥९७
वनस्पतिगते सोमे योऽध्वान तु व्रजेद्द्विज ।
प्रभप्रद्विजकर्माणि त सनन्त्यमरादय ॥९८
पासासीन्दुप्रणाश यो रजकस्याम्भत क्षिपेत् ।
पिबन्ति पितरस्तस्य मास वस्त्रमलाम्बु तन् ॥९९
सोमक्षये द्विजो याति त्यक्त्वा यस्तु हुताशनम् ।
स देव पितृशापाग्निर्दग्धो नरकमाविशन् ॥१००
अष्टमी कामभोगेन षष्ठी तैलोपभोगत ।
कुहूश्च दन्तकाष्ठेन हिनस्त्यासप्तम कुलम ॥१०१
चन्द्राप्रतीतौ पुरुषस्तु दैवाद्यद्यान्मत्या यस्य दन्तकाष्ठम् ।
ताराधिराज स्वदितस्तु तेन घात कृत स्यात्पितृ देवतानाम् ॥१०२
तत्राभ्यज्य निपाणानि गावश्चैव तथा वृषा ।
चरणाय विसृज्यन्ते आगतान् निशि मोचयेत् ॥१०३

य उत्पाद्येह सस्यानि सर्वाणि तृणचारिणः ।
जगत् सर्वं धृतं यैस्तु पूज्यन्ते किं न ते वृषा ॥१०४
चरणाय विसृष्टं तु यस्य गोदशकं भवेत् ।
यद्रूपेण स्थितो धर्मं पूज्यन्ते किं न ते वृषा ॥१०५
इयु पात्या यत्नतस्ते वै वाहनीया यथाविधि ।
स याति नरकं घोरं यो वाहयत्यपालयन् ॥१०६
नाऽधिकाङ्गो न हीनाङ्ग पुष्पिताङ्गो न दूषित ।
वाहनीयो हि शूद्रेण वाहयन्क्षयमश्नुते ॥१०७
वर्जयेद्दुष्टदोषाश्च वाहने दोहने नर ।
पाल्या वै यत्नत. सर्वे पालयन्छुभमाप्नुयात् ॥१०८
अन्नार्थमेतानुक्षाण ससर्ज परमेश्वर ।
अन्नेनाप्यायते सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥१०९
अग्निर्ज्वलति चान्नार्थं वाति चान्नाय मारुत ।
गृह्णाति चाम्भसा सूर्यो रसानन्नाय रश्मिभि ॥११०
अन्नं प्राणो बलं चान्नमन्नाज्जीवितमुच्यते ।
अन्नं च जगदाधारं सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम् ॥१११
सर्वेषां देवतादीनामन्नं जीव प्रकीर्तित ।
तस्मादन्नात्परं तत्त्वं न भूतं न भविष्यति ॥११२
द्यौ पुमान्धरणी नारी अम्भो बीजं दिवश्च्युतम् ।
द्य-धात्री-तोयसंयोगादन्नादीनां हि सम्भवः ॥११३
आपो मूलं हि सर्वस्य सर्वमप्सु प्रतिष्ठितम् ।
आपोऽमृतरसो ह्याप आपः शुक्रं बलं मह ॥११४

सर्वस्य बीजमापो हि सर्वमद्भिः समावृतम्।
सदा आप्यायना ह्याप आपो ज्येष्ठतरा इति ॥११५
किञ्चित्कालं विनाऽन्नाद्यै जीवन्ति मनुजादयः।
न जीवन्ति विना ताभिस्तस्मादापोऽमृतंस्मृताः ॥११६
दत्ताभिरद्भिरेवस्यां किं न दत्तं कलौ युगे।
यथान्नेन प्रदत्तेन सर्वं दत्तं भवेदिह ॥११७
अतोऽप्यन्नार्थमात्मेन कर्तव्यं कर्षणं द्विजैः।
यथोक्तेन विधानेन लाङ्गलादि प्रयोजनम् ॥११८
सीते सौम्ये कुमारि त्वं देवि देवार्चिते श्रिये।
शक्तिसूनोर्यथा सिद्धा तथा मे सिद्धिदा भव ॥११९
शक्तिसूनोर्विना नाम्ना सीताया स्थापनं विना।
विनाऽभुक्षशरणार्थं सर्वं हरति राक्षस ॥१२०
वापने लवने क्षेत्रे खले धान्यप्रवाहणे।
एष एव विधिर्ज्ञेयो धान्यानां च प्रवेशने ॥१२१
देवतायतनोद्यान-निपातस्थान-गोव्रजान्।
सीमा-श्मशान-भूमिं च वृक्षच्छायां क्षितिं तथा ॥१२२
भूमिं निपातं यूपाश्च अयनस्थानमेव च।
अन्यामपि हि चाऽऽज्ञाप्तां न कुर्यात्कृषिकद्वराम् ॥१२३
नोषरां वाहयेद्भूमिं न चाऽश्म-शर्करावृताम्।
न गोचरां न प्रदत्तां न नदीपुलिनां तथा ॥१२४
यद्यसौ वाहयेल्लोभाद्द्वेषाद्वापि हि मानवः।
क्षीयतेऽसौ चिरात्तापात् सपुत्र पशु-बान्धवः ॥१२५

नरके घोरतामिस्रं पापीयान् याति निश्चितम्।
योऽपहृत्य परकीयां कृषिकृद्वाहयेद्धराम् ॥१२६
स भूमिस्तेयपापेन सुचिरं नरके वसेत्।
एकस्वल्पमपि स्वर्णं भूमिमङ्गुल्मात्रिकाम् ॥१२७
तथैकामपि गां हृत्वा सृष्ट्यन्तं नरकं वसेत्।
न दूरे वाहयेन् क्षेत्रं न चैवास्यन्तिके तथा ॥१२८
वाहयेन्न पथि क्षेत्रं वाहयन्दुःखमाप्नुयात्।
क्षेत्रेष्वेवं वृतिं कुर्याद्यामुष्ट्रो नावलोकयेत् ॥१२९
न लङ्घयेत्पशुर्नाश्वो नभिन्द्याच्च शूकरः।
वन्याश्च यत्नतः कार्या मृगादित्रासनाय च ॥१३०
अत्राप्युपद्रवं राजा तस्करादिसमुद्भवम्।
संरक्षेत्सर्वतो यत्नाद्यस्मात् गृह्णात्यसौ करान् ॥१३१
कृषिकृ मानवस्त्वेवं मत्वा धर्मं कृषेद्धराम्।
अनवद्यां शुभां स्निग्धां जलवगाहनक्षमाम् ॥१३२
निम्नां हि वाहयेद्भूमिं यत्र विश्रमते जलम्।
वाहयेत्तु जलाभ्यर्णमवृष्टौ सेकसम्भवः ॥१३३
शारदभुक्तैर्भूमौ कङ्ग्वाद्यं वापयेद्बली।
अधिरयकासु कार्पासं वदन्त्यन्यत्र हैमकम् ॥१३४
वासन्तं ग्रीष्मकालीयं वाप्यं स्निग्धेषु तद्विदा।
केदारेषु तथा शालीञ्जलोपान्तेषु चेक्षवः ॥१३५
वृन्ताक-शाकमूलानि कन्दानि च जलान्तिके।
वृष्टिविश्रान्तपानीयक्षेत्रेषु च यवादिकान् ॥१३६

गोधूमाश्च मसूराश्च खल्याः खलकुशास्तथा।
समस्निग्धेषु वाप्याश्च भूमिजीवान्विजानता ॥१३७
तिला बहुविधाश्चोप्या अतसी-शणमेव च।
समस्निग्धेषु वाप्यानि धान्यान्यन्यानि योगतः ॥१३८
कुलत्था मुद्गमाषाश्च राजमाषादिकास्तथा।
वाप्या भूमिविशेषे तु भूमिजीवं विजानता ॥१३९
मृदन्वुयोगजं सर्वं वापयेत्कृपिकृन्नरः।
सम्पश्येच्चरतः सर्वान् गोरूपादीन् स्वयं गृही ॥१४०
चिन्तयेत्सर्वमात्मीयं स्वयमेव कृषिं व्रजेत्।
प्रथमं कृषिवाणिज्यं द्वितीयं पशुपोषणम् ॥१४१
तृतीयं क्रीतविक्रीतं चतुर्थं राजसेवनम्।
नखैर्विलिखने यस्याः पापमाहुर्मनीषिणः ॥१४२
तस्याः सीरविदारेण किं न पापं क्षितेर्भवेत्।
तृणैकच्छेदमात्रेण प्रोच्यते क्षय आयुषः ॥१४३
असङ्ख्यकन्दनिर्नाशादसङ्ख्यातं भवेदघम्।
यद्वर्षे मत्स्यबन्धानां तथा सङ्कुरिणामपि ॥१४४
अंहः कुक्कुटिकानां च तद्दिने कृषिकारिणाम्।
वधकानां च यत् पापं यत् पापं मृगयोरपि।
कदर्याणां च यत् पापं तद्दिने कृषिकारिणाम् ॥१४५
वर्णानां च गृहस्थानां कृषिवृत्त्युपजीविनाम्।
तदेनसो विशुद्ध्यर्थं प्राह सत्यवतीपतिः ॥१४६

द्वादशो नवमो वापि सप्तमः पञ्चमोऽपि वा।
धान्यभागः प्रदातव्यो सीरिणा खलके ध्रुवम् ॥१४७
असमर्थव्यूढभूमौ च विंशांशी क्षेत्रभुग्भवेत्।
एकैकांशाय कर्षः स्याद्यावद्दश-सप्तमौ ॥१४८
ग्रामेशस्य नृपस्यापि वर्णिभिः कृषिजीविभिः ॥१४९
सस्यभागः प्रदातव्यो यतस्तौ कृषिभागिनौ।
ब्राह्मणस्तु कृषिं कुर्वन्नाहयेदिच्छया धराम् ॥१५०
न किञ्चित् कस्यचिद्दद्यात्स सर्वस्य प्रभुर्यतः।
ब्रह्मा वै ब्राह्मणं चास्यात्प्रभुस्त्वसृजदादितः ॥१५१
तद्रक्षणाय बाहुभ्यामसृजत् क्षत्रियानपि।
पशुपाल्याशनोत्पत्त्यै ऊरुभ्यां च तथा विशः ॥१५२
द्विजदास्याय पण्याय पद्भ्यां शूद्रमकल्पयत्।
यत्किञ्चिज्जगतीह्यत्र भू-गेहाश्च गजादिकम् ॥१५३
स्वभावेन हि विप्राणां ब्रह्मा स्वयमकल्पयत्।
ब्राह्मणश्चैव राजा च द्वावप्येतौ धृतव्रतौ ॥१५४
न तयोरन्तरं किञ्चित् प्रजाधर्माभिरक्षणे।
तस्मान्न ब्राह्मणो दद्यात् कुर्वाणो धर्मतः कृषिम् ॥१५५
ग्रामेशस्य नृपस्यापि कियन्तमप्यसौ बलिम्।
अथान्यन् सम्प्रवक्ष्यामि कृषिकृच्छुद्धिकारणम् ॥१५६
संशुद्धः कर्षको येन स्वर्गलोकमवाप्नुयात्।
सर्वसत्त्वोपकाराय सर्वयज्ञोपसिद्धये ॥१५७

नृपस्य कोशवृद्धचर्थं जायते कृषिरुत्तरं ।
कुर्यात्कृषिं प्रयत्नेन सर्वसत्वोपजीविनीम् ॥१५८
पितृ-देव-मनुष्याणां पूज्ये स्यात् कृषीवलः ।
वयांसि चान्यसत्वानि क्षुत्तृष्णापीडिता प्रजा ॥१५६
उपयुञ्जन्ति सस्यानि क्षेत्रजातानि नित्यश ।
पुण्यार्थं मुष्टिमेकां वा ददत्पापं व्यपोहति ॥१६०
यस्य क्षेत्रस्य यावन्ति सस्यान्यदन्ति प्राणिन ।
तावन्तोऽपि विमुच्यन्ते पातकात् कृषिकारका ॥१६१
कृताग्निकार्यदेहोऽपि ब्राह्मणोऽन्यतमोऽपि वा ।
आददान परक्षेत्रात् पथि गच्छन्न लिप्यते ॥१६२
क्षेत्री विमुच्यते दोषात् नियतं कृषिसम्भवात् ।
गृहीत क्षेत्रिणो धान्यं निवेदयति वाणरपि ॥१६३
अनिवेदिते तदर्थं स्यात् पातकं कर्षुकस्य चा।
भायशुद्धावतो धर्मो ह्यनेन तद्विशोधयेत् ॥१६४
मुष्टिं तु कल्पयन्धान्यं सर्वपापं व्यपोहति ।
यत्किञ्चिदर्थिने दद्याद्भिक्षामात्रं च भिक्षवे ॥१६५
अन्नं सुसंस्कृतं वापि तेन सीरी विशुद्धयति ।
सीतायज्ञं च यः कुर्यात् सिद्धसस्ये खलागते ॥१६६
अनन्तकृतपापोऽपि मुक्तो भवति कर्षुक ।
खलयज्ञं प्रवक्ष्यामि तत्कुर्वाणा द्विजातय ॥१६७
विमुक्ताः सर्वपापेभ्यः स्वर्गौकस्त्वमवाप्नुयु ।
चतुर्दिक्षु खले कुर्यात्प्राच्यमतिघनावृतिम् ॥१६८

सेकद्वारं पिधानं च विदध्याचैव सर्वतः।
खरोष्ट्राजोरणांस्तत्र विशतस्तु निवारयेत् ॥१६९
श्व-शूकर-शृगालादिकाकोलूक-कपोतकान्।
त्रिसन्ध्यं प्रोक्षणं कुर्यादानीताभ्युक्षणाम्बुभिः ॥१७०
रक्षां च भस्मना कुर्याज्जलधाराभिरुक्षणम्।
त्रिसन्ध्यमर्चयेत्सीतां पाराशरमृषिं स्मरन् ॥१७१
प्रेत-भूतादिनामानि न वदेच तदग्रतः।
सूतिकागृहवत्तत्र कर्तव्यं परिरक्षणम् ॥१७२
हरन्त्यरक्षितं यस्माद्रक्षांसि सर्वमेव हि।
प्रशस्तदिनपूर्वाह्णे नाऽपराह्णे न सन्ध्ययोः ॥१७३
धान्योन्मानं सदा कुर्यात् सीतापूजनपूर्वकम्।
यजेत खलभिक्षाभिः काले रोहिण एव हि ॥१७४
भक्त्या सर्वं प्रदत्तं हि तत्समस्तमिहाक्षयम्।
खलयज्ञो दक्षिणैषा ब्रह्मणा निर्मिता पुरा ॥१७५
भागधेयमयीं कृत्वा तां गृह्णन्त्वीह मामिकाम्।
शतक्रत्वादयो देवाः पितरः सोमपादयः ॥१७६
सनकादिमनुष्याश्च ये चान्ये दक्षिणाशनाः।
एतानुद्दिश्य विप्रेभ्यो प्रदद्यात् प्रथमं हली ॥१७७
विवाहे खलयज्ञे च सङ्क्रान्तौ ग्रहणेषु च।
पुत्रे जाते व्यतीपाते दत्तं भवति चाक्षयम् ॥१७८
अन्येषामर्थिनां पश्चात्कारुकाणां ततः परम्।
दीनानामप्यनाथानां कुष्ठिनां कुशरीरिणाम् ॥१७९

क्लीवा-ऽन्ध-बधिरादीनां सर्वेषामपि दीयते।
वर्णानां पतितानां च दद्द्भुक्तानि सर्पयेत् ॥१८०
चाण्डालांश्च श्वपाकांश्च प्रीणात्युचावचास्तथा।
ये केचिदागतास्तत्र पूज्यास्तेऽतिथिवद्द्विजाः ॥१८१
स्तोकशः सीरिभिः सर्वैर्वर्णिभिर्गृहमेधिभिः।
दत्वा सूनृतया वाचा क्रमेणाथ विसर्जयेत् ॥१८२
तत्कृत्वा स्वगृहं गत्वा श्राद्धमाभ्युदयं चरेत्।
शारद्हैमन्त-वासन्त-नवान्नैः श्राद्धमाचरेत् ॥१८३
नो ऽदत्वान्न तदश्नीयादश्नंश्चेदघमश्नुते।
कृषावुत्पाद्य धान्यानि खलयज्ञं समाप्य च ॥१८४
सर्वसत्त्वहिते युक्त इहामुत्र सुखी भवेत्।
कृषेरन्यत्र नो धर्मो न लाभः कृषितोऽन्यतः ॥१८५
सुखं न कृषितोऽन्यत्र यदि धर्मेण वर्तते।
अधनत्वं निरन्नत्वं कृषितो नैव जायते ॥१८६
अनातिथ्यं च दुःखित्वं गोमतो न कदाचन।
निर्धनत्वमसत्यत्वं विद्यायुक्तस्य कर्हिचित् ॥१८७
अस्थानित्वमभाग्यत्वं न सुशीलस्य कर्हिचित्।
वदन्ति मुनयः केचित् कृष्यादीनां विशुद्धये ॥१८८
लाभत्र्यंशप्रदानं च सर्वेषां शुद्धिकृद्भवेत्।
प्रतिग्रहात् चतुर्थांशं वणिग् लाभात् तृतीयकम् ॥१८९
कृषितो विंशतिं चैव ददतो नास्ति पातकम्।
राज्ञे दत्वा च षड्भागं देवतानां च विंशकम् ॥१९०

त्रयस्त्रिंशच्च विप्राणां कृषिकर्मा न लिप्यते ॥

कृष्या यथोत्पाद्य यवादिकानि
धान्यानि भूयांसि मखान्विधाय।
मुक्तो गृहस्थोऽपि पराशरः प्राक्
तस्या मया कश्चिदपादि शेषः ॥१६१

देवा मनुष्याः पितरश्च सर्वे
साध्याश्च यक्षाश्च सकिन्नराश्च।
गावो द्विजेन्द्राः सह सर्वसत्वैः
कृष्यन्नतृप्तानि मनाक् करोति ॥१६२

यश्चैतदालोच्य कृषिं विदध्यात्
लिप्येन्न पापेन स भूभवेन ॥
सीरेण तस्यातिविदारितापि
स्याद्भूतधात्री धनदानदात्री ॥१६३

षट्कर्माणि कृषिं ये तु कुर्युर्ज्ञात्वा विधिं द्विजाः।
तेऽमरादिवरप्राप्ताः स्वर्गलोकमवाप्नुयुः ॥१६४

षट्कर्मभिः कृषिः प्रोक्ता द्विजानां गृहमेधिनाम्।
गृहं च गृहणीमाहुस्तद्विवाहो मयोच्यते ॥१६५

इति श्रीवृद्धपराशरीये धर्मशास्त्रे सुव्रतप्रोक्तायां स्मृत्यां
कृषिकर्मसीतायज्ञोपधर्मो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥

---

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

अथ कन्याविवाहवर्णनम् ।

स्वयं च वाहितैः क्षेत्रैर्धान्यैश्च स्वयमर्जितैः ।
कुर्याद्विवाहयोगादि पञ्चयज्ञांश्च नित्यशः ॥१
अष्टौ विवाहा नारीणां संस्कारार्थं प्रकीर्तिताः ।
ब्राह्मादिकक्रमेणैतान्सम्प्रवक्ष्याम्यतः पृथक् ॥२
जात्यादिगुणयुक्ताय पूंस्त्वे सति वराय च ।
कन्याऽलङ्कृत्य दीयेत विवाहो वैधस. स्मृतः ॥३
रेतो मज्जति यस्याप्सु मूत्रं च ह्लादि फेनिलम् ।
स्यात् पुमांल्लक्षणैरेतैर्विपरीतस्तु षण्ढकः ॥४
यो यज्ञे वर्तमाने तु ऋत्विजे कर्म कुर्वते ।
कन्याऽलङ्कृत्य दीयेत विवाहः स तु दैविकः ॥५
वराय गुणयुक्ताय विदुषे सदृशाय च ।
कन्या गोद्वयमादाय दीयेताऽऽर्षः स उच्यते ॥६
कन्या चैव वरश्चोभौ स्वेच्छया धर्मचारिणौ ।
स्यातामिति च यत्रोक्त्वा दानं कायविधिस्त्वयम् ॥७
एतावद्देहि मे द्रव्यमित्युक्त्वा प्राग्वराय च ।
यत्र कन्या प्रदीयेत स वै दैत्यविधिः स्मृत ॥८
यत्रान्योन्याभिलापेण उभयोर्वर-कन्ययोः ।
तयोस्तु यो विवाहः स्याद्गान्धर्व प्रथित स तु ॥९
युद्धे हत्वा बलात् कन्या यत्राऽऽच्छिद्याऽपहृत्य च ।
उह्यते स तु विद्वद्भिर्विवाहो राक्षसः स्मृतः ॥१०

सुप्ता वापि प्रमत्ता या छलात् कन्या प्रगृह्यते ।
सर्वेभ्यः स तु पापिष्ठः पैशाचः प्रथितोऽष्टमः ॥११
आद्या आद्यस्य षट् प्रोक्ता धर्म्याश्चत्वार एव हि ।
चत्वारोऽन्ये द्वितीयस्य आद्यस्य च द्वयस्य च ॥१२
पञ्चमश्च तथा षष्ठः स्मृतौ तौ त्रि-चतुर्थयोः ।
द्वितीयस्यापि ये प्रोक्ता एतयोस्ते न चाष्टमः ॥१३
वैधसाद्यनुरूपेण द्वितीयः परयोः स्मृतः ।
सर्वे सममेकस्य द्वितीयस्यैव कीर्तिताः ॥१४
अन्त्यावत्यधमौ प्रोक्तावुद्वाहौ शक्तिसूनुना ।
तथा युगस्वरूपेण प्रोक्तो दैवस्तु मानुषः ॥१५
तारयन्ते प्राक्ततोऽधस्ताच्चतुरोऽऽर्षविवाहजैः ।
स्वात्मना द्विगुणान् वंश्यान् दश-सप्त-त्रयश्च षट् ॥१६
स्त्रीणामाजन्मरामार्थं वंशशुद्धौ प्रयत्नवान् ।
वरं हि वरयेद्विद्वाञ्जात्यादिगुणसंयुतम् ॥१७
जाति-विद्या-वयः-शक्तिरारोग्यं बहुपक्षता ।
अर्थित्वं वित्तसम्पत्तिरष्टावेते वरे गुणा ॥१८
जातिर्विद्या च रूपं च शीलं चैव नवं वयः ।
अरोगित्वं विशेषेण पुंस्त्वे सत्यपि लक्षयेत् ॥१९
जातिं रूपं च शीलं च वयो नवमरोगिताम् ।
स्वाचारत्वं विशेषेण संलक्ष्य वरमाश्रयेत् ॥२०
सज्जातिं रूप-वित्तं च तथाऽप्रवयसं दृढम् ।
सन्तोषजननं स्त्रीणां प्रदद्याच्चाश्रयेद्वरम् ॥२१

न जातिं न च विद्यां च वित्तं नाऽऽचरणं स्त्रियः।
किन्तु ताः प्रीतिमिच्छन्ति तस्मात् प्रीतिकरं श्रयेत् ॥२२
पित्रा यत्र सगोत्रत्वं मात्रा यत्र सपिण्डता।
न च तामुद्वहेत्कन्यां दारकर्मण्यनादृताम् ॥२३
कन्यायाश्च वरस्यापि यत्रोभयोर्भवेद्रतिः।
तथा कन्यां वरो धीमान्वरयेद्वंशशुद्धये ॥२४
नाना मतानि सर्वेषां सतां सन्ति वरम्प्रति।
सन्तानस्य विशुध्यर्थं जात्यादिषु च नाऽन्यतः ॥२५
दूरस्थानामविद्यानां मोक्षधर्मानुयायिनाम्।
शूराणां निर्धनानां च न देया कन्यकाः बुधैः ॥२६
नाऽतिदूरे न चाऽऽसन्ने अत्याढ्ये चाऽतिदुर्बले।
वृत्तिहीने च मूर्खे च षट्सु कन्या न दीयते ॥२७
वर्जयेदतिरिक्ताङ्गी कन्यां हीनाङ्गरोगिणीम्।
अतिलोम्नीं हीनलोम्नीमवाचमतिवाग्युताम् ॥२८
पिता पितामहो भ्राता माता मातामहोऽपि वा।
कन्यादाः स्युः क्रमेणैते पूर्वाऽभावे परः परः ॥२९
अधिकारी यदा न स्यात्तदाऽऽख्याय नृपस्य सा।
तद्गिरा च स्वयं गम्यं कन्यापि वरयेद्वरम् ॥३०
पिङ्गलां कपिलां कृष्णां दुष्टवाककाकनिःस्वनाम्।
स्थूलाङ्ग-जङ्घ-पादां च सदा चाऽप्रियवादिनीम् ॥३१
त्यजेन्नग-नदीनाम्नीं पक्षि वृक्षर्क्षनामिकाम्।
अहि-प्रेष्या-ऽन्त्यनाम्नीं च तथा भीषणनामिकाम् ॥३२

स्त्रियश्च यत्र पूज्यन्ते सर्वदा भूषणादिभिः ।
देवाः पितृमनुष्याश्च मोदन्ते तत्र वसन्ति ॥४४
स्त्रियस्तुष्टाः श्रियः साक्षाद्रुष्टाश्च दुष्टदेवताः ।
वर्धयन्ति कुलं तुष्टा नाशयन्त्यपमानिताः ॥४५
नाऽपमान्याः स्त्रियः सद्भिः पतिश्वशुरदेवरैः ।
भ्रात्रा पित्रा च मात्रा च तथा बन्धुभिरेव च ॥४६
स्त्रियाश्च पुरुषस्यापि यत्रोभयोर्मनस्तुष्टिः ।
तत्र धर्मो ऽर्थकामाः स्युस्तदधीना यतस्त्रयी ॥४७
पुण्यकर्माणि नृणां तेषां येषां भार्या पतिव्रता ।
पतिलोकं तु सा याति तपसा येन योगवित् ॥४८
पतिव्रता तु साध्वी स्त्री अपि दुष्कृतकारिणम् ।
पतिमुद्धृत्य याति स्वं पक्षीव पतितोरगम् ॥४९
जीवन्वापि मृतो वापि पतिरेव प्रभुः स्त्रियाः ।
नान्यच्च दैवतं तासां नमेत प्रभुमर्चयेत् ॥५०
मनसापि हि दुष्टा स्त्री यान्यभावा प्रियं पतिम् ।
सा याति नरकं घोरं तद्द्रोहादणुतोऽपि च ॥५१
नियोज्य गृहकृत्येषु सर्वदा ताः नृभिः स्त्रियः ।
गृहस्थाऽसक्तचित्तास्तास्तदेवार्हन्ति शोचितुम् ॥५२
स्त्रीणामष्टगुणः कामो व्यवसायश्च षड्गुणः ।
लज्जा चतुर्गुणा तासामाहारश्च तदर्धकः ॥५३
न वित्तं नैव जातिं च नाऽपि रूपमपेक्षते ।
किन्तु ताभिः पुमानेव इति मत्वैव भुज्यते ॥५४

विकुर्वाणाः स्त्रियो भर्तुरायुष्य-धननाशकाः।
अनायासेन तास्तस्य परासक्ता भवन्ति हि ॥५५
नारीणां च नदीनां च गतिर्न ज्ञायते बुधैः।
कुलं कूलप्रपाते च कालक्षेपो न विद्यते ॥५६
चेष्टा-चारित्र-चित्राणि देवा नैव विदुः स्त्रियाम्।
किं पुनः प्राणिमात्रास्तु सर्वथा नष्टबुद्धयः ॥५७
तस्मात्ताः सर्वथा रक्ष्याः सर्वोपायैर्नृभिः सदा।
श्वशुरैर्देवराद्यैस्ताः पितृ-भ्रात्रादिभिस्तथा ॥५८
विवाहात् प्राक् पिता रक्षेत् यौवने तु पतिस्ततः।
रक्षेयुर्वार्धके पुत्रा नास्ति स्त्रीणां स्वतन्त्रता ॥५९
स्वातन्त्र्येण विनश्यन्ति कुलजा अपि योषितः।
अस्वातन्त्र्यमतः स्त्रीणां प्रजापतिरकल्पयत् ॥६०
अशौचाश्च सशौचाश्च अमेध्या अपि पावनाः।
दुर्वाचोऽपि सुवाचस्तास्तस्मादन्वेष्ययेश्च ताः ॥६१
शौचं वाचं च मेध्यत्वं सोम-गन्धर्व-पावकाः।
ददुस्तासां वरानेतांस्तस्मान्मेध्यतराः स्त्रिय. ॥६२
भर्तारो वो भविष्यन्ति युष्मच्चित्तानुसारिणः।
यथेच्छाकामिनः सर्वे तासामिन्द्रो वरं ददौ ॥६३
तस्मात्तदिच्छया प्रीतिं पुमानिच्छेत्तया स्त्रियः।
रक्षणीयास्ततस्मात्तु सर्वभावेन योषितः ॥६४
साभाद् मृकृथमित्याद्यैर्वेदैर्येस्ता नृणां तनौ।
अर्धकाया नराणां ताः स्त्रीणां नातः पृथक् मतम् ॥६५

न दिवापि स्त्रियं गच्छेदिच्छंस्तदिच्छयापि च ।
न पर्वसु न सन्ध्यासु नाऽऽग्रत्तुं चतुरात्रिपु ॥६६
वन्ध्याष्टमे ऽधिवेत्तव्या नवमे च मृतप्रजा ।
एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥६७
नीदक्यां न दिवा गच्छेत् सगर्भां च व्रतस्थिताम् ।
अधिगच्छेद्‌विद्वान्यस्तदायुः क्षयमेति च ॥६८
न वक्त्रेऽभिगमं कुर्यात् पाणिग्राही स्वयोषितः ।
कुर्याच्चेत्पितरस्तस्य पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥६९
भार्याधीनं सुखं पुंसां भार्याधीनं गृहं धनम् ।
भार्याधीना सुतोत्पत्तिर्भार्याधीनः शुभोदयः ॥७०
यत्र भार्या गृहं तत्र भार्याहीनं गृहं वनम् ।
न गृहेण गृहस्थः स्याद्भार्यया कथ्यते गृही ॥७१
गृही स्याद्‌गृहधर्मेण स वै पञ्चमखाह्निकः ।
तद्धीनो न गृहस्थः स्यात्कुर्यात्तं यत्नतस्ततः ॥७२
पञ्चयज्ञविधानेन कुर्यात्पञ्च महामखान् ।
श्रौते वा यदि वा स्मार्त्ते पञ्चयज्ञान्न हापयेत् ॥७३
कुर्युः पञ्चमहायज्ञान् सूनादोषापनुत्तये ।
पञ्चसूना भवन्त्यत्र सर्वेषां गृहमेधिनाम् ॥७४
कण्डन्युदककुम्भी च चुल्ली पेषण्युपस्करः ।
यदाऽऽदौ वेदमारभ्य स्नात्वा भक्त्या द्विजोत्तमः ॥७५
अध्यापयेद्‌द्विजांश्छिष्यान्स वै ब्रह्ममखः स्मृतः ।
यत् स्नात्वाऽहरहः सर्वान्देवांश्च मनुजान्पितॄन् ॥७६

तर्पयेदम्भसा भक्त्या पितृयज्ञः स वै मतः ।
श्रौते वा यदि वा स्मार्ते यज्जुहोति हुताशने ॥७७
विधिवन्नित्यशो विप्रः स तु देवमखः स्मृतः ।
दशस्वाशासु यः कुर्याद्धुतशेषाद्बलिं द्विजः ॥७८
इन्द्रादिभ्यस्तथाऽन्येभ्यः स वै भूतमखो मतः ।
समायातातिथिं भक्त्या यद्भोजयति नित्यशः ॥७९
अन्यानभ्यागतांश्चैव सा मनुष्येष्टिरुच्यते ।
एवं पञ्चमखान् कुर्वन्मधु-मांसाऽऽज्य-पायसैः ॥८०
स सन्तर्प्य पितॄन्देवान्मनुष्यान् स्वर्गमाप्नुयात् ।
गृहस्था य उपासीरन् वाचं धेनुं चतुस्तनीम् ॥८१
स्वर्गौकसां पितॄणां च पूज्यास्तेऽतिथिवद्दिवि ।
चत्वारस्तु स्तना एते ये चतुर्वेदसंज्ञिताः ॥८२
स्वाहाकारो वषट्कारो हन्तकारस्तथा स्वधा ।
देवानां भागधेयौ द्वौ अन्ये च मनुजन्मनाम् ॥८३
पितॄणां च चतुर्थस्तु इति वेदनिदर्शनम् ।
इति निर्वर्त्य विधिवत्सकलं कर्म नैत्यकम् ॥८४
प्राणाग्निहोत्रविधिना भुञ्जीतान्नमघापहम् ।
अदत्वा पोष्यवर्गस्य ह्यकृत्वाऽध्यापनादिकम् ॥८५
अमाक्षिकं च योऽश्नीयात्सोऽश्नीयात्किल्बिषं द्विजः ।
प्राङ्मुखादिक्रमेणाऽश्नन्नायुः कीर्तिं श्रियो भृतम् ॥८६
अविधिर्विधिगत्यास्तु यच्चदश्नन्ति राक्षसाः ।
अथ प्राणाग्निहोत्रस्य श्रूयतां द्विजसत्तमाः ॥८७

वक्ष्यमाणो विधिः पुण्यः प्रेत्य चेह च पावनः ।
यो विधिर्दैवताभ्यस्तं संसारबन्धनाशकृत् ॥८८
तद्विदस्तु दिवं यान्ति मुक्ता दैवादृणादपि ।
उद्धरेद्यद्विदित्वाश्नन्पुरुषानेकविंशतिम् ॥८९
सर्वेष्टिफलभाग्यायाद्वैधसं क्षयमक्षयम् ।
यः कालाकालविद्विप्रो नैनःस्पर्शी स कर्हिचित् ॥९०
सोऽस्पृष्टैना विशेत्तत्र यद्गत्वा नैति संसृतौ ।
दश पञ्चाङ्गुलव्यासं नासिकाया बहिः स्थितम् ॥९१
जीवो यत्र विशुद्ध्येत सा कला षोडशी स्मृता ।
सर्वमेतत्तया व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥९२
ब्रह्मविद्येति विख्याता वेदान्ते च प्रतिष्ठिता ।
न वेद वेदमित्याहुर्यद्धाम परं पदम् ॥९३
तत्पदं विदितं येन स विप्रो वेदपारगः ।
आहुतिः सा परा ज्ञेया सा च शान्तिः प्रकीर्तिता ॥९४
गायत्री सा च विज्ञेया सा च सन्ध्या प्रकीर्तिता ।
तज्जाप्यं तच्च वै ज्ञेयं तद्व्रतं तदुपासितम् ॥९५
तां कलां यो विजानाति स कलाज्ञो द्विजः स्मृतः ।
तत्तुरीयपदं शान्तं यस्मिँल्लीनमिदं जगत् ॥९६
तज्ज्ञात्वा परमं तत्वं न भूयः पुरुषो भवेत् ।
प्राणमार्गास्त्रयः प्रोक्तास्तिस्रो नाड्यः प्रकीर्तिताः ॥९७
ईडा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना च तृतीयका ।
ईडा च वैष्णवी नाडी ब्राह्मणी पिङ्गला स्मृता ॥९८

सुषुम्ना चेश्वरी नाडी त्रिधा प्राणग्रहाः स्मृताः ।
उत्तरं दक्षिणं ज्ञेयं दक्षिणोत्तरसंज्ञितम् ॥९९
मध्ये तु विषुवं ज्ञेयं पुटद्वयविनि सृतम् ।
संक्रान्ति-विषुवे चैव यो विजानाति विप्रहे ॥१००
नित्यमुक्त स योगी च ब्रह्मनादिभिरुच्यते ।
मध्याह्ने चार्धरात्रे च प्रभातेऽस्तमये तथा ॥१०१
विषुवन्तं विजानीयात्पुटद्वयविनि सृतम् ।
हृत्पुण्डरीकमरणी मनो मन्थानमेव च ॥१०२
प्राणरज्जा न्यसेदग्निमात्मानाभ्यर्यं प्रतिष्ठितः ।
ज्वालयेत्पूरकेणाऽग्निं स्थापयेत्कुम्भकेन तु ॥१०३
रेचकेणोर्ध्ववक्त्रेण ततो होमं करोति च ।
यत्तद्धृदि स्थितं पद्ममधोनालं व्यवस्थितम् ॥१०४
तस्मिन्विकसिते पद्मे प्राणो वायुर्विसर्पति ।
वामहस्तधृते पात्रे दक्षिणे चाम्भसि स्थिते ॥१०५
सनादमुद्धरेद्विप्रो अच्छिन्नाग्रं तु पूरयेत् ।
पूरणात पूरकं प्राहुर्निश्चलं कुम्भकं भवेत् ॥१०६
निर्गच्छति शनैर्वायू रेचकं स विनिर्दिशेत् ।
स्वाहान्तै प्रणवाद्यैश्च स्वस्वनाम्ना च वायुभि ॥१०७
जीवात्मा योजित पद्म पञ्चाहुत्या हुत भवेत् ।
जिह्वादत्तं भक्षेदन्नं दन्तैश्चैव न तत् स्पृशेत् ॥१०८
दशने स्पृष्टमात्रेण पुनराचमनं चरेत् ।
मुख आहवनीयोऽग्निर्गार्हपत्यस्तथोदरे ॥१०९

हृदये दक्षिणाग्निश्च गृह्याग्निश्चापि दक्षिणे।
सभ्यश्चोत्तरतश्चिन्त्य इत्यग्निस्मरणक्रम ॥११०
प्राणायैवाग्निहोत्रादि चिन्तयेत्तद्वदेव तु।
होतारं प्राणमित्याहुरुद्गातारमपानकम् ॥१११
ब्रह्माणं व्यानमित्येके उदानोऽध्वर्युमित्यपि।
समानं चेह यज्वानमिति श्रुतिविक्रमं बुध ॥११२
अहङ्कारं पशुं कृत्वा प्रणवं यूपमित्यपि।
बुद्धिरित्यरणिः पृथ्वी लोमानि च कुशाः स्मृताः ११३
मनो विभक्ता दग्जिह्वा इति तज्ज्ञा प्रचक्षते।
कृत्वा त्रिमात्रमोङ्कारं हुङ्कारं च तथा पुन ॥११४
वत्तिष्ठ जननाथाऽग्ने हरिल्लोहितपिङ्गल।
सप्तपरिधये तुभ्यं क्षुद्रच्छिदैवत च यत ॥११५
विजिह्व जाठरायाऽग्ने स्वाहाप्राणाय व्यत्यय ।
इन्द्रगोपकवर्णाय त्रिजिह्वायाग्निदैवतम् ॥११६
ॐ स्वाहेति अपानाय स्वाहाकारान्तमुच्चरेत्।
गोक्षीरसमवर्णाय पर्जन्यं वह्निदैवतम् ॥११७
स्वाहोदानाय सोङ्कारमनलाय परार्चिषे।
ताडित्समानवर्णाय वाय्वग्निदैवताय ते ॥११८
ॐ स्वाहा च समानाय ॐ स्वाहा चाह वेधसे।
तर्जनी-मध्यमा-ऽङ्गुष्ठैर्ल्मा प्राणस्य चाहुति ॥११९
कनिष्ठा-ऽनामिका-ऽङ्गुष्ठैर्व्यानस्य परिकीर्तिता।
मध्यमा-ऽनामिका-ङ्गुष्ठैरपानायाहुतिः स्मृता ॥१२०

मध्यमा-ऽनामिकास्त्वन्यामुदाने जुहुयाद्बुधः ।
समाने सर्वैरुद्धृत्य आहुतिः स्यात्समानतः ॥१२१
जलं पीत्वा तु तृप्यन्ति रेचयेच्च शनैः शनैः ।
ततोऽन्यद्द्रव्यमश्नीयात्पूरणायोदरस्य च ॥१२२
विधिं प्राणाग्निहोत्रस्य ये द्विजा नैव जानते ।
अन्नेन तु भुञ्जन्ति तेषां मुत्तमपानवत् ॥१२३
यो ज्ञात्वा तु विधिं भुङ्क्ते यथोक्तमिदमाचरेत् ।
इहामुत्र च पूज्यत्वं ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥१२४
त्रि सप्तकुल्समुद्धृत्य दातुरप्यक्षयं भवेत् ।
दातुरपि हि यत्पुण्यं भोक्तुश्चैव हि तत्फलम् ॥१२५
दाता चैव तु भोक्ता च तावुभौ स्वर्गगामिनौ ।
यो जानाति विधिं चेमं सभवेद्ब्रह्मवित्तमः ॥१२६
एकं पिबति गण्डूषं त्यजेदर्धं धरातले ।
स हत पितृ-दैवत्यमात्मानं नरकं व्रजेत् ॥१२७
रहस्यं सर्वशास्त्रेषु सर्वशास्त्रेषु दुर्लभम् ।
ज्ञानानामुत्तमं ज्ञानं न कस्यचित् प्रकाशयेत् ॥१२८
विप्राणामग्निहोत्रस्य ये द्विजा नैव जानते ।
ज्ञानानि योऽप्रकाश्यानि पुंसामविदुषां वदेत् ॥१२९
स प्रणाश्य फलं तेषामात्मानं नरकं नयेत् ।
योऽज्ञात्वा ह्यप्रकाश्यानि पुंसामविदुषां वदेत् ॥१३०
प्राणायामफलं हत्वा आत्मानं नरकं नयेत् ।
योऽश्नीयाद्विधिवद्विप्रः कृतपात्रपरिग्रहः ॥१३१

पूजितान्नमथाग् जुष्टं सापोशानं ससाक्षिकम् ।
वाग्यतो न्यस्तपात्रे च विप्र-क्षत्र-विशां क्रमात् ॥१३२
वाग्यतो न्यस्तपात्रस्त्रीन् मासानष्टावपि द्विजः ।
तस्य त्रिरात्रं पुण्यान्दिनेऽपि कथयो विदुः ॥१३३
चतुस्त्रिकोणं वृत्तं च विप्र-क्षत्र-विशां क्रमात् ।
प्राहुः परिहृतं सन्तस्तद्धीनान्नं तु राक्षसम् ॥१३४
गृह्णीयात्प्रागपोशानं तथा भुक्त्वा सकृत्स्वपः ।
अनग्नममृतं तत्स्याद्भुक्तमन्नं द्विजन्मनाम् ॥१३५
काले भुक्त्वा समुत्थाय प्रेक्ष्य विप्रं समीक्ष्य च ।
अहःपतिं तत्र स्थित्वा चिन्तयेद्बहु कृत्यकम् ॥१३६
भार्या भोजनवेलायां भिक्षां सप्ताऽथ पञ्च वा ।
दत्त्वा शेषं समश्नीयात्सापत्य-भृत्यकैः सह ॥१३७
निर्वर्त्य सकलं सापि किंचित्स्थित्वा सुखेन तु ।
स्वकीयरतिकार्येषु सापि स्यात्तत्परा पुनः ॥१३८
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां हुत्वा चैव हुताशनम् ।
किञ्चित्पथ्यं समश्नीयात्सायं प्रातरिति श्रुतिः ॥१३९
स्वाध्यायमभ्यसेत्किञ्चिद्यामद्वयं शयीत च ।
शयानो मध्यमौ यामौ ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥१४०
सुशयने शयीताथ एकान्ते च स्त्रियासह ।
गोपनं मैथुनादीनां वदन्ति मुनिपुङ्गवाः ॥१४१
ऋतुक्षपासु पुत्रार्थी आधानविधिना द्विजः ।
प्रसाद्य भस्मना योनिमिति मन्त्रनिदर्शनात् ॥१४२

कृत्वाऽऽधानविधानं तु स्त्रीयोगमभ्यसेत्पुनः।
मन्थेऽविकृतो योनौ विकाराद्विकृताः प्रजाः ॥१४३
ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय प्रातः सन्ध्यामुपक्रमेत्।
आसूर्यदर्शनात् प्रातः सायं चैवर्क्षदर्शनात् ॥१४४
बहिःसन्ध्यामुपासीत सम्प्राप्तावम्भसः सदा।
उपासिता बहिःसन्ध्या विशिष्टफलदा भवेत् ॥१४५
अनृतं मद्यगन्धं च दिवा मैथुनमेव च ॥
पुनाति वृषलस्यान्नं सन्ध्या बहिरुपासिता ॥१४६
सिन्दूरारुणभं भाति नभो यावद्वितारकम्।
उदयेऽस्तमये भानोस्तावत्सन्ध्येति शक्तिजः ॥१४७
आधानतो द्वितीये तु मासे पुंसवनं भवेत्।
सीमान्तोन्नयनं षष्ठे कार्यं मासेऽष्टमे ऽपि वा ॥१४८
जातस्य जातकर्म स्याद्विधिवच्छ्राद्धपूर्वकम्।
दिने चैकादशे नामकर्म स्यात् च द्विजन्मनाम् ॥१४९
तुर्ये निष्क्रमणं मासे षष्ठेऽन्नप्रासनं तथा।
चूडाकर्म तृतीयेऽब्दे कार्यं वा कुलधर्मतः ॥१५०
सर्वं क्रिया विमन्त्रं तु कार्यं कायविशुद्धये।
यस्य नस्युर्द्विजस्यैताः क्रियाश्चैव कथंचन ॥१५१
स व्रात्यःसन् परित्याज्यो द्विजो यस्माद् द्विजन्मनाम्।
मुञ्जमौर्णे-शणानां तु त्रिवृता रशना स्मृता ॥१५२
कार्पास-शणमेषौर्णान्युपवीतानि वर्णशः।
पलाश-वट-पीलूनां दण्डाश्च क्रमशः स्मृताः ॥१५३

कार्ष्णं च रौरवं वास्तमजिनानि द्विजन्मनाम्।
शिरो ललाट-नासान्ताः क्रमाद्दण्डाः प्रकीर्तिताः ॥१५४
अव्रणाः सत्वचो ऽदग्धा उक्ताः शुभकरा नृणाम्।
गायत्र्या त्रिष्टुप्-जगत्या त्रयाणामुपनायनम् ॥१५५
गायत्र्यासवितेति वा मुञ्जादिष्वपरेषु च।
तत्सवितुस्तां सवितुर्विश्वा रूपाणि वा क्रमात् ॥१५६
औपनायनिका मन्त्रा विप्रादीनामुदाहृताः।
ब्राह्मणो विप्रगेहेषु नृपस्तेषूत्तमेषु च ॥१५७
वैश्यो विप्र-नृपेष्वेषु कुर्याद्भिक्षां स्ववृत्तये।
एकान्नं न द्विजोऽश्नीयाद्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ॥१५८
भिक्षान्नं द्विजातीनामुपवाससमं स्मृतम्।
प्रतिग्रहो न भिक्षा स्यान्न तया परपाकता ।१५९
सोमपानसमा भिक्षा अतोऽश्नीत स भिक्षया।
भिक्षया यस्तु भुञ्जीत निराहारः स उच्यते ॥१६०
भिक्षामनभिशस्तेषु स्वाचारेषु द्विजेषु च।
भिक्षेत नित्यं क्रमशो गुरोः कुलं विवर्जयेत् ॥१६१
स्वसारं मातरं चापि मातृष्वसारमेव च।
भिक्षेत प्रथमो भिक्षां या चान्या न विमानयेत् ॥१६२
'भवति भिक्षां मे देहि' 'भिक्षां भवति देहि मे'।
'भिक्षां मे देहि भवति' क्रमेणैवमुदाहरेत् ॥१६३
द्वादशाब्दं व्रतं धार्यं षट्त्र्यब्दं तु श्रुतिम्प्रति।
आदित्याब्दे त्यजेत्तद्धै दत्त्वा तु गुरवे वरम् ॥१६४

त्रयस्तु स्नातकाः प्रोक्ता विद्याव्रतोपसेविनः ।
विद्यां समाप्य यः स्नायाद्विद्यास्नातक उच्यते ॥१६५
समाप्य च व्रतं यस्तु व्रतस्नातक उच्यते ।
यज्ञं समाप्य यः स्नाति स द्विनामाऽभिधीयते ॥१६६
द्वयं समाप्य यः स्नायात्स द्विनामाऽभिधीयते ।
अष्टैक-द्वादशाब्दानि सगर्भाणि द्विजन्मनाम् ॥१६७
मुख्यकालो व्रतस्यैव ह्यन्य उक्तो विपर्यये ।
द्विगुणाब्देषु कर्तव्या क्रमादुपनतिर्द्विजैः ॥१६८
हीनगायत्रिका व्रात्या उक्तकालादनन्तरम् ।
नाध्याप्या नैव चोद्वाह्या व्यवहारविवर्जिताः ॥१६९
न याज्या नार्यकार्येषु प्रयोज्यास्त इति श्रुतिः ।
क्लीबन्निर्लोम वक्त्रा ये निर्लोमदेह-वक्षसः ॥१७०
स्वोरस्काऽजपयाश्च अदेश्यास्तेऽपि गर्हिताः ।
येऽजस्रं विहितं कुर्युः प्राप्नुयुस्ते सदा शुभम् ॥१७१
दीर्घायुष्यमदारिद्र्यं सुप्रजात्वमरोगिता ।
अगर्हितत्वं लोकेऽत्र विदुरनिषिद्धकारिणः ॥१७२
क्षीणायुस्त्वं दरिद्रत्वमप्रजात्वं च रोगिता ।
गर्हितत्वं च लोकेषु विदुर्निषिद्धकारिणः ॥१७३
प्रातर्वा यदि वा सायं नाद्यादन्नमनर्चितम् ।
नानाद्यमनपोशानं शुभप्रेप्सुर्द्विजन्मना ॥१७४
आपोशानं विना नाद्यान्नाद्यादन्नमनर्चितम् ।
अनाद्यं न दिवा सायं शुभमिच्छन् समश्नुते ॥१७५

षोडशाब्दानि विप्रस्य द्वाविंशतिर्नृपस्य च ।
चतुर्विंशतिरन्यस्य व्रात्यास्ते स्युरतःपरम् ॥१७६
उपनेया न ते विप्रैर्नाध्याप्याः शूद्रधर्मिणः ।
व्यवहार्या नैव याज्या इति धर्मविदो विदुः ॥१७७
स्त्रीणामुद्वाह एको वै वेदोक्तः पावनो विधिः ।
स्त्री-पुंसोर्यत्र विन्यासस्तयोरन्योन्यमुच्यते ॥१७८
स्वस्मिन्यस्माद्बिभर्त्येषा पतिं बिभर्ति सोऽपि ताम् ।
अतो भार्या च भर्ता चेत्यत्र वेदो निदर्शनम् ॥१७६
पतिर्विशति यज्जायां गर्भो भूत्वेह मातरम् ।
तस्यां पुनर्नवो भूत्वा दशमे मासि जायते ॥१८०
जायोक्ता तेन भर्ता वै यदस्यां जायते पुनः ॥१८१
इयमाभवनं भार्या बीजमस्यां निषिच्यते ।
देवा ऊचुर्मनुष्यांश्च स्वभार्या जननी तु वः ॥१८२
आत्मना जायते ह्यात्मा सा चैव पतितारिणी ।
भार्या जाया जनन्येषा इति वेदे प्रतिष्ठिता ॥१८३
यस्मात्स त्राति पुन्नाम्नो नरकात् पुत्र उच्यते ।
सर्वां संसृतिमाहृत्य स याति ब्रह्मणैकताम् ॥१८४
पिता जातस्य पुत्रस्य पश्येच्चेज्जीवतो मुखम् ।
सर्वं तेन फलं प्राप्तमैहिकामुष्मिकं च यत् ॥१८५
किं दण्डैरजिनैस्तीर्थस्तपोभिः किं समाधिभिः ।
पुमांसः पुत्रमिच्छध्वं स वै लोके वदावदः ॥१८६

प्राणोऽन्नमस्मिन् शरण हि वासो रूपं हिरण्यं पशवो विवाहा ।
सखा च यज्वा कृपणश्च पुत्री ज्योति पर पुत्र इहाप्यमुत्र ॥१८७

स पुण्यकृत्तमो लोके यस्य पुत्राश्चिरायुष ।
विशेषेण हि धर्मज्ञा स परं ब्रह्म विन्दति ॥१८८
पुत्रेण प्राप्यते स्वर्गो जातमात्रेण तु ध्रुवम् ।
तस्मादिच्छन्ति सर्वे हि पशवोऽपि वयांसि च ॥१८९
जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुन ।
पुंत्रस्यापि च पुत्रत्वं यत्त्राति नरकार्णवात् ॥१९०
य पिता स तु पुत्र स्यात् जायैव हि जनन्यपि ।
न पृथक्त्वं विदुस्तज्ज्ञाश्चयोश्चाऽपरयोरपि ॥१९१

अयं हि पन्था पुरुषस्य तस्य ध्रुवं भवेत्पुत्रजन्मेह यस्य।
तद्वीक्ष्य चोर्ध्वं पशवो वयांसि पुत्रार्थिनो मातरमारुहन्ति ॥१९२

जनिष्यमाणानिच्छन्ति पितर स्वकुले सुतान् ।
कश्चिद्गत्वा गयायां नोऽन्नस्य पिण्डान् प्रदास्यति ॥१९३
यक्ष्यत्यन्योऽश्वमेधेन नीलं मोक्ष्यति गोवृषम् ।
एतच्चं पितृभि सर्वं पुत्रेभ्य सकल फलम् ॥१९४
शुद्ध शौर्यैकचित्तो वा प्राणान्मोक्ष्यति संयुगे ।
दानद्रो वा कुरुक्षेत्रे ज्ञानी चाथ भविष्यति ॥१९५
जीवतो वाक्यकरणात् क्षयाहे भूरि भोजनात् ।
गयायां पिण्डदानाच्च त्रिभि पुत्रस्य पुत्रता ॥१९६
पुच्छे शिरसि च शुक्ल शुक्लायाल्लोहित वपु ।
देवाग्नौ नीलोऽयमुत्सृष्ट पावनो वृष ॥१९७

धर्मं तथा शाश्वतमीशलोकम्
अत्रापि विद्वज्जनपूज्यतां च ॥२०८
वेदाः सहाङ्गैस्सपुराणविद्याः
शास्त्राणि चेद्यानि च तद्विहीनम् ।
कुलं न वै तान्यपि संस्मृतानि
भरं पवित्रं प्रवदन्ति वेदाः ॥२०९
येऽधीतवेदाः क्रियया विहीनाः
जीवन्ति वेदैर्मनुजाधमास्तान् ।
वेदास्त्यजेयुर्निधनस्य काले
नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः ॥२१०
आचारहीननरदेहगताश्च वेदाः
शोचन्ति किं नु कृतवन्त इतिस्म चित्ते ।
यस्मोऽभवद्वपुषि चास्य शुभप्रहीणे
स्थानं तदत्र भगवान् विधिरेव शोच्यः ॥२११
कर्तव्यं यत्नतः शौचं शौचमूला द्विजातयः ।
शौचाचारविहीनानां सर्वाः स्युर्निष्फलाः क्रियाः ॥२१२
तत्सद्भिर्द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ।
विण्मूत्रशोधनं बाह्यं चित्तशुद्धिस्तथाऽऽन्तरम् ॥२१३
मृद्भिरद्भिरनालस्यं तत्कर्तव्यं द्विजातिभिः ।
भावशुद्धिः परं शौचमाहुराभ्यन्तरं बुधाः ॥२१४
गन्धलेपापहं बाह्यं शौचमाहुर्मनीषिणः ।
यस्य पुंसस्तु तच्छ्रावं शौचैस्तस्य किमन्यकैः ॥२१५

वाङ्-मनो-जलशौचानि सदा येषां द्विजन्मनाम् ।
त्रिभिः शौचैरुपेतो यः स स्वर्ग्यो नात्र संशयः ॥२१६

स्त्रियं रिरंसुर्द्रविणं जिहीर्षुर्वधं चिकीर्षुर्मनुजः परस्य ।
विवक्षुरत्यन्तमवाच्यवाचं कथं स शुद्धिं समुपैति शौचात् ? ॥२१७

किं निष्कामस्य नारीभिः किं गतासोश्च भेषजैः ।
जितेन्द्रियस्य किं शौचैर्निष्फलं मूर्खदानवत् ॥२१८

न गतिर्मूर्खदानेन न तारोऽम्बुनि चाश्मनः ।
तस्मात्तस्य न दातव्यं सह दात्रा स मज्जति ॥२१९

यथा भस्म तथा मूर्खो विद्वान्प्रज्वलिताग्निवत् ।
होतव्यं च समिद्धेऽग्नौ जुहुयात् को नु भस्मनि ॥२२०

यथा शूद्रस्तथा मूर्खो शूद्रश्च भस्मवत्तथा ।
शूद्रेण सह संवासं मूर्खे दानं विवर्जयेत् ॥२२१

ग्रहीता यो न चेद्विद्वान् तं दाता रोहिको यथा ।
आत्मानं तारयेत्तं च नदीं वैतरणीं द्विजः ॥२२२

यो मूर्खो विशदाचारः षट्कर्माभिरतः सदा ।
स नयम् स्वर्गमात्मानं मूढाश्चैव न पीडयेत् ।

न विद्या न तपो यस्य ह्यादत्ते च प्रतिग्रहम् ।
निपातयन् स दातारमात्मानमप्यधो नयेत् ॥२२४

हेम-भूमि-तिलान् गाश्च अविद्वानाददाति यः ।
भस्मीभवति सोऽह्नाय दातु स्यान्निष्फलं च तत् ॥२२५

तस्मादविद्वान्नादद्यादल्पशोऽपि प्रतिग्रहम् ।
विपत्तत्वापरिज्ञानी विषेणाल्पेन नश्यति ॥२२६

सर्वं गवादिकं दानं पात्रे दातव्यमर्चितम् ।
विद्वद्भिर्न त्वपात्रे तु गतिमिच्छद्भिरात्मनः ॥२२७
हस्ति-कृष्णाजिनाद्यास्तु गर्हिता ये प्रतिग्रहाः ।
सद्भिस्त्यास्ताश्च गृह्णीयुर्गृह्णानास्तु पतन्ति ते ॥२२८
कृष्णाजिनप्रतिग्राही हयानां शुक्रविक्रयी ।
नवश्राद्धस्य यो भोक्ता न भूयः पुरुषो भवन् ॥२२६
यो गृह्णाति कुरुक्षेत्रे ग्रामं गां द्विगुणीं गजम् ।
नवश्राद्धान्नभुग्यश्च वर्ज्या निर्माल्यवद् द्विजाः ॥२३०
एते यान्त्यन्धतामिस्रं यावन्मनुसहस्रकम् ॥२३१
विप्रोऽथ वह्निश्च रवेश्च जाता कृष्णी च राज्ञश्च मुनीश गौश्च ।
काले सुपात्रे विधिना प्रदत्ता प्राप्नोति लोकत्रयमेतदुक्तम् ॥२३२
वेदविद्वान्सदाचारः सदा वसति सन्निधौ ।
भोजने चैव दाने च वर्जनीयो न सत्तमैः ॥२३३
अत्यासन्नानधीयानान्ब्राह्मणान्यो व्यतिक्रमेत् ।
भोजने चैव दाने च हिनस्त्यासप्तमं कुलम् ॥२३४
अनृचोऽपि निराधाराः प्रतिवासनिवासिनः ।
अन्यत्र हव्य कव्याभ्यां भोज्याः स्युरुत्सवादिषु ॥२३५
प्राप्तप्रतिग्रहाभावे प्राप्ताया वृद्धापदि ।
विप्रोऽश्नन्प्रतिगृह्णन्वा यतस्ततोऽपि नाघभाक् ॥२३६
गुर्वादिपोष्यवर्गार्थं देवार्थं च सर्वतः ।
प्रत्यादद्याद् द्विजाग्र्यस्तु भृत्यर्थमात्मनोऽपि च ॥२३७

न भोक्तव्यमभोज्यान्नं कन्द-मूलादिकं च यत्।
न पातव्यमपेयं च द्विजैरत्यन्तगर्हितम् ॥२४६
सत्यं युक्तं सदा ब्रूयाच्छनैर्धर्मं समाचरेत्।
यमान्सनियमान्कुर्याद्गार्हस्थ्यं व्रतमाचरन् ॥२५०
मातृ-पितॄनुपाध्यायान् गुरून्विप्रान्सदाऽर्चयेत्।
एताञ्छ्रेष्ठांस्तथा चान्यान्नित्यं विप्राभिवन्दनम् ॥२५१
दमं सेवेत सततं दानं दद्याच्च सर्वदा।
दयां च सर्वदा कुर्यात्तद्विना नरकाश्रयः ॥२५२
दाम्यन्तु सर्वदाऽऽत्मानं मनो दाम्यं सदा द्विजैः।
दयध्वमिति चैवैषा श्रुतिर्वाजसनेयिकी ॥२५३
यन्विदं (यत्त्रिधा) कारकं कुर्यात्स्तनयित्नुर्ध्वनि दिवि।
ददेद्वेति दमं दानं दयामिति च शिक्षयेत् ॥२५४
रसा रसैः समा ग्राह्या देया अपि च नान्यथा।
न रसैर्लवणं ग्राह्यं समतो हीनतोऽपि वा ॥२५५
तिला अपि समा देया धान्यैरन्यैर्द्विजातिभिः।
प्रपीड्या नैव यंत्रेषु ब्रूयुरेतन्मनीषिणः ॥२५६
तिलवत्सर्ववस्तूनि सस्नेहानि द्विजातिभिः।
अप्रपीड्यानि यंत्रेषु ब्रूयुरेतन्मनीषिणः ॥२५७
विक्रयव्यपदेशेन दुग्ध दध्यादिसर्पिषाम्।
शुश्रूष्यान्न तिरस्कुर्यादुपास्यान्नावधीरयेत् ॥२५८
लोभात्कुर्याद्द्विजन्मा य स तु शूद्रसमस्त्वहात्।
न निन्द्यांश्च समभ्यर्च्यान्न विक्रीणीत गर्हितान् ॥२५९

अदेयानि न वै दद्यादत्याज्यानि न वै त्यजेत् ।
अभाष्यांश्चैव भाषेत हीनाङ्गांश्च न क्षिपेत् ॥२६०
न संवदेत पित्राद्यैः पतिताद्यैर्न संविशेत् ।
न मतिं नीचवर्णाय दद्यादुच्छिष्टमेव च ॥२६१
मतिं शूद्रस्य यो दद्याद्यश्चैनं पर्युपासते ।
न किञ्चित्तस्य चाख्येयं व्रतादि नियमादिकम् ॥२६२
आचक्षाणस्तु तद्धर्मं नरकानौ प्रपद्यते ।
नाद्यादन्नं निषिद्धस्वं स्वप्याद्वा नार्द्ध रात्रिषु ॥२६३
वेदविद्याविताननि विक्रीणीत न कर्हिचित् ।
नापत्यानि रसाद्यानि भूवृत्ति चान्वये सति ॥२६४
नापः पिबेत् स्वपाणिभ्यां न च कण्डूतिमुद्भवेत् ।
विदिक्-प्रत्यगुदक्स्तु शयीताह्नि न सन्ध्ययोः ॥२६५
पादुकादि च पालाशं न वृक्षादिनिकृन्तनम् ।
नोत्सृज्यं ष्ठीवनाद्यं च कदाचिद्वै गवादिषु ॥२६६
पद्भ्यां स्पृश्यं गवाद्यं नो नोच्छिष्टं न च तद्गतिः ।
न लंघ्यं वत्स-तंत्र्यादि वाय्वग्न्योर्नान्तरा गतिः ॥२६७
न द्वयोर्विप्रयोर्नाम्न्योः सौरभेय्योः पति-स्त्रियोः ।
विप्राग्न्योर्विप्रपिण्डानां नोप्रोक्ष्णोर्विष्णु-तार्क्ष्ययोः ॥२६८
सौरभेयोर्जलाग्न्योश्च माहेयी-जलयोरपि ।
भानु-व्योमादिकानां तु न कुर्यादन्तरा गतिम् ॥२६९
भोजनादिषु नासक्तां पश्येन्न विगतांशुकाम् ।
न गच्छेत्स्त्रीं रजोयुक्तां न चाश्नीयात्तया सह ।
न गच्छेत्स्त्रीं रोगयुक्तां प्रसुप्याञ्च तया सह ॥२७०

उत्तरीयं विना नैव न नग्नो ऽध: शयीत च ।
न गेहे चैव मार्गादौ न निषिद्धकुसुमः ॥२७१
नोपगर्ह्य सुराचादि न च विप्रागृहान्तिके ।
अतिकालातियाने च शुभमिच्छन्विवर्जयेत् ॥२७२
ज्येष्ठेन्द्रचाप-भद्राख्या मूलनाम्ना न निर्दिशेत् ।
इन्द्रचापं धयन्तीं गौनं ख्यातव्ये परस्य ते ॥२७३
वर्जयेद्धावनं चैव पादयोः कांस्यभाजने ।
पैशुन्यं मर्मभेदं च न वदेन्म्लेच्छभाषितम् ॥२७४
प्राकृतं च कुशास्त्राणि पाषण्डं हैतुकानि च ।
न श्रोतव्यानि विप्रेण यातनाकारणानि च ॥२७५
न करं मस्तके दद्यान्मस्तकं न करे तथा ।
न जानुनोः शिरो धार्यं नाऽप्रावृतशिरा भ्रमेत् ॥२७६

कदर्यचोरा

योऽन्नं याद्रूपिकस्याद्याजापालादिकस्य च।
अन्यस्यापि निषिद्धस्य सोऽनन्तं नरकं व्रजेत् ॥२८७
पाणिगृहीतभार्यायां सत्यां यस्तु नराधमः।
शूद्रीहस्तेन भुञ्जीत पतितः स सदैव तु ॥२८८
त्यक्ता येनोढभार्या तु त्यक्तः स पितृ दैवतैः।
त्यक्तो देवैः स पापीयाच्छूद्रादप्यधमः स्मृतः ॥२८९
यः शूद्रीं भजते नित्यं शूद्री तु गृहमेधिनी।
वर्जितः पितृदेवैस्तु रौरवं यात्यसौ द्विजः ॥२९०
यः शूद्र्यां च स्वयं जातो ह्यन्यस्यां सोऽपि वै पुनः।
अन्यस्यां च पुनः सोऽपि किमस्य प्रेत्य चिन्तनम् ॥२९१
सर्वान् भुञ्जीत नरकान्विशतिं स्वेकवर्जितान्।
रौरवादीन्क्रमेणैव पापिष्ठो यावदम्बरम् ॥२९२
हेमन्तशिशिरर्त्वोश्च प्रोष्ठपद्याः परस्य च।
पञ्चस्वपरपक्षेषु कार्याः साग्निभिरष्टकाः ॥२९३
हेमन्ते शिशिरे चैका एकैकाथ तथा परा।
प्रोष्ठपद्यां द्विजास्तिस्रो ह्यष्टका इति केचन ॥२९४
दर्शश्च पौर्णमासश्च तथैवाऽऽग्रयणद्वयम्।
चातुर्मास्यव्रतान्येव कार्याणि साग्निकैर्द्विजैः ॥२९५
अनूचानकृतं कुर्युः सदैव व्रतचारिणः।
अनूचानकुले जाताः सदैव व्रतचारिणः।
अग्निहोत्ररता नित्यं माता पित्रादिपूजकाः ॥२९६

प्रतिग्रहनिवृत्ताश्च जप होमपरायणाः ।
वृत्तवन्तश्च ये विप्राः स्नातकास्ते प्रकीर्तिताः ॥२९७
सङ्क्रान्तिरर्कवारश्च व्यतीपातो युगादयः ।
शुभर्क्ष-दिन-योगेषु कार्याः साग्निभिरग्रकाः ॥२९८
न शूद्राद्भिक्षितेनैतत्कर्तव्यं मर्म सद्‌द्विजैः ।
चण्डालत्वमवाप्नोति यज्ञार्थं शूद्रयाचकः ॥२९९
लब्धं यज्ञाय यो विप्रो न दद्याद्यज्ञकर्मणि ।
स वायसोऽथ वा गृध्रः काको वाऽथ प्रजायते ॥३००
शिलोञ्छवृत्तिर्विप्रः स्यादथ चैकाहिकाशनः ।
त्र्यहाहिकाशनो वाऽस्यात् कुम्भीकुशूलधान्यकः ॥३०१
पूर्वपूर्वतरः श्रेयान् तेषां सद्भिः प्रकीर्तितः ।
सोमपः स्यात् त्रिवर्षान्नस्तत्पूर्वकृत्समाशनः ॥३०२
सोमेष्टिं पशुयागं च कुर्वीत प्रतिवासरम् ।
इष्टिर्वैश्वानरी वा तु कर्तव्यैतदसम्भवे ॥३०३
सत्यामर्थस्य सम्पत्तौ न कुर्याद्धीनदक्षिणम् ।
तत्कृतं च भवेद्व्यर्थं प्राप्नुयात्पशुयोनिताम् ॥३०४
श्रद्धापूतं प्रदातव्यं पात्रे दानं समर्चितम् ।
याचितेऽपि हि दातव्यं पूतं च श्रद्धया धनम् ॥३०५
शूद्रान्नं ब्राह्मणोऽश्नन्वै मासं मासार्धमेव च ।
तद्योनावेव जायेत सत्यमेतद्विदुर्बुधाः ॥३०६
आशूद्रस्यशूद्रान्नो मृतः श्वाचोपजायते ।
द्वादश दश षाष्टौ च गृध्र शूकर पुल्कसाः ॥३०७

उदरस्थितशूद्रान्नो ह्यधीयानोऽपि नित्यशः ।
जुह्वन्नापि जपन्वापि गतिमूर्ध्वां न विन्दति ॥३०८
अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नं पयः स्मृतम् ।
वैश्यस्य चान्नमेवान्नं शूद्रान्नं रुधिरं स्मृतम् ॥३०९
आमं शूद्रस्य पक्वान्नं पक्वमुच्छिष्टमुच्यते ।
तस्मादामं च पक्वं च शूद्रस्य परिवर्जयेत् ॥३१०
तस्माच्छूद्रं न भिक्षेरन्यज्ञार्थं सद्द्विजातयः ।
श्मशानमेव यच्छूद्रस्तस्मात्तं परिवर्जयेत् ॥३११
कणानामथ या भिक्षां कुर्याच्चेद्वृत्तिकर्शितः ।
सच्छूद्राणां गृहे कुर्वन् तत्पापेन लिप्यते ॥३१२
विशुद्धान्वयसञ्जातो निवृत्तो मांस-मद्यतः ।
द्विजभक्तिर्वणिग्वृत्तिस्सच्छूद्रः सम्प्रकीर्तितः ॥३१३
उदक्यास्पृष्टं सङ्घुष्टं चाह्वितं चाप्युदक्यया ।
श्वस्पृष्टं शकुनोत्सृष्टं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥३१४
उच्छिष्टं च पदास्पृष्टं-शुष्कं च पतितेक्षितम् ।
पर्युषितं चिरस्थं च केश-कीटाद्युपाहतम् ॥३१५
पतत्र्युच्छिष्टं गवाघ्रातं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ।
नाश्नीयुरेतदशनं शमिच्छन्तो द्विजातयः ॥३१६
शूद्राणामपि भोज्यान्नाः स्युः सीरि-नापितादयः ।
सस्नेहमशनं भोज्यं चिरस्थमपि यद्भवेत् ॥३१७
अनाक्रा अपि भोज्याः स्युः मधुःश्रितयवादयः ।
गर्भिण्यस्सूतिकया गवाद्यैर्वर्जयेत्पयः ॥३१८

स्त्रीणामेकशफोष्ट्रीणां तथारण्यकमाविकम् ।
प्रसूता ब्राह्मणी गौश्च महिष्योजास्तथैव च ॥३१९
दशरात्रेण शुद्धयन्ति भूमिसस्थं नवं पयः ।
शाकादिकं च विट्जातं कवकानि च वर्जयेत् ॥३२०
मांसं कीटादिभिर्जुष्टं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ।
ये वयः क्रव्यमश्नन्ति तथा विष्ठाभुजश्च ये ॥३२१
शुक-टिट्टिभ-दात्यूहाः कपोत-पिक-सारिकाः ।
सेधाद्याश्च पञ्चनखान् सिंहाद्यान्मत्स्यकांस्तथा ॥३२२
धर्मशास्त्रोदितानद्यात्सर्वांकारांश्च वर्जयेत् ।
भक्ष्यं प्राणात्यये मांसं श्राद्ध-यज्ञोत्सवेष्वपि ॥३२३
कृत्वा च विधिवच्छ्राद्धं पश्चात्तत् स्वयमश्नुते ।
नाद्यादविधिना मांसं मृत्युकालेऽपि धर्मवित् ॥३२४
यदैवाव्ययसम्पत्तिस्तदैवामन्त्रयेद् द्विजान् ।
यत्र वा तत्र वा काले नाद्यं त्वविधिनाऽऽमिषम् ॥३२५
भक्षयन्नरके तिष्ठेत्पशुलोमसमाः समाः ।
गृहस्थोऽपि हि यो नाद्यात्पिशितं तु कदा च न ॥३२६
स साक्षान्मुनिभिः प्रोक्तो योगी च ब्रह्मलोकगः ।
न स्वयं च पशुं हन्याच्छ्राद्धकालेऽप्युपस्थिते ॥३२७
क्रव्यादैः सारमेयाद्यैर्हतं मृगादिमाहरेत् ।
एतच्छाकवदश्नन्ति पवित्रं द्विजसत्तमाः ॥३२८
समर्थो यस्य यस्तु स्यादन्नं दत्वातु देहिनाम् ।
सतामिति निरातङ्को लोकद्वयं निगद्यते ॥३२९

अन्नादेरपि भक्ष्यस्य स्नेह मद्या ऽऽमिषस्य च ।
महाफला निवृत्ति स्यात्प्रवृत्तिः स्वर्गसाधना ॥३३०
एकोऽब्दशतमश्वेन यजेत पशुना द्विजः ।
नान्यस्तु मांसमश्नाति स्वर्गप्राप्तिस्तयोः समाः ॥३३१
हेमराजत-शङ्खाना पात्राणां वैणवस्य च ।
चर्मणो रज्जुवस्त्राणा शुद्धिर्जायेत वारिणा ॥३३२
स्फ्याद्दीनां यज्ञपात्राणां धन्याना वाससामपि ।
अन्येषा चयरूपाणा प्रोक्षणात् शुद्धिरिष्यते ॥३३३
मार्जनान्मखपात्राणा हस्तेन मखकर्मणि ॥
अम्भोजपत्रकैरुष्णैः शुद्ध्यतः कौशिकाविके ॥३३४
श्रीफलैरंशुपट्टानां सारिष्टैः कुतपस्य च ।
मृण्मयानि पुनः पाकैः क्षौमाणि सितसर्षपैः ॥३३५
शुद्ध्येत कारुहस्तस्थं पण्यं यत्स्यात्प्रसारितम् ।
भैक्ष्यं च प्रोक्षणाच्छुद्ध स्पृष्टिः साक्षान्न यस्य तु ॥३३६
स्त्रीमुखं च सदा शुद्धं भूमिर्लेपविवर्जिता ।
अपरा दहनाद्यैश्च गृहं मार्जन-लेपनैः ॥३३७
द्रवद्रव्याणि शुद्ध्यन्ति वह्निना प्लावनेन च ।
क्रव्यादाद्यैर्हतं मांसं सर्वदा शुचि कीर्तितम् ॥३३८
तृप्तिकृत्सौरभेयाश्च स्वभावस्थं महीगतम् ।
वदन्ति सूरयो वारि पवित्रमिव सर्वदा ॥३३९
गौर्वह्नि-मानवच्छाया जलमश्वं वसुन्धरा ।
विप्रुषो मक्षिका वायुर्न दुष्यन्ति कदा च न ॥३४०

शुचिः प्रस्थापने वत्सो अजाश्वौ मुखतस्तथा।
शुचिः प्रस्रवणे वत्सस्तथाजाश्वौ मुखे शुची।
न तु गौर्मुखतो मेध्या न च गोमुखजा मलाः ॥३४१
सोम-भास्करयोर्भाभिः पथशुद्धिः प्रकीर्तिता।
ओष्ठाधरौ श्मश्रुकरौ सस्नेहौ भोजनादनु ॥३४२
नदुष्येच्छक्तिजः प्राह बाल-वृद्धौस्त्रियोमुखम् ॥३४३
स्नात्वा पीत्वा च भुक्त्वा च सुप्त्वा तप्त्वा तथैव च।
गत्वा रथ्यादिके चैव शुद्धिराचमनेन तु ॥३४४
नापो मूत्र-पुरीषाभ्यां नाग्निर्दहति कर्मणा।
न स्त्री दुष्यति जारेण न विप्रो वेदकर्मणा ॥३४५

पद्माश्मलोहाः फल-काष्ठ-चर्म-
भाण्डरथतोयैः स्वयमेव शौचात्।
पुसा निशास्त्वभ्रति चाऽसस्नाता
स्त्रीणां च शुद्धिर्निहिता सदापि ॥३४६

नभसः पंचदश्यां तु पंचम्यां च तथाऽपरे।
नभस्यस्य चतुर्दश्यामुपाकर्म यथोदितम् ॥३४७
तद्विदः केचिदिच्छन्ति नभसः श्रवणेन तु।
हस्तेन वाथ पञ्चम्यामध्यायानां वदन्ति तत् ॥३४८
यच्छाखयोपनीतः स्यात् ब्रह्मचारी द्विजोत्तमः।
तच्छाखाविहितं तस्य उपाकर्मादि कीर्त्यते ॥३४९
अतो वेदाधिकारित्वं वेदपाठस्य कीर्तने।
अनुपाकृतविप्रादेर्वेदाभ्ययनदुष्कृतम् ॥३५०

आत्मन्यशुचि देशे तु विद्युत्स्तनितरोहिते ।
मृधे च कलहे देशविप्लवे लोकविग्रहे ॥३६२
पांशुवर्षेऽम्बुमध्ये च दिग्दाह-ग्रामदाहयोः ।
नीहारे च भवेद्विद्वान्सन्ध्ययोरुभयोरपि ॥३६३
धावंश्च न पठेद्विद्वान्पूतिगन्धस्तथैव च ।
विशिष्टे चागते गेहे गात्रासृङ्निर्गमे तथा ॥३६४
भोजनायोपविष्टस्य ह्युत्थितस्यार्द्रपाणिनः ।
वान्तेऽऽयान्ते तथाऽजीर्णे महारात्रेऽतिमारुते ॥३६५
रजोवृष्टौ च यानादौ आरूढस्य तथा द्विजः ।
एतानन्यांश्च तत्कालाननध्यायान्विदुर्बुधाः ॥३६६
यो वर्जयेदनध्यायान्वेदाध्ययनकृद्द्विजः ।
भवन्ति तस्य सफला वेदाः प्रोक्ताः फलप्रदाः ॥३६७
ये चैतेषु पठंत्यज्ञाः पाठलोभेन लोभिताः ।
न शाश्वता भवेद्विद्या निष्फला चैव जायते ॥३६८
यः पठेद्विधिवद्वेदान् व्रती चेन्द्रियसंयमी ।
ब्रह्मत्वमिह लोकेऽपि ऐश्वर्यसुखभाग्भवेत् ॥३६९
जनानां शृण्वतां मार्गे गच्छन्यस्तु पठेद्द्विजः ।
निष्फलास्तस्य वेदाश्च वेदविप्लवदोषभाक् ॥३७०
यः पठेत्स्वरहीनं तु लक्षणेन विवर्जितम् ।
सङ्कीर्णग्राममध्ये तु स भवेद्वेदविप्लवी ॥३७१
ये स्वाध्यायमधीयीरन् अनध्यायेषु लोभतः ।
वज्ररूपेण ते मन्त्रास्तेषां देहे व्यवस्थिताः ॥३७२

॥ सप्तमोऽध्यायः ॥

अथ श्राद्धवर्णनम् ।

श्राद्धं वृद्धावचन्द्रे गजच्छाया-ग्रहण-मघाक्रमे ।
व्यतीपात-विषुवत्कृष्णपक्ष-पात्रागमेषु ॥१
अष्टका ह्ययने द्वे च श्राद्धम्प्रति यदा रुचिः ।
पुण्यः श्राद्धस्य कालोऽयमृषिभिः परिकीर्तितः ॥२
युगादिषु च कर्त्तव्यं मन्वन्तरादिकेऽपि च ।
श्राद्धकालो ह्ययं प्रोक्तो मन्वाद्यैर्धर्मकर्तृभिः ॥३
नवान्ने नवतोये च नवच्छन्ने तथा गृहे ।
नावेक्षवेषु चेच्छन्ते पितरो हि मघास्विव ॥४
काणः पौनर्भवो रोगी पिशुनो वृद्धिजीविकः ।
कृतघ्नो मत्सरो क्रूरो मित्रभुक् कुनखी गदी ॥५
चित्रप्रजननः श्वित्री-श्यावदन्तावकीर्णिनः ।
हीनाङ्गश्चातिरिक्ताङ्गो विघ्नः परनिन्दकः ॥६
क्लीवा-ऽभिशस्त-वाग्दुष्ट-भृतकाध्यापकास्तथा ।
कन्यादूषी वणिग्वृत्तिर्विनापिः सोमविक्रयी ॥७
भार्याजितोऽनपत्यश्च कुण्डाशी कुण्डगोलकः ।
पित्रादित्यागकृत्स्तेनो वृषलीपति-रञ्जकौ ॥८
अनुक्तवृत्तिस्त्यक्ताग्निः परपूर्वापतिस्तथा ।
अजापालो माहिषिकः कर्मदुष्टाश्च निन्दिताः ॥९

यो ऽसत्प्रतिग्रहग्राही यश्च नित्यं प्रतिग्रही ।
ग्रहसूचक-दूतौ च पितृश्राद्धेषु वर्जिताः ॥१०
एकादशाहे भुञ्जन्तः शूद्रान्नरससंयुताः ।
गुरुतल्पगो ब्रह्मघ्नो यस्य चोपपतिर्गृहे ॥११
प्रेतस्पृक् तैलनिर्णेक्ता बहुयाजक-याचकौ ।
बक-काकविडाला-ऽश्व-शूद्रवृत्तिश्च गर्हितः ॥१२
वाग्दुष्ट-बालदमकौ नित्यमप्रियवाक् च यः ।
आसक्तो मृतकामादावतिवाक् चैव दूषितः ॥१३
निराचारश्च ये विप्राः पितृ-मातृविवर्जिताः ।
विद्वांसोऽपि हि नाभ्यर्च्याः पितृश्राद्धेषु सत्तमैः ॥१४
न वेदैः केवलैर्वापि तपसा केवलेन वा ।
सद्वृत्तैरेव सा प्रोक्ता पात्रता ब्राह्मणस्य च ॥१५
यत्र वेदास्तपो यत्र यत्र वृत्तं द्विजाग्रगे ।
पितृश्राद्धेषु तं यत्नाद्विद्वान्विप्रं समर्चयेत् ॥१६
वेदशास्त्रार्थविच्छान्तः शुचिर्धर्ममनाः सदा ।
गायत्रीब्रह्मचिन्ताकृत्पितृश्राद्धेषु पावनः ॥१७
रथन्तरं बृहज्ज्येष्ठसामवित्त्रिसुपर्णकः ।
त्रिमधुश्चापि यो विप्रः पितृश्राद्धेषु पूजितः ॥१८
मातामहश्च दौहित्रो भागिनेयोऽथ मातुलः ।
मातृस्वस्रेयतज्ज्ञश्च तथा मातुलजोऽपि वा ॥१९
जामाता श्वशुरो बन्धुर्भार्याभ्राता च तत्सुतः ।
सुवृत्ताश्च सदाचाराश्चैते श्राद्धेषु पावनाः ॥२०

ऋत्विग्गुरुरुपाध्याय आचार्य श्रोत्रियोऽपर ।
एते श्राद्धेषु वै पूज्या ज्ञाति-सम्बन्धि-बान्धवा ॥२१
अग्निहोत्री च यो विप्र आवसथ्याग्निकोऽपि च ।
पितृ-मातृपरावेतौ भोक्तव्यौ हव्य-कव्ययो ॥२२
कृष्येकवृत्तिजीवी यो भक्तो मात्रादिकेषु च ।
षट्कर्मनिरत पूज्यो हव्य-कव्ये सदैव हि ॥२३
क्षत्रवृत्ति सदाचारो मात्रादिभक्तितत्पर ।
शुचि षट्कर्मयुक्तश्च हव्य-कव्येषु पूजित ॥२४
युगानुरूपतो यस्तु विद्याचारादिसंयुत ।
स पूज्योऽनभिशस्तश्च षट्कर्मनिरतो द्विज ॥२५
इत्युक्तगुणसम्पन्नान्ब्राह्मणान्पूर्ववासरे ।
निमन्त्रयेत तान् भक्त्या नियोगाख्यानपूर्वकम् ॥२६
सव्येन देवतार्थं तु पित्रर्थमपसव्यवान् ।
ततस्तैश्चरितव्यं स्यादुक्तं पितृव्रतं द्विजै ॥२७
जितेन्द्रियैस्तु भाव्यं स्यादहोरात्रमतन्द्रितै ।
तस्मिन्नहनि प्रातर्वा यत्र श्राद्धमुपस्थितम् ॥२८
निमन्त्रयेत तान्भक्त्या तैश्च भाव्यं जितेन्द्रियै ।
विप्रोर -पार्श्व-पृष्ठस्था पितृ-मातामहादय ॥२९
भुञ्जन्ति क्रमश श्राद्धे तथा पिण्डाशिनोऽपि च ।
निमन्त्रितो द्विज श्राद्धे न शयीत स्त्रियासह ॥३०
अध्वानं न तु वै यायान्न ब्रूयादनृतं वच ।
नाधीयीत दिवा स्वापं न कुर्वीत न संवदेत् ॥३१

न म्लेच्छ-पतितैः सार्धं न वदेच्च निषिद्धकम् ॥
प्राङ्मुखौ दैविकौ विप्रौ पित्र्याश्चय उदङ्मुखाः ॥३२
एकैको वोभयत्र स्यादसम्पत्ताविति क्रमः ।
पात्रं वा दैविकं कृत्वा विप्र एकस्तु पैतृके ॥३३
इति वा निर्वपेच्छ्राद्धं निर्धनश्चान्यदाचरेत् ।
गत्वारण्यममानुष्यमूर्ध्वबाहुर्यिरौत्यदः ॥३४
निरन्नो निर्धनो देवाः पितरो माऽनृणं कृथाः ।

न मेऽस्ति वित्तं न गृहं न भार्या
श्राद्धं कथं वः पितरः करोमि ।
वने प्रविश्येह रतं मयोच्चैर्
भुजौ कृतौ वर्त्मनि मारुतस्य ॥३५
श्राद्धर्णमेतद्भवतां प्रदत्तं
मह्यं दयध्वं पितृदेवताद्याः ।
आख्याय चोत्क्षिप्य भुजावितस्ततो
दिवा च रात्रिं समुपोष्य तिष्ठेत् ॥३६
भवेन्नरस्तेन कृतेन तेषा-
मृणेन मुक्तः पितृदेवतानाम् ।
निर्वित्त-निर्भाग्य-निराश्रयाणां
श्राद्धस्य मार्गः कथितो मुनीन्द्रैः ॥३७

मयाऽऽख्यातं दरिद्रेण वः पितरः श्राद्धदेवताः ।
श्राद्धर्णस्य विमुक्तोऽहं महिताः पितरो मया ॥३८

कृतोपवासस्तत्राह्नि श्राद्धर्णान्मुच्यते द्विजः।
एतद्यापि न यः कुर्यात्पितरस्तेन वै हताः ॥३९
सम्पत्तावर्थ-पात्राणामेकैकस्य त्रयस्त्रयः।
पित्रादेर्ब्राह्मणाः प्रोक्ताश्चत्वारो वैश्वदैविके ॥४०
द्वौ वापि दैविके विप्रौ चैकैको वा न दोषभाक्।
स्यान्मातामहिकेऽप्येवमेकोऽपि वैश्वदैविके ॥४१
नत्वैवैकं तु सर्वेषामाश्वलायनमतस्थितः।
पितॄणामर्चयेद्विप्रमत्रपिण्डा निदर्शनम् ॥४२
न मातामहिकं श्राद्धं श्रौतमुक्तं तु साग्निकैः।
अनग्निकस्तु तत्कुर्यादिति केचिन्मतं विदुः ॥४३
साग्निकैरपि कार्यं स्याच्छ्राद्धं मातामहं द्विजैः।
पद्दैवत्यमिति ह्येके एके तु पार्वणद्वयम् ॥४४
अपुत्रस्य पितृव्यस्य तत्पुत्रैर्भ्रातृजो भवेत्।
स एव तस्य कुर्वीत पिण्डदानोदकक्रियाः ॥४५
पार्वणं तेन कार्यं स्यात्पुत्रवद्भ्रातृजेन तु।
पितृस्थानेषु तं कृत्वा शेषं पूर्ववदाचरेत् ॥४६
श्राद्धं पत्यापि कार्यं स्यादपुत्रायास्तु योषितः।
तस्यापि हि तया कार्यमेकत्वं हि तयोर्यतः ॥४७
भ्रातुर्ज्येष्ठस्य कुर्वीत ज्येष्ठो भ्राताऽनुजस्य च।
दैवहीनं तु तत्कुर्यादिति धर्मविदो विदुः ॥४८
पितुः पुत्रेण कर्तव्या पिण्डदानोदकक्रिया॥
पुत्राभावे तु पुत्री च तदभावे सहोदरः ॥४९

मित्रादीनां च कर्तव्यं समीहन्ते यतोऽप्यमी।
नावज्ञेयास्तु ते सर्वे कृते तु स्यान्महाफलम् ॥५०
पितामहस्तदन्यो वा यस्य जीवन् भवेद्द्विजः।
प्रत्यक्षास्तेऽपि वै पूज्याः संस्थित्यर्थं यतश्च सन् ॥५१
विद्यमानत्रयाणां स्यात्प्रत्यक्षः पूज्य एव सः।
गौतमस्य मतं ह्येतदिति वासिष्ठजोऽब्रवीत् ५२
विद्यमाने तु पितरि श्राद्धं कर्तुमुपस्थितः।
पितृवत्पितृपित्रादेः कुर्याच्छ्राद्धमसंशयम् ॥५३
पुत्रिकायाः सुतः श्राद्धं निर्वपेन्मातुरेव सः।
तत्पितुर्निर्वपेत्तस्मात्तृतीयं तु पितुःपितुः ॥ ५४
अत एव द्विजः पुत्रीमुद्वहेन्न कथं च न।
उद्वोढुः पुत्रः पुत्रोऽसौ पुत्रोऽसौ मातुरेव हि ॥५५
पुत्रश्च दुहितुःपुत्रः समौ तौ धार्मिके पथि।
अर्थाहृतौ च विप्रोक्तौ तुल्यौ तौ शक्तिजोऽब्रवीत् ॥५६
मुख्यं यथा पितुःश्राद्धं तथा मातामहस्य च।
पुत्र दौहित्रयोर्लोके विशेषो नोपपद्यते ॥५७
दौहित्रः पावनः श्राद्धे कालस्तु कुतपस्तथा।
तथा कृष्णास्तिला विद्धत्रिति शास्त्रविदो विदुः ॥५८
काम्यमाभ्युदयं चैव द्विविधं पार्वणं स्मृतम्।
यथाकामं तु काम्यं स्याद्वृद्धावभ्युदये स्मृतम् ॥५९
क्षत्रियायां [redacted] यो जातो वैश्यायां च तथा सुतः।
ब्राह्मणस्य पितुस्तौ तु निर्वपेतां द्विजाग्र्यवत् ॥६०

क्षत्रियस्य सुतश्चैव तथा वैश्यसुतोऽपि च ।
भृतान्नेन द्विजांस्तर्प्य श्राद्धद्वयं च निर्वपेत् ॥६१
आमान्नेन तु शूद्रस्य तूष्णीं च द्विजपूजनम् ।
कृत्वा श्राद्धं तु निर्वाप्य सजातीनाशयेत्तथा ॥६२
यः शूद्रो भोजयेद्विप्रांश्वकृतपाकाशनेन तु ।
स तद्विप्रकृतैनोभिर्लिप्यते शक्तिजोऽब्रवीत् ॥६३
शूद्रपाकं द्विजेभ्यश्च विभवान्धो ददाति यः ।
कृमी भवति पाताले स युगानेकविंशतिम् ॥६४
भोजितेन तु विप्रेण यत्पापं तस्य जायते ।
तेनासौ लिप्यते मूढो य शूद्रो भोजयेद्द्विजान् ॥६५
योऽहंमन्यो द्विजाश्चांस्तु शूद्रश्चितेन भोजयेत् ।
स गच्छेन्नरकं घोरं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥६६
यत्किंचित्किल्बिषं विप्रे कृतपूर्वं तु तिष्ठति ।
तेनासौ लिप्यते पापी यः शूद्रो भोजयेद्द्विजान् ॥६७
शूद्रोच्छिष्टं तु यो भुङ्क्ते मतिपूर्वं द्विजाधम ।
कृमित्वं याति विष्ठायां युगानि ह्येकविंशतिः ॥६८
शूद्रोच्छिष्टं तु यो भुङ्क्ते पश्चाहानि द्विजाधमः ।
स तद्विष्ठाकृमित्वं तु प्राप्नोति हि शतं समाः ॥६९
अतो न भोजयेद्विप्रान्निर्वपेन्नैव पूजयेत् ।
शूद्रान्नं भोजनायुक्तं इति पाराशरोऽब्रवीत् ॥७०
न भोजयेत् स्त्रियं श्राद्धे यद्यपि व्रतचारिणीम् ।
पात्रं तस्यै समर्प्यं स्यादिति धर्मविदब्रवीत् ।
द्विजन्मानो न कुर्वीरंश्छ्राद्धमामाशनेन तु ॥७१

यदैव स्युः प्रवासस्था भार्या यत्र न सन्निधौ ।
व्यवधानेन भार्याया ग्रहणे पुत्रजन्मनि ।
कुर्यादामाशनश्राद्धमिति पाराशरोऽब्रवीत् ॥७२
अग्नौकरणपिण्डांश्च कुर्यादामाशनेन तु ।
सलिलैर्दधिमध्वाज्यसम्पृक्तैः सगुडैरपि ॥७३
यथार्थं संस्कृतान्नेन द्रव्यं वापि च निर्वपेत् ।
जलेन पयसा वापि न स्यादश्राद्धकृद्यथा ॥७४
आमान्नेन द्विजैः कार्यं न कदाचिदपि द्विजाः ।
श्रपयित्वा द्विजैकस्तु तथापि पाकमाश्रयेत् ॥७४
न कुर्यात्परपाकेन नैकपाकेन तु द्वयम् ।
नैकश्राद्धे द्वयं कुर्यान्न च कुर्यात्पराग्रभुक् ॥७५
पित्रादीनां सगोत्रा ये तथा मातामहस्य च ।
तेषामेकेन पाकेन कार्यं पिण्डविवर्जितम् ॥७६
केचित्सापिण्ड्यमिच्छन्ति समगोत्रतयाऽनघ ।
अपि मातामही न स्याद्भिन्नगोत्रतया तथा ॥७७
पृथक्कर्तुमशक्यं स्यादर्थ-पात्राद्यसम्भवे ।
अवश्यं तत्र कर्तव्यमेकदैवमतः श्रयेत् ॥७८
येषां नोद्वाहसंस्कारा ह्यन्यसंस्कार संस्कृताः ।
साङ्कल्पिकं भवेत्तेषां श्राद्धं कार्यं मृतेऽह्नि ॥७६
केचित्सापिण्ड्यमिच्छन्ति ब्रह्मसंस्कारवत्तया ।
आद्यो हि ब्रह्मसंस्कारस्तस्मात्पिण्डः प्रदीयते ॥८०

पर्वस्वपि निमित्तेषु कर्तव्यं पिण्डसंयुतम् ।
पितणो त्रिविधा यस्माद्वृतिः प्रोक्ता मुनीश्वरैः ॥८१
वैश्वदेवः सदा कार्यो श्राद्धे च समुपस्थिते ।
पाकशुद्ध्यर्थ मेवैतत्पूर्वमेव विधीयते ॥८२
वैश्वदेवोमतश्चैव श्राद्धकाले विशेषतः ।
पाकशुद्धिस्तु विज्ञेया भुक्तोच्छिष्टं तु वर्जयेत् ॥८३
सम्प्राप्ते पार्वणश्राद्धे एकोद्दिष्टे तथैव च ।
अग्रतो वैश्वदेवः स्यात् पश्चादेकादशेऽहनि ॥८४
एकोद्दिष्टे विशेषेण प्रागेव द्विजपूजनम् ।
कालस्तु कुतपस्तस्य रौहणः पार्वणस्य च ॥८५
वामतश्चासनं दद्यात्पितृकार्येषु सत्तमः ।
दैविकं दक्षिणं तद्वदिति पाराशरोऽब्रवीत् ॥८६
आसने चासनं दद्याद्वामे वा दक्षिणेऽपि वा ।
पितृकार्येषु वामं तु दैवे कर्मणि दक्षिणम् ८७
पितृश्राद्धेषु यो दद्याद्दक्षिणं दर्भमासनम् ।
नाश्नन्ति पितरस्तस्य सार्धानि वत्सराणि षट् ॥८८
तस्माद्वामत एवात्र पितृकर्मणि चासनम् ।
दैविके दक्षिणं तद्वदिति वासिष्ठजोऽब्रवीत् ॥८९
कुत्र काले च कर्तव्यं श्राद्धं तस्यैतकं प्रभो ! ।
वदस्व निश्चयं तत्र विवदन्त्यपरेऽत्र तु ॥९०
पञ्चदशमुहूर्ताहस्तत्राग्रार्धदिनं स्मृतम् ।
अपरार्धं स्मृता रात्रिस्तन्मध्यः कुतपो मतः ॥९१

यथा यथा च ह्रस्वत्वं पुंसः स्थानेन सम्भवेत् ।
तथा तथा पवित्रः स्यात्कालः श्राद्धार्चनादिषु ॥९२
छायेयं पुरुषस्यैवं सत्पादायो भवेद्यदा ।
आधानश्राद्धदानादेः स कालोऽक्षयकृत्स्मृतः ॥९३
अयुतं तु मुहूर्तानामर्घं ह्यष्टदशाधिकम् ।
त्रिंशद्भिस्तैरहोरात्रमिति माध्यन्दिनी श्रुतिः ॥९४
मध्याह्ने तु गते सूर्ये न पूर्वे न च पश्चिमे ।
तुल्याग्रसंस्थिते चैव सोऽष्टमो भाग उच्यते ॥९५
दिवसस्याष्टमेभागे मन्दो भवति भास्करः ।
स काल कुतपो ज्ञेयस्तत्र दत्तं तु चाक्षयम् ॥९६
मध्याह्नचलितो भानुः किञ्चिन्मन्दगतिर्भवेत् ।
स कालो रोहिणो नाम पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥९७
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रोहिणं तु न लङ्घयेत् ।
अकाले विधिना दत्तं न देव-पितृगामि तत् ॥९८
अब्दवृद्धिर्भवेत्तत्र तत्राऽब्दमुभयात्मकम् ।
श्राद्धं तत्र च कुर्वीत मासयोरुभयोरपि ॥९९
नवन्ध्यं दिवसं कुर्यान्मासयोरुभयोरपि ।
पिण्डवर्जमसङ्क्रान्ते सङ्क्रान्ते पिण्डसंयुतः ।
षष्टिभिर्दिवसैर्मासस्त्रिंशद्भिः पक्ष उच्यते ॥१००
संक्रान्तिरहितः पक्षस्तत्र कार्यं विपिण्डिकम् ।
सिनीवाली मतिक्रम्य यदा सङ्क्रमते रवि. ।
युक्त साधारणैर्मासैः स काल उत्तरो भवेत् ॥१०१

सङ्क्रान्तिवर्जितः कालः समलः पापसम्भवः ।
रक्षसां भागधेयोऽसौ उत्सवादिविवर्जितः ॥१०२
तत्र नैमित्तिकं कार्यं श्राद्धं पिण्डविवर्जितम् ।
नित्यं तु सततं कार्यमिति पाराशरोऽब्रवीत् ॥१०३
अहोभिर्गुणितैर्यस्मात्तत्कार्यं यत्र सर्वदा ।
तिथि-नक्षत्र योगाश्च जातकर्मादिकाश्च ये ॥१०४
नैमित्तिकाश्च ये चान्ये कार्यास्तेऽपि मलिम्लुचे ॥
तीर्थस्नानं गजच्छायां द्विसुतीं गोप्रदानवत् ॥१०५
मलिम्लुचेऽपि कर्तव्यं सपिण्डीकरणादिकम् ।
आग्रयणममावास्यामष्टकामहसङ्क्रमम् ॥१०६
अधिमासेऽपि कार्यं स्यादिति पाराशरोऽब्रवीत् ।
नित्यं च नित्याः कार्यमिष्टीः काम्याश्च वर्जयेत् ॥१०७
वार्षिकं पिण्डवर्जं स्यादन्यस्मिन्पिण्डसंयुतम् ।
इष्टिराग्रयणं श्राद्धमन्वाहार्यं च सर्वदा ॥१०८
कर्तव्यं सततं विप्रैरिष्टीःकाम्याश्च वर्जयेत् ।
दैवे कर्मणि सम्प्राप्ते तिथिर्यत्रोदितो रविः ।
सा तिथिः सकला ज्ञेया विपरीता तु पैतृके ॥१०९
वृद्धिमद्दिवसे कार्यं श्राद्धमाभ्युदिकं द्विजैः ।
क्षीयमाणे दिने कार्यं श्राद्धं विद्वन् ! क्षयाहिकम् ॥११०
मित्रे चैव सगोत्रे च पितृ मातृसहोदरे ।
आसनं नैव दातव्यं भोक्तव्या एवमेव ते ॥१११
ब्राह्मणं न सगोत्रं च पूजयेत्पितृकर्मणि ।
नोत्पतिप्रति तत्तेषां किन्तु स्याच्च निराशता ॥११२

स्वगोत्रं भोजयेद्यस्तु पितृश्राद्धेषु वै द्विजः ।
हता स्युः पितरस्तेन न भुक्तमुपतिष्ठते ॥११३
श्राद्धं कुर्वन्द्विजोऽज्ञानात् स्वगोत्रं यस्तु भोजयेत् ।
स लुप्तपितृदेवस्तन्नरकं प्रतिपद्यते ॥११४
तस्मान्न गोत्रिणं विप्रं भोजयेद्विधिपूर्वकम् ।
ज्ञातिमत्त्वेन भोज्यास्ते त्वरितैस्तु द्विजोत्तमैः ॥११५
दक्षिणाप्रवणे देशे श्राद्धं कुर्यात्तु पैतृकम् ।
पितृणां पावनो देशः स प्रोक्तोऽन्यत्तु निष्फलः ॥११६
देशे काले च पात्रे च विधिना हविषा च यत् ।
तिलैर्दर्भैश्च मन्त्रैश्च श्राद्धं स्याच्छ्रद्धयान्वितम् ॥११७
तैजसानि तु पात्राणि ह्यर्घ्यार्थं भोजनाय च ।
मृत्पाषाणमयान्येके अपराण्यपरे विदुः ॥११८
पलाश पद्म-पत्राणि अनिषिद्धानि यानि च ।
तानि श्राद्धेषु कार्याणि पितृ देवहितानि च ॥११९
वृद्धिश्राद्धेषु मन्यन्ते मृण्मयानि तु केचन ।
शौनकस्य मतं ह्येतद्यथा कार्यं तु मृण्मयम् ॥१२०
एकद्रव्याणि कार्याणि पात्राणि भोजनार्घयोः ।
त्रीणि पैतृकपात्राणि द्वे दैवे वैश्वदैविके ॥१२१
एकस्य वैश्वदेवानि पैतृकाण्येकवस्तुनः ।
इति वा तानि कार्याणि भेदमेकं वर्जयेत् ॥१२२
वटाश्वत्थार्कपत्रेषु कुम्भी तिन्दुकयोरपि ।
कोविदार-करञ्जेषु न भुञ्जीत कदाच न ॥१२३

सुरभी-नागकर्णाद्यैः करवीर-करञ्जकैः।
बिल्वैर्यस्त्वर्चयेद्विद्वान् पितॄन् श्राद्धे ष्वगर्हितैः।
तद्वञ्चन्तेऽपुराः श्राद्धं निराशैः पितृभिर्गतैः॥१२४
सर्वाणि रक्तपुष्पाणि निषिद्धाण्यपराणि च।
वर्जयेत् पितृकार्येषु केतकी कुसुमानि च॥१२५
गो-रम्भा-भृङ्गराजाद्यैर्मल्लिकाकुब्जकैरपि।
समर्चयेद्‌द्विजान् श्राद्धे हव्य-कव्योद्वितैर्द्विजः॥१२६
न दद्याद्गुग्गुलं श्राद्धे द्विजानां पितृदैवते।
धूपाभावे गुडो देयो घृतदीपं द्विजोत्तमाः॥१२७
कुङ्कुमाद्यं चन्दनं च देयं गन्धविमिश्रितम्।
ऊर्ध्वं च तिलकं कुर्याद्दैवे पित्र्ये च कर्मणि॥१२८
निराशाः पितरो यान्ति यस्तु कुर्यात्त्रिपुण्ड्रकम्।
पवित्रं यदि वा दर्भं करे कृत्वा द्विजाक्षर॥१२९
समालभेद्‌द्विजानश्रस्तच्छ्राद्धमासुरं भवेत्।
गन्धाश्च विविधा देयाः कर्पूरागरुमिश्रिताः॥१३०
शक्त्या वस्त्राणि देयानि तदभावे च निष्क्रयम्।
दीपश्च सर्पिषा देयस्तिलतैलेन वा पुन. १३१
नकाष्ठतैलैरन्यैस्तु कदाचित् सापपाऽऽनसैः॥१३२
देशधर्मं समाश्रित्य वंशधर्मं तथापरे।
सूरय. श्राद्धमिच्छन्ति पार्वणं च क्षयान्यपि॥१३२
स्त्रीणामपि पृथक् श्राद्धं ते मन्यन्ते न्यधर्मिनः।
मातामहस्य गोत्रेण मातुलेन सपिण्डनात्॥१३३

मातामहा महेच्छन्ति मातुस्तेऽपि सपिण्डताम्।
स्त्रीणां स्त्रीगोत्रसम्बन्धात्सुगोत्रेण नृणां यत ॥१३४
सपिण्डी करणे काले श्राद्धद्वयमुपस्थितम्।
देवार्घं प्रथमं कुर्यात्पितृणां तदनन्तरम् ॥१३५
देवार्घं पार्वणं प्रोक्तं प्रेतश्राद्धमथापरम्।
एकं वं तु तत पश्चात्कु वा विप्रांश्च भोजयेत् ॥१३६
पितृणामर्घ्यपात्राणि प्रेतपात्रमथापरम्।
प्रेतपात्रं तु सत्कृत्य पितृपात्रेषु योजयेत् ॥१३७
ये समाना इति द्वाभ्यां पूर्वतन्क्षेपमाचरेत्।
सपिण्डीकरणं यस्य कृतं न स्याद्द्विजन्मन. ॥१३८
अदैवं तस्य देयं स्यात्पिण्डमेकं तु निर्वपेत्।
सपिण्डीकरणं चैतत्क्रियाश्चैव क्षयाहिकम् ॥१३९
एकादशाहिकं दद्यात् मासि मासि च मासिकम्।
वर्षे वर्षे च कर्तव्यं मृतेऽह्नि च तत्पुन ॥१४०
नाऽपुत्रस्य सपिण्डत्वं केचिदिच्छन्ति तद्विदः।
विशेषतोऽनपत्यस्य सत्यप्यत्राधिकारिणि ॥१४१
नियमात पिता यस्य स चेयदि निपद्यते।
तदन्तरा सपिण्डत्वं वदन्ति श्राद्धवादिन ॥१४२
आभ्युदयिकसम्पत्तावर्चां प्रागेव कारयेत्।
कुर्यात्परिजनेनैतत्स्वयं वापि द्विजोत्तम ॥१४३
सन्त्यसन्सर्वकर्माणि तच्छ्राद्धाय च तद्दिनम्।
अग्निदाहदिनं चैके केचिन्मृतदिनं विदु ॥१४४

विदेशस्थे श्रुवाहस्तु कृष्णा वा द्वादशी सिता ।
संग्रामे संस्थितानां च प्रेतपक्षे शशिक्षये ॥१४५
अग्नि-सर्पादिमृत्यूनां षण्मासोपरि सत्क्रिया ।
तेषां पार्वणमेवोक्तं क्षयाहेऽपि च सत्तमैः १४६
चन्द्रक्षया-ऽनाशक-संयुगेषु यः प्रेतपक्षे मृतवान् सपिण्डः ।
सपिण्डनानन्तरमाब्दिकानि भवन्ति तेषामिह पार्वणानि ॥१४७
अग्नि-सर्पादिमृत्यूनां षण्मासोपरि सत्क्रियाः ।
क्षयाह्निकानि कार्याणि प्राहुर्धर्मविदो जनाः ॥ १४८
अब्दादूर्ध्वं चरन्त्येके कृत्वा च वैष्णवं बलिम् ।
विष्ण्वर्चनं विना नाथ्यंप्रदत्तमुपतिष्ठति ॥१४६
विद्युता वृक्षपातेन सर्पेण महिषेण वा ।
इत्यादिकेन मृत्युः स्यात्तिथौ यत्र च तत्र वै ॥१५०
तन्निमित्तस्य तृप्त्यर्थं मासि मासि क्षयाह्निकम् ।
कर्तव्यमवधौ यावत्ततः कुर्वीत सत्क्रियाम् ॥१५१
अनाशकमृताना च क्षयाहेऽपि च पार्वणम् ।
सन्न्यासवद्धि मन्यन्ते केचिद्विदुरदैविकम् ॥१५२
एकोद्दिष्टमदैवं स्यात्तथैकार्घ्यपवित्रकम् ।
आवाहना-ऽग्नौकरणहीनं तदपसव्यवत् ॥१५३
पूर्वोत्तरप्लवे देशे श्राद्धं स्यान्मातृपूर्वकम् ।
सित-पिताद्विपिष्टेन चर्चिते भूतले च तत् ॥१५४
उद्दिष्टक्रतुकालस्य तत्कालेन विधीयते ।
आभ्युदयिकदैवानि पूर्वाह्णे स्युरितिस्थितिः ॥१५५

तिलाक्षतोदकैर्युक्तान्यासनानि प्रदक्षिणात्।
परिह्रत्यादि पृष्ठेन कृत्वा च शान्तिपूर्वकम् ॥१५६
व्रीहयो यव-गोधूमा अक्षताश्चहलाः स्मृताः।
अक्षतामलकैः पिण्डान्दधि-कर्कन्धुमिश्रितैः ॥१५७
नान्दीमुखेभ्यो देवेभ्यः प्रदक्षिणकुशासनम्।
पितृभ्यस्तन्मुखेभ्यश्च प्रदक्षिणमिति स्मृतिः ॥१५८
कर्कन्धुभिर्यवैः पुष्पैः शमीपत्रैस्तिलैस्तथा।
तेभ्यो ह्यर्घ्यं प्रदातव्यः पितृभ्यो दैवतैस्सह ॥१५९
मातामहानामप्येवं परद्वैवत्यं क्रिये द्विजः।
माङ्गल्यपूर्वकं सर्वं गन्धाद्यपि च धारयेत् ॥१६०
दनिकृपितृ-मातॄणां धूपो देयश्च गुग्गुलः।
घृताभिघारधूपो वा यथा स्यात्परिपूर्णता ॥१६१
दीपाश्च बहवो देयाः विप्रं प्रतिघृतेन च।
तैलेन येन केनापि नवनीतेन चैव हि ॥१६२
मालत्या शतपत्र्या वा मल्लिका-कुन्दयोरपि।
श्वेतस्या पाटलाया वा स्रजो देया न लोहिताः ॥१६३
वासांसि च यथाशक्त्या दद्यात्तेभ्योऽपि निष्कयम्।
परिपूर्णं यथा तत्स्यात्तथा कार्यं भवेदिति ॥१६४
सुवेष-भूषणैस्तत्र माल्यदामैस्तथा नरैः।
कुङ्कुमाद्यनुलिप्ताङ्गैः भाव्यं तु ब्राह्मणैः सह ॥१६५
स्त्रियोऽपि स्युस्तथाभूता गीत-नृत्यादितत्पराः।
दुन्दुभीनादसंयुक्ता मङ्गलध्वनिकारिकाः ॥१६६

पात्रद्वयमतोऽन्यार्थं तैजसं चैकवस्तुजम् ।
साप्यं च सपवित्रं तत्सममभ्यर्च्य विधानतः ॥१७८
प्राङ्मुखोऽमरतीर्थेषु शन्नो देव्योदकं क्षिपेत् ।
यवोसीति यवांस्तत्र तूष्णीं पुष्पाणि चन्दनम् १७९

यवोऽसि पुण्यामृतसिश्चितोऽसि
समस्तधान्यप्रभुरस्यमुत्र ।
मर्त्यमनुष्य-पितृवंशतृप्त्यै
क्षितावतीर्णोऽसि हितोऽसि पुंसाम् ॥१८०

उत्पादपूर्वममिमानमृतेन वेधा
भूयः प्रसन्नमनसा समुपासितःसन् ।
चिक्षेप तान्यगलोकहिताय शिक्षाः
तेनामृता यज्ञदेवतका बभूवुः ॥१८१

अनीलशान्तिरचिरेशान्यवनस्य लोकात्
अमरप्रभूत्भुवि यवान्मुरलोकतृप्त्यै ।
तत्तिष्टपवहविषा पितृदेवतानां
तृप्ता वसन्ति दिवि ते परदानवाचः ॥१८२

ततः सव्यं करं न्यस्य विप्रदक्षिणजानुनि ।
देवानावाहयिष्येऽहमिति वाच्यमुदीरयेत ॥१८३
आवाहयेत्यनुज्ञातो विश्वेदेवास आगमम ।
विश्वेदेवाः शृणुतेममिति मन्त्रद्वयं पठेत ॥१८४
सोमेन सह राजेति केचित्पठन्त्यदोऽपि च ।
ह्याहृत्य मन्त्रमावाह्य हस्ते दत्वा पवित्रकम् ॥१८५

अर्चयेत्तं द्विजं पुष्पैर्दद्यादर्घ्यं करे पुनः ।
विश्वेभ्यस्त्वेष देवेभ्यस्तुभ्यमर्घ्यं प्रदीयते ॥१८६
या दिव्या इति मन्त्रेण पाणौ विप्रस्य तं क्षिपेत् ।
अपसव्यमतः कृत्वा निर्वर्त्य वैश्वदैविकम् ॥१८७
आपो भूमिगताः केचिदादित्येत्यभिमन्त्र्य च ।
पुनस्ताभिः कराभ्यां च कुर्वन्ति मुखमार्जनम् ॥१८८
उदकं गन्ध-धूपांश्च वासांसि चन्दनं स्रजः ।
दत्वाऽपसव्यवद्भूत्वा दद्यात्पितृकुशासनम् ॥१८९
सोदकान्द्विगुणं भुग्नान्सतिलान्सकुशानपि ।
गोकर्णमात्रकान्साग्रान्प्रदद्याद्वामपार्श्वतः ॥१९०
वक्तुं यत्नं सगोत्रं च पितृनाम च शर्मवत् ।
उच्चार्य परयोक्तद्वदिदं तुभ्यं कुशासनम् ॥१९१
पित्रर्थमर्घ्यपात्राणि संपूज्य दक्षिणामुखः ।
तिलोसीत्येतदुच्चार्य यवस्थाने तिलान्क्षिपेत् ॥१९२
भूलग्नसव्यजानु सन्पितृतीर्थेन चाऽन्यतः ।
पितृध्यानमनाः कुर्यात्पितृकार्यमशेषतः ॥१९३
आवाहयिष्ये पित्रादीननुज्ञाऽऽवाहयेति च ।
उशन्तास्त्वेति प्रोदीर्य तथाऽयन्तु न इत्यपि ॥१९४
अन्येऽप्यपहतासुरा इत्यादपि पठन्ति हि ।
अत्र विघ्नव्यपोहार्थं वक्तव्यमिति केचन ॥१९५
प्राग्वद्विमार्जनं कार्यं प्राग्वदर्घ्यप्रसेचनम् ।
प्राग्वदर्घ्यं समुत्सार्य प्राग्वच्च मुखमार्जनम् ॥१९६

एते तिलास्तु विधिना शशिलोकतस्तु
प्राहृत्य भोजनहितेन शुभाय धन्याः।
क्षिप्त्वा मलानि पुरुषस्य च तर्पणार्थं
ये घ्नन्ति तेषु भुवि सत्सु कुतो भयं स्यात् ॥१९७

तिलोऽसि तारापतिदैवतोऽसि
हितोऽस्यशेषपितृ-देवतानाम्।
कर्तासि तृप्तिं परमां पितृणां
शुक्ल स्तत्त्वं विधिसम्भवोऽसि ॥१९८

अर्घ्यपात्राणि सर्वाणि कृ त्वा तान्याद्यपात्रके।
पितृभ्य स्थानमसीति न्युब्जं कुर्यादधश्च तत् ॥१९९
यत्नादुद्देस्तदक्षानादर्घ्यपात्रं तु पैतृकम्।
तद्धि श्राद्धमभोज्यं स्यात्क्रुद्धैः पितृगणैर्गतैः ॥२००
आश्रित्य प्रथमं पात्रं तिष्ठन्ति पितरो नृणाम्।
श्राद्धं तस्मात्र तद्विद्वानुद्धरेत्प्रथमं सुधीः ॥२०१
पात्रयेत्पवित्रं तु वामो दत्वा विधानतः।

पंक्तिमूर्धन्यमेवात्र पृच्छेदिति हि केचन
पितृश्राद्धे प्रधानत्वात्सामस्त्येनाथ वा पुनः ॥२०६
तूष्णीं यत्र तु होमादौ प्रजापतिस्तु तत्र तु ।
तृतीयं मनसा दद्यात्समायास्त्विति वा पुनः ॥२०७
अहन्येवास्मिंस्तस्मिन्वा संवादोभून्मनोर्गिरः ।
अहव्या वाग्यतो वाणी अभूच्छ्रेष्ठे प्रजापतेः ॥२०८
अग्नावाहुतयः प्रोक्तास्तिस्र एव मनीषिभिः ।
अग्निवद्विप्रपात्रेषु पश्चात्तज्जुहुयाद्द्विजः ॥२०६
अग्नौकरणशेषं तु पितृपात्रेषु दापयेत् ।
प्रतिपाद्य पितॄणां तु दद्याद्वै वैश्वदैविके ॥२१०
यश्चाग्नौकरणं दद्यात्पितृविप्रकरेषु च ।
तेनोच्छिष्टमिदं सर्वमित्याहुर्नावतैत्र तु ॥२११
पितरः करवक्त्राश्च वह्निवक्त्राश्च देवताः ।
अतःपाणौ न तद्देयं पात्रे देयं कुशान्विते ॥२१२
वैश्वदेविकविप्राणां पात्रे वा यदि वा करे ।
अनग्निकस्तु तद्द्यात्प्रथमं वैश्वदैविके ॥२१३
हुतशेषमशेषाणां पात्रे दद्याद्द्विजोत्तमः ।
पृच्छेत्सर्वांश्च यत्कृत्यं सामान्येन द्विजोत्तमान् ॥२१४
दत्त्वाऽग्नौकरणं चान्यत् विप्राणां तृप्तिकृद्धविः ।
परिवेष्यमिति प्रयुक्तो विधिरनन्तरम् ॥२१५
प्रागग्नौकरणं दद्याद्दत्त्वा चान्यत्तु तृप्तिकृत् ।
एकीकृत्य तु भुञ्जानाः प्रीणयन्ति नृणां पितॄन् ॥२१६

परिवेष्य हवि. सर्वं तदर्थं यच्च वै श्रृतम् ।
अभिमन्त्र्य ततः पात्रे आपोशानप्रदानवत् ॥२१७
अन्नपूर्णस्य पात्रस्य कर्तव्यमभिषेचनम् ।
अपो दत्त्वा तु सङ्कल्पमेप श्राद्धविधिर्वरः ॥२१८
वर्जितानि न देयानि पितृप्रीति विजानता ।
हविष्याणि प्रदेयानि वक्ष्यमाणानि वर्जयेत् ॥२१९
निष्पावान् राजमाषांश्च कुलित्थान् कोरदूषकान् ।
मसूरान् शीतपाकं च पुलाकं शणमर्कटाः ॥२२०
आढक्य सितसिद्धार्थं वहानि शिखन्नधान्यकम् ।
पिण्याकं परिदग्धं च मथितं च विवर्जयेत् ॥२२१
नापि नीरस-निर्गन्धं वरक्षं सर्वसक्तुकम् ।
अप्रोक्षितं च यत्किञ्चित्पर्युषितं विवर्जयेत् ॥२२२
लोहितान्वृक्षनिर्यासान्भ्रत्यक्षलवणानि च ।
फलद्रव्याणि लवण सर्वाः पलाण्डुजातय. ॥२२३
कृष्णजीरक वंशाग्रारद्रणानि च विवर्जयेत् ।
कुम्भिका-यूष-पालङ्क्य· कट्फलं तण्डुलीयकम् ॥२२४
नीलिका च सितच्छत्रा शोभाञ्जन-कुसुम्भिकाः ।
कोविदार-करञ्जौ च सुमुखा मूलकं तथा ॥२२५
कूष्माण्डं गौरवृन्ताकं बृहत्याश्च फलानि च ।
करीरफल-पुष्पाणि विडङ्गं मरिचानि च ॥२२६
जम्भारिका सुजम्बीरा सुपवो बीजपूरका. ।
जम्ब्वलाबूनि पिप्पल्य. पटोलं पिन्डमूलकम् ॥२२७

मसूराञ्जनपुष्पं च श्राद्धे दत्वा पतत्यध ।
विपच्छद्मदलं मांसमन्यच्च चिरसंस्थितम् ॥२२८
नित्यं श्राद्धेऽपि वर्ज्यं स्याद्विड्वराह-चकोरयो. ।
स्वायम्भुवादिभि सर्वैर्मुनिभिर्धर्मदर्शिभि ॥२२९
निषिद्धानि न देयानि पितृणामहितानि च ।
एकेन किञ्चित् अपरेण किञ्चित् किञ्चिच्च किञ्चिन्न परैर्मुनीन्द्रै ।
श्राद्धे निषिद्ध ह्यशनादि विद्वन्सर्वं पितॄणां ननु किञ्च देयम् ॥२३०
सौवीर-तिक्तैर्लवणादिकैस्तत्परत्र शुद्धिर्भवतीह यैस्तु ।
तद्बीजपूराम्मरिचादियोगात्सिद्धं प्रदेयं ननु दुष्यतीह ॥२३१
श्राद्धे तु यस्य द्विज दीयमानं पित्रादिकस्येह भवेन्मनुष्ये ।
यद्वस्तु यस्येह मनस्यभीष्टमासीत्पुरा तस्य तदेव देयम् ॥२३२
दातुश्च यस्मिन्मनसोऽभिलाष श्रद्धा भवेत्तत्र तु दीयमाने ।
श्राद्धेऽपि देयं विधिवत्तदेव तद्दत्तमक्षय्यमिति प्रवाद ॥२३३
आनीतमम्भो निशि यत्कथञ्चित् य पाणिदत्त भवतीह विद्वन् ।
हेमाम्बुनिक्षेपहरिस्मृतिभ्यामच्छिद्रतामेति पराशरोक्ति ॥२३४
यत् क्षीरसत्रैक्षवखण्डयोगाच्छालाभिधेयं भवतीह विद्वम् ।
प्राण्यङ्ग रूपान्मरिचादियोगात् पाकस्य सिद्धिं प्रवदन्ति तज्ज्ञा ॥२३५
व्रीहयो यव-गोधूमा मुद्गा माषास्तिलास्तथा ।
नीवार श्यामकाश्च अकृष्टसम्भवानि च ॥२३६
आरण्यकालशाकादि प्रतिषिद्धापराणि च ।
माहेयीक्षीरमध्वादि खड्गादिपिशितानि च ॥२३७

शर्करा-गुड-खण्डादि संशुद्धं क्षौद्रमेव च ।
पितृश्राद्धे हविर्मुख्यं यद्वा तद्वाप्यलाभतः ॥२३८

यद्देहिनामत्र शरीरपुष्ट्यै धाता ससर्जाशननाम किञ्चित् ।
तत्सर्वधान्यान्नमिति ह्युदारादि त्रेधा मुनीन्द्रेण पराशरेण ॥२३६
श्यामाकवल्ल्यादि करम्बुजाति यत्किञ्चिदस्मिंस्तुवसारमूलम् ।
आरण्यजं वा कृषिसम्भवं वा मत्यं तदुक्तं मुनिनाऽशनेषु ॥२४०
काण्डोद्भवं यत्त्वशनेषु किञ्चित् पङ्कोद्भवं वा स्वजसम्भवं वा ।
यत्तुच्छसारं बहुसारमस्मिन्सर्वाणि धान्यानि च शूकवन्ति ॥२४१
यत्सर्वसारं सतुषं च भक्ष्यं नि शूकशूकान्तितमत्र किञ्चित् ।
आप्यायनं देहभृतां च सद्यस्तत्प्रोक्तमन्नं ह्यशनेन सद्भिः ॥२४२

प्रतिश्रुतं च भुक्तं च कटुतिक्तं च यत्तथा ।
केचिद्दूरदेयानि यत् स्नातप्रतिरोपितम् ॥२४३
तुण्डिकेरान्यलाबूनि लिङ्गाख्यानि च यानि तु ।
श्राद्धे नित्यमदेयानि प्राह सत्यवतीपतिः ॥२४४
सोङ्कारया वै गायत्र्या दशावर्तितया जलम् ।
पूतं तु तेन तत् प्रोक्ष्यं सर्वमन्नं विशुद्धये ॥२४५
शुद्धवत्योथ कूष्माण्ड्य पावमान्यस्तरत्समाः ।
पूतं तु वारिणैताभिरन्नशोधनमुत्तमम् ॥२४६
तद्विष्णोरिति मन्त्रेण गायत्र्या च प्रयत्नवान् ।
प्रोक्षयेदशनं सर्वं शूद्रदृष्ट्यादिशुद्धये ॥२४७
गृहाग्नि-शिशु-देवानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ।
तावन्न दीयते किञ्चिद्यावत् पिण्डान्न निर्वपेत् ॥२४८

काञ्जिकं दधि तक्रं च शृतं चाशृतमेव वा ।
पूर्वाह्णे न प्रदातव्यं एकोद्दिष्टेऽथ पार्वणे ॥२४९
आपिण्डदानतो दद्याद्यत्किञ्चिच्छ्राद्धवासरे ।
तेनैव पितरो यान्ति श्राद्धं गृह्णन्ति नैव च ॥२५०
परिवेषयेत्समं सर्वं न कार्यं पंक्तिभेदनम् ।
पंक्तिभेदी पृथापाकी नित्यं ब्राह्मणनिन्दकः ।
आदेशी वेदविक्रेता पञ्चैते ब्रह्मघातकाः ॥२५१
यत्रैकपङ्क्त्यां विषमं ददाति स्नेहाद्भयाद्वा यदि चार्थलोभात् ।
वेदैश्च दृष्टं ऋषिभिश्च गीतं तद्ब्रह्महत्यां मुनयो वदन्ति ॥२५२
देवान्पितॄन्मनुष्यांश्च वह्निमभ्यागतांस्तथा ।
अनभ्यर्च्य तु भुञ्जानो पृथापाक इति स्मृतः ॥२५३
पृथ्वी ते पात्रमित्येतत्पृथ्वीरपीति पिधानकम् ।
एतद्वै ब्राह्मणस्यास्ये जुहोमि चामृतेऽमृतम् ॥२५४
इदं विष्णुरिति ह्येतन्मन्त्रमुशर्यं चापरे ।
द्विजाङ्गुष्ठं च तत्रान्ने निवेशयन्ति तद्विदः ॥२५५
जप्त्वा व्याहृतिभिः सार्धं गायत्रीं मधुमतीरिति ।
सङ्कल्प्यान्नमपोशानं ब्रूयाच्च मधुमध्विति ॥२५६
आपोशानं प्रदेयान्नं न तत्संकल्पयेद्द्विजः ।
सङ्कल्पान्नरके याति निराशैः पितृभिर्गतैः ॥२५७
आपोशानोदके विप्रपाणौ तिष्ठति यो द्विजः ।
सङ्कल्पं कुरुतेऽज्ञानात् स्युस्तस्य पितरो हताः ॥२५८

जप्त्वा वै वैष्णवान्मन्त्रान्विप्रान्ब्रूयाद्यथासुखम्।
भुञ्जीरन्वाग्यतास्तेतु पितृ-देवहितैषिणः ॥२५६
अत्युष्णमशनं कार्यं वचो वाच्यं पितृप्रदः।
शूद्रं च शूकर-ध्वाङ्क्ष-कुक्कुटानपनाययेत् ॥२६०
भुञ्जते ब्राह्मणा यावत्तावत्पुण्यं जपेज्जपम्।
पावमान्यानि वाक्यानि पितृसूक्तानि चैव हि ॥२६१
ततस्तमान् द्विजान्पृच्छेत्तृप्तास्थेत्यनुशासनम्।
तृप्तास्मेति द्विजा ब्रूयुस्तदन्नं विकिरेद्भुवि ॥२६२
सकृत्सकृत्त्वपो दत्वा शेषमन्नं निवेदयेत्।
यथानुज्ञा तथा कृत्वा पिण्डांस्तद्नु निर्वपेत् ॥२६३
यद्यदुक्तं द्विजैरन्नं तत्तदादाय विस्तरः।
स्थालीपाकं तिलोपेतं दक्षिणाशामुखस्ततः ॥२६४
अवनिज्य तिलान्दर्भान्पिण्डार्थमवनीतले।
तस्मिन्नु निर्वपेत्पिण्डान् गोत्रनामकपूर्वकान् ॥२६५
ये देवलोकं पितृलोकमापुः प्राप्तास्तथैवं नरकं नरा ये।
अग्नौ हुतेन द्विजभोजनेन तृप्यन्ति पिण्डैर्भुवि मेः प्रदत्तैः २६६
यदन्नं लेपरूपं तु क्रमात्तेषु च निक्षिपेत्।
प्रक्षाल्य सलिलं तत्र अवनेजनवस्तुनः ॥२६७
निवृत्तानर्चयेत्पिण्डान् पुष्प-गन्धविलेपनैः।
दीप-धूप-प्रदानेन पितृनर्च्य समाहितः ॥२६८
वासो यज्ञदशां दद्याद्विधिवन्मन्त्रपूर्वकम्।
केचिद्दत्त्वाऽधिकं लोम केचिन्मतं न तत्त्विति ॥२६९

पश्चाच्छ्राद्धार्थिको यस्तु दद्याद्धोम स्वमंशुकम् ।
तदवश्यं प्रदेयं स्याद्विधिसम्पूर्णताकृते ॥२७०
पवित्रं यदि वा दर्भं करात्तत्र विनिःक्षिपेत् ।
प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य प्राक्षणादिकमाचरेत् ॥२७१
निर्वपन्त्यपरे पिण्डान् प्रागेव द्विजभोजनात् ।
खादयेयुः शकुन्तास्तान्पितॄणा तृप्तितत्पराः ॥२७२
मातामहानामप्येवं विप्रानाचामयेदथ ।
याचयेत द्विजान्स्वस्ति दद्याच्चैवाक्षयोदकम् ॥२७३
दक्षिणा हेम देवानां पितॄणां रजतं तथा ।
शक्त्या दद्यात्स्वधाकारं व्याहरेच्छ्राद्धकृद्द्विजः ॥२७४
तिष्ठन्पिण्डान्तिके ब्रूयाद्वाचयिष्ये स्वधामिति ।
वाच्यतामिति विप्रोक्तिः प्रवदेद्गोत्रपूर्वकम् ॥२७५
स्वधोच्यतामिति ब्रूयाद्स्तु स्वधेति तद्वचः ।
ऊर्जं वहन्तीत्यार्य जलं पिण्डेषु सेचयेत् ॥२७६
याः काश्चिद्देवताः श्राद्धे विश्वशब्देन जल्पिताः ।
प्रीयतामिति च ब्रूयाद्विप्रैरुक्तमिदं जपेत् ॥२७७
दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च ।
श्रद्धा च नो माव्यगमद्बहु देयं च नोऽस्त्विति ॥२७८
न्युब्जपिण्डार्घ्यपात्राणि कृत्वोत्तानानि संस्रवात् ।
क्षिप्त्वा पिण्डेष्वतो विप्रान्पितृपूर्वं विसर्जयेत् ॥२७९
वाजे वाजे इति ह्युक्त्वा आमावाजस्य तान् बहिः ।
ब्रूयात्प्रदक्षिणीकृत्य क्षमस्वमित्यमित्यपि ॥२८०

सन्तानेप्सुस्त्रयोदश्यां न पिण्डान् पातयेन्नरः।
पातयेत्तमनिच्छंश्च प्राह सत्यवतीपतिः ॥२६२
मघायुक्तत्रयोदश्यां पिण्डनिर्वपणं द्विजः। -
स सन्तानो नैव कुर्यादित्यन्ये कवयो विदुः ॥२६३
यः सङ्क्रमे भानुदिने च कुर्यादुपोषणं पारणकं द्विजन्मा।
पिण्डप्रदानं पितृभे च तद्वज्ज्येष्ठो विपद्येत सुतोऽनुजो वा २६४
पुत्रदा पञ्चमी फल्गुस्तथैवैकादशी तिथिः।
सर्वकामा त्वमावास्या पञ्चम्यूर्ध्वं शुभाः स्मृताः ॥२६५
अन्नं क्षीरं घृतं क्षौद्रमैक्षवं चलशाकवत्।
एतैस्तु तर्पितैर्विप्रैस्तर्पिताः पितरो नृणाम् ॥२६६
देशः पर्व च कालश्च हविः पात्रं च सत्क्रियाः।
पितृ-दैविकचित्तत्वं योगश्चेत्यित्रभादिभिः ॥२६७
शौचं च पात्रशुद्धिश्च श्रद्धा च परमा यदि।
अन्नं तत्तृप्तिकृच्छ्राद्धं एतत्खलु न चाऽमिषे ॥२६८
यस्तु प्राणिवधं कृत्वा मासेन तर्पयेत् पितॄन्।
सोऽविद्वाश्चन्दनं दग्ध्वा कुर्यादङ्गारविक्रयम् ॥२६६
क्षिप्त्वा कूपे यथा किञ्चिद्बाल आदातुमिच्छति।
पतत्यज्ञानतः सोऽपि मांसेन श्राद्धकृत्तथा ॥३००
सर्वथाऽन्नं यदा न स्यात्तदैवामिषमाश्रयेत्।
ब्राह्मणश्च स्वयं नाद्यात्तत्र स्यादिहितं यदि ॥३०१
अथान्यत् पापमृत्यूनां शुद्ध्यर्थं श्राद्धमुच्यते।
कृतेन तेन येषां तु प्रदत्तमुपतिष्ठति ॥३०२

दन्ति-शृङ्गि-गर-व्याल-नीराग्नि-बन्धनैस्तथा ।
विद्युन्निर्घात-वृक्षैश्च विप्रैश्च स्वात्मना हताः ॥३०३
प्रणसञ्जातकीटैश्च म्लेच्छैश्चैव हतास्तथा ।
पापमृत्यव एवैते शुभगत्यर्थमुच्यते ॥३०४
नारायणबलिः कार्यो विधानं तस्य चोच्यते ।
ऊर्ध्वं षण्मासतः कुर्यादेके ऊर्ध्वं तु वत्सरात् ॥३०५
तेषां पापव्यपोहार्थं कार्यो नारायणो बलिः ।
धौतवासाः शुचिः स्नात एकादश्यामुपोषितः ॥३०६
शुक्लपक्षे तु सम्पूज्य विष्णुमीशं यमं तथा ।
नदीतीरे शुचिर्भूत्वा प्रदद्याद्दश पिण्डकान् ॥३०७
क्षौद्रा-ऽऽज्य-तिलसंयुक्तान् हविषा दक्षिणामुखः ।
अभ्यर्च्य पुष्प धूपाद्यैस्तन्नाम-गोत्रपूर्वकान् ॥३०८
विष्णुध्यानमनाः कुर्यात्ततः स्तानम्भसि क्षिपेत् ।
निमन्त्रयेत विप्रांश्च पंच सप्ताऽथ वा नव ॥३०९
द्वादश्यां कुतपे स्नातान्यौनवक्त्रान्समागतान् ।
कृष्णाराधनकृत्कृत्या पादप्रक्षालितांच्छुभान् ॥३१०
दक्षिणाप्रवणे देशे शुचिस्तानुपवेशयेन् ।
द्वौ दैवे तु त्रयः पित्र्ये प्राङ्मुखोदङ्मुखान्द्विजान् ॥३११
आसना-ऽऽवाहनार्घ्यं च कुर्यात् पार्वणवद्द्विजः ।
भोजयेद्भक्ष्य-भोज्यैश्च क्षौद्रैश्चवाज्य-पायसैः ॥३१२
तृप्तान् ज्ञात्वा ततो विप्रांस्तृप्तिं पृच्छेद्यथाविधि ।
भोज्येन तिलमिश्रेण हविष्येण च तान् पुनः ॥३१३

पञ्च पिण्डान्प्रदद्याद्वै दैवं रूपमनुस्मरन् ।
विष्णु-ब्रह्म-शिवेभ्यश्च त्रींन्पिण्डांश्च यथाक्रमम् ॥३१४
यमाय सानुगायाथ चतुर्थं पिण्डमुत्सृजेत् ।
मृतं सञ्चिन्त्य मनसा गोत्र-नामकपूर्वकम् ॥३१५
विष्णुस्मृत्या क्षिपेत्पिण्डं पञ्चमञ्च ततः पुनः ।
दक्षिणाभिमुखश्चैव निर्वपेत्पञ्च पिण्डकान् ॥३१६
आचम्य ब्राह्मण पश्चात्प्रोक्षणादिक्रमाचरेत् ।
हिरण्येन च वासोभिर्गोभिर्भूम्या च तान्द्विजान् ॥३१७
प्रणम्य शिरसा पश्चाद्विनयेन प्रसादयेत् ।
तिलोदकं करे दत्वा प्रेतं संस्मृत्य चेतसि ।
गोत्रपूर्वं क्षिपेत्पाणौ विष्णु बुद्धौ निवेश्य च ॥३१८
बहिर्गत्वा तिलाम्भस्तु तस्मैदद्यात्समाहितः ।
मित्रभृत्यैर्निजैः सार्द्धं पश्चाद्भुञ्जीत वाग्यतः ॥३१९
एवं विष्णुमते स्थित्वा यो दद्यात्पापमृत्यवे ।
समुद्धरति तं प्रेतं पराशरवचो यथा ॥३२०॥
सर्वेषां पापमृत्यूनां कार्यो नारायणो बलिः ।
तस्मादूर्ध्वं च तेभ्यो हि प्रदत्तमुपतिष्ठति ॥३२१॥
एवं श्राद्धैः समस्तान्यः सन्तर्पयति वै पितॄन् ।
ददत्यनुत्तमांस्तस्य पितरस्तर्पिता वरान् ॥३२२
विद्या-तपोगुणान्पुत्रान्पूज्यत्वमथ योषितः ।
सौभाग्यैश्वर्य-तेजश्च बलं श्रैष्ठ्यमरोगताम् ॥३२३

यशः शुचित्वं कुर्यानि सिद्धिं चैवात्मवाञ्छिताम्।
यशश्च दीर्घमायुश्च तथैवानुत्तमां मतिम् ॥३२४
अथान्यत्किञ्चिदाख्यामि पितृणां तु हिताय वै।
कृतेन स्वल्पकेनापि प्राप्नुवन्ति विधेः फलम् ॥३२५
उच्छिष्टस्य विसर्गार्थं विधिस्तात्कालिको हि यः।
श्राद्धज्ञैर्विहितं यत्प्राक् पितृणां हितकाङ्क्षिभिः ॥३२६
आदाय सर्वमुच्छिष्टमवनेजनवद्बुधः।
तत्रैव निक्षिपेत् भूमौ तिल दर्भसमन्वितम् ॥३२७
नरकेषु गता ये वै अपमृत्युमृता मम।
एतदाप्यायनं तेषां चिरायास्त्विति चोच्चरेत् ॥३२८
पात्रस्य मध्यतो देवाः करपृष्ठे तु राक्षसाः।
पात्रस्यालम्भनादौ च तस्मात्तं न प्रदर्शयेत् ॥३२९
दर्भाश्च स्वयमानेया दक्षिणाप्रवणोद्भवाः।
तर्पणाद्युज्झिता ये वै इत्याद्याश्च निवर्जयेत् ॥३३०
न कुशं कुशमित्याहुर्दर्भमूलं कुश स्मृतः।
छिन्ना दर्भा इति प्रोक्तास्तदग्रं कुतपः स्मृतः ॥३३१
हरिता यज्ञिया दर्भाः पीतकाः पाकयाज्ञिकाः।
समुलाः पितृदैवत्याश्छिन्ना वै वैश्वदैविकाः॥३३२
दर्भमूले स्थितो ब्रह्मा दर्भमध्ये जनार्दनः।
दर्भाग्रे शङ्करस्तस्मौ दर्भा देवत्रयान्विताः ॥३३३
अहन्येकादशे श्राद्धे प्रतिमासं तु वत्सरम्।
प्रति संवत्सरं कार्यमेकोद्दिष्टं तु सर्वदा ॥३३४

एकस्य प्रथमं श्राद्धमर्वागब्दाच्च मासिकम् ।
प्रतिसंवत्सरं चैव शेषं त्रिपुरुषं स्मृतम् ॥३३५
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रतिसंवत्सरं सुतैः ।
माता-पित्रोः पृथक्कार्यमेकोद्दिष्टं क्षयाहनि ॥३३६
सपिण्डिकरणादूर्ध्वं प्रतिसंवत्सरं द्विजः ।
एकोद्दिष्टं प्रकुर्वीत पित्रोरन्यत्र पार्वणम् ॥३३७
चतुर्दश्यां तु यच्छ्राद्धं सपिण्डीकरणे कृते ।
एकोद्दिष्टविधानेन तत्कुर्याच्छस्त्रपातिते ॥३३८
पित्रादयस्त्रयो यस्य शस्त्रपातात्त्वनुक्रमात् ।
सम्भूतैः पार्वणं कुर्यादिष्टकालि पृथक् पृथक् ॥३३९
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं पितुर्यः प्रपितामहः ।
स तु लेपभुगित्येव प्रलुप्तः पितृपिण्डतः ॥३४०
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं कुर्यात्पार्वणवत्सदा ।
प्रतिसंवत्सरं विद्वच्छागलेयो विधिः स्मृतः ॥३४१
सपिण्डता तु कर्तव्या पितुः पुत्रैः पृथक् पृथक् ।
स्वाधिकारप्रवृत्तत्वादितरः श्राद्धकर्तृवत् ॥३४२
तीर्थश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धं वा परपल्लिकम् ।
सपिण्डीकरणे कुर्यादकृते तु निवर्तते ॥३४३
यस्य संवत्सरादर्वाक् सपिण्डीकरणं भवेत् ।
प्रतिमासं तस्य कुर्यात् प्रतिसंवत्सरं तथा ॥३४४
अर्वाक् संवत्सराद्वृद्धौ पूर्णे संवत्सरेऽपि च ।
ये सपिण्डीकृताः प्रेता न तु तेषां पृथक्क्रिया ॥३४५

एकपिण्डीकृतानां तु पृथक्त्वं नोपपद्यते ।
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं मृते कृष्णचतुर्दशीम् ॥३४६

अर्वाक्संवत्सरादूर्ध्वं मृते कृष्णचतुर्दशीम् ।
ये सपिण्डीकृतास्तेषां पृथक्त्वेनोपपद्यते ।
पृथक्त्वकरणे तस्य पुत्र भार्या सपिण्डता ॥३४७

स्त्रियं श्वश्रा पतिर्मात्रा तयासह सपिण्डयेत् ।
तत्सद्भावे पितामह्या तन्मात्रा चापरे विदुः ॥३४८

नान्यथा तु पितामह्या मातामह्यास्तथाऽपरे ।
उदकं पिण्डदानं च सहभर्त्रा प्रदीयते ॥३४९

अपुत्रा ये मृता. केचित्स्त्रियो वा पुरुषाऽपि वा ।
तेषामपि च देयं स्यादेकोद्दिष्टं च पार्वणम् ॥३५०

अपुत्राश्च मृता ये च कुमारा सस्तृता अपि ।
तेषां समानता न स्यान्न स्वधा नाभिरम्यताम् ॥३५१

भर्त्रा सपिण्डता स्त्रीणां वार्गेति कवयो विदुः ।
श्वश्रा सहापरे तस्यास्तन्मात्रा चापरे विदुः ॥३५२

अनपत्येषु प्रतेषु न स्वधा नाभिरम्यताम् ।
एकोद्दिष्टेषु सर्वेषु न स्वधा नाभिरम्यताम् ॥३५३

मित्र यन्तु सपिण्डेष्य स्त्रीकुमारस्य चैवहि ।
द्वादशे मासिकं श्राद्धं संवत्सरं तु नान्यथा ॥३५४

अप्रत्ययगताश्चैव पुत्र देशान्तरस्थिता ।
यो यथा क्रियया यत्नु स तथैव हि निर्वपेत् ॥३५५

दार्ढ्यार्थं दृश्यते रूढिर्योगवं लिङ्गमेव च।
द्वयोरन्तरा च विद्वद्भिर्लोकरूढिर्गरीयसी ॥३५६
विकल्पेषु च सर्वेषु स्वयमेकैकमादितः।
अङ्गीकरोति यं कर्ता स विधिस्य नेतरः ॥३५७
यहून् हि याजयेद्यस्तु वर्णबाह्यांश्च नित्यशः।
म्लेच्छांश्च शौण्डिकांश्चैव स विप्रो बहुयाजकः ॥३५८
यश्च धैर्येण दुष्टात्मा गो सुवर्णापहारकः।
सद्गृहीतासवर्णस्त्रिः स विप्रो गण उच्यते ॥३५९
वर्तते यश्च चौर्येण सुवर्णेनोपहारकः।
सद्गृहीतसवर्णस्त्रि स विप्रो गौण उच्यते ॥३६०
मृते भर्तरि या नारी रहस्यं कुरुते पतिम।
तस्य वैश्लाघयेद्गर्भं सा नारी गणिका स्मृता ॥३६१
अन्यदत्ता तु या कन्या पुनरन्यत्र दीयते।
अपि तस्या न भोक्तव्यं पुनर्भूः सा प्रकीर्तिता ॥३६२
कौमारं पतिमुत्सृज्य यास्त्वन्यं पुरुषं श्रिता।
पुन. पत्युर्गृहं गच्छेत्पुनर्भूः सा द्वितीयका ॥३६३
असत्सु देवरेषु स्त्री बान्धवैर्या प्रदीयते।
सवर्णाय सपिण्डाय सा पुनर्भूस्तृतीयका ॥३६४
प्राप्ते द्वादश वर्षेऽत्र या रजो न बिभर्ति हि।
धारितं तु तया रेतो रेतोधाः सा प्रकीर्तिता ॥३६५
या भर्तुर्व्यभिचारेण कामं चरति नित्यशः।
तस्या अपि न भोक्तव्यं सा सर्वकामचारिणी ॥३६६

पतिं हित्वा तु या नारी गृहादन्यत्र गच्छति ।
परेषु रमते नित्यं स्वैरिणी सा प्रकीर्तिता ॥३६७
भर्तुः शासनमुल्लंघ्य स्वकामेन प्रवर्तते ।
दीव्यन्ती च हसन्ती च सा भवेत्कामचारिणी ॥३६८
पतिं विहाय या नारी सवर्णमन्यमाश्रयेत् ।
वर्तते प्राग्गतेन द्वितीया स्वैरिणी तु सा ॥३६९
मृते भर्तरि या याति क्षुत्पिपासातुरा परम् ।
तवाहमिति सम्भाष्य तृतीया स्वैरिणी तु सा ॥३७०
देश-कालाद्यपेक्ष्यैव गुरुभिर्या प्रदीयते ।
उत्पन्नसाहसाऽन्यस्मै चतुर्थी स्वैरिणी तु सा ॥३७१
आसु पुत्रास्तु ये जाता वर्ज्यास्ते हव्य-कव्ययोः ।
तथैव पतयस्तासां वर्जनीयाः प्रयत्नत ॥३७२
श्राद्धं तैश्च न कर्तव्यं प्रतिलोमविधानत ।
दैवश्राद्धं पितृश्राद्धं प्रतिलोमविधानतः ।
वर्णाश्रमबहिः स्मार्ते संकीर्णजन्मसम्भवा ॥३७३
मातृणां च पितॄणां च स्वीयानां पिण्डदाः स्मृताः ।
उपपतिसुतो यस्तु वर्ज्यस्स श्रीधिरुपति ॥३७४
परपूर्वपतेर्जाताः सर्वे वर्ज्याः प्रयत्नत ।
अजापालादिजाताश्च विशेषेण तु वर्जयेत् ॥३७५
मृतानुगमनं नास्ति ब्राह्मण्या ब्रह्मशासनात् ।
इतरेषु च वर्णेषु तत् परममुच्यते ॥३७६

भर्तुश्चित्यां समारोहेद्या च नारी पतिव्रता ।
अहन्येकादशे प्राप्ते पृथक्पिण्डे नियोजयेत् ॥३७७
श्रौतैश्च स्मार्तमंत्रैश्च दम्पत्यावेकतां गतौ ।
एकमृत्युगतौ चैव यद्वावेकत्र तौ हुतौ ॥३७८
एकत्वं च तयोर्यस्माज्जातमायावसानिकम् ।
एकादशाहिकं श्राद्धमेकमेव स्मृतं बुधैः ॥३७९
आरुह्य भर्तुश्चितिमंगना या प्राप्नोति मृत्युं यदु सत्ययुक्ता ।
एकादशाहे तु तयोर्विधेयं श्राद्धं पृथक्स्वर्गमवेक्ष्य सद्भिः ॥३८०
एकत्वमिच्छन्ति पतिमहीणा एकादशाहादिषु ये नृनार्य. ।
ते स्वर्गमार्गं विनिहत्य कुर्युः स्त्रीसत्यघातान्नरकेऽधिवासम् ॥३८१
समानमृत्युना यत्तु मृतौ भर्ता च योषिताम् ।
तस्या. सपिण्डता तेन पिण्डमेकत्र निर्वपेत् ३८
स्त्रीपात्रं पतिपात्रे तु सिंचयेदेकमेव हि ।
श्राद्धे त्रिपुरुषे त्रीणि तत्प्रत्यक्षं पितॄन्प्रति ॥३८३
पत्या सह परासुत्वात्तेनैवास्याः सपिण्डता ।
पितामह्यापि चान्यत्र ह्येतदाह पराशर. ॥३८४
अन्यप्रीतौ न चान्यस्य तृप्ति. कुत्रापि दृश्यते ।
एवं धीमानतुत्रापि तस्मान्नैकत्वमाश्रयेत् ॥३८५
एकत्वाश्रयणे धर्मो नार्या लुप्तो भवेद्ध्रुवम् ।
तस्याः सुकृतसामर्थ्यात्पत्यु. स्वर्गमिहेष्यते ॥३८६
भर्त्रा सह मृता या तु नाकलोकमभीप्सती ।
साऽऽद्यश्राद्धे पृथक्पिण्डा नैकत्वं तु बुधैः स्मृतम् ॥३८७

पतिमृत्यु स्त्रियो मृत्युर्निमित्तमेव जायते ।
निर्निमित्तो न वैमृत्युर्मृत्युना चैकता भवेत् ॥३८८

भर्त्रासह मृता भार्या भर्तारं सा समुद्धरेत् ।
तस्या पतिव्रताधर्मं पिण्डैक्येन हुतो भवेत् ॥३८९

बलीयस्त्वेन धर्मस्य तुच्छत्वाच्चागसस्तथा ।
धर्मेण लुप्यते पापमेकत्वे समता तयो ॥३९०

नैकत्वं तु तयोरस्माद्धन्तव्यं श्राद्धकर्मणि ।
पृथगेवहि कर्तव्यं श्राद्धमेकादशाहिकम् ॥३९१

यानि श्राद्धानि कार्याणि तान्युक्तानि पृथक् पृथक् ।
कर्तव्य यैस्तु तेऽयुक्ता विशेषं च निबोधत ॥३९२

औरसाद्या स्मृता पुत्रा मुनिभिर्द्वादशैव तु ।
यथा जात्यनुसारेण वर्णानामनुसारत ॥३९३

पिण्डप्रदा क्रमेण स्यु पूर्वाभाव पर पर ।
यस्माद्यो जायते पुत्र स भवेत्तस्य पिण्डद ॥३९४

तस्मात्तस्मादपीहस्ते मृता प्रेतत्वमागता ।
तस्मादवश्यमेव हि श्राद्धं कार्यं विधानत ॥३९५

शूद्रस्य दासिज पुत्र कामात्तु स पिण्डद ।
जाया जात सुतो यस्तु पिण्डद स्यात्सुतोऽपि वा ॥३९६

जनकस्य न किञ्चित्स्यादर्थात्तामप्रवर्तनात् ।
वायुभूताश्च पितरो दत्ताभिकाङ्क्षिण सदा ।
तस्मात्तेभ्य सदा देय नृभिर्धर्मरतै सदा ॥३९७

ये खाण्ड-मांस-मधु-पायस-सर्पिरन्नैर-
देशे च कालसहिते च सुपात्रदत्तैः ।
प्रीणन्ति देव-मनुजान्पितृवंशजातान्
तेषां नृणां तु पितरो वरदा भवन्ति ॥३६८
मया श्राद्धविधिः प्रोक्तो वर्णानां पितृतृप्तिकृत् ।
एवं दापयति यः श्राद्धं वरान्सर्वानवाप्स्यति ॥३६६

इति श्रीवृहत्पराशरीये धर्मशास्त्रे सुव्रतप्रोक्तायां संहितायां
श्राद्धाधिकारो नाम सप्तमोऽध्यायः समाप्तः ।

—:श्री श्री:—

अष्टमोऽध्यायः

॥ अथ शुद्धिवर्णनम् ॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शुद्धिं पराशरोदिताम् ।
सूतके चाप्यशौचे वा यथावत्तां निबोधत ॥१
प्रसवं सूतकं प्राहुरशौचं शावमुच्यते ।
यावत्कालं च यन्मात्रं तथा तन्निगद्यते ॥२
केषां चित्तेन वै मासं केषां चिन्मरणात्त्रिकम् ।
सद्यः शौचास्तथा चान्ये अन्ये चैकाहिकाः स्मृताः ॥३
त्रि-षट्-दश-दशाढ्यां दशापि सह पञ्चभिः ।
तान्येव त्रिगुणान्याहुर्दिनान्येव मनीषिणः ॥४

वक्ष्यमाणं निबोधध्वमुपक्रममिदं द्विजाः ।
शक्तिजो यन्मुनीनां च प्राग् प्रवीःकलिधर्मवित् ॥५
विष्णुध्यानरतानां च सदैव ब्रह्मचारिणाम् ।
गृहमेधिद्विजानां तु तथैव व्रतचारिणाम् ॥६
वेदतत्त्वार्थवेत्तृणां नित्यस्नानकृतां तथा ।
असत्संसर्गिणामेषां नाशौचं नापि सूतकम् ॥७
संसर्गं वर्जयेद्यत्नात्संसर्गो दोषकारणम् ।
कुर्याद्भ्रात्रादिसंसर्गं वर्जने स्यादकिल्विषी ॥८
वदन्ति मुनयः प्राच्याः संसर्गो दोषकारणम्
असंसर्गः स्वकर्मस्थो द्विजो दोषैर्न लिप्यते ॥९
दानोद्वाहेष्टि-संग्रामे देशविप्लवकादिके ।
सद्यः शौचं द्विजातीनां सूतकाशौचयोरपि ॥१०
दातृणां व्रतिनामेके कवयः सत्रिणामपि ।
सद्यः शौचमदोषाणामूचुर्धर्मविदः कलौ ॥११
सर्वमंत्रपवित्रस्तु अग्निहोत्री षडङ्गवित् ।
राजा च श्रोत्रियश्चैव सद्यः शौचाः प्रकीर्त्तिताः ॥१२
देशान्तरगते जाते मृते वाऽपि सगोत्रिणि ।
शेषाहानि दशाद्यर्वाक् सद्यः शौचमतः परम् ॥१३
सत्यप्येकनिवासे तु सद्यः शौचं विशोधनम् ।
पिण्डनिर्वर्तने जाते मृते चापि सगोत्रजे ॥१४
सद्य शौचं विधातव्यमर्वाक् च दश जन्मनः ।
मान्धयादिषु विज्ञेयमन्यदूर्ध्वं विधीयते ॥१५

नाऽऽशौच-सूतके स्नाता नृपतीनां कदा च न ।
यज्ञकर्मप्रवृत्तस्य ऋत्विजो दीक्षितस्य च ॥१६
पृथक्पिण्डमृते बाले निर्देशोऽन्यत्र च श्रुते ।
जाते वापि च शुद्धिः स्यात्सद्यः शौचादसंशयम् ॥१७
सर्वेदः साग्निरेकाहाद् ब्राह्मणः शुद्धिमाप्नुयात् ।
तथैकाहो नृपे संस्थे तथैव ब्रह्मचारिणि ॥१८
दुर्भिक्षे राष्ट्रभङ्गे च आपत्काल उपस्थिते ।
उपसर्गान्मृते वापि सद्यः शौचं विधीयते ॥१९
गो-विप्रार्थविपन्नानां माहवेषु तथैव च ।
ते योगिभिः समा ज्ञेया सद्य शौचं विधीयते ॥२०
विप्रे संस्थे घृतादर्वाक् श्रोत्रिये च तथा द्विजे ।
अनूचाने गुरौ चैव आचार्ये चापि संस्थिते ॥२१
असंस्कृतस्त्रियां राज्ञि श्रोत्रिये निधनं गते ।
त्रिरात्रमप्यशौचं स्यात्तथैवोदकदायिनः ॥२२
विद्वाननग्निको विप्रस्त्रिरात्राच्छुद्धिमाप्नुयात् ।
मनीषिणः परे भ्रू गुरुसपिण्डे अहं मृते ॥२३
प्रेतीभूतं च यः शूद्रं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ।
नियतं ह्यनुगच्छेत त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥२४
षड्रात्रं नवरात्रं च शवस्पृशां विशुद्धिकृत् ।
त्र्यहं चैव विशुद्ध्यर्थं धर्मशास्त्रविदो विदुः ॥२५
अनाथं ब्राह्मणं प्रेतं ये वहन्ति द्विजातयः ।
पदे पदे यज्ञफलमनुपूर्वं लभन्ति ते ॥२६

अशुचित्वं न तेषां तु पापं वाऽशुभकारणम् ।
जलावगाहनात्तेषां सद्यः शौचं विधीयते ॥२७
असगोत्रमसम्बन्धं प्रेतीभूतं तथा द्विजम् ।
ऊढ्वा दग्ध्वा द्विजाः सर्वे स्नानान्ते शुचयः स्मृता ॥२८
एकरात्रं वदन्त्येके सद्यः स्नानं तथाऽपरे ।
गोब्राह्मणादिमृतानां च मुनयः शुद्धिकारणम् ॥२९
हत शूरो विपद्येत शत्रुभिर्यत्र कुत्रचित् ।
स मुक्तो यतिशस्तद्वत् प्रविशेत्परवेधसि ॥३०
संन्यासो युद्धसंस्थश्च सम्मुखं शत्रुभिर्नरः ।
सूर्यमण्डलमेतावाविति प्राहुर्मनीषिणः ॥३१
पराङ्मुखे हते सैन्ये यो युद्धाय निवर्तते ।
तत्पदानीष्टितुल्यानि स्युरित्याह पराशरः ॥३२
वदने प्रविशेत्तेषां लोहितं शिरसः पतन् ।
सोमपानेन ते तुल्या निन्द्यो रुधिरस्य वै ॥३३
सन्यासेन मृता ये वै प्रधने ये तनुत्यजः ।
शुचिभाजो नरास्तेस्युरिति वेदोऽपि कीर्तयेत् ॥३४
सद्य शौचं त्रिधातव्यं शुद्धिरेवं विधीयते ।
नोत्पन्ते ते मृता लोके सो ब्रह्मवपुर्गमाः ॥३५
सन्ध्याचारविहीनानां सूतकं ब्राह्मणे ध्रुवम् ।
अशौचं वा दशाहं स्यादिति पाराशरोऽब्रवीत् ॥३६
राज्ञां ▯ द्वादशाहः स्यात्पक्षो वैश्यस्य पावनः ।
शूद्रस्य तथा मासात्र्यहादेष्यपि धर्मतः ॥३७

क्षपा च पक्षिणी सद्भिर्मातुलादिषु कीर्तिताः।
गर्भस्रावे च पाते च रात्रयो माससम्मिताः ॥३८
स्रावं गर्भस्य विद्वांसो मासादर्वाक् चतुर्थकात्।
पातमूर्ध्वं वदन्त्येके तत्राधिक्यं च सूतकम् ॥३९
ऋणि-व्यसनि-रोगार्त-पराधीन-कदर्यकाः।
तृष्णावन्तो निराचाराः पितृ-मातृविवर्जिताः ॥४०
स्त्रीजिताश्चानपत्याश्च देव-ब्राह्मणवर्जिताः।
परद्रव्यं जिघृक्षन्तः सद्यः सूतकिनः सदा ॥४१
सूतके मृतशौचे वा अन्यदापद्यते यदि।
पूर्वेणैव तु शुद्धिः स्यात् जाते जातं मृते मृतम् ॥४२
एक पिण्डाश्च दायादाः पृथग्दार-निकेतनाः।
जन्मन्यपि मृते वापि तेषां वै सूतकं भवेत् ॥४३
भृगु-वह्नि-प्रपाते च देशान्तरमृतेषु च।
बाले प्रेते च सन्यस्ते सद्यः शौचं विधीयते ॥४४
अजातदन्ता ये बाला ये च गर्भाद्विनिर्गताः।
न तेषामग्निसंस्कारो नाशौचं नोदकक्रिया ॥४५
विवाहोत्सव-यज्ञेषु कर्तारो मृत-सूतके।
पूर्वसंकल्पितानर्थान्भोज्यान्तानब्रवीन्मनुः ॥४६
शिल्पिनः कारुकाश्चैव दासी-दासास्तथैव च।
इत्याशौचा न ते स्यात्मामनुगृह्णन्ति यान् द्विजाः ॥४७
पिता पुत्रेण जातेन दद्याच्छ्राद्धं यथाविधि।
पितृणा विधिवद्दानं दत्तं तत्राप्यनन्तकम्।
तत्राप्यनन्तकं दानं कर्तव्यं पुत्रजन्मनि ॥४८

प्रसवे च द्विजातीनां न कुर्यात्सङ्करं यदि ।
दशाहाच्छुध्यते माता अवगाह्य पिता शुचिः ॥४९
अतिमानादतिक्रोधात्स्नेहाद्वा यदि वा भयात् ।
उद्बध्य म्रियते यस्तु न तस्याग्निः प्रदीयते ॥५०
न स्नायान्नोदकं दद्यान्नापि कुर्यादशौचताम् ।
सर्पेण शृंगिणा वापि जलेन चाग्निना तथा ॥५१
न स्नानादौ विपन्नस्य तथा चैवात्मघातिनः ।
अर्वाक् द्विहायनाद्वह्निं न दद्यान्मृतकस्य च ॥५२
किन्तु तान्निखनेद्भूमौ कुर्यान्नैवोदकक्रियाम् ।
सर्पादिभग्नमृतानां षड्विरात्रादिकाः क्रियाः ॥५३
षण्मासे तु गते कार्या मुनिः प्राह पराशरः ।
शाब्दद्वे बुधैः कार्यमस्थिसञ्चयनादिकम् ॥५४
तत्कृत्वा तु लदिवसैः शुद्धिमर्हति धर्मतः ।
अन्यायमृतविप्राणां ये वोढारो भवन्ति हि ॥५५
अग्निदाश्चैव ये तेषां तथोदकादिदायिनः ।
उद्बन्धनमृतस्यापि यश्छिन्द्याद्रज्जुपाशकम् ॥५६
ते सर्वे पापसंयुक्ताः प्रायश्चित्तस्य भाजनाः ॥५७
यः सूतकाशौचविशुद्धिकृत्स्यादाख्याय कालं समनुक्रमेण ।
पराशरस्यानु मुनिः सुता या यान्यथात्वमो निष्कृतयो द्विशास्ते ॥५८
सूतकाशौचयोरेवं शुद्धिरन्याऽनुपूर्वशः ।
सर्वेनसां विशुध्यर्थं प्रायश्चित्तं यथाब्रवीम् ॥५९

मनुर्वा याज्ञवल्क्यस्तु वसिष्ठः प्राह निष्कृतिम्।
सा कृतादिषु वर्णानां सति धर्मे चतुष्पदे ॥६०
मानसा वाचिका दोषास्तथा वै कार्यकारिताः।
धर्माधीना नृणां सर्वे जायन्ते तेऽप्यनिच्छताम् ॥६१
तेषामुपरताक्षाणां प्रत्यहं शुभमिच्छताम्।
शक्तिज्ञो निष्कृतिं प्राह युगधर्मानुरूपतः ॥६२
विकृतव्यवहाराणां पापो निष्कृतिरुद्द्विजः।
कति विप्रैः कथं रूपैरिति वाच्या भवेद्धि सा ॥६३
तद्रूपं च प्रवक्ष्यामि यावद्भिः सा द्विजैर्भवेत्।
यथाविधाश्च विप्रास्युरिति विद्वन् प्रकीर्त्यते ॥६४
पर्षद्दशावरा प्रोक्ता ब्राह्मणैर्वेदपारगैः।
सा यद्रूपा स धर्मः स्यात् स्वयम्भूरित्यकल्पयत् ॥६५
वेद-शास्त्रविदो विप्रा यं ब्रूयुः सप्त पंच वा।
त्रयो वाऽपि स धर्मः स्यादेको वाऽध्यात्मवित्तमः ॥६६
संयमं नियमं वाऽपि उपवासादिकं च यत्।
तद्गिरा परिपूर्णं स्यान्निष्कृतिर्व्यावहारिकी ॥६७
न लक्षेणापि मूर्खाणां न चैवाऽधर्मवादिनाम्।
विदुषां नापि लुब्धानां न चापि पक्षपातिनाम् ॥६८
श्रुता-ध्ययनसम्पन्नः सत्यवादी जितेंद्रियः।
सदा धर्मरतः शान्त एकः पर्षत्वमर्हति ॥६९
न सा वृद्धैर्न तरुणैर्न सुरूपैर्धनान्वितैः।
त्रिभिरेकेन पर्षत् स्याद्वृद्धिहृद्भिर्विदुषापि च ॥७०

वयसा लघवोऽपि स्युर्वृद्धा धर्मविदो द्विजा ।
शिशवोऽपि हि मध्यस्था सर्वत्र समदर्शिना ॥७१

न सा वृद्धैर्भवेद्विप्रैर्वृद्धा स्युर्धर्मवादिन. ।
यत्र सत्य स धर्म स्यात्च्छल यत्र न गृह्यते ॥७२

नसा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम् ।
धर्मो वृथा यत्र न सत्यमस्ति सत्य न तद्यत्र छलानुविद्धम् ॥७३

निष्कृतौ व्यवहारे च व्रतस्याशसने तथा ।
धर्म वा यदि वाऽधर्म परिपत्राह तद्भवेत् ॥७४

स्त्रीणां च बाल वृद्धाना क्षीणाना कुशरीरिणाम् ।
उपवासाद्यशक्ताना कर्तव्योऽनुग्रहश्च वै ॥७५

ज्ञात्वा देश च काल च व्यय सामर्थ्यमेव च ।
कर्तव्योऽनुग्रह सद्भिर्मुनिभि परिकीर्तित ॥७६

लोभान्मोहाद्भय न्मैत्र्याद्यपि कुर्युरनुग्रहम् ।
नरक यान्ति ते मूढा शतधा वाप्तरापिन. ॥७७

प्रविश्य पर्षद ते वै सभ्यास्तामग्रत स्थिता ।
यथाकाल प्रकुर्युस्ते प्रायश्चित्त तदीरितम् ॥७८

नित्यश याचते देवा वदन्तोऽत्र द्विजातय ।
प्रव कुर्वन्ति नियम गतपात न सशय । ७९ ।

प्रसादो द्विविधो ज्ञेयो दैव्यश्चासुर एव च ।
पीडयापि च तत्रैव देवा तथैव ते द्विजा ॥८०

व्यवहारे गोसमैस्तु ब्रूयाद्वापि वैरत ।
यथाश्रुत च तत्पार्श्व तत्तथैव निवेदयेत् ॥८१

यस्तेषामन्यथा ब्रूयात्स पापीयान्न संशयः ।
सत्यमसत्यमेवात्र विपर्यस्तं वदेद्यतः ॥८२
स एवानृतवादी स्यात्सोऽनन्तं नरकं व्रजेत् ।
ज्योतिषं व्यवहारं च प्रायश्चित्तं चिकित्सितम् ॥८३
अजानन् यो नरो ब्रूयात्साहसं किमतः परम् ? ।
व्यवहारश्च तैः प्रोक्तो मन्वाद्यैर्धर्मवादिभिः ॥८४
प्रजाभिर्नतु सर्वाभिर्मान्यैश्चैव तु मानवैः ।
तच्छोधकप्रमाणानि लिखितादीनि तैर्विना ॥८५
जलादीनि च दिव्यानि साक्ष्योक्तशपथानि च ।
अन्ये जनपदाचारा कुलधर्मस्तथापरः ।
परिषद्ब्राह्मणैर्मध्या निर्णतव्या यथाविधि ॥८६
जन्मजात्यनुसारेण देश-कालादिधर्मतः ।
कर्तव्यः सत्तमैः सर्वैर्माननीयश्च वादिभिः ॥८७
गो-ब्राह्मणहतादीनां तथा दग्ध्यादिकारिणाम् ।
तप्तकृच्छ्रेण शुद्धिः स्यादिति पाराशरोऽब्रवीत् ॥८८
भोजयेद्ब्राह्मणान्पश्चात्सयूपा गौश्च दक्षिणा ।
जायन्ते पापनिर्मुक्ताः शक्तिसूनोर्यथा वचः ॥८९
अनाशकान्निवृत्ता ये ब्रह्मचर्यात्तथा द्विजाः ।
वैडालिकास्ते विज्ञेयाः सर्वधर्मविवर्जिताः ॥९०
सर्वत्र प्रावेशान्तो ये ये च वैडालिकैः समाः ।
तेषां सर्वाण्यपत्यानि पुल्कसैः सह पातयेत् ॥९१

स्त्रीणां च बाल-वृद्धानां क्षयीणां कृशरीरिणाम्।
उपवासाद्यशक्तानां कर्तव्योऽनुग्रहश्च तैः ॥९२
ज्ञात्वा देशं च कालं च वयः सामर्थ्यमेव च।
कर्तव्योऽनुग्रहः सद्भिर्मुनिभिः परिकीर्तितः ॥९३
ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी गुर्वङ्गनागमः।
एतेषां निष्कृतिं ब्रूयादेतत्संसर्गिणामपि ॥९४
द्वादशाब्दं च विचरेत् ब्रह्मघ्नस्तत्कपालधृक्।
सर्वत्र ख्यापयन्कर्म भिक्षां विप्रेषु संचरन् ॥९५
दृष्ट्वा सेतुं समुद्रस्य स्नात्वा वै लवणाम्भसि।
ब्राह्मणेषु चरन् भिक्षां स्वकर्म ख्यापयञ्छुचिः ॥९६
मुण्डितस्तु शिखावर्ज्यः सकौपीनो निराश्रयः।
चीर चीवरवासा वै त्रिः स्नायी सन् शुचिर्व्रती ॥९७
संयताक्षश्चरेच्छान्तश्छत्रोपानद्विवर्जितः।
ब्रह्मघ्नोऽस्मीत्यहं याचमिति सर्वत्र वै वदेत् ॥९८
गवां च विंशतिं दद्याद्दक्षिणां वृषसंयुताम्।
ब्राह्मणेभ्यो निवेद्यैताः शुचिराख्याय भूपतेः ॥९९
पूर्वोक्तव्रतपापानां प्रायश्चित्तमिदं स्मृतम्।
ब्राह्मणानां प्रसादेन तीर्थेषु गमनेन च ॥१००
गोशतस्य प्रदानेन शुध्यन्ति नात्र संशयः।
अथवाश्वमेधस्य स्नात्वा शुद्धिमवाप्नुयात् ॥१०१
आख्याय नृपतेर्वाऽपि तेन संशोधितः शुचिः।
महापापानि सर्वाणि कथयित्वा महीपतेः ॥१०२

निष्कृतिं तद्द्विरा दद्यादन्यथा तेऽपि तत्समाः ।
रोगार्तं द्विजं वापि मार्गे खेदसमन्वितम् ।
दृष्ट्वा कृत्वा निरातङ्कं ब्रह्मघ्नः शुद्धिमाप्नुयात् १०३
असंख्यातं धनं दत्त्वा विप्रेभ्यो वापि शुध्यति ।
अरण्ये निर्जने जप्त्वा शुध्येद्वै वेदसंहिताम् ॥१०४
सुरापस्य प्रवक्ष्यामि निष्कृतिं श्रोतुमर्हथ ।
सुरापस्तु सुरां तप्तां पयो वा जलमेव वा ॥१०५
तप्तं गोमूत्रमाज्यं वा मृतः पीत्वा विशुध्यति ।
जटी वा चैलवासी वा ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ॥१०६
यद्यज्ञानात् पिबेद्विप्रो द्विजातिर्वा सुरां पुनः ।
पुनः संस्कारकरणाच्छुद्ध्येदवदत् पराशरः ॥१०७
स्तेयं कृत्वा सुवर्णस्य शुद्ध्यै च सर्वं द्विजातये ।
समर्प्य, मुसलं राज्ञे ख्यापयेत्स्तेयकर्मकृत् ॥१०८
शक्तिं चोभयतस्तीक्ष्णामायसं दण्डमेव च ।
खादिरं लगुडं वापि हन्यादेकेन तं नृपः ॥१०९
जीवन्नपि भवेच्छुद्धो मुक्तो वा तेन पाप्मना ।
मृतश्चेत्तेन संशुध्येदिति पाराशरोऽब्रवीत् ॥११०
अयः प्रतिकृतिं कृत्वा वह्निवर्णां च तां धमेत् ।
गुर्वङ्गनागमं तस्यां लोहमय्यां तु शाययेत् ॥१११
वृषणौ पुनरुत्कृत्य नैर्ऋत्यामुत्सृजेत्तनुम् ।
स मृतः शुद्धिमाप्नोति नान्यथास्तस्य निष्कृतिः ॥११२

संवत्सरं चरेत् कृच्छ्रं प्रजापत्यमथापि वा ।
चान्द्रायणं चरेद्वापि त्रीन्मासान् नियतेंद्रियः ॥११३
व्रते तु क्रियमाणे वै निपत्तिः स्यात्कथंचन ।
स मृतोऽपि भवेच्छुद्ध इति धर्मविनिर्णयः ॥११४
अनिर्दिष्टस्य पापस्य तथोपपातकस्य च ।
तच्छुध्यैपायनं कुर्याद्वार्द्रं व्रतं समाहितः ॥११५
तिष्ठेन्मासं पयोऽशित्वा पराकं वा चरेद्व्रतम् ।
अनिर्दिष्टस्य पापस्य शुद्धिरेषा प्रकीर्तिता ॥११६
ब्राह्मणः क्षत्रियं हत्वा गवां दद्यात्सहस्रकम् ।
वृषेणैकेन संयुक्तं पापादस्मात्प्रमुच्यते ॥११७
त्रीणि वर्षाणि शुद्ध्यर्थं ब्रह्मघ्नस्य व्रतं चरेत् ।
चान्द्रायणानि वा त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि वा ऽऽचरेत् ॥११८
वैश्यं हत्वा द्विजश्चैवमब्दमेकं व्रतं चरेत् ।
गवां ह्येकशतं दद्याच्चरेच्चान्द्रायणानि च ॥११९
कृच्छ्राणि त्रीणि वा कुर्याद्वचनाद्विदुपामसौ ।
ये हन्युरप्रदुष्टां स्त्रीं चातुर्वर्ण्यां द्विजातयः ।
शूद्रहत्या व्रतं ते तु चरन्तः शुद्धिमाप्नुयुः ॥१२०
शूद्रां ये चानुलोम्येन निहन्त्यव्यभिचारिणीम् ।
मुनयः शुद्धिमिच्छन्ति चन्द्रव्रतेन केचन ॥१२१
व्यभिचारात्तु ते हत्वा योषितो ब्राह्मणादयः ।
शिलधेनुं चर्मवैं क्रमाद्दद्युर्विशुद्धये ॥१२२

साध्वीनां तु नरो हत्वा गवां चैव सहस्रकम् ।
चीर्णेन शुद्धिमाप्नोति योपाहत्याव्रतं चरेत् ॥१२३

अथ गोघ्नस्य वक्ष्यामि निष्कृतिं श्रोतुमर्हथ ।
यथा यथा विपत्तिः स्याद्गवां तथोपपद्यते ॥१२४

गोयात्री पंचगव्याशी गोष्ठशायी च गोनुगः ।
मासमेकं व्रतं चीर्त्वा गोप्रदानेन शुद्ध्यति ॥१२५

एकपादे तु लोमानि द्वये श्मश्रुनिकृन्तनम् ।
पादत्रये शिखावर्जं सशिरस्कं तु निपातने ॥१२६

सशिरस्कं वपनं कृत्वा त्रिसन्ध्यमवगाहनम् ।
गवां मध्ये वसेद्रात्रौ दिवा गाः समनुव्रजेत् ॥१२७

तिष्ठन्तीभिश्च तिष्ठेत व्रजन्तीभि सह व्रजेत् ।
पिबन्तीभिः पिबेत्तोयं संविशन्तीभिश्च संविशेत् ॥१२८

शृंग-कर्णादिसंयुक्तं चर्मोत्कृत्य तदावृतः ।
विमोक सु चरेद्भिक्षां स्वकर्म ख्यापयन्व्रती ॥१२९

गोघ्नस्य देहि मे भिक्षामिति वाचमुदीरयेत् ।
मासमेकं व्रतं कृत्वा गोप्रदानेन शुद्ध्यति ॥१३०

चौर व्याघ्रादिकेभ्यश्च सर्वप्राणैः समुद्धरेत् ।
गर्तप्रपात-पंकाच्च तथान्यादपकारतः ॥१३१

भोजयेद्ब्राह्मणान्पश्चात्पुण्य धूपादिपूर्वकम् ।
दद्याद्गां च वृषं चैकं ततः शुद्ध्यति किल्बिषात् ॥१३२

मुनयः केचिदिच्छन्ति विचित्रासु विपत्तिषु ।
यथासम्भवसक्तासु पृथक् पृथक् विनिष्कृतिम् ॥१३३

संवत्सरं चरेत् कृच्छ्रं प्राजापत्यमथापि वा ।
चान्द्रायणं चरेद्वापि त्रीन्मासान् नियतेंद्रिय· ॥११३
व्रते तु क्रियमाणे वै विपत्ति· स्यात्कथंचन ।
स मृतोऽपि भवेच्छुद्ध इति धर्मविनिर्णय· ॥११४
अनिर्दिष्टस्य पापस्य तथोपपातकस्य च ।
तच्छुध्यैपावनं कुर्याद्ब्राह्मं व्रतं समाहित ॥११५
तिष्ठेन्मासं पयोऽशित्वा पराकं वा चरेद्व्रतम् ।
अनिर्दिष्टस्य पापस्य शुद्धिरेषा प्रकीर्तिता ॥११६
ब्राह्मण· क्षत्रियं हत्वा गवां दद्यात्सहस्रकम् ।
वृषभैकेन संयुक्तं पापादस्मात्प्रमुच्यते ॥११७
त्रीणि वर्षाणि शुद्ध्यर्थं ब्रह्मघ्नस्य व्रतं चरेत् ।
चान्द्रायणानि वा त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि वा ऽऽचरेत् ॥११८
वैश्यं हत्वा द्विजश्चैवमब्दमेकं व्रतं चरेत् ।
गवां ह्येकशतं दद्याच्चरेच्चान्द्रायणानि च ॥११९
कृच्छ्राणि त्रीणि वा कुर्याद्वचनाद्विदुपामसौ ।
ये हन्युरप्रदुष्टां स्त्रीं चातुर्वर्ण्यां द्विजातय ।
शूद्रहत्या व्रतं ते तु चरन्त· शुद्धिमाप्नुयु ॥१२०
शूद्रां ये चानुलोम्येन निहन्त्यव्यभिचारिणीम् ।
मुनय शुद्धिमिच्छन्ति चन्द्रव्रतेन वैचन ॥१२१
व्यभिचारात्तु ते हत्वा योषितो ब्राह्मणादय· ।
तिलधेनु वरतमां व क्रमादद्युर्विशुद्धये ॥१२२

साध्वीना तु नरो दत्वा गवां चैव सहस्रकम् ।
चीर्णेन शुद्धिमाप्नोति योषाहत्याव्रतं चरेत् ॥१२३
अथ गोघ्नस्य वक्ष्यामि निष्कृतिं श्रोतुमर्हथ ।
यथा यथा विपत्तिः स्याद्‌व्रतं तथोपपद्यते ॥१२४
गोघाती पंचगव्याशी गोष्ठशायी च गोनुग ।
मासमेकं व्रतं चीर्त्वा गोप्रदानेन शुद्ध्यति ॥१२५
एकपादे तु लोमानि द्वये श्मश्रुनिकृन्तनम् ।
पादत्रये शिखावर्जं सशिरं तु निपातने ॥१२६
सशिरं वपनं कृ त्वा त्रिसन्ध्यमवगाहनम् ।
गवां मध्ये वसेद्रात्रौ दिवा गाः समनुव्रजेत् ॥१२७
तिष्ठन्तीभिश्च तिष्ठेत व्रजन्तीभि सह व्रजेत् ।
पिबन्तीभि पिबेत्तोयं संविशन्तीभिश्च संविशेत् ॥१२८
शृंग-पर्णादिसंयुक्तं चर्मोत्कृत्य तदावृतः ।
विप्रौक सु चरेद्भिक्षां स्वकर्म स्यापयन्व्रती ॥१२९
गोघ्नाय देहि मे भिक्षामिति वाचमुदीरयेत् ।
मासमेकं व्रतं कृत्वा गोप्रदानेन शुद्ध्यति ॥१३०
चौर व्याघ्रादिरेभ्यश्च सर्वप्राणैः समुद्धरेत् ।
गर्भप्रपात-पंरस्य तथान्यादपकारतः ॥१३१
भोजयेद्‌ब्राह्मणान्पश्चात्पुनः घृपादिपूर्वकम् ।
दद्याद्गां च घृतं चैकं ततः शुद्ध्यति किल्बिषात् ॥१३२
मुनय केचिदिच्छन्ति विचित्रासु विपत्तिषु ।
यथासम्भवशक्तासु पृथक् पृथक् विनिष्कृतिम् ॥१३३

शस्त्र-वल्गाश्म-मृत्पिण्ड यष्टि-मुष्टि-प्रधावनम् ।
योक्त्रेण सारणं रोधो बन्धनं विद्युदग्नयः ॥१३४
गर्त-पङ्क-प्रपातश्च वह्न्याघ्रादिभक्षणम् ।
क्षुत्तृड्-रोगचिकित्सा च तथाऽतिदोह-वाहने ॥१३५
मृत्युस्थानानि चैतानि गवामत्र प्रधावनम् ।
मृत्युस्थानगतेषु प्रायश्चित्तं पराशरः ॥१३६
उपेक्षणं च पङ्कादौ तथोपविषभक्षणे ।
वक्ष्यमाणक्रमेणैतच्छृणुध्वं द्विजसत्तमाः ॥१३७
शस्त्रेण त्रीणि कृच्छ्राणि तदर्धं वा समाचरेत् ।
अश्मना द्वे चरेत्कृच्छ्रे मृत्पिण्डे नापि कृच्छ्रकम् ॥१३८
यष्टिघाघाते चरेत्कृच्छ्रे साक्षान्मुष्ट्या तु सञ्चरेत् ।
योक्त्रेण पादमेकं तु सारणे पादमेव च ॥१३९
रोधने कृच्छ्रपादे द्वे कृच्छ्रमेकं तु बन्धने ।
कूपपाते चरेत्कृच्छ्रमर्धं वाप्यां समाचरेत् ॥१४०
गोशालहतिपिण्डघाते च प्राजापत्यं चरेद्द्विजः ।
क्षुत्तृड् रोगचिकित्सासु कृच्छ्रमुत्प्रेक्षणे चरेत् ॥१४१
पतितां पङ्कलग्नां वा अयत्नित्वा च यो नरः ।
रक्षस्य चान्यस्य चोपेक्ष्य मासं कृच्छ्रं चरेच्छुचिः ॥१४२
एका चेद्बहुभिर्यष्ट्या रोधिता चेन्म्रियेत गौः ।
पादं पादं चरेयुस्ते इति पाराशरोऽब्रवीत् ॥१४३
सुबद्धां येऽप्यरक्षिताश्च पश्यन्तो नोपकुर्वते ।
पातनोऽत्यस्मात्प्रोक्तं चरेयुस्ते व्रतं नराः ॥१४४

या गर्तादौ विपद्येत क्ष्वेडिता सम्प्रपत्य वा।
पादे क्ष्वेडितयोरुक्तं सत्कर्ता व्रतमाचरेत् ॥१४५
प्रबद्धा रज्जुदोषेण गोर्विपद्येत यस्य सः।
व्रतपादं चरेच्छुद्ध्यै किंचिद्दद्याच्च दक्षिणाम् ॥१४६
योगानपालयन् तुह्यादति वा वाहयेद्वृषम्।
यदि म्रियेत तद्दोषात्तदा कृच्छ्रार्द्धमाचरेत् ॥१४७
घासं यो न क्षुधार्तस्य तृषार्तस्य न वा जलम्।
स्वीकृतस्य न चेद्दद्यात्स तत्पादव्रतं चरेत् ॥१४८
या तु बद्धा चिकित्सार्थं विशल्यकरणाय च।
औषधादिप्रदानाय विपत्तौ नास्ति पातकम् ॥१४९
विद्युत्पातादि-दाहाभ्यां कुण्डस्य पतनादिभिः।
गोभिर्विपत्तिमापन्नैस्तत्र दोषो न विद्यते ॥१५०
पालयन्पश्यतोऽरण्ये गौस्तु व्याघ्रादिभिर्हता।
अकुर्वतः प्रतीकारं कृच्छ्रार्घं तस्य पावनम् ॥१५१
शृण्वन् शून्येषु पालेषु तथान्यारण्यगामिषु।
पाले संमापयत्युग्रैर्हन्यात्तत्र न दोषभाक् ॥१५२
गर्भिणी गर्भशल्या तु तद्गर्भं तु विशल्यतः।
यत्नतो गौर्विपद्येत तत्र दोषो न विद्यते ॥१५३
गर्भस्य पातने पादं द्वौ पादौ गात्रसंभवे।
पादोनं व्रतमाचष्टे हत्वा गर्भमचेतनम् ॥१५४
अङ्ग प्रत्यंगभूतेन तद्गर्भे चेतनान्विते।
द्विगुणं गोघ्नं कुर्यादेषा गोघ्नस्य निष्कृतिः ॥१५५

वस्त्राद्युत्त्रासने गोश्च गलदामकदोषतः ।
पादयोर्बन्धने चैव पादोनं व्रतमाचरेत् ॥१५६

घण्टाभरणदोषेण गौश्चेद्वधमवाप्नुयात् ।
चरेदर्धं व्रतं तत्र भूषणार्थं च यत्कृतम् ॥१५७

गोविपत्ति-वधाशङ्की कुर्यादो नैव निष्कृतिम् ।
सतद्गोरोमतुल्यानि नरकाण्याविशेत्समाः ॥१५८

य ज्ञात्वा पापसम्भीतो विप्राराधनतत्परः ।
तद्रक्तां निष्कृतिं कुर्याद्व्रतैनाः सोऽश्नुते शुभम् ॥१५९

अन्यत्प्राणिवधस्याथ प्रवक्ष्यामि विशोधनम् ।
गजादिपशुद्धयर्थं यदुक्तं या च दक्षिणा ॥१६०

हस्तिनं तुरगं हत्वा वृषभं सारमेयं [illegible] ।
वृषान्यं वा शतगुणं वृषं दद्यात्तथाक्रमम् ॥१६१

क्षणाद्गोनिष्वयं कृत्वा परगोवधदृक्नरः ।
तस्याथ निष्कृतिं कुर्याद्वधशुद्धिमपेक्षया ॥१६२

हंसं श्येनं कपिं गृध्रं जल-स्थलशिखण्डिनम् ।
भासं च हत्वा स्तुगावः शुद्धेण देयाः पृथक् पृथक् ॥१६३

दंम-सारस-चक्राङ्क-मयूर-मद्गु गुपकुटाम् ।
आटी-पारावत क्रौंच शुकका नणभोजनात् ॥१६४

मेषा-जघ्नो वृषं दद्यादल्पेकं शुद्धये द्विजः ।
मनीषिणो वदन्त्येनां प्राणिनां वधनिष्कृतिम् ॥१६५

क्रौंच-सारस-हंसादिशिखि-सारसकुक्कुटान् ।
शुक-टिट्टिभसंयघ्नो नक्ताशी पक्षतः शुचिः ॥१६६

पारावत-कपोतघ्नः सारि-तित्तिर-घातहा ।
त्रिसंध्यांतर्जले प्राणानायम्य स्याच्छुचिर्द्विजः ॥१६७
काकं गृध्रं च श्येनं च अन्यं क्रव्यादपक्षिणम् ।
हत्वा स्यादुपवासेन शुद्धिमाह पराशरः ॥१६८
मार्जारं मूषकं सर्पं हत्वाऽजगर-डिण्डिभौ ।
शर्करभोजनं दण्डमायसं च ददन् शुचिः ॥१६९
मेषं च शशकं गोधा हत्वा कूर्मं च शल्लकम् ।
वार्ताकं गृंजनं जग्ध्वा ऽहोरात्रोपोषणाच्छुचिः ॥१७०
वृकं च जंबुकं हत्वा तरक्षुर्वा तथा द्विजः ।
त्रिरात्रोपोषितः शुद्ध्येत्तिलप्रस्थप्रदानतः ॥१७१
द्विजः शाखामृगं हत्वा सिंहं चित्रकमेव च ।
हत्वा सप्तोपवासान्स दद्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥१७२
महिषोष्ट्रगजाऽश्वानां हत्वा चान्यतमं द्विजः ।
त्रिः स्नात्वा चोपवासेन शुद्धः स्याद्द्विजपूजनात् ॥१७३
वराहं यदि वा रौहं हत्वा मृगमकामतः ।
अकालकृतभोजी सन् नक्तेनैकेन शुद्ध्यति ॥१७४
अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि अस्पृश्यस्पर्शनादिषु ।
अभक्ष्यभक्षणादौ च निष्कृतिं श्रोतुमर्हथ ॥१७५
उदक्या, ब्राह्मणी स्पृष्टा मातंगपतितेन च ।
चान्द्रायणेन शुद्ध्येत द्विजानां भोजनेन च ॥१७६
कापालिकादिकां नारीं गत्वाऽगम्यां तथा पराम् ।
गुरुत्वा पितृव्यादेनं स्याच्छुद्धिं चंद्रव्रतेन तु ॥१७७

कामतस्तु द्विजः कुर्यादुक्तस्त्रीगमनं यदि।
चंद्रव्रतद्वयं शुध्यै प्राह पाराशरो मुनिः ॥१७८
दुग्धं सलवणं सक्तून् सदुग्धान्निशि सामिषान्।
दन्तच्छिन्नान्सकृद्वान्पृथक् पीतजलानि च ॥१७९
योऽद्यादुच्छिष्टमाज्यं तु पीतशेषं जलं पिबेत्।
एकैकशो विशुद्ध्यर्थं विप्रः चंद्रव्रतं चरेत् ॥१८०
यावांसि धावतो यत्र पतन्ति जलबिन्दवः।
तत्पुण्यं जलस्थानं नरचस्य शिलान्तिकम् ॥१८१
तत्र पीत्वा जलं विप्रः श्रान्तस्तृट्परिपीडितः।
तदेनसो विशुद्ध्यर्थं कुर्याच्चान्द्रायणं व्रतम् ॥१८२
नटीं शैलूषिकीं चैव रजकीं वेणुवादिनीम्।
गत्वा चान्द्रायणं कुर्यात्तथा चर्मोपजीविनीम् ॥१८३
गां नृपे चैव वैश्यं च शूद्रं चाप्यनुलोमजम्।
क्षत्रियादिस्त्रियं गत्वा विप्रश्चान्द्रायणं चरेत् ॥१८४
ब्राह्मणान्नं दद्च्छूद्रः शूद्रान्नं ब्राह्मणो दद्त्।
द्वावप्येतावभोज्यान्नौ चरेतां शशिनो व्रतम् ॥१८५
निमन्त्रितोऽपि विप्रः शूद्राद्भुक्तश्च योऽश्नुते।
आमन्त्रयित्-भोक्तारौ शुद्ध्येतामैन्दवेन तु ॥१८६
मामानार्यां च यो गच्छेन्मात्रा सह सगोत्रजाम्।
मातुलस्य सुतां चैव विप्रश्चान्द्रायणं चरेत् ॥१८७
पीतशेषं जलं पीत्वा भुक्तशेषं तथा घृतम्।
अत्त्वा मूत्र-पुरीषे तु द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥१८८

सूनिहस्ताच गोमांसमत्यामथमकामतः।
पीत्वा चंद्रव्रतं कुर्यात्पावनं शुद्धिदं परम् ॥१८९
साग्निः सत्पंचयज्ञान्यो न कुर्वीत द्विजाधमः।
परपाकरतो नित्यं आत्मपाकविवर्जितः ॥१९०
अदाता च सदा लुब्धः श्वपचः परिकीर्तितः।
यो द्विजोऽस्यान्नमश्नाति स कुर्यादैन्दवं व्रतम् ॥१९१
गणिका-गणयोरन्नं यदन्नं बहुयाजकम्।
सीमान्तोन्नयने भुक्त्वा द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥१९२
अजानन् सम्यगश्नीयात्पुत्रजन्मनि यो द्विजः।
सोऽभक्ष्यसममश्नाति द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥१९३
महापातकिनामन्नं योऽद्यादज्ञानतो द्विजः।
अज्ञानात्तप्तकृच्छ्रं तु ज्ञानाच्चान्द्रायणं चरेत् ॥१९४
प्रपात-विष-वह्न्यम्बु-प्रव्रज्योद्बन्धनाशकात्।
च्युतो हतश्च हंता च प्रत्यवासनिकाः स्मृताः ॥१९५
केचिद्देतद्विशुद्ध्यथमिच्छन्ति व्रतमैन्दवम्।
दक्षिणां सवृषां गां च दद्याच्च द्विजभोजनम् ॥१९६
गृहद्वारेऽतिथौ प्राप्ते तस्यादत्त्वा समश्नुते।
अभोज्यमशनं तच्च भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥१९७
सव्यहस्तास्थिते दर्भे यो द्विजः समुपस्पृशेत्।
असृक्पानेन तुल्यं च पीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥१९८
भुक्त्वा शय्यागतः पीत्वा विप्रश्चान्द्रायणं चरेत्।
अभक्ष्येण समं तद्धि प्रायश्चित्तं समं भवेत् ॥१९९

आसनारूढपादः सन्वस्त्रस्यार्धमधः कृतम् ।
धरासुरेन यो भुंक्ते द्विजश्चन्द्रायणं चरेत् ॥२००
उद्धृत्य वामहस्तेन यत्किंचिल्लिख्यते द्विजः ।
सुरापानेन तत्तुल्यं पीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥२०१
स्पृष्टेन तेन संज्ञायाश्चादि सत्कृतमश्नुते ।
चरन् चान्द्रायणं शुद्ध्यै त्रीणि कृच्छ्राणि वा द्विजः ।२०२
अश्नीयात्तेन स्पृष्टेन उच्छिष्टं चाश्नुते हि नः ।
चरेच्चान्द्रायणं शुद्ध्यै त्रीणि कृच्छ्राणि च द्विजः ।।२०३
चान्द्रायणं नयत्यब्दे पाराको मासिके मतः ।
न्यूनाब्दे पादकृच्छ्रं स्यादेकाहः पुनरब्दिके ।।२०४
स्नानमन्येषु कुर्वीत प्राणायामं जपं तथा ।
यःस्वैरिणीनां च पुनर्भूनां च य. कामचारिद्विजयोषितां च ।
रेतोधृतां पावमनाय दद्याद्विप्र. स चंद्रव्रतकृच्छ्रुचिः स्यात् ॥
वेश्मन्यज्ञातचाण्डालो द्विजातेर्यदि तिष्ठति ।

महापातकं शुध्यर्थं सर्वा निष्कृतयो नरैः।
नृप-ग्रामेशविदितैः कुर्वाणैः शुद्धिराप्यते ॥२१०
सुरामूत्र-पुरीषाणां लीढा रेकमकामतः।
पुनः संस्कारकरणाच्छुद्ध्येदाह पराशरः ॥२११
अभक्ष्यभक्षणो विप्रस्तथैवापेयपानकृत्।
व्रतमन्यत्प्रकुर्वीत यदन्त्यन्ये द्विजोत्तमाः ॥२१२
कुशा-ऽब्जा-ऽश्वत्थ-पालाश-बिल्वोदुम्बरवारिणा।
पीतेन जायते शुद्धिः षड्रात्रेण न संशयः ॥२१३
द्रोण्यम्बूशीर-कुम्भाम्भः ऋग्रुण्णं केशवारि च।
पीत्वारण्ये प्रपातोऽर्यं पंचगव्यं रिवच्छुचिः ॥२१४
भाण्डस्थितमभोज्यान्नं पयो-दधि-घृतं पिबन्।
द्विजातेरुपवासः स्याच्छूद्रो दानेन शुध्यति ॥२१५
तत्तोयपीतजीर्णांगः तप्तकृच्छ्रं चरेद्द्विजः।
याते तु सज्जले सद्यः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥२१६
रजकाद्यंबुपानेन प्राजापत्यं बुधैस्मृतम्।
वान्ते जले तदर्धं तु शूद्रः स्यात्पादकृच्छ्रकृत् ॥२१७
चाण्डालकूपपानेन महदेनः प्रजायते।
गोमूत्रयावकाहाराः शुद्ध्येयुर्दिवसैस्त्रिभिः ॥२१८
घृतं दधि तथा दुग्धं गोष्ठे वाऽशौचसूतके।
अभिचारस्य तद्भुक्त्वा भुक्त्वा वा शूद्रभोजनम् ॥२१९
द्रुपदा वा त्रिजो जप्त्वा मानस्तोकमथापि वा।
क्षुधातिपीडितः पश्चादिति प्राह पराशरः ॥२२०

सूतकान्नं द्विजो भुक्त्वा त्रिरात्रोपोषणाच्छुचिः ।
तोयपाने त्वसौ कुर्यात्पंचगव्यस्य चाशनम् ॥२२१
द्रोणाढकं तदर्धं वा प्रस्थं प्रस्थार्धमेव वा ।
घृतस्रुग्भिरसंसृष्टं प्रोक्षणाच्छुचितामियात् ॥२२२
चरुपक्वं शृतं पक्वं अन्नं काकाद्युपाहृतम् ।
तद्ग्रासस्थानसंत्यागात्पूतं हेमाम्बुसिंचनात् ॥२२३
केचिद्वदन्ति तद्ग्रासन्तु तस्याग्निनायचूडनम् ।
केचित्प्रणवयुक्तेन वारिणा प्रोक्षणं विदुः ॥२२४
केश-कीटकसंस्पृष्टं अन्नं मक्षिकयापि च ।
मृद्भस्मवारिणा तत्र क्षेपनत्वं शुद्धिकारणम् ॥२२५
उदक्या ब्राह्मणी स्पृष्टा क्षत्रियापि ह्युदक्यया ।
अर्धं कृच्छ्रं चरेत्पूर्वा तदर्धमपरा चरेत् ॥२२६
प्राजापत्यं चिराःपत्या विट्पत्नी पादमाचरे ।
शूद्रास्पृष्टा चरेत्कृच्छ्रं शूद्री स्नानेन शुद्ध्यति ॥२२७
ब्राह्मण्या ब्राह्मणी स्पृष्टा वैश्योदक्यया च ते ।
चरेतां पादकृच्छ्रं द्वे एते स्नाने विशुद्ध्यति ॥२२८
ब्राह्मणी क्षत्रिया स्पृष्टा ब्राह्मणीव्रतमाचरेत् ।
अपरा क्षत्रियायास्तु पक्षकृच्छ्रमेवमन्ययोः ॥२२९
रजस्वला तु संस्पृष्टा श्व-विट्-शूद्रैश्च वायसैः ।
स्नानं यावत्त्रिराहारं पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥२३०
उदक्या ब्राह्मणी स्पृष्टा मेद-मातंग-भिल्लकैः ।
गोमूत्रयावकाहारा षड्रात्रेण च शुद्ध्यति ॥२३१

उच्छिष्टो ब्राह्मणः स्पृष्ट्वा द्विजातिस्त्रीं रजस्वलाम्।
प्राजापत्येन संशुद्ध्यच्चीर्णकृच्छ्रेण वा पुनः ॥२३२
वदन्ति कवय. केचिद्देतद्दोषविशुद्धये।
प्राणायामशतं चास्य पंचगव्यस्य भक्षणात् ॥२३३
उच्छिष्टो ब्राह्मण. स्पृष्टो ब्राह्मण्युदक्यया चरेत्।
प्राजापत्यं च गायत्रीमयुतं नियतं सकृत् ॥२३४
क्षत्रिण्यादिभिरुच्छिष्टै संस्पृष्टो व्रतमाचरेत्।
अनुच्छिष्टस्तु तत्स्पर्शे स्नानकर्म यतः स्मृतम् ॥२३५
रजकादिकसंस्पर्शे द्विजन्मोदक्ययोषितः।
प्राजापत्यं चरेद्विप्रा अन्याश्चरेयुरंशतः ॥२३६
उदक्यां ब्राह्मणीं गत्वा क्षत्रियो वैश्य एव च।
त्रिरात्रोपोषितः प्राश्य गव्यमाज्यं शुचिर्भवेत् ॥२३७
क्षत्रिणीं चैव वैश्यां च जानन् गत्वा तु कामतः।
चरेत्सान्तपनं विप्रस्तत्पापस्य विमोक्षकृत् ॥२३८
वैश्यां च क्षत्रियो गत्वा वैश्यश्च शूद्रिणीं तथा।
प्राजापत्यं चरेतां ताविति प्राह पराशरः ॥२३९
उच्छिष्टा ब्राह्मणी स्पृष्टा शुना वा वृषलेन वा।
अशुद्धा वा भवेत्तावद्यावन्नस्यादुपोषणम्।
शुद्धा भवति सा तावद्यावत्पश्यति शीतगुम् ॥२४०
विप्रोष्य स्वजनीं वेश्यां महिषगुष्ट्रीमजां खरीम्।
प्राजापत्यं चरेद्गत्वा ह्येकैकस्य विशुद्धये ॥२४१

शूद्रीं तु ब्राह्मणो गत्वा मासं मासार्धमेव वा ।
गोमूत्रयावकाहारो मासार्धेन विशुध्यति ॥२४२

नृपोऽप्यस्वजनां गत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ।
वैश्यपत्नीमसौ गत्वा कृत्वा सांतपनं शुचिः ॥२४३

शूद्रीं तु क्षत्रियो गत्वा गोमूत्रयावकाशनः ।
दशभिर्दिवसैः शुद्ध्येद्वैश्यस्सोऽप्येवमेव हि ॥२४४

उत्तमागमनेऽनार्याः सर्वे ते स्युः कराग्निना ।
मद्यपं च संत्याज्याः खरयानेन योषितः ॥२४५

चाण्डालीमेव भिल्लानामभिगम्य सकृत्स्त्रियम् ।
चाण्डाल-मेद-भिल्लानामभिगम्य स्त्रियं नरः ।
शुद्ध्येच्च पयोभक्तं कुर्यान्मासार्धमघमर्षणम् ॥२४६

पतितां च द्विजाग्रगामी प्राजापत्यं चरेद्द्विजः ।
तैलिकस्य स्त्रियं गत्वा तथा मत्तस्त्रियम् ॥२४७

अज्ञानाभिगतो स्त्रीणां पुंसामनुलोमजस्य च ।
इमां निष्कृतिमेतानि घृतयोनि च रेचन ॥२४८

उपाध्याय-नृपा-ऽऽचार्य-शिष्य-योषिद्रमी नरः।
षण्मासान्कृच्छ्चरणाच्छुद्धिमाह पराशरः ॥२५२
कृतचाण्डालसंस्पर्शः शकृन्मूत्रकरो द्विजः।
षड्रात्रोपोषणाच्छुद्ध्येद्भुक्त्वा ऽऽचान्तो नवयुभिः ॥२५३
ऊर्ध्वोच्छिष्टस्य संशुद्ध्यै केचित्प्राजापतिव्रतम्।
यराकं पञ्चगव्यं च केचिदाहुर्मनीषिणः ॥२५४
उच्छिष्टो ब्राह्मणः स्पृष्ट उच्छिष्टेन द्विजेन तु।
आचम्यैव तु शुध्येतां विष्णुनामानुकीर्तनात् ॥२५५
क्षत्रियेण तु संस्पृष्टो ब्राह्मणो नक्तभोजनात्।
वैश्येन चैव संस्पृष्टो नक्ताशी पंचगव्यपः ॥२५६
शूद्रेण तु च संस्पृष्टो एकरात्रोपवासकृत्।
उच्छिष्टै. पुनरेतैस्तु प्रोक्तं द्विगुणमर्हति ॥२५७
उच्छिष्टः शूद्रसंस्पृष्टः शुना वापि द्विजोत्तमः।
उपोष्य पंचगव्येन शुद्धिः स्यादपरे विदुः ॥२५८
अनुच्छिष्टोऽपि यत्स्पर्शात्स्नाति वर्णो विशुद्धये।
उच्छिष्टः तस्य संस्पर्शे चरेत्प्राजापतिव्रतम् ॥२५९
रजकाद्यन्त्यजैः स्पृष्टः शुद्ध्येत्तस्यार्धमाचरन्।
उदक्या ब्राह्मणी कृच्छ्रात्प्राजापत्यादथापरे ॥२६०
उदक्या ब्राह्मणी स्पृष्टा शुना वा वृषलेन वा।
तावत्तिष्ठेन्निराहारा स्नात्वा कालेन शुद्ध्यति ॥२६१
उदक्या सूतिका म्लेच्छसंस्पर्शेऽस्तमिते रवौ।
दिवाहृताम्बुनास्नात्वा शुद्ध्यद्विप्राग्निसन्निधौ ॥२६२

वदन्त्यपां पवित्रत्वं दिवा सूर्यांशु-मारुते ।
चन्दयित्वा पवित्रत्वं मन्दार्करश्मि-वायुभि ।
मुनयो धर्मवेत्तारो रात्रौ चंद्रांशु-रश्मिभि. ॥२६३
मनुष्य ब्राह्मण प्राश्य षडहं पंचगव्यकम् ।
हेत्रो दशाब्द षण्मासान्दत्वा गां च विशुध्यति ॥२६४
पंचाहेन नृप शुद्धेत्पंचमासान्ददश गाः ।
चतुर्भिर्दिवसैर्वैश्यश्चतुर्मासान् गवा सह ॥२६५
त्र्यहेण तु चतुर्थस्तु दद्यन्मासत्रयं च गाम् ।
मधूरपर्शाद्भवेच्छुद्ध एतद्दाह पराशर ॥२६६
हत्वं नि मार्यं विप्रस्य कामतोऽकामतोऽपि वा ।
गायत्र्यष्टसहस्रेण जप्तेन तु भवेच्छुचि ॥२६७
यो यस्य हरते भूमिं हेम गामश्वमेव वा ।
स तं यत्राध्वगाशापि सद्युक्त शुद्धिमाप्नुयात् ॥२६८

श्व-जंबुक-वृकाद्यैश्च यदि दष्टो भवेन्नरः ।
सचैलो जलमाविश्य दत्वाज्यं शुद्धिमर्हति ॥२७३
शुनो घ्राणावलीढस्य नखैर्विलिखितस्य च ।
यतीनां दर्शनं कार्यमग्निना चोपचूलनम् ॥२७४
अवज्ञां तु गुरोः कृत्वा नक्तं तस्य च भोजनम् ।
नक्षत्रदर्शने त्वन्य इति प्राह पराशरः ॥२७५
कुमारी तु शुना स्पृष्टा जम्बुकेन वृकेण वा ।
यां दिशं भजते सूर्यस्तां दिशं सा विलोकयेत् ॥२७६
दिवसे तु यदा ग्रामे शुना स्पृष्टो भवेद्द्विजः ।
विप्रं प्रदक्षिणीकृत्य घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥२७७
चातुर्वर्ण्यात्तु या नारी कृताभिगमनापि च ।
प्रक्षाल्य नाभितो ऽधस्तादाचान्तस्तु शुचिर्नरः ॥२७८
विप्रे मैथुनिनि स्नानं केचिद्राह्वि शिरोविना ।
नाभिं यावत् विशालद्भिर्गशौचोऽन्त्यजः शुचि. ॥२७९
अभिगच्छन्सुतार्थं च ऋतावृत्तौ स्त्रियं द्विजः ।
न च कुर्वीत स स्नानं नाभेरधस्तु शोधयेत् ॥२८०
त्वङ्कारं तु गुरोः कृत्वा हुंकारं तु गरीयसः ।
प्रसाद्यैतावनश्नन्नयात्स्नात्वा शुद्धो द्विजोत्तमः ॥२८१
विवादे शास्त्रतो जित्वा जयो यस्य न जायते ।
श्मशाने जायते तस्य तमोभावेन दुष्कुलम् ॥२८२
ताडयित्वा तृणेनापि स्कन्धे वाऽऽवध्य रज्जुना ।
कलहादपि निर्जित्य तं प्रसाद्य विशुध्यति ॥२८३

अवगूर्य चरेत् कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने ।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रोऽसृक्पाते कृच्छ्रोऽस्यान्तरशोणिते ॥२८४
प्रेतमूढ्वा च दग्ध्वा च शुद्धिः स्नानाद्द्विजन्मनाम् ।
उपवासेन चैकेन ब्रह्मकूर्चं च पावनम् ॥२८५
प्रेतीभूतं च यः शूद्रं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ।
अनुगच्छेन्नीयमानं त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥२८६
त्रिरात्रे तु ततः पूर्णे नदीं गत्वा समुद्रगाम् ।
प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥२८७
अंगुल्या दन्तकाष्ठं च प्रत्यक्षलवणं तथा ।
मृत्तिकाभक्षणं चैव तुल्यं गोमांसभक्षणम् ॥२८८
कृत्वाऽन्यतममेतेषां शुध्यर्थमात्मनो हितम् ।
चरेच्छशिव्रतं विप्र इति प्राहुर्मनीषिणः ॥२८९
केचिद्वदन्ति मुनयः कृच्छ्रं सान्तपनं तथा ।
तदर्धं पादकृच्छ्रं वा प्राहुरन्ये द्विजोत्तमाः ॥२९०
अर्धोच्छिष्टो द्विजोऽस्नानान्नात्यघं नहि किंचन ।
भुक्त्वाऽनाचम्य वा कुर्याद्विण्मूत्रं केह् निष्कृतिः ? ॥२९१
नक्तोपवासो वारो तु अन्यत्र द्विगुणं चरेत् ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा गायत्र्याः शुद्धिमर्हति ॥२९२
अर्धोच्छिष्टो द्विजः स्पृष्ट शुना वा श्वपचेन वा ।
नक्षत्रदर्शनेऽश्नीयात्पंचगव्यपुरस्सरम् ॥२९३
अर्धोच्छिष्टाश्च विप्राद्याः श्वोच्छिष्टे शूद्रसंस्पृशः ।
उपवासेन शुद्ध्येयुः पंचगव्यस्य पानतः ॥२९४

श्व-काकी-काकसंस्पृष्टो भुञ्जानो ब्राह्मणश्च यः ।
तदन्नस्य परित्यागं कृत्वा स्नानेन शुध्यति ॥२९५
विना यज्ञोपवीतेन भोजनं कुरुते यदि ।
अथ मूत्र-पुरीषे वा रेतः सेचनमेव वा ॥२९६
त्रिरात्रोपरोषितो विप्रः पादकृच्छ्रं तु भूमिपः ।
अहोरात्रोषितो वैश्यः शुद्धिरेषा पुरातनी ॥२९७
विप्रः क्षुत्कृत्य निष्ठीव्य कृत्वा चानृतभाषणम् ।
वचनं पतितैः कृत्वा दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ॥२९८
विप्रस्य दक्षिणे कर्णे नित्यं वसति पावकः ।
अंगुष्ठे दक्षिणे पाणौ तस्मात्तेन च स स्पृशेत् ॥२९९
प्रेक्षणं शशिनोऽर्कस्य ब्रह्मेश-विष्णुसंस्मृतिम् ।
गायत्र्याः शत साहस्रं सर्वपापहरं स्मृतम् ॥३००
गायत्र्यष्टसहस्रं तु ब्रह्महत्याविशोधनम् ।
शूद्रवधे द्विजाग्र्यस्य गायत्र्यष्टसहस्रकम् ॥३०१
राज्ञः पंचसहस्रं तु स्याद्विशश्च तदर्धकम् ।
योगेन गतशीलस्तु यदि वा स्यात्सदा नरः ॥३०२
विप्रश्च सम्मताचारस्तावुभौ सर्वदा शुची ।
मक्षिका सन्ततीधारा विप्रुषो ब्रह्मबिन्दवः ।
स्त्रीमुखं बालवृद्धौ च न दुष्यन्ति कदाचन ॥३०३
आत्मस्त्रीह्यात्मबालश्च आत्मवृद्धस्तथैव च ।
आत्मनः शुचयः सर्वे परेषामशुचीनि तु ॥३०४

उत्पन्नमातुरे स्नानं दशकृत्स्वत्वनातुरः।
स्नात्वा स्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुद्ध्येत्स आतुरः ॥३०५
विवाहोत्सव-यज्ञेषु संग्रामे जलसंप्लवे।
पलायने तथारण्ये स्पर्शदोषो न विद्यते ॥३०६
आद्यसङ्गी समो दोषी सङ्गसङ्गी तदर्धतः।
तत्सङ्गी तृतीयभागी तुरीयस्तु न दोषभाक् ॥३०७
आद्यस्पृष्टुर्भवेत्स्नानं द्वितीयस्यापि तत्स्मृतम्।
शिरः प्रोक्षणमन्येषामन्यत्राऽऽचमनं स्मृतम् ॥३०८
पलाश-शिंशिपाकाष्ठदन्तधावनकृन्नरः।
दिवाकीर्तिसमस्तावद्यावद्गां नैव पश्यति ॥३०९

पद्माश्म-लोहं फल-काष्ठ-चर्म--
भाण्डस्थतोयैः स्वयमेव शौचात्।
पुंसां निशास्वध्वनि निःसत्त्वाना
स्त्रीणां च शुद्धिर्विहिता सदैव ॥३१०

स्नानं स्पृष्टेन येन स्यात्काष्ठाद्यैर्यदि तत्स्पृशेत्।
नावारोहणवत् स्पर्शो तत्रोपस्पर्शनाच्छुचिः ॥३११
म्लेच्छ-लूताशनास्पर्शे क्षेत्रे वा यदि वा स्थले।
उपस्पृशेत् शिरः प्रोक्ष्य संशुद्धो जायते द्विजः ॥३१२
वस्त्रसंस्पर्शने तस्य सचैलाङ्गावगाहनम्।
अङ्गस्पर्शेनवत्तस्य वदन्ति द्विजसत्तमाः ॥३१३
चाण्डालोदकसंस्पृष्टः शुद्धः स्नानेन जायते।
तथा सद्भाण्डसंस्पर्शे स्नानमाहुर्मनीषिणः ॥३१४

उदक्या स्पर्शने स्नानमंशुकेनान्तराऽपि वा।
तत्स्पृष्टेऽपि भवेत्स्नानं तुल्याः सर्वा रजस्वलाः ॥३१५
संस्पर्शे मेद-भिल्लानां तथैव ब्रह्मघातिनाम्।
पतितानां च संस्पर्शे स्नानमेव विधीयते ॥३१६
रजस्वलादिसंस्पर्शे उपस्पर्शनमेव च।
उदक्यायाद्वितीयेऽह्नि केचिदाचमनं विदुः ॥३१७
प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी।
तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थे तु विशुध्यति ॥३१८
पुरुहूतः पुरा दैत्यं त्रिशीर्षाख्यं जघान यत्।
तद्वधे ब्रह्महत्यायाः स्त्रीणां स प्रददौ फलम् ॥३१९
आसां तत्प्रभृति स्त्रीणामस्पृश्यत्वं सदा भवेत्।
अंशैर्दिनत्रयं ह्येतच्छुक गुर्वादिकल्पितम् ॥३२०
शबराश्च पुलिन्दाश्च कैवर्ताश्च नटास्तथा।
एतान् रजकसन्तुल्यान् केचिदाहुर्मनीषिणः ॥३२१
रजक्याद्यभिगम्यते वैश्या गो-मूत्र यावकम्।
चरन्ति षड्गुणाहोभिः कृच्छ्रं वा द्विगुणं भवेत् ॥३२२
ब्रह्म क्षत्रिय विड्जाता शूद्रास्तेऽनुक्रमेण तु।
क्रमातिक्रमतश्चान्ये म्लेच्छाश्चान्त्यवर्णसंभवाः ॥३२३
भोज्याशनास्तु सच्छूद्रा अभोज्याशाः परे स्मृताः।
आमाशनानि भोज्यानि शृतशुद्धिरुपयुज्यते ॥३२४
दास नापित गोपाल कुलमित्रा ऽर्धसीरिणः।
भोज्याशा नापितश्चैव यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥३२५

पर्युषितं चिरस्थं च भोज्यं स्नेहसमन्वितम् ।
यव गोधूम माषाणा स्नेह गोरसविक्रयः ॥३२६
आपद्गतो द्विजोऽश्नीयाद्गृह्णीयाद्वा यतस्ततः ।
न स लिप्येत पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥३२७
ज्ञापितं शूद्रगेहेऽन्नं कटु पक्वं च यद्भवेत् ।
नीत्वा नद्यन्तिके तद्वै प्रोक्ष्य भुजन्न दोषभाक् ॥३२८
गायत्र्योङ्कारपूताभिः केचिदद्भिश्च प्रोक्षणम् ।
मन्यन्ते विष्णुमन्त्रेण कलिधर्मं समाश्रिताः ॥३२९
आमं मासं घृतं क्षौद्रं स्नेहाश्च फलसम्भवाः ।
म्लेच्छभाण्डस्थिता ह्येते निष्क्रान्ताः शुचयः स्मृताः ॥३३०
आभीरभाण्डसंस्थानि पयो दधि घृतानि च ।
तावत्पूतं हि तद्भाण्डं यावत्तत्र तु तिष्ठति ॥३३१
पूतानि सर्वपण्यानि कारहस्तस्थितानि च ।
अदत्तानि च भक्ष्याणि यन्नतस्तु द्विजातिभिः ॥३३२
सर्वरोपस्करैर्युक्ता शय्या रक्तांशुकानि च ।
पुष्पाणि चैव शुद्ध्यन्ति प्रोक्षितानि च संशयः ॥३३३
अलेपं मृण्मयं भाण्डं भाण्डसंचयमेव च ।
प्रोक्षणादेव शुध्येत सलेपमग्नितापनात् ॥३३४
कास्यं च भस्मना शुध्येत् मद्यमांसविवर्जितम् ।
सुरा मूत्र पुरीषाभ्यां शुध्यते ताप लेपनैः ॥३३५
अलिप्तं मद्य सुराद्यैस्ताम्रमम्लेन शुध्यति ।
रजसा स्त्री मनोदुष्टा नद्यश्च वेगसंयुताः ॥३३६

अवेगमपि यद्भूरि सरिद्वारि ह्रदे च यत् ॥।
सकृद्स्पृश्यसंस्पृष्टं न दुष्यति च तत् ह्रदः ॥३३७
सत्येन पूयते वाणी धर्मः सत्येन वर्धते ।
तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यमात्मशुध्यै द्विजातिभिः ॥३३८
रथ्याकर्दमतोयानि नावः पथि तृणानि च ।
मारुतार्केण शुध्यन्ति निशि चंद्रर्क्षमारुतैः ॥३३९
यथान्यमयमुक्तानि प्रायश्चित्तानि सत्तम ।
उक्तानुक्तानि सर्वाणि ज्ञातव्यानि द्विजातिभिः ॥३४०
प्रायश्चित्तं न यत्प्रोक्तं धर्मशास्त्रप्रवक्तृभिः ।
द्विजैस्तत्र प्रकल्प्यं स्याद्धर्मशास्त्रार्थचिन्तकैः ॥३४१

उक्ता मया निष्कृतयः समासात्
संशुद्धये वर्णचतुष्टयस्य ।
व्रतानि तेषां विहितानि यानि
वक्ष्याम्यतस्तानि निबोधयेति ॥३४२

इति श्री बृहत्पराशरीये धर्मशास्त्रे सुव्रतप्रोक्तायां मनुस्मृत्यां प्रायश्चित्तनिर्णयो नाम अष्टमोऽध्यायः ।

-ooo-

## नवमोऽध्यायः।

### ॥ अथ व्रतोपवासविधिवर्णनम् ॥

व्रतान्यथ प्रवक्ष्यामि ह्यैन्दवादिक्रमेण तु।
पापक्षयः कृतैर्यैः स्याद्धर्मार्थे तु महोदयः ॥१
चन्द्रवृध्याऽश्नीयात् ग्रासान् शुक्ले कृष्णे च ह्रासयेत्।
चन्द्रक्षये न भोक्तव्यं यवमध्यं शशिव्रतम् ॥२
विपरीतक्रमेणाश्नन्नादावारभ्य ह्रासयेत्।
वर्धयेदन्यपक्षे तु पिपीलीमध्यमैन्दवम् ॥३
अष्टावष्टौ समश्नीयात्सव्रती प्रतिवासरम्।
अष्टमासिकमित्येतच्चान्द्रायणमथापरम् ॥४
शतद्वयं तु पिंडाना चत्वारिंशत्समन्वितम्।
मासेनैवोपभुञ्जीत चान्द्रायणमथापरम् ॥५
चतुर प्रातरश्नीयात्सायं ग्रासांश्च तावता।
शिशुचान्द्रायणं तज्ज्ञैः प्रोक्तं पापप्रणोदनम् ॥६
मध्यन्दिने यदश्नीयादष्टौ ग्रासान् दिनंप्रति।
चान्द्रायणं यतीना तु व्रतज्ञैः परिकीर्तितम् ॥७
शिप्यण्डसम्मितान् ग्रासान् चन्द्रव्रतो प्रयोजयेत्।
दोष स्यादन्यथाभावे तस्मादुक्तं समाश्रयेत् ॥८
एकभुक्तैश्च नक्तैश्च तथैवाऽयाचितैरपि।
उपवासैश्चतुर्भिश्च कृच्छ्रः षोडशभिर्दिनैः ॥९

उष्णं जलं पयः सर्पिरेकैकं च त्र्यहं पिबेत् ।
वायुभक्षस्त्र्यहं तिष्ठेत्तप्तकृच्छ्रोऽयमुच्यते ॥१०
पलमेकं जलं पीत्वा पलमेकं तथा पयः ।
पलमेकं तथाज्यस्य मानमेतत्प्रकीर्तितम् ॥११
एतत्तु त्रिगुणं तज्ज्ञैर्महासांतपनं स्मृतम् ।
प्राजापत्यं च कृच्छ्रं च पराकस्त्रिगुणो महान् ॥१२
पद्मोदुम्बर-राजीव-बिल्वपत्रं कुशोदकम् ।
प्रत्येकं प्रत्यहं प्राश्य पर्णकृच्छ्र. प्रकीर्तितः १३
प्रत्येकं प्रत्यहं गव्यं मूत्रं शकृत्पयो दधि ।
घृतं कुशोदकं पीत्वा उपवासश्च तत्समः ॥१४
एभिः समाशनैरुक्तं द्विव्यं सान्तपनं द्विजैः ।
सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं मुनिभिः परिकीर्तितः ॥१५
एतत्तु त्रिगुणं तज्ज्ञैर्महासान्तपनं स्मृतम् ।
प्राजापत्यं च कृच्छ्रं च पराकस्त्रिगुणो महान् ॥१६
एकभुक्तं च नक्तं च अयाचितविशेषणे ।
पादकृच्छ्रोऽयमुद्दिष्टः त्रिघ्नं प्राजापतिव्रतम् ॥१७
अयमेवातिकृच्छ्रः स्यात्पाणिपूता(रा)न्नभोजनः ।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रः पयसा दिवसानेकविंशतिः ॥१८
दिनैर्द्वादशभिः प्रोक्तः पराकः समुपोषितैः ।
एक-द्व्यह-त्र्यहादीनि नक्तं चैव यथाश्रुतम् ॥१९
सम्प्राश्य तिलपिण्याकं तक्रं तोयं कुशोदकम् ।
पञ्चमे ह्युपवासः स्यात्सौम्यकृच्छ्रोऽयमुच्यते ॥२०

चान्द्रायणे च कृच्छ्रे च त्रिकालं स्नानमाचरेत्।
स्नानद्वयं तु कर्तव्यं व्रतेष्वेवापरेषु च ॥२१
शक्तिं ज्ञात्वा शरीरस्य स्नानं कार्यं तथा व्रतम्।
असामर्थ्ये तु कायस्य याज्यः पर्षदनुग्रहः ॥२२
ब्रह्मकूर्चं प्रवक्ष्यामि व्रतानामुत्तमं व्रतम्।
कृतेन येन मुच्यन्ते प्राणिनः सर्वकिल्बिषैः ॥२३
नीलिकायास्तु गोमूत्रं कृष्णायाः शकृदुद्धरेत्।
पयस्त्वतिसुवर्णायाः पीतायाश्च तथा दधि ॥२४
कपिलाया घृतं तद्वन्महापातकनाशनम्।
अभावे सर्ववर्णायाः कपिलायाः समुद्धरेत् ॥२५
पलानि पञ्च मूत्रस्य अङ्गुष्ठार्धं तु गोमयम्।
क्षीरं सप्तपलं ग्राह्यं तथा दध्नः पलत्रयम् ॥२६
घृतं चाष्टपलं ग्राह्यं पलमेकं कुशाम्भसः।
मन्त्रैः सर्वाणि चैतानि अभिमन्त्र्याथ मिश्रयेत् ॥२७
गायत्र्या चैव गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम्।
आप्यायस्वेति वै क्षीरं दधिक्राव्णस्तथा दधि ॥२८
तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम्।
निष्पन्नं पंचगव्यं च पात्रेषु क्रमतः पिबेत् ॥२९
मध्यमेन पलाशस्य तत्पत्रेण पिबेद्द्विजः।
द्वितीयं पद्मपत्रेण ब्रह्मपत्रेण चापरे ॥३०
चतुर्थं ताम्रपात्रेण तत्पिबेद्व्रतकृद्द्विजः।
आलोड्य प्रणवेनैव निर्मथ्य प्रणवेन च ॥३१

उद्धृत्य प्रणवेनैव प्राशयेत्प्रणवेन तु ।
विष्णुं संस्नापयेद्भक्त्या पंचगव्येन चार्चयेत् ॥३२
कूष्माण्डैर्जुहुयान्मंत्रैः पञ्चगव्यं हुताशने ।
सव्याहृत्या च गायत्र्या तथैव प्रणवेन च ॥३३
ब्रह्मकूर्चमिदं प्रोक्तं व्रतं पंचदिनात्मकम् ।
पञ्चगव्यं च सम्प्राश्य पंचरात्रोपवासकृत् ॥३४
नक्तेन वा समश्नीयाद्यावच्छक्त्या दिनानि च ।
पाञ्चाह्निकं पारणकं व्रतस्यास्य प्रकीर्तितम् ॥३५
निर्दहेत्सर्वपापानि ब्रह्मकूर्चमिदं स्मृतम् ।
अन्ये वदन्ति कवय उपवासविना व्रतम् ॥३६
जप-होमादि कर्तव्यं देवतार्चनमेव वा ।
पञ्चगव्यं च होतव्यं पञ्चगव्यं समश्नियात् ॥३७
ब्राह्मणान् भोजयेत्तावद्यावत्कुर्यादिदं व्रतम् ।
यत्त्वगस्थिगतं पापं विद्यते पुरुषस्य च ॥३८
ब्रह्मकूर्चो दहेत्सर्वं समिद्धोऽग्निरिवेन्धनम् ॥३९
यावन्ति पापानि भवन्ति पुंसा दैवादकामादपि कामतो वा ।
उक्तानि तेषां मुनिना व्रतानि शुध्यर्थमेतान्यपराणि चैवम् ॥४०
धर्मार्थमेतानि कृतानि पुंसां दद्युर्दिवौकस्त्वविमुक्तसिद्धिः ।
अत्रापि पूज्यत्वमशेषलोकैस्तेज.शरीरी विचरन् विभाति ॥४१
यस्यास्ति भीतिः पुरुषस्य पापादिच्छेच्च कर्तुं क्षयमेनसां च ।
प्रोत्थैव तं च व्रतदानजप्यं प्रोद्दिश्यमेतन्न तदन्यतस्तु ॥४२

चान्द्रायणे च कृच्छ्रे च त्रिकालं स्नानमाचरेत् ।
स्नानद्वयं तु कर्तव्यं वृतेष्वेवापरेषु च ॥२१
शक्तिं ज्ञात्वा शरीरस्य स्नानं कार्यं तथा व्रतम् ।
असामर्थ्ये तु कायस्य याच्यः पर्षदनुग्रहः ॥२२
ब्रह्मकूर्चं प्रवक्ष्यामि व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।
कृतेन येन मुच्यन्ते प्राणिनः सर्वकिल्बिषैः ॥२३
नीलिकायास्तु गोमूत्रं कृष्णायाः शकृदुद्धरेत् ।
पयश्चातिसुवर्णायाः पीतायाश्च तथा दधि ॥२४
कपिलाया घृतं तद्वन्महापातकनाशनम् ।
अभावे सर्ववर्णायाः कपिलायाः समुद्धरेत् ॥२५
पलानि पञ्च मूत्रस्य अङ्गुष्ठार्धं तु गोमयम् ।
क्षीरं सप्तपलं ग्राह्यं तथा दध्नः पलत्रयम् ॥२६
घृतं चाष्टपलं ग्राह्यं पलमेकं कुशाम्भसः ।
मन्त्रैः सर्वाणि चैतानि अभिमन्त्र्याथ मिश्रयेत् ॥२७
गायत्र्या चैव गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् ।
आप्यायस्वेति वै क्षीरं दधिक्राव्णस्तथा दधि ॥२८
तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम् ।
नित्यं पंचगव्यं च पात्रेषु क्रमतः पिबेत् ॥२९
मध्यमेन पलाशस्य तत्पत्रेण पिबेद्द्विजः ।
द्वितीयं पद्मपत्रेण ब्रह्मपत्रेण चापरे ॥३०
चतुर्थं ताम्रपात्रेण तत्पिबेद्व्रतकृद्द्विजः ।
आलोड्य प्रणवेनैव निर्मथ्य प्रणवेन च ॥३१

उद्धृत्य प्रणवेनैव प्राशयेत्प्रणवेन तु ।
विष्णुं संस्नापयेद्भक्त्या पंचगव्येन चार्चयेत् ॥३२
कूष्माण्डैर्जुहुयान्मंत्रैः पञ्चगव्यं हुताशने ।
सव्याहृत्या च गायत्र्या तथैव प्रणवेन च ॥३३
ब्रह्मकूर्चमिदं प्रोक्तं व्रतं पंचदिनात्मकम् ।
पञ्चगव्यं च सम्प्राश्य पंचरात्रोपवासकृत् ॥३४
नक्तेन वा समश्नीयाद्यावच्छक्त्या दिनानि च ।
पाञ्चाहिकं पारणकं व्रतस्यास्य प्रकीर्तितम् ॥३५
निर्दहेत्सर्वपापानि ब्रह्मकूर्चमिदं स्मृतम् ।
अन्ये वदन्ति कस्य उपवासविना व्रतम् ॥३६
जप-होमादि कर्तव्यं देवतार्चनमेव वा ।
पञ्चगव्यं च होतव्यं पञ्चगव्यं समश्नियात् ॥३७
ब्राह्मणान् भोजयेत्तावद्यावत्कुर्यादिदं व्रतम् ।
त्वगस्थिगतं पापं विद्यते पुरुषस्य च ॥३८
ब्रह्मकूर्चो दहेत्सर्वं समिद्धोऽग्निरिवेन्धनम् ॥३९
यावन्ति पापानि भवन्ति पुंसा दैवादकामादपि कामतो वा ।
उक्तानि तेषां मुनिना व्रतानि शुध्यर्थमेतान्यपराणि चैवम् ॥४०
धर्मार्थमेतानि कृतानि पुंसा दद्युर्दिवौकस्त्वभिमुक्तसिद्धि ।
अत्रापि पूज्यत्वमशेषलोकैस्तेज शरीरी विचरन् विभाति ॥४१
यस्यास्ति भीति पुरुषस्य पापाद्विच्छेव कर्तुं क्षयमेनसां च ।
प्रीत्येव तं च व्रतदानजप्यं प्रोद्दिश्यमेतन्न तदन्यतस्तु ॥४२

यद्दन्ति दाने मुनयः प्रधानं कलौ युगे नान्यदिहास्ति किञ्चित् ।
विशोधनं सर्वमिहापि पुण्यं वदामि तस्मादथ दानधर्मान् ॥४३

इति बृहत्पाराशरीये धर्मशास्त्रे सुव्रतप्रोक्तायां संहितायां
ऐन्द्वादिव्रतनिर्णयो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ६ ॥

—॰—

दशमोऽध्यायः ।

॥ अथ सर्वदानविधिवर्णनम् ॥

दानानि विधिना सार्धं जगौ यानि पराशरः ।
व्यासत्य तानि वक्ष्यामि श्रूयतां द्विजसत्तमाः ॥१
दानेन प्राप्यते स्वर्गो दानेन सुखमश्नुते ।
इहामुत्र च दानेन पूज्यो भवति मानवः ॥२
न दानात् परमो धर्मस्त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
तस्माद्दानं प्रदातव्यं यथाशक्त्या सदा नरैः ॥३
मुमुक्षवोऽपि योगीशा भिक्षादानोपजीविनः ।
अन्नं तोय-समायुक्तं प्रयच्छते तथैव च ॥४
तोयमन्नं च वाञ्छन्ति किं पुनः सानुरागिणः ।
सर्वोपस्करसंयुक्तं गृहं च गृहमातृकम् ॥५
वृषादियुक्तं सीरं च वृषमेरं तथैव च ।
गृह्यग्निना प्रदानेन गोप्रदानं तथैव च ॥६

सौरभेयी द्विवत्सा च तिलधेनुमतः परम् ।
घृतधेनुं पयोधेनुं हेमधेनुं सुविस्तरम् ॥७
कृष्णाजिनप्रदानं च वाजिस्यंदनमेव च ।
एकृष्णाजिप्रदानं च तथा तस्य परिग्रहः ॥८
सुखासनानि यानानि हस्ति रथं तथा गजम् ।
एकहस्तिप्रदानं च कन्यादानफलं तथा ॥९
भूमिदानफलं चैव तुलापुरुषमेव च ।
हेम-रूप्यप्रदानं च मणिकादिसमन्वितम् ॥१०
त्रपु-सीसक-ताम्रादिसर्वधातुप्रदानवत् ।
नक्षत्र-तिथि-योगेषु यद्यत्तद्दानजं फलम् ॥११
विद्यादानफलं चैव प्राणदानं तथैव च ।
अभयादिकदानानि प्रतिग्रहे यथा विधिः ॥१२
दृष्टा पूर्वौ फलोपेतो सर्वं विस्तरतो मया ।
शक्तिसूनोः श्रुतं पूर्वं क्रमात्कथयतः शृणु ॥१३
गोहिरण्यादिदानानां सर्वेषामप्यनुत्तमम् ।
अन्नदानमपेक्षन्ते सर्वेऽपि हि दिवौकसः ॥१४
अन्नार्थं मातरिश्वायमन्नार्थं च तथाऽनलः ।
अन्नार्थं सविता देवो याति ज्वलति भासते ॥१५
अन्नकामः ससर्जेदं विधिरप्यखिलं जगत् ।
अन्नात्परतरं तत्वं न भूतं न भविष्यति ॥१६
दद्यादहरहस्तस्मादन्नं विप्राय मानवः ।
शृतं वा यदि वा चामं स स्वर्गे सुख मेधते ॥१७

शोभनान् संभृतान् कुम्भान् पक्वान्नपरिपूरितान् ।
अपूपैर्मोदकाद्यैश्च दत्वा दिवि सुखं वसेत् ॥१८
मणिकं कलशान्वाऽपि यः पूरयति शक्तितः ।
सुगुमाद्भिर्द्विजौकस्तु संपूर्णाशो दिवं व्रजेत् ॥१९
द्विजान् यः पाययेत्तोयं अन्यानपि पिपासितान् ।
प्रपां तु कारयेद्ग्रीष्मे देवलोकमवाप्नुयात् ॥२०
यद्वातृणादिकं दद्याद्वर्षासु च प्रतिश्रयम् ।
पादाभ्यङ्गं सर्वधासि शीते प्रावरणानि च ॥२१
उपानत् पादुके चैव दद्त्कामानवाप्नुयात् ।
सप्तधान्यसमायुक्तं सर्वं स्नेहसमन्वितम् ॥२२
सर्वोपस्करसंयुक्तं सर्वालंकारभूषितम् ।
हिरण्य-गो-कृपा-श्वैश्च तूली-शय्योपधानकैः ॥२३
वरस्त्रीभूषणैर्युक्तं सकार्यं ताम्रभाजनम् ।
कण्डप्यादिसमायुक्तं ददत् पात्राय मानवः ॥२४
पक्वेष्टकचितं कृत्वा सर्वलक्षणसंयुतम् ।
मृण्मयं वा तथा सद्म कृत्वा चाश्ममयं तथा ॥२५
दत्वा स्थानमवाप्नोति प्राजापत्यमसंशयम् ।
प्राकारा यत्र सौवर्णा गृहाण्युच्चैस्तराणि च ॥२६
माणिक्य-गारुडर्वज्रैर्मौक्तिकैर्भूषितानि च ।
देवकन्यासहस्रेण स वृतो गीत-नृत्यकैः ॥२७
सेव्यमानोऽप्सरसङ्घैः प्राजापतिसमं वसेत् ।
अनड्वाहौ च धूर्वाहौ बलवन्तौ सुलक्षणौ ॥२८

तरुणौ सुविषाणौ च घंटाभरणभूषितौ ।
अदुष्टावेकवर्णौ तु सशिरौ दक्षिणान्वितौ ॥२९
य आहूय द्विजाग्र्याय दद्याद्भक्त्या तु मानवः ।
सोऽनडुद्रोमतुल्यानि स्वर्गे वर्षाणि तिष्ठति ।
अप्सराभिर्वृतो नित्यं सेव्यमानः सुरासुरैः ॥३०
एकोऽपि हि वृषो देयो धूर्वहः शुभलक्षणः ।
अरोगश्चापरिक्लिष्टो यस्मात्स दशगोसम. ॥३१
एकेन दत्तेन वृषेण यस्माद्भवन्ति दत्ता दश सौरभेयाः ।
माहेय्यतो यद्धरणीसमानात्तस्माद्वृषात् पूज्यतमोऽस्ति नान्य ॥
गृष्टिदानं प्रवक्ष्यामि यथा देयं द्विजातिभिः ।
यो विधिर्दक्षिणायाश्च तथा सर्वं निबोधत ॥३३
एकरात्रोषितः स्नातो गोदाता पञ्चगव्यप. ।
पञ्चामृतेन संस्नाप्य सम्पूज्य गरुडध्वजम् ॥३४
सवत्सां वस्त्रसंयुक्तां सितयज्ञोपवीतिनीम् ।
सुविषाणां सुरूपां च सर्वलक्षणसंयुताम् ॥३५
हेमकल्पितशृंगां च सुरूप्यचरणाम्बकाम् ।
पयस्विनी सुशीलां च हिरण्योपरिसंस्थिताम् ॥३६
प्रत्यङ्मुखाय विप्राय गृष्टिं तां च उदङ्मुखीम् ।
त्वमिमां प्रतिगृह्णीया. प्रीतोऽस्तु केशवोऽनया ।
इति दत्वोदकं हस्ते पदान्यष्टौ विसर्जयेत् ॥३७
व्यावर्तेत ततःपश्चात्प्रणम्य शिरसा द्विजम् ।
अनेन विधिना धेनुं यो विप्राय प्रयच्छति ॥३८

स विष्णुप्रीणनात्याति विष्णुलोकमसंशयम् ।
आत्मनः पुरुषान् सप्त आगमिष्याश्च सप्त च ।
आत्मानं सप्तजन्मोत्थात्पापाद्विमोचयेन्नरः ॥३९
पदे पदे तु यज्ञस्य गोर्दत्ताय च मानवः ।
फलमाप्नोति विप्रेन्द्राः शुश्रावैतत्पुरा हरेः ॥४०
सर्वकामसमृद्धात्मा सर्वलोकेषु पूजितः ।
नाकमाप्यौघहन्त्वा च यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥४१
इक्ष्वाकुणा तथा चान्यैर्बहुधा वसुधाधिपैः ।
यैर्या नृभिरियं दत्ता जग्मुस्तेऽपि च विष्टपम् ॥४२
पश्यन्ति दीयमाना ये ये भवन्त्यनुमोदकाः ।
तेऽपि पापाद्विनिर्मुक्ता विष्णुलोकमवाप्नुयुः ॥४३
पादद्वयं मुखं योन्या प्रसवन्त्याः प्रदृश्यते ।
तदा च द्विमुखी गौः स्याद्देया यावन्न सूयते ॥४४
क्षोणीतुल्या तदा सा गौः सर्वैरुक्ता मुनीश्वरैः ।
सापि प्राग्विधिना देया सकांस्यदोहना द्विजाः ॥४५
एकत्र पृथिवी सर्वा सशैल-वन-कानना ।
तस्या गौर्ज्यायसी साक्षादेव श्रीमयतोमुखी ॥४६
गोर्वत्सस्य च लोमानि यावत्संख्यानि सत्तमाः ।
तावत्सङ्ख्यानि वर्षाणि ध्रुवं ब्रह्मजने वसेत् ॥४७
अरोगामपरिक्लिष्टां धेनुं गामथ वापि च ।
दत्वा स्वर्गमवाप्नोति यावदाभूतसंक्षयम् ॥४८

तिलधेनुं प्रवक्ष्यामि प्रीणनाय हरेरिमाम्।
यथा तुष्यति गोविन्दो दत्तया तु गवाऽनघ ॥४९
ब्रह्मादिवर्णहा गोघ्नः पितृ-मातृसुहृद्वधात्।
अग्निदो गुरुहा चैव तथैव गुरुतल्पगः ॥५०
सर्वपापसमायुक्तो युक्तो यश्चोपपातकैः।
सर्वैः पापैः प्रमुच्येत तिलधेन्वा प्रदत्तया ॥५१
अनुलिप्ते महीपृष्ठे वस्त्राजिनसमावृते।
धर्मज्ञाः केचिदिच्छन्ति कुतपे च तिलास्तृते ॥५२
आस्तीर्य त्वाविकं भूमौ तत्र कृष्णाजिनं पुनः।
तिलांस्तु प्रक्षिपेत्तत्र कृष्णाढकचतुष्टयम् ॥५३
कुर्यादुत्तरतोऽभ्यर्णे आढकेन तु वत्सकम्।
सर्वरत्नैरलङ्कुर्यात्सौवर्णैर्या सवत्सकाम् ॥५४
कार्ये हेममये शृङ्गे चरणा राजतास्तथा।
मिष्टान्नरसना कुर्याद्गंधघ्राणवतीं शुभाम्।
आस्यं गुडमयं तस्याः सास्ना सूत्रमयी तथा ॥५५
ताम्रपृष्ठेक्षुपादा च कार्या मुक्ताफलेक्षणा।
प्रशस्तपत्रश्रवणा फलदन्तवती तथा ॥५६
शुभ्रस्रग्व्यथलाङ्गूला नवनीतस्तनान्विता।
नारिकेलैर्बीजपूरैश्च जम्बीरैर्नारिकेलकैः ॥५७
बदरा-ऽऽम्रकपित्थैश्च मणिमुक्ताफलार्चिताम्।
सितवस्त्रयुगच्छन्नां सितच्छत्रसमन्विताम् ॥५८

स विष्णुप्रीणनाद्याति विष्णुलोकमसंशयम् ।
आत्मनः पुरुषान् सप्त भागधन्नाश सप्त च ।
आत्मानं सप्तजन्मोत्थात्पापाद्विमोचयेन्नरः ॥३६

पदे पदे यज्ञस्य गोर्वत्सस्य च मानवः ।
फलमाप्नोति विप्रेन्द्राः शुभावैनत्तुरा हरेः ॥४०

सर्वकामसमृद्धात्मा सर्वलोकेषु पूजितः ।
नाग्नाप्यघोषहन्त्वा च यार्थादिः द्राक्षनुर्दरा ॥४१

इक्ष्वाकुणा तथा चान्यैर्बहुधा वसुधाधिपैः ।
यैर्या भूमिरियं दत्ता जग्मुस्तेऽपि च विष्टपम् ॥४२

पश्यन्ति दीयमानां ये ये भवन्त्यनुमोदकाः ।
तेऽपि पापाद्विनिर्मुक्ता विष्णुलोकमवाप्नुयुः ॥४३

पादद्वयं मुखं योऽन्यां प्रसवन्त्याः प्रदृश्यते ।
तदा च द्विमुखी गौः स्याद्देया यावन्न सूयते ॥४४

क्षोणीतुल्या तदा सा गौः सर्वैरुक्ता मुनीश्वरैः ।
सापि प्राग्विधिना देया सकाम्यदोहना द्विजाः ॥४५

एकत्र पृथिवी सर्वा सशैल-वन-कानना ।
तस्या गौर्ज्यायसी साक्षादेकत्रोभयतोमुखी ॥४६

गोर्वत्सस्य च लोमानि यावत्संख्यानि सत्तमाः ।
तावत्सङ्ख्यानि वर्षाणि ध्रुवं ब्रह्मजने वसेत् ॥४७

अरोगामपरिक्लिष्टां धेनुं गामथ वापि च ।
दत्वा स्वर्गमवाप्नोति यावदाभूतसंक्षयम् ॥४८

तिलधेनुं प्रवक्ष्यामि प्रीणनाय हरेरिमाम्।
यथा तुष्यति गोविन्दो दत्तया नु गवाऽनघ ॥४९
ब्रह्मादिवर्णहा गोघ्नः पितृ-मातृसुहृद्वधात्।
अग्निदो गुरुहा चैव तथैव गुरुतल्पगः ॥५०
सर्वपापसमायुक्तो युक्तो यश्चोपपातकैः।
सर्वैः पापैः प्रमुच्येत तिलधेन्वा प्रदत्तया ॥५१
अनुलिप्ते महीपृष्ठे वस्त्राजिनसमावृते।
धर्मज्ञाः केचिदिच्छन्ति कुतपे च तिलांस्तते ॥५२
आस्तीर्य त्वाविकं भूमौ तत्र कृष्णाजिनं पुनः।
तिलांस्तु प्रक्षिपेत्तत्र कृष्णाढकचतुष्टयम् ॥५३
कुर्यादुत्तरतोऽभ्यर्णे आढकेन तु वत्सकम्।
सर्वरत्नैरलङ्कुर्यात्सौरभेयीं सवत्सकाम् ॥५४
कार्ये हेममये शृङ्गे चरणा राजतास्तथा।
मिष्टान्नरसनां कुर्याद्गंधघ्राणवतीं शुभाम्।
आस्यं गुडमयं तस्याः सास्ना सूत्रमयी तथा ॥५५
ताम्रपृष्ठेक्षुपादा च कार्या मुक्ताफलेक्षणा।
प्रशस्तपत्रश्रवणा फलदन्तवती तथा ॥५६
शुभ्रस्रग्दामलाङ्गूला नवनीतस्तनान्विता।
नारिङ्गैर्बीजपूरैश्च जम्बीरैर्नारिकेलकैः ॥५७
बदरा-ऽऽम्रकपित्थैश्च मणिमुक्ताफलार्चिताम्।
सितवस्त्रयुगच्छन्नां सितच्छत्रसमन्विताम् ॥५८

इत्थं विधां च तां कुर्यात् श्रद्धया परयान्वितः।
कांस्योपदोहनां दद्यात्केशवः प्रीयतामिति ॥५९
कुर्यात्र गृष्टिवद्विद्वान् इमामप्युत्तरामुनीम्।
सम्यगुणार्यं विधिना दत्वैतेन द्विजोत्तमः ॥६०
सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः पितरं सपितामहम्।
प्रपितामहं तथा पूर्वं पुरुषाणां चतुष्टयम् ॥६१
पुत्रपौत्रप्रधरतामेत्तथैव च चतुष्टयम्।
द्विजेन्द्रास्तारयन्त्येतान् तिलधेनुप्रदा नराः ॥६२
यश्च गृह्णाति विधिवत्पुरुषान् सोऽपि तावत ।
चतुर्दश तथा ये च दद्दतश्चानुमोदकाः ॥६३
दीयमानां च पश्यन्ति तिलधेनुं च ये नराः।
शृण्वंति ये च तां भक्त्या दीयमानां द्विजोत्तमाः ॥६४
तेऽप्यशेषाघनिर्मुक्ताः प्रयान्ति विष्णुलोकताम्।
प्रशान्ताय सुशीलाय तथाऽमत्सरिणे बुधः।
तिलधेनुं नरो दद्याद्वेदस्नाताय धर्मिणे ॥६५
त्रिरात्रं सलिलाहारस्तिलधेनुं ददाति यः।
एकरात्रं पुनर्भक्त्या तिलानत्ति प्रयत्नतः ॥६६
दातुर्विशुद्धपापस्य तस्य पुण्यवतो द्विजाः।
चान्द्रायणादप्यधिकं शस्तं सतिलभक्षणम् ॥६७
एवं प्रतिग्रहीतापि आदत्ते विधिना द्विजः।
स तारयति दातारमात्मानं च न संशयः ॥६८

प्रतिग्रहसुदीप्तामिदग्धविप्रमुखेरिताः ।
न स्फुरन्तीह मन्त्राश्च जप-होमादिकेषु च ॥६६
न दानं दीयते तस्य न तं कर्मणि योजयेत् ।
निष्फलं तत्कृतं कर्म मृतस्यौषधदानवत् ॥७०
अथातः संप्रवक्ष्यामि घृतधेनुमपपि द्विजाः ।
ये न सा विधिना देया तं प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥७१
वक्ष्यामि धेनुं घृतपूर्वकल्प्यां विधिं च वस्तूनि च यैः प्रकल्प्या ।
तस्याः प्रदानेन फलं हि यच्च क्रिया च पात्रं त्वनुपूर्वं यच्च ॥७२
गोक्षीर-सर्पिर्मधु-खण्ड-दध्ना संस्नाप्य विष्णुं शुभवारिणा च ।
संपूज्य पुष्पैश्च विलेप्य गन्धैर्(दद्यान्निवेद्य)र्दत्वा नैवेद्यं च सधूप-दीपम् ॥
घृते च बलिर्घृतमेव सोमो घृते च सूर्यो घृतमेव वारि ।
प्रदेहि तस्मात् घृतमेव विद्वन् ! घृते प्रदत्ते सकलं प्रदत्तम् ॥
घृतेन गव्येन तु पूर्णकुम्भं प्रकल्प्यते गौः करकेन वत्सः ।
हिरण्यगर्भां मणि-रत्नशोभा कुरुष्व कर्पूरसुचारुनासाम् ॥७५
शृङ्गे च कृष्णागरुदारवे च सौवर्णनेत्रे पटसूत्रसास्ना ।
क्षौमं च पुच्छं गुड-दुग्धवक्त्रं जिह्वा च तस्या वरशर्करायाः ॥७६
द्राक्षोचैश्चैव खर्जूरैरन्यैः स्वादुफलैरपि ।
उरस्तस्याः प्रकर्तव्यं पृष्ठं ताम्रं च धीमता ॥७७
इक्षुयष्टिमयाः पादाः शफा रौप्यमयास्तथा ।
धा येश्च सप्तभिः पार्श्वं लोमानि सितसर्षपैः ॥७८
कांस्यदोहा प्रकर्तव्या सितवस्त्रावृता तथा ।
सितच्छत्रसमायुक्ता सितचामरभूषिता ॥७६

वत्सस्य कुर्यादिति भूषणानि प्रोक्तानि सर्वाण्यपि यानि धेनो ।
अङ्गानि सर्वाणि च तद्वदस्य छत्र सगन्त्र च तथैव विप्रा ॥८०
गृहाण चैना मम पापहर्त्री दुस्तारसंसारपयोधिपोत । ।
संसारतारो भव भूमिदेव । स्वर्गं प्रदेह्यमयमङ्ग विद्वन् ॥८१
विष्णु सुरेशो घृतरश्मिरस्या प्रीतोऽस्तु दानेन वर ददातु ।
व्याहृत्य चैतन्नि गृहत्ततोय दत्त्वा क्षमस्वेति च वाग्विधेया ॥८२
दाता द्विजेनात्र तु पूर्वमुक्त सम्प्राश्य सर्पिर्व्रतमात्मशुध्यै ।
कार्ये प्रमुक्तोऽखिलकिल्बिषस्तु प्राप्नोति कामान् घृतदुग्धमिश्रान् ॥

घृत क्षीरवहानद्यो यत्र पायसकर्दमा ।
तेषु लोकेषु निर्गेन्द्र स पुण्येषूपजायते ॥८४
पितुरूर्ध्वं तु ये सप्त पुरुषास्तस्य येऽग्यथ ।
तेषु वान् द्विजलोकेषु स नयेद्धतकिल्बिष ॥८५
सकामानां प्रिय सृष्टि कथिता तव सत्तम । ।
विष्णुलोके नरा यान्ति सकामा घृतधेनुदा ।८६
जलधेनु प्रवक्ष्यामि प्रीयते दत्तया यया ।
देवदेवो हृषीकेश सर्वश सर्वभावन ॥८७
जलकुम्भ द्विजश्रेष्ठ सुवर्णरजतस्थितम् ।
रत्नगर्भमशेषस्तु ग्राम्यधान्यै समन्वितम् ॥८८
सितवस्त्रयुगच्छन्न दूर्वा पल्लवशोभितम् ।
कुष्ठ मासी मुरोशीर वालकामलकैर्युतम् ॥८९
प्रियङ्गुपत्रसंयुक्त सितयज्ञोपवीतिनम् ।
सोपानत्क च सच्छत्र दर्भविष्टरसस्थितम् ॥९०

चतुर्भिः संवृतं पात्रैस्तिलपूर्णैश्चतुर्दिशम् ।
स्थगितं दधिपात्रेण घृत-क्षौद्रवता मुखे ॥६१
उपोषितः समभ्यर्च्य वासुदेवं सुरेश्वरम् ।
पुष्प धूपोपहारैश्च यथाविभवसंभवम् ॥६२
तस्मिन् कुम्भे लिखेद्धेनुं सवत्सां यक्षकर्दमैः ।
प्रतिष्ठा तत्र कुर्वीत मंत्रैर्वेदचतुष्टये ॥६३
सङ्कल्प्य जलधेनुं च समभ्यर्च्य जनार्दनम् ।
पूजयेद्वत्सकं तद्वत्तत्र जलमयं बुधः ॥६४
अत्रोचुरपरे केचित्पूजयेत् घृतवत्सकम् ।
पञ्चांशेन तु कुम्भस्य चतुर्थांशेन चापरे ।
एवं सम्पूज्य गोविन्दं जलधेनुं सवत्सकाम् ॥६५
सितवस्त्रधरः शान्तो वीतरागो विमत्सरः ।
दद्याद्विप्राय तां विप्र प्रीतये जलशायिनः ॥६६
जलशायी जगज्ज्योतिः प्रीयतां केशवो मम ।
इति चोच्चार्य विप्रेन्द्रो विप्राय प्रतिपादयेत् ॥६७
अपकारान्निना स्थेयमहोरात्रमतः परम् ।
अनेन विधिना दत्वा जलधेनुं द्विजोत्तमाः ॥६८
सर्वाह्लादमवाप्नोति यत्तत् ध्यायति मानवः ।
शरीरारोग्य-दीर्घायुः प्रशस्य सर्वकामुकः ॥६९
नृणां भवति दत्तायां जलधेन्वां न संशयः ।
इमामपि प्रशंसन्ति जलधेनुं द्विजोत्तमाः ॥१००

ये नरास्तेन वै यान्ति विष्णुलोकमसंशयम् ।
हेमा-ऽज्याम्म-तिलैर्विद्वन् धेनुर्यद्यपि कल्पिता ।
तथापि ते च भक्ष्याः स्युर्धर्मशास्त्रमतादृताः ॥१०१
भक्षणीयं च यद्वस्तु धेन्वंगेषु प्रकल्पितम् ।
तस्यादृश्यं तद्रूपेति वेदमन्त्रैः प्रतिष्ठितम् ॥१०२
पुनः संहृतमन्त्रेषु सदाकुंचनमुद्रया ।
कृते विसर्जने तेषां वस्तुरूपं पुनर्भवेत् ॥१०३
अथान्यत्संनक्ष्यामि दानादानुत्तमं परम् ।
यद्दत्वा मानवो याति सायुज्यं परवेधसः ॥१०४
धेनुर्देया सुवर्णस्य कारयित्वा द्विजातये ।
यां दत्वा प्राङ् महीपाला ब्रह्मणः सदनं गताः ॥१०५
सा चतुर्भिस्त्रीभिर्वापि शुद्धवर्णपलैर्द्विजः ।
पलाभ्यामपि च द्वाभ्यां पलेनैकेन वा पुनः ॥१०६
हीनं तु नैव कर्तव्यं सत्यां सम्पदि सद्द्विजाः ।
हीनं तु कुर्वतो दानं दातुस्तन्निष्फलं भवेत् ॥१०७
चतुर्थांशेन धेन्यास्तु हैमं वत्सं प्रकल्पयेत् ।
सर्वरत्नैरलङ्कुर्यात् वक्ष्यमाणक्रमेण तु ॥१०८
राजतं वत्सकं कुर्याद्ब्रूयुरन्ये च तद्विदः ।
अलङ्काराश्च सर्वेऽपि गोवद्रत्नैः प्रकल्पयेत् ॥१०९
सकाशाद्वासुदेवस्य या शुश्राव युधिष्ठिरः ।
दत्वा प्राप्तो हरेर्लोकं सा मयेयमुदीरिता ॥११०

मुक्ताफलशफा कार्या प्रवालकविपाणिका ।
पद्मरागाक्षियुग्मा च घृतपात्रस्तनान्विता ॥१११
कर्पूरा-ऽगरुललाटा शर्करारदना स्मृता ।
मिष्टान्नमुखसंयुक्ता शंखशृंगांतरा तथा ॥११२
जात्यशुक्तिललाटा च द्राक्षादिरसना तथा ।
सुपद्मयुग्मपार्श्वा सा क्षौमसास्नावती तथा ॥११३
इक्ष्वंघ्रिगुडजानुश्च पञ्चगव्यगुदा स्मृता ।
नारीकेलैश्च फर्नव्यौ कर्णौ पृष्ठं च कांस्यकम् ॥११४
सरत्नसूत्रलाङ्गूला सप्तधान्यसमावृता ।
फल-पुष्पोपसम्पन्ना छत्रोपानत्समन्विता ॥११५
सुवर्णधेनुमार्याय विप्राय प्रतिपादयेत् ।
अश्वमेधसहस्रस्य दत्वा फलमवाप्नुयात् ॥११६
कुलानां हि सहस्रं तु स्वर्गं नयत्यसंशयम् ।
किमन्यैर्बहुभिर्दानैरलं हेमगवाऽनया ॥११७
हेमधेनुप्रदानेन कृतकृत्यो हि वर्तते ।
हिरण्यगर्भो भगवान् प्रीयतामिति कीर्तयेत् ॥११८
उपवासी विशुद्धात्मा दत्वा सोम-रविग्रहे ।
दीयमानां च पश्यन्ति ये नरा हेमगामिमाम् ॥११९
पश्यमानां च शृण्वन्ति तेऽपि यान्ति त्रिविष्टपम् ।
यत्रास्ते लिखिता गेहे स्वर्गदानस्य संस्तुति. ।
रक्षो भूत-पिशाचाद्यास्ततो नश्यन्ति सद्द्विजाः ॥१२०

एता मयोक्तास्तव वत्स ! सर्वा गुप्त्यादिका विप्रलोऽत्र गावः ।
इक्ष्वाकुभूप्रभृतिक्षितीशा जग्मुर्दिवं या विधिवत्प्रदत्वा ॥१२१

कृष्णाजिनस्य दानस्य प्रवक्ष्यामि शुभं विधिम् ।
प्रमाणं च विधिर्यस्य यस्मै विप्राय दीयते ॥१२२
वैशाख्यां पूर्णिमायां च कार्त्तिक्यामथ वापि च ।
उभयोस्तत्प्रदातव्यं रवि-सोमग्रहेऽपि च ॥१२३
अछिद्रमच्छिद्रमलोमकं च सग्रीवपुच्छं सशफं सशृङ्गम् ।
साण्डप्रदेशं सनिपाणवक्त्रं शस्तं प्रदाने सितकृष्णचर्म ॥१२४
एवमेतद्विधं चर्म गृहीत्वा द्विज पावनम् ।
कल्पयेद्धेनुवत्तच्च हेमशृंगादिकं तथा ॥१२५
शृङ्गे हेममये तस्य शफाश्च रजतस्य च ।
मुक्ताफलैश्च लाङ्गूलं कुर्यात् शाठ्यं विवर्जयेत् ॥१२६
अनुलिप्ते महीपृष्ठे प्रसृते कुतपांशुके ।
तत्र प्रसारयेच्चर्म तिलैस्तदपि पूरयेत् ॥१२७
वदन्ति तद्विदः सर्वे चतुर्द्रोणैस्तु पूरयेत् ।
पुंसो नाभिप्रमाणं तु अपरे कवयो विदुः ॥१२८
नाभिमात्रं वदन्त्यन्ये राशिं कुर्यादिति द्विजः ।
तिलैश्च पूरयेत् पश्चादजिनं च समन्ततः ॥१२९
हेमनाभं च तं कुर्यात् हेम्ना कर्षेण तु द्विजः ।
शक्त्या वापि प्रकर्तव्यं मन शुद्धिर्यथा भवेत् ॥१३०
सौवर्णं क्षीरपूर्णं तु पात्रं प्राच्यां निधापयेत् ।
राजतं दधिपूर्णं तु तथा दक्षिणतो द्विजः ॥१३१

ताम्रमाज्यभृतं पात्रं पश्चिमायां दिशि स्मृतम् ।
क्षौद्रपूर्णं तथा कांस्यं चतुर्दिक्षु क्रमेण तु ॥१३२
शक्त्या चापि च कर्तव्यं वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ।
दद्याद्वेदविदे चैव ब्राह्मणायाहिताग्नये ॥१३३
परिधाप्याऽहते वस्त्रे अलङ्कृत्य च भूषणैः ।
चतस्रो गृह्य. कार्या इत्यन्ये मुनयो विदुः ॥१३४
वदन्ति मुनयो गाथां मार्गमाहात्म्यवेदिनः ।
नानाविधाश्च विद्वांसः पुराणार्थविदो विदुः ॥१३५
यस्तु कृष्णाजिनं दद्यात्सखुरं शृंगसंयुतम् ।
तिलैः प्रच्छाद्य वासोभिः सर्वरत्नैरलङ्कृतम् ॥१३६
ससमुद्रगुहा तेन सशैलवनकानना ।
चतुरन्ता भवेद्दत्ता पृथिवी नात्र संशयः ॥१३७
कृष्णाजिने तिलान् दत्त्वा हिरण्यं मधु सर्पिषा ।
ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतम् ॥१३८
यः कृष्णाजिनमास्तीर्य हेमरत्नयुतैस्तिलैः ।
येषामुक्तं सोपवासो विष्णोरायतने तथा ॥१३९
वैशाख्यां पूर्णिमायां वा कार्तिक्यां वा समाहितः ।
दद्याद्विप्रे तपोयुक्ते महत्ते च यतेन्द्रिये ॥१४०
आहिताग्नौ समन्त्राने प्रदद्याद्भूरिदक्षिणाम् ।
यावन्त्यजिनलोमानि तिला वस्त्रस्य तन्तवः ॥१४१
तावन्त्यब्दसहस्राणि दाता विष्णुपुरे वसेत् ।
विशेषमपरे मृत्युर्विपुराणनयोर्द्वयोः ॥१४२

ताय हस्तोदकं दद्यात्प्रीयतां केशवो मम ।
एवं हस्तिरथं दद्यात्समभ्यर्च्य द्विजातये ।
निहत्य सर्वपापानि विष्णुलोके महीयते ॥१६४
वसेच्चतुर्भुजस्तत्र सेव्यमानश्चतुर्भुजैः ।
अनन्तकालमाविष्टेच्छङ्ख-चक्र-गदाधरः ॥१६५
पश्यन्तीह रथं ये तु दीयमानं नरा द्विज ! ।
तेऽपि विष्णुपुरं यान्ति वासिष्ठजयचो यथा ॥१६६
एकमपीह यो दद्याद्धस्तिनं च सभूषणम् ।
सयक्षं हेमरदनं नरौरजतकल्पितं ॥१६७
मणि-मुक्ताफलैर्युक्तं सुवर्ण-रजसान्वितम् ।
पूर्वोक्ताय तु विप्राय चतुर्वेदाय वा द्विजाः ॥१६८
यो दद्याद्विधिवत्सोऽपि सदा विष्णुपुरं वसेत् ।
विधिवद्यश्च गृह्णाति सर्वमेव प्रतिग्रहम् ॥१६९
दातृलोकमवाप्नोति पराशरवचो यथा ।
अलङ्कृत्य तु यः कन्यां ब्राह्मोद्वाहेन यच्छति ॥१७०
अन्योद्वाहेन केनापि गजदानशतं लभेत् ।
गजदानस्य यत्पुण्यं तस्माच्छतगुणं फलम् ॥१७१
कन्यादा विधिवत्सर्वं प्राप्नुवन्ति ह्यसंशयम् ।
पुत्रदानं च वाञ्छन्ति केचिद्दत्र मनीषिणः ॥१७२
कन्यादानात्परं शृणु पुत्रदानं शतोत्तरम् ।
भूमिं सस्यवतीं दद्यात् यस्तु विप्राय मानवः ॥१७३

स मूल-शूकतुल्यानि विष्णुलोके सदा वसेत्।
षड्भिस्तु सहितान् विप्रान्वंशानुसयतो दश।
तानेव द्विगुणान्याहुरिति केचिन्निवर्तनम्॥१७४
दशहस्तैर्भवेद्वंशश्चतुर्भिस्तैस्तु विस्तरः।
दैर्घ्येऽपि दशभिर्वंशैर्गोचर्म परिकीर्तितम्॥१७५
अपि गोचर्ममात्रेण भूमिं दद्याद्द्विजातये।
विष्णुलोकमवाप्नोति केचिदाहुर्मनीषिणः॥१७६
पञ्चहस्तकदण्डानां चत्वारिंशद् दशाहता।
पञ्चभिर्गुणिता सा तु निवर्तनमिति स्मृतम्॥१७७
बालवत्सकधेनूनां सहस्रं यत्र तिष्ठति।
तद्धि निवर्तनं ज्ञेयं इति केचिद्वदन्ति हि॥१७८
ताम्रपट्टे पटे वाऽपि लेखयित्वा च शासनम्।
ग्रामं विप्राय वा दद्याद्दशसीरक्षितिं पुनः॥१७९
सीरस्यैकस्य या दद्यात्तस्य पुण्यं किमुच्यते।
भूम्यंशुकणिकातुल्याः समा विष्णुपुरे वसेत्॥१८०
भूमिदानात्परो धर्मस्त्रैलोक्येऽपि न विद्यते।
पादैकमात्रदानेन तस्य विष्णुपुरे स्थितिः॥१८१
तस्य दानात्परो धर्मस्तद्धृतेः पातकं परम्।
तस्मात्तां यत्नतो दद्याद्धरणं च विवर्जयेत्॥१८२
इहैव भूमिदानस्य प्रत्यक्षं चिह्नमीक्ष्यते।
क्षितिदः स्वर्गतो भ्रष्टः क्षितिनाथः पुनर्भवेत्॥१८३

भुनक्ति च पुनर्भोगान् यथा दिवि तथा भुवि।
गजैरश्वैर्नरैर्युक्तो हेम-रत्नविभूषितः ॥१८४
वरस्त्रीगणसंसेव्यः स्तूयमानः स्वबन्धुभिः।
छत्रालङ्कारसंयुक्तो गीतवाद्योत्सवादिभिः ॥१८५
इत्यादि भूमिदानस्य चिह्नं ते वत्स ! कीर्तितम्।
वित्तेनाऽपि हि यः क्रीत्वा भूमिं विप्राय यच्छति ॥१८६
यावत्तिष्ठति सा भूमिस्तावत्स्वर्गे महीयते।
गृहभूमिं च यो दद्याद्दद्यादाश्रममात्रकम् ॥१८७
गृहोपकरणं दत्वा गृहदानफलं लभेत्।
हस्तमात्रां च यो दद्याद्भूमिं विप्राय मानवः ॥१८८
किष्कुमात्रां च यो दद्याद्भूमिं वेदविदे नरः।
तस्यापि हि महापुण्यं दद्यादंगुलमात्रकम् ॥१८९
नैतस्मात्परमं दानं किंचिदस्ति धरातले।
पुण्यं फलं प्रवक्ष्यामि विशेषेण तु तच्छृणु ॥१९०
यत्र हैमानि सद्मानि मणिभिर्भूषितानि च।
प्राकारा यत्र सौवर्णाश्चस्वर्द्वाराः सतोरणाः ॥१९१
दिव्याश्चाप्सरसो यत्र वासा सहस्या ह्यनेकशः।
सुपर्वाणौकसा युक्तौ ग्रीवाभरणभूषितौ ॥१९२
दृष्ट्वा च कामदेवोऽपि भवेत्कामातुरः क्षणात्।
सुकेशा सुललाटाश्च बालचन्द्रोपमभ्रुवः ॥१९३
सुनासा-वर्ण गण्डाश्च शुभोष्ठाधरपल्लवाः।
सुग्रीवा भुजपाल्यग्राः पीनोत्तुङ्गस्तनास्तथा ॥१९४

सुमध्योरुनितम्बाश्च सुश्रेण्यश्च शुभोरुकाः।
सुजानु-जङ्घ-गुल्फाश्च सुपादाः सुनखास्तथा ॥१९५
केन रूपेण ता वर्ण्या भवन्त्यप्सरसो द्विजाः।
वैष्णव्यो गणिकास्सर्वा दिव्यस्रग्वस्त्रभूषणाः ॥१९६
दिव्यानुलेपलिप्ताङ्गा दिव्यालङ्कारभूषिताः।
मन्मथोऽपि हि सा दृष्ट्वाभवेत्कामातुरः स्वयम् ॥१९७
मुनीनामपि चेतांसि या दृष्ट्वा चुक्षुभुः क्षणात्।
वर्ण्यन्ते ताः कथं देव्यो या लक्ष्मीप्रतिमोपमाः ॥१९८
वैष्णवाप्सरसां सङ्घैर्वृतश्चामरधारिभिः।
गीयमानश्च गन्धर्वैस्तूयमानश्च दैवतैः ॥१९९
वसेद्विष्णुपुरे तावद्यावद्विष्णुरजः क्षितौ।
पुण्यं च भूमिदानस्य कथितं तव वत्सक ! ॥२००
मेरुर्धरित्री कुलपर्वताश्च पाथोऽर्णवः स्वर्णतलादिकाद्रिः।
देयानि सर्वाणि च सर्वकामैः प्रोक्तानि दानानि पुराणविद्भिः ॥२०१
आत्मतुल्यं सुवर्णं वा रजतं द्रव्यमेव च।
यो दद्राति द्विजाग्रेभ्यस्तस्याप्येतत्फलं भवेत् ॥२०२
ब्रह्महत्यादिपापैस्तु यदि युक्तो भवेन्नरः।
स तत्पापविनिर्मुक्तः प्रोक्ते विष्णुपुरे वसेत् ॥२०३
तुलापुरुष-भूमौ च दीयमाने च ये नराः।
पश्यन्ति तेऽपि यान्ति द्या ये च स्युरनुमोदकाः ॥२०४
गुडं वा यदि वा खण्डं लवणं चापि तोलितम्।
यो दद्रात्यात्मना तुल्यं नारी वा पुरुषोऽपिवा ॥२०५

पुमान्प्रद्युम्नवत् स स्यान्नारी स्यात्पार्वतीसमा ।
सौभाग्यरूपसंयुक्तो भुक्त्वाऽन्ते त्रिविष्टपम् ॥२०६
हिरण्यं दक्षिणायुक्तं सवस्त्रं भूषणान्वितम् ।
अलङ्कृत्य द्विजाग्र्यं च तं परिधाप्य च वाससी ॥२०७
खण्डादि तोलितं पश्चाद्विप्राय प्रतिपादयेत् ।
सर्वकामसमृद्धात्मा चिरकालं वसेद्दिवि ॥२०८
उष्ट्रं खराजौ महिषं च मेषमश्वं करेणुं महिषीमजां च ।
ब्रूयुः खरोष्ट्रीमविको मुनीन्द्राः हेमादियुक्तं सकलं च दानम् ॥२०९
धराणि रत्नानि च हेम-रूप्यं शुभानि वासांसि च कांस्यताम्रे ।
उपाधिमात्रं करभादि कृत्वा हेमादिदानं द्विज दीयते हि ॥२१०
केचिद्वदन्ति चैतानि कृत्वा हेममयानि च ।
सर्वोपस्करयुक्तानि देयानि हेमधेनुवत् ॥२११
अर्चयित्वा हृषीकेशं पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम् ।
अग्निशुद्धं सुवर्णं च विप्रायाहूय यच्छति ॥२१२
स भुक्त्वा विष्णुलोकं तु यदाऽऽगच्छति संसृतौ ।
तदाऽसौ तेन पुण्येन धनयुक्तो द्विजो भवेत् ॥१३
यो रूप्यमुत्तमं दद्यादर्थिने ब्राह्मणाय च ।
सोऽतीव धनसंयुक्तो रूपयुक्तश्च जायते ॥२१४
माणिक्यानि विचित्राणि नानानामानि यो नरः ।
तथा ताम्रं च कांस्यं च त्रपु वा सीसकादिकम् ॥२१५
यो दद्याद्भक्तितो विप्रः सोमलोकमवाप्नुयात् ।
स सम्भुज्य तु तं लोकं रूपवानिह जायते ॥२१६

घृतं ददाति यो विप्रः सोऽत्यन्तं सुखमश्नुते।
भोजनाभ्यञ्जनार्थं वा भवेत्सोऽपि सुखी नर ॥२१७
सततं तैलदानेन भोजनाभ्यञ्जनाय च।
स्निग्धदेहोऽतितेजस्वी रूपयुक्त प्रजायते ॥२१८
मृगनाभि च कर्पूरं तगरं चन्दनादिकम्।
गन्धद्रव्याणि यो दद्याद्धनी भोगी स जायते ॥२१६
ताम्बूलं पुष्पमालाश्च पुष्पस्याभरणानि च।
यो दद्याद्देवपवान्भोगी धनयुक्त स जायते।
सुमतिर्वीर्यवांश्चैव धनयुक्तश्च सर्वदा ॥२२०
शिशिरर्तौ च यो दद्यादनलं सेन्धनं नरः।
स समिद्धोदराग्नि सन् प्रज्ञासूर्ययुतो भवेत् ॥२२१
यो दद्याद्दुर्लभानां च नित्यमेधासि मानव.।
श्रियायुक्तो भवेद्त्र सङ्ग्रामे चापराजित ॥२२२
अथ किं बहुनोक्तेन दानधर्मविवेचने।
यद्यदिष्टतमं यस्य तत्तस्मै प्रतिपादयेत् ॥२२३
तिलान् दर्भांश्च नित्यार्थं तृणान्यास्तरणाय च।
भुक्त्वा स तु सुखं स्वर्गे जायश्चात्र भवेद्भुवि ॥२२४
गुडमिक्षुरसं खण्डं दुग्ध-खर्जूर-खाद्यकान्।
फलानि दत्त्वा सर्वाणि स्वादूनि मधुराणि च ॥२२५
सर्वाणि फलशाकानि लवणानि तथा द्विज ।।
स्थाल्यादिगृहपाकं च दत्त्वा गोत्राधिको भवेत् ॥२२६

कूष्माण्डं त्रपुषं दत्वा वृन्ताकादि पटोलकान्।
शुभानि कन्दमूलानि सुहृष्टः पुत्रवान् भवेत् ॥२२७
बदरा-ऽऽम्र-कपित्थानि खर्जूर-दाडिमानि च।
चिञ्चाऽऽम्रामलकं दत्वा पुत्रवानिह जायते ॥२२८
या नारी द्विज। चैतानि द्विजे भक्त्योपपादयेत्।
सर्वं तस्या भवेत्तद्धि धेनुदानसमन्वितम्।
सुपुत्रा सुभगा पुष्टा पार्वतीवेह जायते ॥२२९
योऽर्थिने तृण-काष्ठानि ब्राह्मणायोपपादयेत्।
सर्वं दत्तं भवेत्तस्य धेनुदानसमं फलम् ॥२३०
भोजनाच्छादने दत्वा दत्वा चोपानहौ द्विजः।
स्वर्गलोकं तु सम्भुज्य पूर्णकामोऽत्र जायते ॥२३१
याः पण्यनार्योऽतिमकामपुसं कामोपभुक्त्यै निजदत्तदेहाः।
गीर्वाणचेतोहरलग्नवत्यः पौरंदरास्ता गणिका भवन्ति ॥२३२
गृहं वा मठिकं वाऽपि शयना-ऽऽसन-विष्टरम्।
दत्वा च करिषु विद्वान् विप्रान् यः पाठयेन्नरः ॥२३३
महीदानादिकं व्यास ! विद्यादानं शताधिकम्।
विद्यार्थिना च विप्राणां पादाभ्यङ्गमुपाजहौ ॥२३४
यो ददाति द्विजश्रेष्ठ ब्रह्मलोकं स गच्छति।
आदावारभ्य वेदांस्तु शास्त्रं वाऽन्यतमं द्विजः ॥२३५
अध्यापयेद्द्विजान् शिष्यान् विद्यादानं तदुच्यते।
उपाध्यायं निवेश्याग्रे तस्य कृत्वा च वेतनम् ॥२३६

विद्यां भक्त्या प्रयच्छेद्यः परब्रह्मण्यसौ विशेत् ।
विद्यार्थिने च विप्राय यो दद्याद्भोजनं द्विजः ॥२३७
पादाभ्यङ्गं तथा स्नानं सोऽपि विद्यांशभाग्भवेत् ।
यः स्वयं पाठयेद्विप्रान् स्नात्वा भक्त्या च स द्विजः ॥२३८
साक्षात् ब्रह्म समभ्येति भूयो नायाति संसृतौ ।
ऋचं वा यदि वार्धं च पादं पादार्धमेव च ॥२३९
अध्यापयति तस्याऽपि नास्ति शिष्यस्य निष्कृतिः ।
मन्त्रार्धं च यो दद्यादेकं वाऽपि शुभाक्षरम् ।
तस्य दानस्य वै शिष्यो निष्कृतिं कर्तुमक्षमः ॥२४०
यद्विप्र शिष्यप्रतिपादितेन विद्याप्रदानेन न तुल्यमस्ति ।
दानं धरिञ्यामविनाशि किञ्चित्तस्मात्प्रदेयं सततं तदेव ॥२४१
रोगार्तस्यौषधं पथ्यं यो ददाति नरो यदि ।
अन्यस्यापि च कस्यापि प्राणदः स तु मानवः ॥२४२
[illegible] च ।
[illegible] ।
आदत्तैः प्राणहीनेन प्राणदानमतोऽधिकम् ॥२४३
अन्नं प्राणो जलं प्राण. प्राणश्चौष धमुच्यते ।
तस्मादौषधदानेन दाता सुरसमो द्विजाः ॥२४४
प्राणदानं च यो दद्यात्सर्वेषामपि देहिनाम् ।
स याति परमं स्थानं यत्र देवश्चतुर्भुजः ॥२४५
यो दद्यान्मधुरां वाचमाश्वासनकरीमृताम् ।
रोग-क्षुधादिनार्तस्य स गोमेधफलं लभेत् ॥२४६

रूप-द्रविणसंयुक्तो भार्यां रूपवतीं लभेत्।
नरः प्राप्नोति धर्मज्ञ प्रमाणं राजवेश्मनि ॥२५८
नारी च शुभभर्तारं रूप-सौभाग्यसंयुतम्।
प्राप्नोति विपुलान्भोगांश्चात्र कार्या विचारणा ॥२५६
पौर्णमासीषु चैतासु मासर्क्षसंयुतासु च।
एतेषामेव दानानां फलं दशगुण लभेत् ॥२६०
महापूर्वासु चैतासु फलमक्षय्यमश्नुते।
द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य चैत्रे वस्त्रमदो नरः ॥२६१
अक्षयान् लभते भोगान्नाकलोकेऽविनश्वरे।
इत्येतत्कथितं विप्र फलं चैत्रस्य सत्तम ॥२६२
दशार्द्धेमं च वैशाखे द्वादश्यां यो नरः सिते।
शुक्ले छत्रोपानहौ च विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥२६३
आस्तीर्य शयनं दत्वा प्रणम्य भोगशायिनम्।
आषाढशुक्लद्वादश्यां श्वेतद्वीपमवाप्नुयात् ॥२६४
श्रावणे वस्त्रदानेन विष्णुसायुज्यमृच्छति।
गोदः प्रयाति गोलोकं मासे भाद्रपदे द्विजः ॥२६५
प्रीणयेद्धयशिरसं वस्त्रं दत्वा तथाश्विने।
विष्णुलोकमवाप्नोति कुलमुद्धरते स्वकम् ॥२६६
कंबलस्य प्रदानेन कार्तिक्यां भोगमाप्नुयात्।
प्रदानं लवणानां तु मार्गशीर्षे महाफलम् ॥२६७
धान्यानां च तथा पौषे दानमत्यनन्तरम्।
फाल्गुने सर्वगन्धानां भवेद्दानं महाफलम् ॥२६८

अशौचे सूतके चैव न देयं न प्रतिग्रहः।
सतोरपि तयोर्देया सदा चाभयदक्षिणा ॥२७९
रात्रौ दानं न दातव्यं दातव्यमभयं द्विजैः।
इमानि त्रीणि देयानि विद्या-कन्याप्रतिग्रहः ॥२८०
देवानामतिथीनां च गवामपि च पूजनम्।
रात्रावपि हि कर्तव्यमिति पाराशरोऽब्रवीत् ॥२८१
शुचिः सन्नशुचिर्वाऽपि दद्याद्गृह्णीत चोभयम्।
अभयस्य दानकालोऽयं यदा भयमुपस्थितम् ॥२८२
अन्यप्रतिग्रहो विद्वन् ग्राह्यश्च शुचिना द्विज।
अशौचे सूतके वाऽपि न तु ग्राह्या भवन्ति ते ॥२८३
अभ्यक्तेन च धर्मज्ञ! तथा मुक्तशिखेन च।
स्नात्वाऽऽचम्य पयः स्पृश्य गृह्णीत प्रयतः शुचिः ॥२८४
द्रव्यस्य नाम गृह्णीयाद्दाता तथा निवेदयेत्।
तोयं दत्त्वा तथा दाता दाने विधिरयं स्मृतः ॥२८५
प्रतिग्रहीता सावित्रं सर्वं मन्त्रमुदीरयेत्।
साध्यं द्रव्येण तत्सर्वं तद्द्रव्यं च सदैवतम् ॥२८६
समाप्य च ततः पश्चात्कामं स्तुत्वा प्रतिग्रहम्।
प्रतिग्रही पठेदुच्चैः प्रतिगृह्य द्विजोत्तमात् ॥२८७
मन्द्रं पठेच्च राजन्यो उपांशु च तथा विशः।
मनसा च तथा शूद्रात्कर्तव्यं स्वस्तिवाचनम् ॥२८८
सोङ्कारं ब्राह्मणो ब्रूयान्निरोङ्कारं महीपतिः।
उपांशु च तथा वैश्यः स्वस्ति शूद्रे तथैव च ॥२८९

न स्नानं यतते दद्यात् सर्वासामपकारिणे ।
न कृतघ्नीभर्यादिभ्यो दातव्यश्च धार्मिकैः ॥२९०
पात्रभूतोऽपि यो विप्रः प्रतिगृह्य प्रतिग्रहम् ।
असत्सु विनियुञ्जीत तस्मै देयं न किञ्चन ॥२९१
सञ्चयं कुरुते यस्तु समादाय इतस्ततः ।
धर्मार्थं नोपयुञ्जीत न तं तस्करमर्चयेत् ॥२९२
यदि दित्सा द्विजाय स्यादुद्दिश्य तं नरः ।
दानं च हृदि सञ्चिन्त्य जलमध्ये जलं क्षिपेत् ॥२९३
वदन्ति मुनयो गाथां परोक्षे दानमक्षयम् ।
परोक्षमक्षयं दानं सत्यकालोदितो भवेत् ॥२९४
पात्रं मनसि सञ्चिन्त्य गुणवन्तमभीप्सितम् ।
अप्सु ब्राह्मणहस्ते वा भूमौ वापि जलं क्षिपेत् ॥२९५
दानकाले तु सम्प्राप्ते पात्रे चासन्निधौ जलम् ।
अन्यविप्रकरे दद्याद्दानं पात्राय दीयते ॥२९६
विष्णुर्वरुणो यत्र गृह्णीयाद् परोदकम् ।
तद्दानं सप्तसन्तानमक्षय्यमिति विष्णुगीः ॥२९७
लक्ष्मीप्रदाय यद्दत्तं दरिद्रायार्थिने द्विजाः ।
तदक्षयं समुद्दिष्टमिति पाराशरोऽब्रवीत् ॥२९८
राज्यभ्रष्टं च राजानं भूयो राज्ये निवेशयेत् ।
विष्णुलोकं चिरं भुक्त्वा भूयो भूमिपतिर्भवेत् ॥२९९
प्रतिश्रुत्य द्विजायार्थं यो न यच्छति तं पुनः ।
न च स्मारयते विप्रस्तुल्यं तदुपपातकम् ॥३००

प्रतिश्रुत्य च यत्किञ्चिद्द्विजेभ्यो न प्रयच्छति ।
स वै द्वादश जन्मानि शृगालयोनिमाप्नुयात् ॥३०१
गृष्ट्यादीनथ वक्ष्यामि यथालक्षणलक्षितान् ।
मानं भूमितिलादीना यथावत्तन्निबोधत ॥३०२
अजातदन्ता या तु स्याद्गर्भदन्तसमन्विता ।
वर्षादर्वाक् चतुर्थाच्च वत्सिकेति निगद्यते ॥३०३
सुशीला च सुवर्णा च नीरोगा च पयस्विनी ।
सवत्सा प्रथम सूता गृष्टिर्गौरभिधीयते ॥३०४
अरोगा याऽपरिक्लिष्टा प्रसववत्यथ सूतिका ।
सूता याऽतिपयोयुक्ता सा गौ सामान्यत स्मृता ॥३०५
पूर्वोक्तगुणसंयुक्ता प्रत्यग्रप्रसवा तथा ।
साथ गौर्धेनुरित्युक्ता वसिष्ठवचो यथा ॥३०६
पञ्चगुञ्जो भवेन्माप कर्प षोडशभिश्च तै ।
तैश्चतुर्भि पलं प्रोक्त दाने मानं च पुण्यदम् ॥३०७
भद्र नरैकहस्ताभि प्रसृतीभिश्चतसृभि ।
मानक तैश्चतुर्भिश्च सेतिकेति प्रकीर्तिता ॥३०८
ताभिश्चतसृभि प्रस्थश्चतुर्भिराढकश्च तै ।
द्रोणश्चतुर्भिस्तैरुक्तो धान्यमानमिति स्मृतम् ॥३०९
तिलप्रसृतिभिर्भाण्डं चतुर्भिर्यत्प्रपूर्यते ।
तैश्चतुर्भिश्च कर्षो हि तैश्चतुर्भिश्च वै पलम् ॥३१०
पलैश्च तैश्चतुर्भि स्यात् श्रोपाटी तच्चतुष्टयम् ।
करकं चतसृभिस्ताभिश्चतुर्भिस्तैर्घट स्मृत ॥३११

ईर्ष्यया मन्युना दानं यद्दानमर्थकारणात् ।
यो ददाति द्विजातिभ्यो बालभावे तदश्नुते ॥३२२
स्वयं नीत्वा च यद्दानं भक्त्या पात्रे प्रदीयते ।
अप्रमेयगुणं तद्धि उपतिष्ठति यौवने ॥३२३
यत्सद्विप्राय वृद्धाय भक्त्या च परया वसु ।
दीयते वेदविदुषे तदुपतिष्ठति वार्द्धके ॥३२४
तस्मात्सर्वास्ववस्थासु सर्वदानानि सत्तमाः ।
दातव्यानि द्विजातिभ्यः स्वर्गमार्गमभीप्सवा ॥३२५
भूमेः प्रतिग्रहं कुर्याद्भूमिं कृत्वा प्रदक्षिणाम् ।
करे गृह्य तथा कन्यां दास दास्यौ तथा द्विजः ॥३२६
करं तु हृदि विन्यस्य धर्म्यो ज्ञेयः प्रतिग्रहः ।
आरुह्य च गजस्योक्तः कर्णेऽश्वस्य सदासु च ॥३२७
तथा चैकशफाना च सर्वेषामविशेषतः ।
प्रतिगृह्णीत गां शृङ्गे पुच्छे कृष्णाजिनं तथा ॥३२८
कर्णजाः पशवः सर्वे ग्राह्याः पुच्छे विचक्षणैः ।
प्रतिग्रहं तथोष्ट्रस्य आरुह्यैव तु पादुके ॥३२९
ईषायां तु रथोऽश्वे वा छत्रं दण्डे विधारयेत् ।
द्रुमाणामथ सर्वेषां मूले न्यस्तकरो भवेत् ॥३३०
आयुधानि समादाय तथाऽऽमुच्य विभूषणम् ।
धर्मध्वजस्तया स्पृष्ट्वा प्रविश्य च तथा गृहम् ॥३३१
अवतीर्य तु सर्वाणि जलस्थानानि यानि तु ।
उपविश्य च शय्यायां स्पर्शयित्वा करेण वा ॥३३२

द्रव्याण्यन्यानि चादाय स्पृष्ट्वा वा ब्राह्मणः पठेत्।
कन्यादाने तु न पठेत् द्रव्याणि तु पृथक् पृथक् ॥३३३

प्रतिग्रहाद्द्विजश्रेष्ठ वर्षान्तर्भवन्ति ते।
द्रव्याणामथ सर्वेषां द्रव्यसंश्रयणान्नरः ॥३३४

वाचयेज्ञग्मादाय ॐकारेण प्रतिग्रहम्।
प्रतिग्रहस्य यो धर्म्यं न जानाति द्विजो विधिम्।
स द्रव्यस्तेयसंयुक्तो नरकं प्रतिपद्यते ॥३३५

अथापि वक्ष्यामि विशेषविशेषात् वाजिप्रदाने च प्रतिग्रहे च।
दातृ-प्रहीत्रोरपि येन पुण्यं स्वर्गाय जायेत शृणुध्वमेतत् ॥३३६

गृहीत योऽश्वं विधिवद्द्विजेन्द्रा कुर्यादसौ पञ्चदिनानि पूर्वम्।
पञ्चोपचारैरुत विष्णुपूजां कूष्माण्डमन्त्रैर्घृत-दुग्धहोमम् ॥३३७

यद्ग्राम इत्यादि मरुत्वतीयं सोङ्कारभूरादिभिरन्वितं च।
प्रत्येकमष्टौ जुहुयाद्द्विजाग्र्य. सौर्येण मन्त्रेण च तद्वदष्टौ ॥३३८

षष्ठ्या प्रयुक्तं निशतं जुहोति कुर्याच्च गायत्रिजपं सहस्रम्।
पश्चात्स गृह्णन् तुरगं द्विजाग्र्यस्तथा स्वमात्मानमजं नयेत् ॥३३९

दाताऽपि चैतद्व्रतमाचरिष्याद्द्विजाग्र्यस्त्वाश्वजनपापशुध्यै।
द्वावप्यमू सूर्यजनं लभेते सर्वत्र पूज्यौ द्विज वृन्दमध्ये ॥३४०

अश्वप्रतिग्रहविधिं च प्रतिग्रहं च जानाति योऽश्वस्य पुराणगाथा।
स एव धन्य स च पूजनीय इहैव लोके द्विज-देवमान्य ॥३४१

विशेषपुण्यप्रतिपादनाय तिथौ प्रदत्तं द्विज यत्र यत्र।
प्रागुक्तमेतत्पुनरुच्यते यत्तच्छ्रुतामत्र हि कथ्यमानम् ॥३४२

श्रावणे शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां प्रीयते हरिः ।
गोप्रदानेन विप्रेन्द्र वदन्त्येतन्मनीषिण ॥३४३
पौषे शुक्ले तथा वत्स द्वादश्यां घृतधेनुकाम् ।
घृतार्चः प्रीणनायालं प्रदद्यात्फलदायिनीम् ॥३४४
तथैव माघद्वादश्यां प्रदत्ता तिलगौर्द्विजाः ।
केशवं प्रीणयत्याशु सर्वान् कामान् प्रयच्छति ॥ ३४५
ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे द्वादश्यां जलधेनुकाम् ।
दत्त्वा विप्राय विधिना प्रीणयत्यम्बुशायिनम् ॥३४६
यत्र वा तत्र वा काले यद्वा तद्वा प्रदीयते ।
विशेषार्थमिदं प्रोक्तं नान्यत्काले निषेधनम् ॥३४७
विष्णुमुद्दिश्य विप्रेभ्यो निःस्वेभ्यो यत्प्रदीयते ।
भवेत्तदक्षयं दानं मुत्तमत्वात्परैरिदम् ॥३४८
काले पात्रे तथा देशे धनं न्यायार्जितं तथा ।
यद्दत्तं ब्राह्मणश्रेष्ठे तदनन्तं प्रकीर्तितम् ३४९
चन्द्रे वा यदि वा सूर्ये दृष्टे राहौ महामहे ।
अक्षय्यं कथितं सर्वं तद्प्यर्के विशिष्यते ॥३५०
द्वादशीसु च शुक्लासु विशेषात् श्रवणेन च ।
यत्र यद्दीयते किञ्चित्तदनंतं प्रजायते ॥३५१
विर्ष्पाद्बयुक्तेषु पक्षान्त्येषु च सर्वदा ।
तृतीयासु च सर्वासु शुक्लासु च विशेषतः ॥३५२
वैशाखे शुक्लपक्षे तु विशेषादपि मानवः ।
आषाढी कार्तिकी चैव फाल्गुनी तु विशेषतः ॥३५३

तिस्रश्चैताः पौर्णमास्यो दाने विप्र महाफलाः।
व्यतीपातेषु सर्वेषु समर्क्षेषु द्विजोत्तम ! ॥३५४
महत्सङ्क्रमकालेषु तीव्ररश्मेर्विशेषतः।
तुला-मेषप्रवेशेषु योगेषु मिथुनस्य च ॥३५५
रवेर्महाफलं दानं तेभ्योऽपि स्यान्महाफलम्।
यदा भानुः प्रविशति मकरं द्विजसत्तमाः ॥३५६
आषाढेऽप्ययने चैव पौषे चैत्रे तथैव च।
द्वादशीप्रभृति प्रोक्तं पुण्यं दिनचतुष्टयम् ॥३५७
मिथुनं च तथा,कन्यां धन्विनं मीनमेव च।
प्रवेशे भास्करे पुण्यं कथितं द्विजसत्तमाः।
षडशीतिमुखं नाम दाने दिनचतुष्टयम् ॥३५८
अच्छिन्ननाले यद्दत्तं पुत्रे जाते द्विजोत्तमाः।
संस्कारे चैव पुत्रस्य तदक्षय्यं प्रकीर्तितम् ॥३५९
इष्टयश्च विविधाः प्रोक्तास्ताश्च कार्या यथोदिताः।
सर्वा अपि हि सद्विप्रैरिष्टवर्गमभीप्सुभिः ॥३६०
सत्पात्रनैविद्विजनाकलङ्कि प्रसिद्धश्रेमुक्तानि क्रियन्ति विप्राः।
दानानि वक्ष्याम्यथ पूर्त्तवर्गं स्याद्येन पुंसां विहितेन पुण्यम् ॥३६१
महेश-हरि-सूर्याणां स्कन्देमात्या-ऽश्विनो तथा।
मातॄणां च ग्रहाणां च गृहाणि कारयेन्नरः ॥३६२
इष्टकादशकं वाऽपि यश्चार्पयति विष्णवे।
अनेन विधिना कुर्याद्विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥३६३

एवं यः सर्वदेवानां मन्दिरं कारयेन्नरः ।
स याति वैष्णवं लोकं प्राप्यं योगशतैः कृतैः ॥३६४
समाचरति यो भग्न सुधाभिधवलं यदि ।
कुरुते देवहर्म्यं च विशिष्टैर्लेप-चित्रकैः॥३६५
सम्मार्जयति यश्चापि यतो यश्चानुलेपयेत् ।
प्रदीपं तत्र यो दद्यात्स याति विष्णुलोकताम् ॥३६६
पूजयेद्विधिना यस्तु पञ्चोपचारसंयुतः ।
स विष्णुलोकमभ्येति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥३६७
यावन्त्यश्चेष्टकास्तत्र चिता देवस्य सद्मनि ।
तावन्त्यब्दसहस्राणि तत्कर्ता स्वर्गमाविशेत् ॥३६८
सन्निकृष्य-तडागानि पुष्करिण्यश्च दीर्घिकाः ।
तथा कूपाश्च वाप्यश्च कर्तव्या गृहमेधिभिः ॥३६९
खातमात्रं प्रकर्तव्यमकाह्निकमपि क्षितौ ।
यावत्पीत्वा जलं गौस्तु तृषार्ता वितृषा भवेत् ॥३७०
पिबन्ति सर्वसत्वानि तृषार्तान्यम्भसामिह ।
वर्षाणि बिन्दुतुल्यानि तत्कर्ता दिवमावसेत ॥३७१
उपकुर्वन्ति यावन्ति गण्डूषाणि क्रियासु च ।
कुर्वन्ति स्नान-शौचादि तथैवाचमनान्यपि ॥३७२
तावत्सहस्त्र्यानि वर्षाणि लक्षाणि दिवि मोदते ।
अपां स्रष्टा वसेत्स्वर्गे सेव्यमानोऽप्सरोगणैः ॥३७३
आरामाश्चापि कर्तव्याः शुभवृक्षैः सुशोभिताः ।
अश्वत्थोदुम्बर-प्लक्ष-चूत-राजाद-नीवरैः ॥३७४

जम्बू-निम्ब-कदम्बैश्च खर्जूरैर्नारिकेलकैः।
बकुलैश्चम्पकैर्वृक्षैः पाटला-ऽशोक-किंशुकैः ॥३७५
द्रुमैर्नानाविधैरन्यैः फल-पुष्पोपयोगिभिः।
जाती-जपादिपुष्पैस्तु शोभिताश्च समन्ततः ॥३७६
फलोपयोगिनः सर्वे तथा पुष्पोपयोगिन.।
आरामेषु च कर्तव्याः पितृ-देवोपयोगदाः ॥३७७
गाथामुदाहरन्त्यत्र तद्विद. कवयोऽपरे।
वृक्षरोपकलोकानां रक्षा या पुष्पवाटिकाः ॥३७८
अश्वत्थमेकं पिचुमन्दमेकं न्यग्रोधमेकं दशचिञ्चिणीश्च।
षट्चम्पकं तालशतत्रयं च पश्चाम्रवृक्षैर्नरकं न पश्येत् ॥३७९
कपित्थ-बिल्वामलकीत्रयं च पंचाम्रवापी नरकं नयाति ॥३८०
यावन्ति खादन्ति फलानि वृक्षात्क्षुद्वह्निदग्धास्तनुभृद्गणायाः।
वर्षाणि तावन्ति वसन्ति नाके वृक्षैकयापात्रिदशौकसे या. ॥३८१
यावन्ति पुष्पाणि महीरुहाणा त्रिदौकसां मूर्ध्नि धरातले वा।
पतन्ति तावन्ति च वत्सराणां कल्पानि वृक्षैर्दिवमारुहन्ति ॥३८२
यत्कालपक्वैर्मधुरैरजस्रं शाखाच्युतैः स्वादुफलैर्नगायाः।
सर्वाणि सत्वानि च तर्पयेयुस्तं श्राद्धदानेन च वृक्षनाथान् ॥३८३
उद्दिश्य विष्णुं जगतामधीशं नारायणं य· सुरूपं करोति।
आनन्त्यमाप्नोति कृतं तु तस्मादनन्तरूपो भगवान्पुराण ॥३८४
दानानि सर्वाण्यभिधाय विद्वन्निष्टं च पूर्वं गृहमेधिकर्म।
कुर्वन्ति शान्ति मनुजा शुभाय वक्ष्यामि तस्मादथ सर्वशान्तिम् ॥३८

उक्तानि सर्वदानानि इष्टापूर्तञ्च सत्तमाः ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि गणेशादिकशान्तयः ॥३८६

इति बृहत्पराशरीये धर्मशास्त्रे सुव्रतप्रोक्तायां स्मृतौ दानधर्मेषु पूर्तविनिर्णयो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

## अथैकादशोऽध्यायः ।

### अथ विनायकशान्तिविधिवर्णनम् ।

शान्तीनामथ सर्वासां ग्रहशान्तिः परा स्मृता ।
ग्रहेभ्योऽपि गणेशस्तु तस्य शान्तिरथोच्यते ॥१
यदि पुष्ट्र्तकर्माणि भवन्ति फलदानि हि ।
तदा धर्मोऽर्थ-कामास्तु संसिध्येरन्सदा नृणाम् ॥२
सन्नृभिः क्रियमाणानां सर्वेषां कर्मणामसुम् ।
विघ्नार्थमसृजद्ब्रह्मा शङ्करश्च विनायकम् ॥३
तेनोपहतपुंसां तु कर्म स्यान्निष्फलं कृतम् ।
स्त्रीणामपि तथा सर्वं क्रियमाणं तु निष्फलम् ॥४
जलावगाहनं स्वप्ने क्रव्यादारोहणं तथा ।
खरोष्ट्र-म्लेच्छसंसर्गो मुण्ड-काषायवाससम् ॥५
पश्यन्त्यात्मनमेवेह सीदन्तं प्रतिवासरम् ।
यानि कुर्वन्ति कर्माणि तानि स्युः क्लेशदानि च ॥६

राजपुत्रो न राज्याप्त्या वराप्त्या न तु कन्यका।
अन्तर्वत्नी अपत्याप्त्या आचार्यत्वेन च द्विजः ॥७
अधीयानास्तु विद्याप्त्या कृषिकृत् सस्यसम्पदा।
वणिग्वर्तनलाभेन युज्यते निर्धनश्च सन् ॥८
तस्मात्तदुपशान्त्यर्थं समभ्यर्च्य गणेश्वरम्।
स्नपनं कारयेत्तस्य विधिवत्पुण्यवासरे ॥६
चतुर्थ्यां शुक्लपक्षे तु अयने चोत्तरे शुभे।
पुण्यार्थं सर्वसिध्यर्थं कुर्याच्छान्ति विनायकीम् ॥१०
स्वासनासीनं संस्थाप्य आरक्तार्षभचर्मणि।
सितसर्षपकल्केन साज्येनाच्छादितस्य च ॥११
विलिप्तशिरसस्तस्य गन्धैः सर्वैस्तथौषधैः।
अष्टौ वा चतुरो वापि स्वस्तिवाच्यान् द्विजान् शुभान् ॥१२
एकवर्णैश्चतुर्भिश्च पुम्भिः कुम्भैश्च यज्जलम्।
समानीतं क्षिपेत्तत्र वक्ष्यमाणमृदस्तथा ॥१३
अश्वेभस्थान-वल्मीक-ह्रद-सङ्गममृत्तिकाः।
रोचनां गुग्गुलं गन्धान् तस्मिन्नंभसि तान् क्षिपेत् ॥१४
एतद्वै पावनं स्नानं सहस्राक्षमृषिस्मृतम्।
तेन त्वां शतधारेण पावमान्यः पुनन्त्वमुम् ॥१५
नवभिः पावमानीभिः कुम्भं तमभिमन्त्रयेत्।
शक्रादिदशदिक्पाला महेश-केशवादयः ॥१६
आपस्ते घ्नन्तु दौर्भाग्यं शान्ति ददतु सर्वदा।
सुमित्रियान इत्याद्यैर्मन्त्रैरेकेऽभिषेचनम् ॥१७

वदन्ति वदतां श्रेष्ठा दौर्भाग्यस्योपशान्तये ।
समुद्रा गिरयो नद्यो मुनयश्च पतिव्रताः ॥१८
दौर्भाग्यं घ्नन्तु मे सर्वे शान्तिं यच्छन्तु सर्वदा ।
पाद-गुल्फोरु-जङ्घा-ऽऽन्त्र-नितम्बोदर-नाभिषु ॥१६
स्तनोर-बाहु-हस्ताग्र-ग्रीवा-अंसाङ्गसन्धिषु ।
नासा-ललाट-कर्णाभ्रू केशान्तेषु च यत् स्थितम् ॥२०
तदापो घ्नन्तु दौर्भाग्यं शान्तिं यच्छन्तु सर्वदा ।
स्नातस्य मस्तके दर्भान् साज्येन परिगृह्य च ॥२१
जुहुयात्सार्षपं तैलमौदुम्बरस्रुवेण तत् ।
मितश्च सम्मितश्चैव तथा सालकटङ्कटौ ॥२२
कूष्माण्डो राजपुत्रश्चेत्यन्तेस्वाहासमन्वितैः ।
नामभिश्च बलिं दद्यान्मन्त्रैर्नमः स्वधान्वितैः ।
चतुष्पथं समाश्रित्य शूर्पे कृत्वा कुशांस्तथा ॥२३
निधाय तेषु दर्भेषु शुक्लाऽशुक्लांश्च तण्डुलान् ।
ओदनं पललोपेतं पक्वान्मत्स्यकानपि ॥२४
तथा मांसं च कुल्माषान् तथैव त्रिविधां सुराम् ।
पूरिकाण्डेरकापूपान्फलानि मूलकं स्रजः ॥२५
गणेशमातुः पार्वत्याः कुर्याद्दुपस्थितिं पुनः ।
दूर्वा-सर्षप-पुष्पैश्च पूर्णमर्घाञ्जलिं क्षिपेत् ॥२६
सौभाग्यमम्बिके देहि भगं रूपं यशोऽपि च ।
श्रियं पुत्रांश्च कामांश्च तथा शौर्यं च देहि मे ॥२७

गणेशमातर्हे बाले यत्किञ्चिन्मदभीप्सितम्।
एकनाम्नैव सदेवि देहि गौरि! वरान् वरान्॥२८
ततस्तु वाससी शुक्ले परिधायाऽहते शुभे।
सितचन्दनलिप्ताङ्गः सितस्रग्भूषणान्वितः॥२९
तानन्यांश्च द्विजान् सर्वान् भोजयेद्विविधाशनैः।
वस्त्रयुग्मं गुरोर्दद्यात्तेषु तस्य वराशिषः॥३०

एतेन सम्पूज्य गणाधिनाथं विघ्नोपशान्त्यै जननीं तथास्य।
स्मार्तोक्तसम्यग्विधिना स कामान्प्राप्नोति चान्यान्मनसा यदिच्छेत्॥३१
स्नात्वा विधायार्चनमम्बिकायाः सम्पूज्य लोकान्सखिबन्धुमिश्रान्।
आचार्यवृद्धान्वनिताः कुमारीः प्रध्वस्तविघ्नः श्रियमेति गुर्वीम्॥३२
स्मृत्युक्तमन्त्रैर्विधिवत्प्रयुक्तैर्नित्यं शिनानन्दनपूजनं च।
कृतान्तरायान्विनिहत्य सर्वान् कुर्यादथातो ग्रहयागमेनम्॥३३

इति विनायकशान्तिविधिवर्णनम्।

॥ अथ ग्रहशान्तिविधिवर्णनम्॥

मुनीनां व्यासमुख्यानां शक्तिसूनुः पुरोऽब्रवीत्।
शुभाय ग्रहपूजाया वदतस्तन्निबोधत॥३४
यद्वर्णा यत्सुता विद्वन् जाता देशेषु येषु च।
तेषां तदधिदैवत्यं समिधो दक्षिणा च या॥३५
यस्य यत्र च दिग्भागे मण्डलं स्याद्दिवस्वतः।
होमकर्मणि ये विप्रा या संख्या समिधामपि॥३६

अग्निकुण्डप्रमाणं तु प्रमाणं समिधामपि ।
सर्वमेव यथोद्देशं वक्ष्यामि द्विजसत्तम ॥३७
रक्तः कश्यपजो भानुः शुक्लो ब्रह्मसुतः शशी ।
रक्तो रौद्रसुतो भौमः पीतः सोमसुतो बुधः ॥३८
पीतो महासुराचार्यः शुक्लो शुक्लो भृगूद्वहः ।
कृष्णः शनो रवेः पुत्रः कृष्णो राहुः प्रजापतिः ॥३९
कृष्ण. केतुः कृशानूत्थः कृष्णार पापास्त्रयोऽप्यमी ।
कालिङ्गोर्को यामुनः सोम आवन्त्यो भौम उच्यते ॥४०
मागधो बुध इत्युक्तः सैन्धवस्तु बृहस्पतिः ।
सैन्धवो दानवाचार्यः सौरिः सौराष्ट्रदेशजः ॥४१
राहुः सिंहलदेशोत्थो मध्यदेशभवोऽग्निजः ।
जन्मदेशा इमे प्रोक्ता महजातकवेत्तृभिः ॥४२
शम्भुं रविमुमां चन्द्रं स्कन्दं भौमं हरिं बुधम् ।
ब्रह्माणं च गुरुं विद्यात्छक्रं शुक्रं यमं शनिम् ॥४३
कालं राहुं चित्रगुप्तं केतुमित्यधिदैवतम् ।
एतद्विज्ञाय यः कुर्यात्तस्य सर्वं सफलं भवेत् ॥४४
अर्कस्त्वर्काय होतव्यः सर्वव्याधिविनाशनः ।
सुधांशवे च सोमाय पलाशः सार्वकामिकः ॥४५
खदिरश्चार्थलाभाय मङ्गलाय विवेकिभिः ।
स्वरूपकृदपामार्गो होतव्यश्च बुधाय वै ॥४६
प्रभाप्रदस्तथाश्वत्थो होतव्योऽमरमन्त्रिणे ।
उर्जासौभाग्यकृद्दूर्वा दैत्यामात्याय सद्द्विजैः ॥४७

शमी पापोपशान्त्यर्थं होतव्या मन्दगामिने ।
दीर्घायुर्धर्मकृद्दूर्वा होतव्या राहवे द्विज ॥४८
धर्मविद्यार्थकृद्दर्भः सद्भिर्वह्निसूनवे ।
दधिक्षीराऽऽज्यसंमिश्राः समिधः शुभवृद्धये ॥४६
प्रादेशमात्रकाः सर्वा अष्टावष्टोत्तरं शतम् ।
अष्टाविंशतिरेकैकं संख्यैषा प्रतिदैवतम् ॥५०
वृद्धौ तु फलभूयस्त्वमुक्तादन्यत्तु राक्षसम् ।
नवभवनकं लेख्यं चतुरस्रं तु मण्डलम् ॥५१
ग्रहास्तत्र प्रतिष्ठाप्या वक्ष्यमाणक्रमेण तु ।
मध्ये तु भास्करः स्थाप्यः पूर्वदक्षिणतः शशी ॥५२
दक्षिणेन धरासूनुर्बुधः पूर्वोत्तरेण तु ।
उत्तरस्यां सुराचार्यः पूर्वस्यां भृगुनंदनः ॥५३
पश्चिमायां शनिः कुर्याद्राहुर्दक्षिणपश्चिमे ।
पश्चिमोत्तरतः केतुरिति स्थाप्या ग्रहाः क्रमात् ॥५४
पटे वा मण्डले लेख्या ईशान्यां दिशि पावकात् ।
ताम्रोऽर्कः स्फाटिकश्चन्द्रो रक्तचन्दनकोऽपरम् ॥५५
सोमसूनु-सुराचार्यौ स्वर्णशोभौ प्रकीर्तितौ ।
राजतो भृगुपुत्रश्च कार्ष्णश्च स शनैश्चरः ॥५६
राहुश्च सैसकः कार्यः कार्यः केतुश्च वा त्यजः ।
सर्वानेतन्मयान्कृत्वा समभ्यर्च्य मदा गृहे ॥५७
लेखयेद्वर्णकैः स्वैः स्वैर्विधिवत्पिष्टकेन वा ॥
ग्रहाणां साधिदेवानां प्रतिष्ठापनमन्त्रकान् ॥५८

वदन्ति मन्त्रतत्त्वार्थवेदिनो द्विजसत्तमाः ।
आदित्यं गर्भमित्युक्तमग्निं दूतमनेन च ॥५६
एताभ्यां स्थापयेदर्कं त्र्यम्बकमिति च शङ्करम् ।
अप्स्वन्तरीति शीतांशुं श्रीश्च ते इति पार्वतीम् ॥६०
स्योनापृथिवीति भौमं च यदक्रंदेति वा गुहम् ।
इदं विष्णुर्विधिं स्थाप्य तद्विष्णोरिति वै हरिम् ॥६१
इन्द्र आसां सुराचार्यं मामहाग्निनि वेधसम् ।
इन्द्रं दैवोर्भृ गोसूनुं सजोषेत्यमराधिपम् ॥६२
शन्नो देवी रवेः सुनुं यमाय त्वा तथा यमम् ।
अयं गौरीति राहुश्च कालं कार्षीरसीति च ॥६३
ब्रह्मयज्ञेति केतुं च चित्रं चित्रावसोरिति ।
भूयुरेतानि मंत्राणि मूलमन्त्रस्तथापरे ॥६४
आकृष्णेन च तीव्रांशोरिमन्देवा निशाकरम् ।
अग्निर्मूर्धेति भूसूनोरद्बुध्यध्वं बुधस्य च ॥६५
बृहस्पतेरिति गुरोरन्नात्परिस्रुतो भृगोः ।
शन्नो देवी शनैर्गन्तुः काण्डात्काण्डात्परस्य च ६६
केतुं कृण्वन्निति सूनोरिति मन्त्राः प्रकीर्तिताः ।
वेदमन्त्रैर्विना कश्चिद्विधिर्नास्ति द्विजन्मनाम् ।
कर्तव्याः स्वस्वमन्त्रैश्च स्वैः स्वैश्च प्रतिदैवतम् ॥६७
सघृता सयवाश्चापि होतव्याश्च द्विजोत्तमाः ।
मध्यमानामिकामूलग्राह्यगुष्ठचलस्रुभिः ॥६८

यावन्तोऽङ्गुलिभिर्ग्राह्यास्तिलास्ताञ्जिराहुतिम् ।
हस्तमात्रं पृथक्त्वेन वेधोऽपि तावतैव तु ॥६६
बाहुमात्रं वदन्त्येके एके चाऽरत्निमात्रकम् ।
चतुरस्रं खनेत्कुण्डं एकयोनिसमन्वितम् ॥७०
शुभमेखलया युक्तं सुशान्तिकरमुत्तमम् ।
होमार्थं मण्डपं कुर्याच्चतुर्द्वारं सतोरणम् ॥७१
चतुर्दिक्षु ध्वजाः कार्या नानावर्णाः शुभावहाः ।
तथा तत्रोदकुम्भाश्च दूर्वा-पल्लवसंयुताः ॥७२
पुनर्नवीकृतं सद्म मण्डपाभाव आश्रयेत् ।
षट्कर्मनिरताः शान्ता ये न क्षुब्धाः प्रतिग्रहैः ॥७३
नियोज्यास्तेऽग्निकार्यादौ स्युरन्यंत्रा द्विजोत्तमाः ।
प्रतिग्रहाग्निदग्धस्य जप-होमादि कुर्वतः ॥७४
यस्य मन्त्राण्यवीर्याणि तत्कृतं कर्म निष्फलम् ।
ओदनं सगुडं भानोः पायसं शशिनस्तथा ॥७५
हविष्यं भूमिपुत्रस्य क्षीरान्नं च बुधस्य च ।
यष्टियं मात्पुत्रस्य दध्ना तु भार्गवस्य च ।
पूर्णं दधिः शनैर्गन्तुमांसं राहोः श्रुताशृतम् ॥७६
चित्रान्नमग्निसूनोश्च भोज्यानामग्निरायजाः ।
कृतहोमस्तथाऽन्येऽपि ये मद्धृता द्विजोत्तमाः ॥७७
यथावर्णानि यानानि देयानि कुसुमानि च ।
देया गन्धाश्च सर्वेषां देयो धूपश्च गुग्गुलः ७८

धेनु शङ्खो वृषा स्वर्णं वासांस्यश्च सिता च गौ ।
अविरछागलश्चैव क्रमशो दक्षिणा स्मृता ॥७९

प्रत्यह प्रतिमास च प्रत्यब्द वा विधानत ।
वर्णिभिश्च ग्रहा पूज्या राजभिश्च सदैव हि ॥८०

दु खितो यस्तु यस्य स्यात्पूज्यस्तस्य स यत्नत ।
वधस्तेते नियुक्ता प्राक् स्वभक्त पूजयिष्यथ ॥८१

वर यच्छन्ति सहृष्टा विप्रा वह्निरु पास्तथा ।
असन्तुष्टा दहन्त्येते तस्मात्तानर्चयेत्सदा ॥८२

ग्रहाधीनमिदं सर्वमुत्पत्ति प्रलयात्मकम् ।
जगत्यभाव-भावौ च तस्मात्पूज्यतमा ग्रहा ॥८३

सानुकूलैर्ग्रहैर्यानि कुर्यात्कर्माणि मानव ।
सफलानि भवन्त्यस्य निष्फलानि स्युरन्यथा ॥८४

कुर्वन्ति चैतद्विधिना ग्रहाणामातिथ्यमब्द प्रतिवासर ये ।
आरोग्यदेहा धन धान्ययुक्ता दीर्घायुष स्त्रीसहिता भवन्ति ॥८५

इति ग्रहशान्तिविधिवर्णनम्।

॥ अथ गृद्ध-काक तिर्यग् यमल शान्तिवर्णनम् ॥

यस्तरस्कस्मात्सदनेष्वतोऽद्भुत वयोविशेषुर्यदरण्यवासिन ।
विशेषतो गृध्र कपोत पिच्छलास्तथैव चोलूकसकाक वायसा ॥८६

तरक्षु गोमायु मृगारि ऋक्षका द्विपाश्चवस्माद्कुतोऽपि निर्भया ।
विशन्ति यत्ते तदतीव चाद्भुत गृहे पुरे शान्तिक्मेव सिद्धये ॥८७

अथाद्भुतानि जायन्ते वर्णानां गृहमेधिनाम् ।
नानाविधानि तेषां तु प्रशान्त्यै शान्तिरुच्यते ॥८८

यस्याद्भुतानि जायन्ते मृत्युं तस्य वदेद्द्विजः ।
धन-धान्यक्षयं चापि भार्या-पुत्रक्षयं तथा ॥८९

भयं वा जायते शत्रो राज्ञो वा जायते भयम् ।
शान्तिस्तत्र विधातव्या यथोक्ता मुनिपुङ्गवैः ॥९०

यदि गोधूमशाखायां यवशाखोपजायते ।
यवे गोधूमशाखा स्यादेवं सर्वाशनेषु च ॥९१

सर्षपे तिलशाखा चेत्तिलशाखासु सर्षपम् ।
माषे मुद्गस्तु मुद्गे स्यादसृग्वृष्टिर्भवेद्यदि ॥९२

अम्भःपूर्णकुम्भेषु ज्वलदग्निमनेहते ।
उद्वर्तनं च कूपानां मक्षो वा मधुजालकम् ॥९३

विविधव्राणुलिङ्गञ्च निर्वाप्य पयसां घटम् ।
महावाताय सततं हृदयं तु प्रशाम्यतु ॥९४
त्रि पक्ष-मास वा दृष्ट्वा सर्वत्र यत्र तुल्यता ।
स्त्रियो गावो महिष्यो वा सुतौ वत्सौ पण्ढयौ ।
द्वौ द्वौ यत्र प्रजायेते शान्तिस्तत्र विधीयते ॥९५
पुष्पकोद्भवं नर्देन् यद्वाऽश्वं यत्राग्रहेन ।
अन्तरी प्रसूते ऽग्नि प्रस्वेदः प्रतिमासु च ॥९६
मरक-रटहाशीनामशुनोऽपि ध्वनिर्यदि ।
गृध्र काक-कपोताना निलेयुर्यदि वा गृहे ॥९७

यवपिष्टेन निर्वाप्य विधिवद्वारुणं चरुम्।
मन्त्रैर्वरुणदेवत्यैर्जुहुयाद्वरुणाय तम् ॥९८
महावरुणदेवाय जलानां पतये तथा।
अन्यैर्वरुणदैवत्यैर्मन्त्रैश्च जुहुयाच्चरुम् ॥९९
जुहुयादाहुतीस्तिस्रो मन्त्रैश्च वरुणाय तम्।
अन्नस्य तुल्यता कु र्या स्वाहान्तैर्वरुणदैवतैः ॥१००
इन्द्रचापेक्षणे रात्रौ शस्त्रज्वलनं तथा।
गजाऽश्वशफशस्त्रान्तर्ज्वलनं च प्रतिक्षणम् ॥१०१
स्थूणाप्ररोहणं यत्स्याद्भाण्डस्थान्नप्ररोहणम्।
विद्युन्निर्घातवज्राणां पतनं वा भवेद्यदि ॥१०२
मृदङ्गे काकसंसर्गं विपरीतप्रदर्शनम्।
शुभाय चरुराग्नेयो निर्वाप्यो विधिवद्द्विजैः ॥१०३
अग्नये त्वग्निराजाय महावैश्वानराय च।
हृदये मम यश्चेतत्तत्सर्वं च वदेद्बुधः ॥१०४
महशान्तिश्च सर्वत्र शने पूजा विशेषत ।
दक्षिणा सघृता गौस्तु वस्त्रयुग्मं द्विजातये।
प्रदद्याद्दोषशान्त्यर्थं सर्वोत्पातेषु वै द्विज ॥१०५
एतेषु चान्येष्वपि चाद्भुतेषु जातेषु सावित्रजपं सहस्रम्।
होमं विदध्यादपि विष्णुमन्त्रे ब्रह्मेशमन्त्रैरपि वा द्विजोत्तम ॥१०६

इति—अद्भुतशान्तिवर्णनम्।

॥ अथ रुद्रपूजाविधिवर्णनम् ॥

अभिधास्येऽथ रुद्राणां शान्तिर्या गृहमेधिनाम् ।
पञ्चाङ्गानां विधानं तु यत्कृतं हन्ति पातकम् ॥१०७
ब्राह्मणो विधिवत्स्नात्वा सर्वोपद्रवनाशनम् ।
कुर्याद्विधानं रुद्राणां यजुर्विधाननिर्मितम् ॥१०८
इषेत्वादिषु मन्त्रेषु यं ब्रह्मान्तेषु या क्रिया ।
दशाक्षरयुक्तेषु भूर्भुवःस्वरितीति च ॥१०९
आर्षं छन्दश्च दैवत्यं न्यासं च विनियोगतः ।
पराशरोदितं वक्ष्ये शेषं मुनिविभाषितम् ॥ ११०
मनो ज्योतिरथोऽग्निर्मूर्धानं चैव मर्माणि ।
मानस्तोके इतिमन्त्रश्चाथ पञ्चकं स्मरेत् ॥१११
याते रुद्रेति चूडायां शिरोऽस्मिन्महत्यर्णवे ।
असंख्याताः सहस्राणि ललाटे विन्यसेद्द्विजः ॥११२
चक्षुषोर्विन्यसेद्द्रे तु त्र्यम्बकं तु यजामहे ।
मानस्तोक इति ह्येतन्नासिकायां न्यसेद्बुधः ११३
अवतत्यधनुर्वक्त्रे नीलग्रीवाय वा गले ।
नमस्ते आयुधेत्येतत्स्मरेन्मन्त्रं प्रकोष्ठके ॥११४
विन्यसेद्बाहुमन्त्रोऽयं ये तीर्थानीति हस्तयोः ।
नमोऽस्तु विकिरेभ्यो वै हृदये मलनाशनम् ॥११५
नाभ्यां विद्वान्न्यसेन्मन्त्रं नमो हिरण्यबाहवे ।
गुह्ये मन्त्रन्तु संस्मर्य इमा रुद्राय इत्यपि ॥११६

मानोमहान्त इत्यूर्वोः एष ते रुद्र जानुनोः ।
अव रुद्रमितिह्येतज्जङ्घयोर्मन्त्रमुच्चरेत् ॥११७

सव्यं च पादयोर्न्यस्य वामं न्यस्योरुमध्यतः ।
अघोरं हृदि विन्यस्य मुखे तत्पुरुषं न्यसेत् ।
ईशानं मूर्ध्नि विन्यस्य हंसं नाम सदाशिवम् ।
हंसहंसेति यो ब्रूयात् हंसोनाम सदाशिवः ।
एवं न्यासविधिं कृत्वा ततः सम्पुटमाचरेत् ।
कवचं मध्ययोरुद्धे तदुपरि विलिमनेत्यपि ।
नेत्रं तु नीलग्रीवाय प्रमुञ्च धन्वनोऽस्त्रकम् ॥११८

य एतावन्त एतेन विदग्भुर्दिक्प्रबंधनम् ।
ॐ नोमिति नमस्कारं ततो भगवते पुनः ॥११९

रुद्रायेति विधानज्ञो दशाक्षरं ततो न्यसेत् ।
प्रणवं विन्यसेन् मूर्ध्नि नकारं नासिकान्तरे ॥१२०

मोकारं तु ललाटे तु भकारं मुखमध्यतः ।
गकारं कण्ठदेशे तु वकारं हृदये न्यसेत् ॥१२१

तेकारं दक्षिणे हस्ते रुकारं वामतो न्यसेत् ।
द्राकारं नाभिदेशे तु यकारं पादयोर्न्यसेत् ॥१२२

त्रातारमिंद्रं त्वन्नोऽग्ने सुगःपन्थामिति ह्यपि ।
तत्त्रायामि वदेद्दाने नियुद्भिरित्यपीरयेत् ॥१२३
एवं सोमं तमीशानमस्मे रुद्रा इति स्मरेत् ।
स्योना पृथिवीतिना ह्येतन् द्विजः कुर्वीत सम्पुटम् ॥१२४

सुत्रामादि दिशां पालान्प्राच्यादिषु स्मरेदथ ।
रौद्रीकरणमेतद्वै कृत्वा पापैः प्रमुच्यते ॥१२५
यक्ष-रक्षः-पिशाचाद्याः प्रेत-भूत-ग्रहादिकाः ।
दुष्टदैत्य-शाकिन्यो रेवत्यो वृद्धकाश्च याः ॥१२६
सिंह-व्याघ्रादयोऽऽरण्या ये दुष्टश्वापदा द्विजाः ।
म्लेच्छा घन्धक-चोराद्या यमदूता वृकादयः ॥१२७
रौद्रभूतमिमं सर्वे द्विजं पश्यन्ति वह्निवत् ।
दैदीप्यमानमर्चिर्भिर्दुष्टदिग्नन्धकारकम् ॥१२८
दह्यमाना दनीयांस सनधामसु धामभिः ।
प्रणश्यन्ति हि ये दुष्टा द्विजास्ते रुद्ररूपिणः ॥१२९
पश्चास्यं सौम्यमात्मानं सर्वाभरणभूषितम् ।
मृगलाञ्छनमूर्धानं शुद्धस्फटिकसन्निभम् ॥१३०
फणासहस्रविस्फूर्जद्उरगेन्द्रोपवीतिनम् ।
सलार्चिःपञ्जलक्षालं जटाजूटकिरीटिनम् ॥१३१
सहस्रकरवद्भ्राजन् सर्वाङ्गाङ्गविभूषितम् ।
महाण्डगण्डवस्त्रारं नृकपालकधारिणम् ॥१३२
दैदीप्यमानं चन्द्रार्कज्वलदग्नित्रिनेत्रिणम् ।
त्रैलोक्यगुतिरुद्रास्यत्स्कन्धकापालमालिनम् ॥१३३
दीप्तनक्षत्रमालापद्ममालाधरं द्विजः ।
निःशेषवारिसम्पूर्ण कमण्डलुधरं स्वजम् ॥१३४
जगद्वाधिर्यरवादं दण्ड-डमरुधारिणम् ।
केयूरबद्धनागेन्द्रमूर्द्धमणिविराजिनम् ॥१३५

मेखलाकिंकिणीमालायुक्तारावविराजितम् ।
घर्घराव्यक्तनिर्गच्छद्गम्भीरारावनूपुरम् ॥१३६
सहेमपट्टनीलाभव्याघ्रचर्मोत्तरीयकम् ।
विद्युल्लताप्रभागङ्गा धृतमूर्द्धं सुरार्चितम् ॥१३७
समस्तभुवनाभारधरणोक्षासनस्थितम् ।
त्रैलोक्यवनितामौलिनतदेहार्द्धपार्वतिम् ॥१३८
लक्षसूर्यप्रभाभास्वत्त्रैलोक्यकृतपाण्डुरम् ।
अमृतप्लुतहृष्टाङ्गं दिव्यभोगसमाकुलम् ॥१३९
दिग्दैवतैः समायुक्तं सुरासुरनमस्कृतम् ।
नित्यं शाश्वतमव्यक्तं व्यापिनं नन्दिनं ध्रुवम् ॥१४०
द्विजो ध्यात्वैवमात्मानं सम्यक् रुद्रस्वरूपिणम् ।
सम्प्रध्वस्तान्तरायः सन् ततो यजनमारभेत् ॥१४१
अनुलिप्ते सुलिप्ते च देशे गोचर्ममात्रके ।
स्थण्डिलेऽम्बुजमालिख्य मन्त्रैः प्रक्षाल्य तत्पुनः ॥१४२
तत्र पूजा प्रकर्तव्या नमश्च शम्भवाय च ।
मानो महान्तमिति च सिद्धमन्त्रं स्मरेद्बुधः ॥१४३
स्वललाटे पुनर्ध्यायेत्तेजोरूपं शिवं द्विजः ।
दशाक्षरेण मन्त्रेण दद्यात्पाद्यादिकं पुनः ॥१४४
न्यासमन्त्रैश्च सोङ्कारैर्मानस्तोक इतीत्यपि ।
शम्भवायेति मन्त्रेण दद्याद्गन्धोदकादिकम् ॥१४५
पुष्प-धूप-प्रदीपादि यथालाभं निवेद्यकम् ।
दशाक्षरेण तेनैव नमः कुर्यात्पुनर्द्विजः ॥१४६

शिखा तस्य तु रुद्रस्योत्तरनारायणं द्विजः ।
शिरः पुरुषसूक्तं च शिवसङ्कल्पकं च हृत् ॥१४७
कवचं चाप्रतिरथं नेत्रं विभ्राड् बृहत्पिबन् ।
शतरुद्रीयमन्त्रेण देवस्यास्त्रं प्रकल्पयेत् ॥१४८
पञ्चाङ्गानि स्मरेदग्रे प्रणवं च जपेद् द्विजः ।
उद्धृत्य प्रणवेनेशं विकिरिद्रे विसर्जयेत् ॥१४९
रुद्ररूपो द्विजो यश्च यत्कुर्यात्तद्धि सिध्यति ।
अक्षतान्वा तिलान्वापि यवान्वा समिधोऽपि वा ॥१५०
शम्भवायेति जुहुयात्सर्वांस्तानाज्यसिक्तान् ।
पञ्चपञ्चाथ षट् षट् वा अष्टाष्टौ नवापि वा ॥१५१
दशाद्दशैकादश वा जुहुयात्साधको द्विजः ।
द्विजः स्वदारसंतुष्टः शुचिः स्नातो यतेन्द्रियः ॥१५२
जप-तर्पण-होमादौ रतो यो वत्सरं जपेत् ।
दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति वै द्विजः ॥१५३
सौवर्णपृथिवीदानपुण्यभाग् जायते नरः ।
महापापोपपापैश्च मुक्तो रुद्रत्वमृच्छति ॥१५४
एकादशगुणान् रुद्रानावृत्य याति रुद्रताम् ।
रुद्रजापी शुचिः पुण्यः पाङ्क्तेयः श्राद्धभुग्वरः ॥१५५
पूर्वजानां शतं सैकं तारयेद्रुद्रजापकः ।
एकतो योगिनः सर्वे ज्ञानिभिः सह तद्व्रतैः ॥१५६
एकतो रुद्रजापी तु मान्यः सर्वैस्तु दैवतैः ।
पात्रमत्र पवित्रं तु नाधिकं रुद्रजापिनः ॥१५७

तस्मै दत्तं च तद्भुक्तं सदाऽनश्याय कल्पते ।
वेदाङ्गवेदिनामतः शिवभक्तः सदाधिकः ॥१५८

इति रुद्रपूजाविधिवर्णनम् ।

॥ अथ रुद्रशान्तिविधिवर्णनम् ॥

अथातः सिद्धिकामः सन्कन्दमूलफलाशनः ।
गोमूत्रयावकक्षीरदधिशाकाऽऽज्यभोजनः ॥१५६
हविष्यभोजनो वाऽसौ विप्रो योऽल्पान्नभोजनः ।
जपहोमादि कुर्वाणो यथोक्तफलभाग्भवेत् ॥१६०
शिरसा सह रुद्राणां जप्तैरीशशतैर्ध्रुवम् ।
सर्वे मन्त्रा भवन्त्यस्य ब्राह्मणस्योक्तकारिणः ॥१६१
सिद्धा मन्त्रा द्विजेन्द्रस्य चिन्तितार्थफलप्रदाः ।
रुद्रस्यैवास्य सर्वे ते भवन्तीश्वरलोदिताः ॥१६२
एकादश शुभान्कुम्भान् आहृत्य विधिसम्मितान् ।
सहिरण्यान्सवस्त्रांश्च फलपुष्पोपशोभितान् ॥१६३
गन्धोदकाऽऽप्तैर्युक्तान् पूजयेद्रुद्रभक्तिकृन् ।
अथैकादशरुद्रैश्च एकैकमभिमंत्रयेत् ।
एवं संपूज्य तान्कुम्भान् नमस्कृत्याभिमन्त्र्य च ।
पूजयेद्भक्तितो रुद्रानेकादश महागुणान् ॥१६४
एकादशाहमात्मानमन्यं वा हित काम्यया ।
विनायकोपसृष्टं च स्नापयेत्कलशोदकैस्ततम् ॥१६५

घृतवत्सां काकवन्ध्यां स्नापयेच्च तथाऽऽतुराम्।
जपेदेतत्सकृद्विप्रः सर्वदोषैर्विमुच्यते ॥१६६
अनड्वाहं च वस्त्रं च दद्याद्धेनुं च दक्षिणाम्।
भोजयेद्विदुषो विप्रान्समाप्तौ कर्मणो द्विजः ॥१६७
भक्ष्यैश्चाद्यैस्तथा चैव यथाशक्त्या समर्चयेत्।
अथ वा चरुभिक्षाशी शिरोरुद्रसहस्रकम् ॥१६८
जपेद्गोष्ठे तथारण्ये सिद्धक्षेत्रे शिवालये।
अग्न्यागारे समुद्रे च नदी-निर्झरपर्वते ॥१६९
जपेदन्यत्र वा विद्वान् शुचौ देशे मनोरमे।
धीरो दृढव्रतो मौनी त्यक्तक्रोधो यतेन्द्रिय. ॥१७०
षोडशमासान्त्यध शायी रुद्रलोके महीयते।
नमो गणेभ्य इत्यस्य मन्त्रस्य ब्राह्मणोऽयुतम् ॥१७१
जप्त्वा च श्रीफलैर्हुत्वा सर्वकार्येषु सिद्धिभाक्।
नमोऽस्तु नीलग्रीवायेत्येतन्मंत्रेण सप्तधा ॥
आमन्त्र्योदकमात्मनः स्य विष तच्छ्रवणे क्षिपेत्।
विषेण मुच्यते सद्यः कालदष्टोऽपि जीवति ॥१७२
विषस्याभिभवो न स्यात्तस्य तस्य कर्हिचित्।
ग्रहमलं ज्वरमन्नं रक्ष. शाकिनिदूषितम् ॥१७३
महाराक्षसमस्तं च अन्यद्दोषोपगृहितम्।
प्रमुञ्च धन्वन इति भस्मना सर्वरैस्तथा ॥१७४
ताडयेन्मुञ्च मुञ्चेति शीघ्रमेव विमुच्यते।
नम शम्भव इत्यस्य मन्त्रस्य चायुतं द्विज. ॥१७५

जप्त्वाखादिरसमिधो हुत्वा विप्र सहस्रकम्।
तीक्ष्णैतैलप्लुतं सम्यङ्मन्त्रान्ते चामुकं हन ॥१७६
फट्फट्कारेण जुहुयात्क्षयो रोगश्चिराद्भवेत्।
जलमध्ये शतावर्त स्थित्वा वृष्टिर्निगद्यते ॥१७७
नाभिमात्रे जले विप्र. प्रविश्य जुहुयाज्जलम्।
कुर्यादेकार्णवो धार्त्री मन्त्रमाहात्म्यतो भृशम् ॥१७८
नम श्वभ्य इत्यमुना मन्त्रेण तु सहस्रकम्।
लवण मध्वाहुतीनां तु राजा शीघ्रं वशी भवेत् ॥१७६
द्विगुणां प ञाशसमिधं महावाणी प्रजायते।
त्रिगुणां नवपद्मानां पाताले सिध्यति ध्रुवम् ॥१८०
चतुर्गुणेन मन्त्रेण यरद्या श्री प्रवर्तते।
समुद्रगानदीकूले पुलिने वा पवित्रके ॥१८१
खड्गोपरि श्रीफलानां हुत्वा त्रिंशत् शतानि च।
खड्गविद्याधरो विप्र शिवाज्ञात प्रजायते ॥१८२
अणिमाद्यष्टगुण हुत्वा जपेन्मन्त्रसहस्रकम्।
अणिमादिकसिद्धीनां पतिरेव भ वेद्द्विजः ॥१८३
छन्दोदैवतमार्षयमथास शलहद्रिये।
ज्ञानेन वर्मसम्पक्त्वं द्विजानां येन जायते ॥१८४
आद्यानुवाके रुद्राणामाद्यायां च शृचि द्विजः।
छन्दो गायत्रमन्यासु अनुष्टुप् तिसृषु स्मृतम् ॥१८५
पङ्क्तिस्तिसृषु विज्ञेया अनुष्टुभ् सप्तसु स्मृतम्।
द्वयोश्च जगती विप्रा उत्तमाद्यानुवाकयोः ॥१८६

अद्यानुवाके प्रथमा बृहती जगती तथा।
अनुष्टुप् च तृतीयाया द्वयोस्त्रिष्टुप् स्मृता द्विज ॥१८७
अपरासु तथानुष्टुप् अनुवाकद्वयं स्मृतम्।
रुद्रः सर्वासु दैवत्यं विनियोगो यथोचितः ॥१८८
यज्जाग्रतादिषट्के च शिवसंकल्पमात्रकम्।
रुद्रस्तु देवता षट्सु विनियोगो जपादिषु ॥१८९
सहस्रशीर्षा इत्यादि द्विगुणाष्टसु देवता।
पुरुषो यो जगद्बीजमृषिर्नारायणः स्मृतः ॥१९०
छन्दः सर्वासु चाऽनुष्टुप् विनियोगो जपादिषु।
अद्भ्यः सम्भृत इत्यादौ उत्तरनारायणस्तुतिः ॥१९१
आशुः शिशान इत्यादिरप्रतिरथ उच्यते।
पूर्वानुवाक्ये दैवत्यं त्रिष्टुप् छन्दं प्रकीर्तितम् ॥१९२
एतन्नाम्ना मुनिस्तत्र देवता अमरेश्वरः।
आशुः शिशान इत्यादिरप्रतिरथ उच्यते।
त्रिष्टुप् छन्दो जपादौ च विनियोगो यथोचितम् ॥१९३
कयस्य कमिति चैवात्र ऋषिस्तस्यापमुच्यते।
दैवत्योमापतिर्यत्र छन्दस्त्रिष्टुप् प्रकीर्तितं ॥१९४
विभ्राट् बृहत् इत्यादौ सूर्यो दैवतमुच्यते।
एतामश्विन्य मरन्तं द्विजाग्यो रुद्रजाप्यकृत् ॥१९५
यद्यदारभते सत्तु यथोक्तफलदं भवेत्।
येदाक्षायस्य दाक्षायं श्रद्धया द्रविणस्य च ॥१९६

प्रजानामायुष कीर्तेर्भूयस्त्वं रुद्रजापिन ।
इमं मन्त्रं पवित्रं च रहस्यं पापनाशनम् ॥१६७
रुद्रविधिं विधिश्रेष्ठं कुर्याद्विप्र शिवैरिति ।
शैवागमविशेषज्ञो वेद-वेदाङ्गपारग ॥१६८

कुर्याद्यदेवं विधिवद्विधानं शम्भोरजस्रं प्रथितं द्विजेन्द्रा ।
प्राप्नोति लोकं स शिवस्य साक्षादत्रापि स स्याच्छिववत्सुपूज्यः ॥१६६
मन्त्राणि सर्वाणि च सद्द्विजस्य निर्दशकर्तॄणि भवन्ति तस्य ।
य.साधयेत्प्रोक्तविधानविज्ञो मन्त्राभिपूज्यः स तु शम्भुवत्स्यात् ॥२००
मन्त्रं त्रिनेत्र जुहुयात् हुताशे यो विल्वपत्रैर्घृ तन्दुग्धमिश्रै. ।
निहत्य मृत्यु श्रियमेति धात्र्यां प्राप्नोति पश्चाच्छिवलोकमेव ॥२०१

पञ्चभागश्च षड्जात पञ्चैन्द्रं पञ्चवारुणम् ।
षड्जाति च जपित्वा तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२०२

इति रुद्रशांतिविधिवर्णनम् ।

॥ अथ तडागादि प्रतिष्ठाविधिवर्णनम् ॥

अथात सम्प्रवक्षामि तडागादिविधिं शुभम् ।
कृतेन येन तेषां तु प्रतिष्ठा सम्प्रजायते ॥२०३
अस्मन्नामस्य तातेन पृच्छते रघुपुङ्गवे ।
तडागाद्युत्सवे प्रोक्तो विधि सोऽय प्रकीर्तित ॥२०४
दीर्घिकासु तडागेषु सन्निहत्यासु यो विधि ।
तं वसिष्ठोऽवदत्सम्यक् दशरथस्य पृच्छत ॥२०५

तस्माच्च श्रुतवान् शक्तिः शुश्रावातः पराशरः ।
तत्प्रसादेन तत्प्रोक्तो यो विधिः सम्प्रचक्षते ॥२०५
तडागादिनिपानानां यावन्नोत्सर्जनं कृतम् ।
तावत्तत्स्वकीयं तु स्नानादीनामनर्हकम् ॥२०७
अप्रतिष्ठितदेशानां न कार्यं पूजनं नरैः ।
अप्रतिष्ठितखातानामपेयं तोयमुच्यते ॥२०८
तदुत्सर्गः प्रकर्तव्यो निजवित्तानुसारतः ।
वित्तशाठ्यं प्रहेयं स्यादित्युवाच पराशरः ॥२०९
तद्विधिज्ञः शुचिः शान्तो ब्राह्मणो धर्मवृद्धये ।
तदर्थं वरणीयोऽसौ चतुर्भिर्ब्राह्मणैः सह ॥२१०
आचार्यस्तत्र कर्तव्यः पूर्तधर्मविवृद्धये ।
विपरीतमतिर्यःस्यात्तत्कृतं कर्मनिष्फलम् ॥२११
तडागपालिपृष्ठे तु मण्डपं तत्र कारयेत् ।
पूर्वोत्तरस्थले देशे शुचिः स्वस्थः समाहितः ॥२१२
चतुरस्रं चतुर्द्वारं दशहस्तप्रमाणकम् ।
स्वामिहस्तप्रमाणेन तोरणानि च कारयेत् ॥२१३
पताका विविधाः कार्या नानावर्णाः समन्ततः ।
शुभपल्लवसंयुक्ता द्वारेषु कलशाः स्मृताः ॥२१४
यथावर्णं यथावृक्षं यथाकार्यं प्रमाणतः ।
तथा यूपान्प्रवक्ष्यामि वर्णानां हितकाम्यया ॥२१५
पालाशो ब्राह्मणः प्रोक्तो न्यग्रोधो भूभुजः स्मृतः ।
बैल्वो वैश्यस्य यूपः स्याच्छूद्रस्योदुम्बरः स्मृतः ॥२१६

शिरः प्रमाणो विप्रस्य आकण्ठं क्षत्रियस्य च ।
उरःप्रमाणो वैश्यस्य शूद्रस्य नाभिमात्रक ॥२१७
वेदिका पादमूले तु यूपस्तत्र निखन्यते ।
यूपस्य दक्षिणे भागे तोरणं तत्र कारयेत् ॥२१८
ब्रह्मस्थानं च तन्मध्ये अष्टौ भागा प्रकीर्तित ।
तेनागुरुस्त सोमं कुबेरं कुविदङ्गतम् ॥२१६
धनदं धन्वनागेति ईशायास्येति शङ्करम् ।
आकृष्णेनेत्यादिमन्त्रैश्च स्वैः स्वै कल्पास्तथा मह्य ॥२२०
त्रातारमिन्द्रमितीन्द्रं मग्निं दूतं च पावकम् ।
अग्नि पृथुरित्यादि धर्मराजं द्विजोत्तम ॥२२१
तद्विष्णोरिति वै विष्णु नम सूलेति नैर्ऋतिम् ।
समर्पयस्तु इत्यादि मन्त्रै सम्भूर्तिस्तथा ॥२२२
वरुणस्योत्तभनमसि वरुणं च प्रपूजयेत् ।
एवं द्वाविंशतिस्थानानि मन्त्रोक्तानि पृथक् पृथक् ॥२२३
इमं मे, त्वन्न, सत्वन्नस्तत्वायामि हुदुत्तमम् ।
समुद्रोऽसि समुद्रेति त्रीन् समुद्रान् निमोनपि ॥२२४
दशभिर्वारुणैर्मन्त्रैराहुतीना शतत्रयम् ।
शतमर्धं शतं वापि विंशत्यष्टोत्तरं शतम् ॥२२५
गोसहस्रं शतं वापि शतार्धं वा प्रदीयते ।
अलाभे चैव गां दद्यादेकामपि पयस्विनीम् ॥२२६
अरोगां वत्ससंयुक्तां सुरूपां भूषणान्विताम् ।
सौवर्णा राजतास्ताम्राः कांस्याः सोसाश्च शक्तित ॥२२७

मत्स्या नक्रादयः कार्या विविधावर्तवृत्तयः ।
गो-वत्सौ वस्त्रबद्धौ च आग्नेय्यां दिशि संस्थितौ ॥२२८
वायव्याभिमुखौ तत्र कारयेद्वारिमध्यतः ।
वस्त्रयुग्मानि विप्रेभ्यो मुद्रिका-छत्रिकादयः ॥२२९
भक्त्या चैताः प्रदातव्याः प्रसाद्य यत्नतो द्विजाः ।
विप्रान् सन्तोष्य देयानि दानानि विविधान्यपि ॥२३०
हेमपुष्पसंयुक्ता शय्या दद्याच्च शक्तितः ।
आसनानि प्रशस्तानि भाजनानि निवेदयेत् ॥२३१
एतत्प्रदक्षिणीकृत्य स्वात्मना च विपश्चितः ।
प्रसादयेत् द्विजान् सर्वान्याज्ञक्रतुफलं नरः ॥२३२
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विप्राणामग्रतः स्थितः ।
ब्रूयादेवं, भगवन्तोऽत्र सर्वे विप्रपुंगवाः ॥२३३
ते यूयं तारयध्वं मां संसारार्णवतो द्विजाः ।
आगता मम पुण्येन पूर्वकर्मप्रसाधकाः ॥२३४
कूर्मश्च मकरश्चैव सौवर्णस्तत्र कारयेत् ।
मीनाश्च राजमाषाश्चैव ताम्रा दर्दुरकाः स्मृताः ॥२३५
जलकुक्कुटगोधाश्च सैमास्तत्र प्रकल्पयेत् ।
अन्येऽपि जलजास्तत्र शक्तितस्तान्प्रकल्पयेत् ॥२३६
इमं पुण्यं प्रशस्तं च तडागादिविधिं नरः ।
वापी-कूप-तडागादीन् कारयेत् ब्राह्मणैर्बुधैः ॥२३७
ख्यातिविरहा तडागादि स्वभावाच्छास्त्रवर्जितः ।
मानवः क्रीडति स्वर्गे यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥२३८

एतद्विधानं विदधाति भक्त्या खातेषु सर्वेषु तडागकेषु।
सोऽमुत्र कामैः परिपूर्णदेहो भुङ्क्ते धरित्र्यामिह सर्वभोगान् ॥२३९
वदन्ति केचिद्वरुणस्य लोके प्रयाति भोगान्वरुणस्य भुङ्क्ते॥
भुक्त्वा चिरं तत्र पुनर्धरित्र्यां नरेन्द्रतामेति पराशरोक्तिः ॥२४०

इति तडागादिप्रतिष्ठाविधिवर्णनम्।

॥ अथ लक्ष-होमविधिवर्णनम् ॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि द्विजेन्द्राः श्रूयतामितः।
लक्षहोमविधिं पुण्यं कोटिहोमविधिं ततः ॥२४१
स्वयंभूर्यमुवाच भार्गवस्ततं पितामहः।
तमिमं सम्प्रवक्ष्यामि श्रूयतां पापनाशनम्॥२४२
ये येह ब्राह्मणाः कार्या भूमिर्वा यत्र मण्डपम्।
समिधो याश्च ये मन्त्रा अन्यच्च तत्र यद्भवेत् ॥२४३
लक्षहोममिमं विप्रा कथ्यमानं निबोधत।
युग्माश्च ऋत्विजः कार्या ब्राह्मणा ये विपश्चितः ॥२४४
नियमव्रतसंपन्ना सहिताः पार्थिवेन तु।
नित्यं जपरता ये च नियोज्यास्तादृशा द्विजाः ॥२४५
कन्द-मूल-फलाहारा दधि-क्षीराशिनोऽपि च।
प्रागुदीच्यां समे देशे स्थण्डिलं यत्र कारयेत् ॥२४६
तत्र वेदीं प्रकुर्वीत पञ्चहस्तप्रमाणिकाम्।
दक्षिणोत्तर आयामे त्रिहस्तु पूर्वपश्चिमे ॥२४७

कुण्डानि खनितव्यानि अङ्गुलान्येकविंशतिः ।
निधापयेद्धिरण्यं च रत्नानि विविधानि च ॥२४८
सिकतोपरि दातव्या तत्राप्यग्निं समिन्धयेत् ।
ग्रहांश्चैव सनक्षत्रान् दिशि प्राच्यां समर्चयेत् ॥२४६
अवदानविधानेन स्थालीपाकं समर्पयेत् ।
आज्यभागाहुतीर्हुत्वा नवाहुत्या च होमयेत् ॥२५०
अग्निं सोमं तथा सूर्यं विष्णुं चैव प्रजापतिम् ।
विश्वेदेवान् महेन्द्रं च मित्रं स्विष्टकृतं तथा ॥२५१
दधि-मधु-घृताक्तानां समिधां चैव याज्ञिकाः ।
होमयेयु सहस्रं तु मंत्रैश्चैव यथाक्रमम् ॥२५२
चतुर्विंशति गायत्र्या मानस्तोकेति षट् तथा ।
त्रिशन् महादिमन्त्रैश्च चत्वारश्चैव वैष्णवैः ॥२५३
कूष्माण्डैर्जुहुयात्पञ्च विकिरेद्वाथ षोडश ।
जुहुयाद्दशसहस्राणि जातवेदस इत्यृचा ॥२५४
तथा पञ्चसहस्राणि जुहुयादिन्द्रदैवतैः ।
हुते शतसहस्रे तु अभिषेकं विधापयेत् ॥२५५
पुण्याभिषेके यद्योग्यं तत्प्रदाय शुभं भवेत् ।
अथ षोडशभिः कुम्भैः सहिरण्यैः समङ्गलैः ॥२५६
सर्वौषधिसमायुक्तैर्नानारत्नविभूषितैः ।
अभिषेकं ततः कुर्यात्स्नानमन्त्रैर्यथोचितैः ॥२५७
समाप्ते तु तत्कर्मण्यस्मिन् प्रधाना दक्षिणाः स्मृताः ।
गजा-ऽश्वरथ-यानानि भूमि-यन्त्रयुगानि च ॥२५८

अन्नं च गोशतं हेम ऋत्विजां चैव दक्षिणा ।
नृपेणैकादशेनाथ दातव्या दश धेनवः ॥२५६
स्वशक्त्यातः प्रदातव्यं वित्तशाठ्यं न कारयेत् ।
एवं कृते तु यत्किञ्चित् ग्रहपीडासमुद्भवम् ॥२६०
भौममाकाशगं वापि अरिष्टं यच्च जायते ।
तत्सर्वं लक्षहोमेन प्रशमं याति निश्चितम् ॥२६१
शान्तिर्भवति पुष्टिश्च बलं तेजः प्रवर्द्धते ।
वृष्टिर्भवति राष्ट्रे च सर्वोपद्रवसंक्षयः ॥२६२

इति लक्षहोमविधिवर्णनम् ।

॥ अथ कोटिहोमविधिवर्णनम् ॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कोटिहोमविधिं द्विजाः ।
श्रूयतामानुपूर्व्येण सर्वकामफलप्रदः ॥२६३
सानुष्ठाना द्विजाः प्रोक्ता ऋत्विजो यागकर्मणि ।
विधिज्ञाश्चैव मन्त्रज्ञाः स्वदारनिरताश्च ये ॥२६४
वरणीया विशेषेण ग्रहयागक्रियाविदः ।
एकाङ्गविकलो विप्रो धनधान्यापहारकः ॥२६५
सर्वाङ्ग विकलो यस्तु यजमानं हिनस्ति सः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वेदाङ्गविधिकोविदाः ॥२६६
प्रकर्तव्या विशेषेण ग्रहयज्ञविदो द्विजाः ।
कार्यश्चैव प्रयत्नेन ग्रहयज्ञश्च वै द्विजैः ॥२६७

अध्येता चैव मन्त्राणां ऋचामष्टोत्तरंशतम्।
स एव ऋत्विग् विज्ञेय. सर्वकामफलप्रदः ॥२६८
आवाहनीयो यत्नेन प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः।
ग्रहाः फलन्तु नागाश्च सुराश्चैव नरेश्वराः ॥२६६
एवं कृते तु यत्किञ्चित् ग्रहपीडासमुद्भवम्।
तत्सर्वं नाशयेद्दुःखं कृतघ्नसौहृदं यथा ॥२७०
अस्माच्छतगुणः प्रोक्त कोटिहोमः स्वयम्भुवा।
आहुतीभिः प्रयत्नेन दक्षिणाभिः फलेन च ॥२७१
पूर्ववद् ग्रहदेवानां आवाहन-विसर्जने।
होममन्त्रास्त एवोक्ताः स्नानं दानं तथैव च ॥२७२
मण्डपस्य च भेदाश्च विशेषं च निबोधत।
कोटिहोमे चतुर्हस्तं चतुर्हस्तायतं पुन. ॥२७३
योनिवक्त्रद्वयोपेतं तदप्याहुस्त्रिमेखलम्।
द्व्यङ्गुलेनोच्छ्रिता कार्या प्रथमा मेखला बुधैः ॥२७४
त्र्यङ्गुलेनोद्धृता तद्वद्द्वितीया मेखला स्मृता।
उच्छ्राये मेखला या तु तृतीया चतुरङ्गुला ॥२७५
द्व्यङ्गुलस्तत्र विस्तारः पूर्वयोरेव शस्यते।
वितस्तिमात्रा योनिः स्यात्षट्-सप्ताङ्गुलविस्तृता ॥२७६
कूर्मपृष्ठोद्धृता मध्ये पार्श्वतश्चाङ्गुलोच्छ्रिता।
गजोष्ठसदृशा तद्वदायामच्छिद्रसंयुता ॥२७७
एतत्सर्वेषु कुण्डेषु योनिलक्षणमीरितम्।
मेखलोपरि सर्वत्र अश्वत्थपत्रसन्निभा ॥२७८

वेदी च कोटिहोमे स्यात् वितस्तीनां चतुष्टयम् ।
चतुरस्रा समा तद्वत्त्रिभिर्विप्रैः समावृता ॥२७९
विप्रप्रमाणं पूर्वोक्तं वेदिकायास्तथोच्छ्रयः ।
ततः षोडशहस्तः स्यान्मण्डपश्च चतुर्मुखः ॥२८०
पूर्वद्वारेऽपि संस्थाप्य बह्वृचं वेदपारगम् ।
यजुर्वेदं तथा याम्ये पश्चिमे सामवेदिनम् ॥२८१
अथर्ववेदिनं तद्वदुत्तरे स्थापयेद्बुधः ।
अष्टौ तु होमकाः कार्या वेद-वेदाङ्गवेदिनः ॥२८२
एवं द्वादश विप्राणां वस्त्रमाल्यानुलेपनैः ।
पूर्ववत्पूजनं कृत्वा सर्वाभरणभूषणैः ॥२८३
रात्रिसूक्तं च सौरं च पावमानं तु मङ्गलम् ।
पूर्वतो बह्वृचः शान्ति पावमानमुदङ्मुखम् ॥२८४
सूक्तं रौद्रं च सौम्यञ्च कूष्माण्डं शान्तिमेव च ।
पाठयेद्दक्षिणे द्वारे यजुर्वेदिनमुत्तमम् ॥२८५
सौपर्णमथ वैराजमाग्नेयीं रुद्रसंहिताम् ।
पञ्चभिः सप्तभिर्वाथ होमः कार्यश्च पूर्ववत् ॥२८६
स्नाने दाने च ये मन्त्रास्त एव द्विजसत्तमाः ।
ज्येष्ठसाम तथा शान्ति छन्दोगः पश्चिमे जपेत् ॥२८७
रुद्रविधानं तथा शान्तिमथर्वोत्तरतो जपेत् ।
वसोर्धाराविधानं तु लक्षहोमवदिष्यते ।
अनेन विधिना यश्च ग्रहपूजां समाचरेत् ॥२८८

सर्वान् कामानवाप्नोति ततो विष्णुपुरं व्रजेत्।
यः पठेन् श्रृणुयाद्वापि ग्रहयागमिमं नरः ॥२८९
सर्वपापविनिर्मुक्तः स गच्छेद्वैष्णवं पदम्।
अश्वमेधसहस्रं च दश चाष्टौ च धर्मवित् ॥२९०
कृत्वा यत्फलमाप्नोति कोटिहोमात्तदश्नुते।
ब्रह्महत्यासहस्राणि भ्रूणहत्यार्बुदानि च।
नश्यन्ति कोटिहोमेन स्वयम्भुवचनं यथा ॥२९१
प्रपेदिरे येऽस्य पितामहाद्याः श्वभ्राणि पापेन गरीयसा तान्।
उद्धृत्य नाकं स नयेद्धि सर्वान् यः कोटिहोमं नृपति करोति ॥२९२
राष्ट्रं मनोवाञ्छितवृष्टियुक्तं धान्यैश्च रत्नैः पशुभिः समेतम्।
निर्द्वन्द्वनीरोगमदस्यु तस्य यो लक्षकोटीहवनं विदध्यात् ॥२९३
यो लक्षकोटिं विदधाति भूभृत् तद्वन्नरो लक्षशतं जुहोति।
प्रत्यब्दमाप्नोति स दीर्घमायुर्भुङ्क्ते सपत्नान्विजयी धरित्रीम् ॥२९४
यो ब्रह्मघाती गुरुदारगामी प्रमादिदाहात् ध्रुवपापयुक्तः।
पापैरशेषैः पुरुषो विमुक्तः स कोटिहोमाद्विबुधत्वमेति ॥२९५
तस्मात्तदा भूपतयो विदध्युर्वृष्टिं प्रजासौख्यबलस्य पुष्ट्यै।
आयुःप्रवृद्ध्यै विजयाय कीर्त्यै लक्षादिहोमं ग्रहयागमेतम् ॥२९६

इति कोटिहोमविधिवर्णनम्।

॥ अथ पुत्रार्थं पुरुषसूक्तविधानवर्णनम् ॥

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि विधिं पावनमुत्तमम्।
अश्वत्तावप्रतितोऽयं रघुपौत्रस्य धीमत. ॥२९७

अनपत्यस्य पुत्रार्थमकरोद्वैभाण्डिकः स्वयम् ।
सहस्रशीर्षसूक्तस्य विधानं चरुपाककृत् ॥२६८
यैर्यैर्नृपैः कृतं पूर्वमन्यैरपि द्विजोत्तमैः ।
उपासितानि सद्भक्त्या श्रोत्रियैः श्रुतिपारगैः ॥२६६
आत्मविद्भिर्निराहारैः शौचिभिर्मंत्रचिन्तमैः ।
सिध्यन्ति सर्वमन्त्राणि विधिविद्भिर्द्विजोत्तमैः ॥३००
क्रियमाणाः क्रियाः सर्वाः सिध्यन्ति ब्रह्मचारिभिः ।
न पाठाच्च धनात् स्नानादात्मनः प्रतिपादनात् ॥३०१
प्राक्तनात्कर्मणः पुंसां सर्वाः सिध्यन्ति सिद्धयः ।
शुक्लपक्षे शुभे वारे शुभनक्षत्रगोचरे ॥३०२
द्वादश्यां पुत्रकामो यश्चरुं कुर्वीत वैष्णवम् ।
दम्पत्योरुपवासः स्यादेकादश्यां सुरालये ॥३०३
ऋग्भिः पोडशभिः सम्यगर्चयित्वा जनार्दनम् ।
चरुं पुरुपसूक्तेन श्रपयेत्पुत्रकाम्यया ॥३०४
प्राप्नुयाद् वैष्णवं पुत्रं चिरायुं सन्ततिक्षमम् ॥३०५
द्वादश्यां द्वादश चरून् विधिवन्निर्वपेद्द्विजः ।
यः करोति महायागं विष्णुलोकं स गच्छति ॥३०६
हुत्वाऽऽज्यं विधिवत्पूर्वं ऋग्भिः पोडशभिस्तथा ।
समिधोऽश्वत्थवृक्षस्य हुत्वाज्यं जुहुयात्पुनः ॥३०७
उपस्थानं ततः कुर्याद्ध्यात्वा तु मधुसूदनम् ।
हविर्होमं ततः कृत्वा दद्यात्पञ्च घृताहुतीः ॥३०८

कामप्रदं नमस्कृत्य नारी नारायणं पतिम् ।
सम्प्राश्य च हवि शेषं वसेल्लव्याशनी गृहे ॥३०६
ततः कृत्वा इदं कर्म कर्तव्यं द्विजतर्पणम् ।
रजः स्त्रीषु निवर्तेत यावद्गर्भं न विन्दति ॥३१०
असूता मृतपुत्रा वा या च कन्याः प्रसूयते ।
क्षिप्रं सा जनयेत्पुत्रं पराशरवचो यथा ॥३११
होमान्ते दक्षिणां दद्यात् गृहं वासस्तथा तिलान् ।
भूमिं हिरण्यं रत्नानि यथा सम्भवमेव वा ॥३१२
यः सिद्धमन्त्र. सततं द्विजेन्द्रः सम्पूज्य विष्णुं विधिवत्सुतार्थी ।
इमं विधानं विदधाति सम्यक् स पुत्रमाप्नोति हरेः प्रसादात् ॥३१३

इति पुत्रार्थं पुरुषसूक्तविधानवर्णनम् ।

॥ अथ शान्तिविधिवर्णनम् ॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि ग्रहमन्त्राधिदैवतम् ।
आर्षं छन्दश्च यज्ज्ञानात्कर्म स्यात्सफलं कृतम् ॥३१४
आकृष्णेनेति मन्त्रेऽस्मिन्दैवत्यं सविता महत् ।
ऋषिर्हिरण्यस्तूपाख्यस्त्रिष्टुप् छन्दः प्रकीर्तितम् ॥३१५
आप्यायस्वेति सोमाऽत्र दैवतं गौतमो मुनिः ।
गायत्री छन्द उद्दिष्टं विनियोगो यथेप्सितम् ॥३१६
अग्निर्मूर्धेति मन्त्रोऽत्र दैवतं भौम उच्यते ।
विरूपाक्षो मुनिर्धीमान् छन्दो गायत्रमिष्यते ॥३१७

तद्बुध्यस्वेति मन्त्रस्य बुधश्चैव तु दैवतम ।
मुनिर्बुधश्च मन्त्रस्यत्रिष्टुप् छन्दः प्रकीर्तितम् ॥३१८
बृहस्पते अतीत्यत्र देवतापि बृहस्पतिः ।
आर्षं गृत्समदोऽस्येति छन्दस्त्रिष्टुप् प्रकीर्तितम् ॥३१९
शुक्रःशुशुक्वेति हीत्यत्र शुक्र इत्यधिदैवतम् ।
शुक्रस्यापि तथार्षं च विराट् छन्दः प्रकीर्तितम् ॥३२०
शन्नो देवीति चेत्यत्र शनिर्दैवतमुच्यते ।
सिन्धुर्नाम ऋषिर्विद्वान् छन्दो गायत्रमुच्यते ॥३२१
काण्डात् काण्डादिति राहुर्दैवतं हि तदुच्यते ।
ऋषिः प्रजापतिः प्रोक्तोऽनुष्टुप् छन्दः प्रकीर्तितः ॥३२२
केतुं कृण्वन्निति प्रोक्तं दैवतं केतुरेव हि ।
मधुच्छन्दस आर्षं च गायत्रं छन्द एव हि ॥३२३
स्योनापृथिवीति मन्त्रस्य स्कन्दश्च देवतास्मृता ।
आर्षं मेधातिथिश्चात्र स्वयम्भूर्दैवतं परम् ॥३२४
भर्गाख्यश्च मुनिश्चात्र बृहती छन्द उच्यते ।
इन्द्रश्रुत्सेति दैवत्यं इन्द्र एव स्मृतो बुधैः ॥३२५
आर्षं कुत्सस्य चाप्यत्र त्रिष्टुप् छन्दः प्रकीर्तितम् ।
यस्मिन्वृक्षेति चाह्यत्र यमो वै देवता परा ॥३२६
ऋषिस्तु कुण्डलोमा च त्रिष्टुप् छन्दः स्मरेद्बुधः ।
महाजज्ञानमित्यत्र कालो वै दैवतं महत् ॥३२७
मुनिर्धर्मतनुर्नाम त्रिष्टुप् छन्दोऽभिधीयते ।
आयातमिति च ह्यस्यां चित्रगुप्तस्तु दैवतम् ॥३२८

आर्षं तु वामदेवोऽस्य त्रिष्टुप्छन्दो बुधैर्मतम्।
अग्निं दूतमिति ह्यस्यां मग्निर्वै देवता स्मृता ॥३२९
आर्षं मेधातिथिर्नाम छन्दो गायत्रमेव हि।
अप्सुमे सोम इत्यत्र सोमं वै दैवतं स्मरेत् ॥३३०
मेधातिथिरिहाप्यार्षमनुष्टुप् छन्द उच्यते।
पुरुषसूक्तस्य दैवत्यं पुरुष एव मतं बुधैः ॥३३१
भूमिपृथिव्यन्तरिक्षमित्यत्र दैवतं क्षितिः।
ऋषिः शातातपो ह्यत्र छन्दश्चानुष्टुबुच्यते ॥३३२
आर्षं नारायणस्येह छन्दश्चानुष्टुबित्यपि।
इन्द्रायेंदो मरुत्वते मरुत्वान्दैवतं महत् ॥३३३
आर्षं तु काश्यपस्येह गायत्रं च्छन्द एव हि।
मरुत्वंतमिति ह्यत्र सुरेन्द्रो देवता मता ॥३३४
अत्रापि कश्यपस्यार्षं गायत्रं छन्द एव हि।
उत्तानपर्णइत्यत्र इन्द्रो दैवतमुच्यते ॥३३५
आर्षं साङ्ख्यस्य चात्रोक्तं मनुष्टुप् छन्द इत्यपि।
प्रजापते इति ह्यत्र देवता च प्रजापतिः ॥३३६
हिरण्यगर्भस्यार्षं तु त्रिष्टुप् छन्दो मतं बुधैः।
आयं गौरिति चैवात्र देवता फणिनो मता ॥३३७
सर्पराजो मुनिस्तत्र गायत्रं छन्द उच्यते।
एष ब्रह्मा ऋत्विज इति ब्रह्मदेवोऽधिदैवतम्।
ऋषिर्वै वामदेवोऽत्र गायत्रं छन्द इष्यते ॥३३८

आतून इन्द्रवृत्रहं सुरेन्द्रः मगणेश्वरः ।
तथार्पं वामदेवस्य गायत्रं छन्द इत्यपि ॥३३९
जातवेदस इत्यत्र जातवेदास्तु दैवतम् ।
काश्यपस्यार्पमत्रापि छन्दोऽनुष्टुप् प्रकीर्तितम् ॥३४०
अनोनियुद्भिरित्यस्मिन्वायुर्दैवतमुच्यते ।
आर्पमत्र वसिष्ठस्य अनुष्टुप् छन्द उच्यते ॥३४१
नमः भकाराद्दैवत्यं मुनिप्रोक्तं प्रजापतिः ।
छन्दो गायत्रमित्युक्तं विनियोगो यथेप्सितम् ॥३४२
एषो उषेति चाप्यत्र अश्विनौ दैवते स्मरेत् ।
प्रस्कण्वश्चार्पमत्रापि गायत्रं च्छन्द उत्तमम् ॥३४३
मरुतो यस्य हि क्षये मरुद्दैवतमुच्यते ।
गौतमं च मुनिं विद्धि छन्दश्च प्रथमं मुने ॥३४४

छन्दस्तथार्पं सहदैवतेन ज्ञात्वा द्विजो य. कुरुते विधानम् ।
वेदोक्तमर्थं प्रददाति सम्यक् सर्वं फलं कर्तुरिहाप्यमुत्र ॥३४५
यो लक्षहोमं यदि कोटिहोमं राजा विदध्यात्प्रतिवर्षमेकम् ।
राष्ट्रे सुवृष्टिर्विजयः सुभक्ष्यमारोग्यता स्यात्सुकृतस्य वृद्धिः ॥३४६
भवन्ति पुत्राः शुभवंशवृष्यै दीर्घायुषो राजहिता धरित्र्याम् ।
सुकीर्तिमन्तो जयिनोऽपि राज्ये प्रतापवन्तो रवि-चन्द्रतुल्याः ॥

इति श्रीवृहत्पाराशरीये धर्मशास्त्रे शान्तिविधिर्नाम

एकादशोऽध्यायः ।

—※※※—

## द्वादशोऽध्यायः।

### अथ राजधर्मवर्णनम्।

अथातो नृपतेर्धर्मं वक्ष्यामि हितकाम्यया।
पराशरात् श्रुतं विप्रा वक्ष्यमाणं निबोधत ॥१
भूभृद्भूमौ परो देवः पूज्योऽसौ परदेववत्।
स विधातापि सर्वस्य रक्षिता शासिता च सः ॥२
इन्द्रा-ऽग्नि-यम-वित्तेशा-ऽनलेशा-मातरिश्वनः।
शीतांशुस्तीव्रभासश्च ब्रह्मादयोऽसृजन्नृपम् ॥३
नृपो वेधा नृपः शम्भुर्नृपोऽर्को विष्टरश्रवाः।
दाता हर्ता नृपः कर्त्ता नृणां कर्मानुसारतः ॥४
नारक्षद्यदि राजानं नापि दण्डं व्यधारयत।
नामंस्यतो यदा चैषां का भविष्यज्जगत्स्थितिः! ॥५
नाग्रहीष्यन् पुरोडाशान् मनुष्य–पितृ–देवताः।
नाभविष्यत् श्व-काकानां भागधेयं हुतं हविः ॥६
निर्गुणोऽपि यथा स्त्रीणां सदा पूज्यः पतिर्भवेत्।
तथा राजापि लोकानां पूज्यः स्याद्विगुणोऽपिसन् ॥७
स्वकर्मस्थान्नृपो लोकान् पिता पुत्रानिवौरसान्।
शिक्षयेत् धर्मविद्दण्डैरधर्मकारिणो जनान् ॥८
नरान् दण्डधृतः कुर्यात् धर्मज्ञानार्थसाधकान्।
समर्थानस्वपत्यादीन्शूरान् स्वामिहितोद्यतान् ॥९

शुचीन् प्राज्ञान् स्वधर्मज्ञान् विप्रान् मुद्राकरान् हितान् ।
लेखकानपि कायस्थान् लेख्यकृत्यविचक्षणान् ॥१०
अमात्यान् मन्त्रिणो दूतान् यथोदितपुरोहितान् ।
प्राड्विवाकान् समस्तान् वा हितांश्च रक्षकानपि ॥११
शूरानथ शुचीन् प्राज्ञान् परविश्वासकारिणः ।
सर्वस्थानेषु चाध्यक्षान् सत्कृत्य वंदिनो परे ॥१२
महायत्नः कुमाराणामन्तःपुरस्य रक्षणे ।
वृद्धान् कञ्चुकिनो विप्रान् शुचीनाप्तांश्च वीरकान् ॥१३
यथोदितानि दुर्गाणि कुर्यात्तेष्वपि रक्षणम् ।
उद्वाहमुदितं स्त्रीणां यौनसम्बन्धकारणात् ॥१४
गुप्तमकृत्यविज्ञानमात्मरक्षा प्रयत्नतः ।
प्रातः सन्ध्यार्चनादूर्ध्वं गूढपुंवचनश्रुतिः ॥१५
यथोक्तकार्ये राज्ये च नित्यं कुर्यात्परीक्षणम् ।
कोशभाण्डरथादीना हेतीना वर्मणामपि ॥१६
कुर्यादालोकनं नित्यमनालस्यो महीपतिः ।
अमात्य मन्त्रि-योद्धृणां सम्मानं नित्यशोऽपि च ॥१७
देवार्चनं सदा होमः शान्तिश्च वृद्धसेवनम् ।
यज्ञो दानं तथोत्पातसमये शान्तयोऽपि च ॥१८
वर्जनं विषयासक्तेर्भूमिदानं सशासनम् ।
प्राणिवर्जितदेशे च नीतिज्ञो मन्त्रदृद्धवेत् ॥१९
नित्यमुत्साहयुक्तश्च विजिगीषुरुदायुधः ।
सदालङ्कारयुक्तश्च सदव प्रियभाषकः ॥२०

सदा प्रियहिते युक्तः पूज्यो नाकेऽप्यसौ नृपः।
सदा साधुषु सन्मानं विपरीतेषु घातनम् ॥२१
दण्डं दम्भेषु कुर्वाणो राजा यज्ञफलं लभेत्।
वृद्धान् साधून् द्विजान् मौलान् यो न सन्मानयेन्नृपः ॥२२
पीडां करोति चामीषां राजा शीघ्रं क्षयं व्रजेत्।
यस्तु सन्मानयेदेतान् देवान् विप्रांश्च पूजयेत् ॥२३
पराजयेत्सोप्यरींस्तान् दीर्घायुरपि जायते।
पीड्यमाना प्रजा रक्षेत्कायस्थैश्चोरतस्करैः ॥२४
धान्येक्षुतृणतोयैश्च सम्पन्नं परमण्डलम्।
हीनवाहनपुंस्त्वं तु मत्वैतत्प्रविशेन्नृपः ॥२५
मासे सहसि यात्रार्थी कृतपुण्याहघोषयान्।
विधिवद्यानकं कुर्याद्यद्व्यूहैरक्षयन् बलम् ॥२६
यत्राचलसरोरक्षा वृक्षरक्षा तु यत्र च।
वासं तत्रविधायैव रात्रौ रक्षेत्स्वकं बलम् ॥२७
चतुर्दिक्षु च सैन्यस्य निशि शूरान् धनुर्धरान्।
स्वयं राजा नियुञ्जीत समीक्ष्य भूबलाबलम् ॥२८
राज्यस्य षड्गुणान् मत्वा सन्धिविग्रहयानकान्।
आसनं संशयं द्वैधं सम्यक् ज्ञात्वा समाचरेत् ॥२९
निर्भेदं स्वबलं कुर्यान्निहन्याद्विमचेतनम्।
दासीकर्मकरान् दासान् भिन्दतो रक्षयेन्नृपः ॥३०
निकटस्थायिनो नित्यं जानन्ति चेष्टितं प्रभोः।
तस्मात्ते यत्नतो रक्ष्या भेदमूलं यतस्त्वमी ॥३१

एते परस्य यत्नेन भेदनीयास्ततोऽपरे ।
यथा परो न जानाति तथा भेदं समाचरेत् ॥३२
परामात्य-प्रधानानां व्यलीककृतशङ्कितम् ।
उत्थापयेत्स्वसेनायाः स्याद्यथा चित्तभेदना ॥३३
परसैन्ये बहु गतान्निर्विधान् कुहकानपि ।
कारयेत् गरदानादि वह्निपातानेनकशः ॥३४
स्वसैन्ये गरदानादि नृपो यत्नेन रक्षयेत् ।
नियुज्य विज्ञः पुरुषानुक्तं सर्वं निशामयेत् ॥३५
अन्तर्भीहन् बहिः शूरान् साग्निकान् ब्राह्मणोत्तमान् ।
मर्मज्ञान् कुलसम्पन्नान् बिभृयादात्मसन्निधौ ॥३६
प्रविशन् परदेशे च प्रजां स्वीकृत्य संविशेत् ।
उत्सार्य मार्गतो लोकान् दूरीकृत्य व्रजेन्नृपः ॥३७
शस्यादि दाहयेत्सर्वं यवसानि धनानि च ।
भिन्द्यात्सर्वनिपानानि प्राकारान्परिखास्तथा ॥३८
अपसृत्य समादाय भूमिं साधारणां नृपः ।
गमयेत् वार्षिकान्मासानासाद्य स्वधरां नृपः ॥३९
न युद्धमाश्रयेत्प्राज्ञो न कुर्यात्स्वबलक्षयम् ।
साम्ना भेदेन दानेन त्रिभिरेव वशं नयेत् ॥४०
वदन्ति सर्वे नीतिज्ञा दण्डस्याऽगतिका गतिः ।
तद्वज्जं वशमायाति तथा शत्रुस्तथा चरेत् ॥४१
आक्रान्ता दर्भसूच्योऽपि बिभ्रुर्मृ द्वयोऽपि भूतलम् ।
नातो यतेत युद्धाय युद्धसिद्धिरसिद्धिरत् ॥४२

गृह्णीयात्सर्वदा राजा करानपीडयन्प्रजाः ।
स्तोके स्तोकान् पृथक् साम्ना स भुङ्क्ते सुचिरं धराम् ।।६५
सदा चोद्यमिना भाव्यं नृपेण विजिगीषुणा ।
विजिगीषुर्नृपो नान्यैः कदाचिदभिभूयते ।।६६
तदेवं हृदि सन्धाय धृतोत्साहो नृपो भवेत् ।
दैवं पौरुषसंयोगो सर्वाः सिध्यन्ति सिद्धयः ।।६७
नैकेन चक्रेण रथः प्रयाति नचैकपक्षो दिवि याति पक्षी ।
एवं हि दैवेन न केवलेन पुंसोऽर्थसिद्धिर्नरकारतो वा ।।६८
केचिद्धि दैवस्य तु केवलस्य प्राधान्यमिच्छन्ति मतिप्रवीणाः ।
पुंस्कारयुक्तस्य नरस्य केचिदप्यत्र इष्टा पुरुषार्थसिद्धिः ।।६९
अत्युद्यमी क्रियत एव च यः श्रमी च
शौर्यान्वितश्च गुणवांश्च सुधीश्च विद्वान् ।
प्राप्नोति नैव विधिना स पराङ्मुखेन
स्वीयोदरस्य परिपूरणमन्नमात्रम् ।।७०
शुभ्राणि हर्म्याणि वराङ्गनाश्च नानाप्रकारो विभवो नरस्य ।
उर्वीपतित्वं (च) नृपकारता (नृकारता) च सर्वं हि
मंक्षु (मङ्क्षु) क्षयमेति दैवात् ।।७१
केषां(एषां)हि पुंसां महतो हि दैवात्स्थानस्थितानामपि चार्थसिद्धिः ।
केषां प्रभुत्वं बहुजीवितं च एको हि देवो बलवानतोऽत्र ।।७२
पुं-स्त्रीप्रयोगादथशुक्र शोणितात् को देहमध्ये विदधाति गर्भं ।
स्त्रीणां तु तद्भिन्न न चापि पुंसां सर्वाणि चैषा(मनुजेश्वरं)ननु दैवचेष्टा ।।
कासां तु गर्भस्य न सम्भवोऽस्ति केषां च शुक्रं ननु वीर्यहीनम् ।
दधाति गर्भं ननु कापि दैवात् काश्चित्तु गर्भ न दधाति दैवात् ।।७४

धाता विधाता निज कर्मयोगात् विधेस्त्वभीष्टं त्वनुभावभाव्यम् ।
देवासुराणां सह दैत्यकानां स ह्येव कर्ता च मनूद्भवानाम् ॥७५
दैवात् मघोनोऽपि सहस्रभङ्गा दैवाद्धिमांशोः क्षयरोगिताऽभूत् ।
दैवात्पयोधेर्लवणोदकत्वं दैवाद्धवेश्चिन्नतरा च वृत्तिः ॥७६
यद्यप्यमुष्मान्न परोऽस्ति दैवात् कुर्यात्तथापीह नरो नृकारम् ।
उद्दीपयेत्कर्मकरो नृकाराद्दुद्दीपितं कर्म करोति लक्ष्मीः ॥७७
दैवेन केचित्प्रसभेन केचित्केचिन्नृकारेण नरस्य चार्थाः ।
सिध्यन्ति यत्नेन विधीयमानास्तेषां प्रधानं नरकारमाहुः ॥७८
स्वामिः प्रधानं नय-दुर्ग-कोशान् दण्डं च मित्राणि च नीतिविज्ञाः ।
अङ्गानि राज्यस्य वदन्ति सप्त सप्ताङ्गपूर्णो नृपतिर्नरासुक् ॥७९
दुर्वृत्त-सद्वृत्तनरेषु दण्डं राजा विधत्ते निपुणोऽर्थसिध्यै ।
दण्डस्य सत्त्वोर्जितवित्तसत्त्वं पुंसोऽर्थहीनस्य दमं तु हीनम् ॥८०
अन्यायतो ये तु जनं नरेशाः सम्पीड्य वित्तानि हरन्ति लोभात् ।
तत्क्रोधवह्नौ परिदग्धदेहा गतायुषस्ते तु भवन्ति भूपाः ॥८१
दण्डो महान् मध्यमकाधमस्तु मानं तु तेषां त्रसरेणुकादि ।
सोऽशीतिसाहस्रपणो महान् स्यात्तदर्धकस्तस्य तदर्धको वा ॥८२
सर्वार्थपादश्च हरश्च दण्डो पात्यो नृपेणेति वदन्ति सन्तः ।
पाण्यादिपच्छेदन-मारणं च निर्वासनं राष्ट्रत एव सद्य ॥८३
ज्ञात्वापराधं मनुजस्य व्यस्तु देशं च कालं च वपुर्वयश्च ।
दंडेषु दण्डं विदधाति भूभृन् साम्यं स बध्नाति पुरन्दरस्य ॥८४
यः शास्त्रदृष्टेन पथा नरेशो दण्डं विदध्याद्विधिवत्करांश्च ।
सोऽतीव कान्तिं वितनोति गुर्वीमायुश्च दीर्घं दिवि देवभोगान् ८५

यस्त्वक्रमागाणि कुलानि राजा श्रेणीश्च जातीश्च गणांश्च लोकान् ।
आनीय मार्गे विदधाति धर्म्ये नाकेऽपि गीर्वाणगणैः प्रशस्यते ॥८६

यः स्वधर्मे स्थितो राजा प्रजाधर्मेण पालयेत् ।
सर्वकामसमृद्धात्मा विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥८७

हयेश्व-वह्नि-यम-वित्तनाथ-शीतांशुरूपाणि हि बिभ्रतीह ।
सर्वेऽपि भूपास्त्विह पञ्चरूपास्तं कथ्यमानं शृणुत द्विजेन्द्राः ॥८८
यदा जिगीषुर्धृतशस्त्रपाणिस्त्वपुं समालम्ब्य स विद्धसैन्यः ।
सर्वान् सपत्नानिह जेतुकामस्तदा स हयेश्व इवेह भाति ॥८६
अकारणात्कारणतोऽपि चैव प्रजां दहेत्कोपसमिद्धरोचिः ।
यदा तदेनं नृपनीतिविद्यास्तनूनपातं प्रवदन्ति भूपम् ॥६०
धर्मासनस्थः श्रुतिशास्त्रदृष्ट्या शुभाशुभाचारविचारकृत्स्यात् ।
धर्म्येषु दाने त्वपकृत्सु दण्डं तदा ऽवनीशस्त्विह धर्मराजः ॥६१
यदा त्वमात्य-द्विज याचकादीन् प्रहृष्टचित्तस्तु यथोचितेन ।
धनप्रदानेन करोति हृष्टान् भूभृत्तदाऽसौ द्रविणेशवत्स्यात् ॥६२
समस्तशीतांशुगुणप्रयुक्तो यदा प्रजामेव शुभाय पश्येत् ।
प्रसन्नमूर्तिर्गतमत्सरः सन् तदोच्यते सोम इति क्षितीशः ॥६३
आज्ञा नृपाणां परमं हि तेजो यस्तां न मन्येत स शास्त्रबाह्यः ।
भूयाद्य कुर्यात्र यदेव भूभृत्कार्यं तदेवं भुवि सर्वलोकैः ॥६४
दुर्धर्षतिग्मांशुसमानदीप्तेर्नृयान् मनुष्यः परुषं नृपस्य ।
यस्तस्य तेजोऽप्यवमन्यमानः सद्यः स पंचत्वमुपैति पापात् ॥६४
योऽज्ञाय सर्वं विदधाति पश्येत् शृणोति जानाति चकास्ति शास्ति ।
कस्तस्य चाज्ञां न बिभर्ति राज्ञः समस्तदेवांशभवो हि यस्मात् ॥६५

इति राजधर्मवर्णनम् ।

॥ अथ वानप्रस्थभिक्षुधर्मवर्णनम् ॥

अथ विप्रो वनं गच्छेद्विना वा सहभार्यया।
जितेन्द्रियो वसेत्तत्र नित्यं श्रौताग्निकर्मकृत् ॥९६
धन्यैर्मुन्यशनैर्मेध्यैः श्यामा-नीवार-कङ्गुभिः।
कन्द-मूल-फलैः शाकैः स्नेहैश्च फलसम्भवैः ॥९७
सायं-प्रातश्च जुहुयात्त्रिकालं स्नानमाचरेत्।
चर्मचीरवासाः स्यात् श्मश्रु-लोम-जटाधरः ॥९८
पितॄंश्च तर्पयेन्नित्यं देवांश्चाजस्रमर्चयेत्।
अर्चयेदतिथीन्नित्यं तथा भूतांश्च पोषयेत् ॥९९
न किञ्चित्प्रतिगृह्णीयात्स्वाध्यायं नित्यमाचरेत्।
सर्वसत्त्वहितो दान्तः शान्तश्चाध्यात्मचिन्तकः ॥१००
सन्तुष्टस्वान्तको नित्यं दानशीलः सदा द्विजः।
कञ्चिद्वेदं समास्थाय सुवृत्त्या वर्तयेत्सदा ॥१०१
एकाह्निकं तु कुर्वीत मासिकं वाथ सञ्चयम्।
षाण्मासिकं चाब्दिकं वा यज्ञार्थं च वने वसन् ॥१०२
त्यक्त्वा तदाश्विने मासि स्थानमन्यत्समाश्रयेत्।
यथावदग्निहोत्रं तु समिदाज्यैस्तु पालयेत् ॥१०३
चान्द्र-कृच्छ्र-पराकाद्यैः पक्ष-मासोपवासकैः।
त्रिरात्रैरेकरात्रैश्च आश्रमस्थः क्षिपेद्वपुः ॥१०४
तिष्ठेन्नक्तिकस्तत्र स्वप्यादधस्तथा निशि।
अतन्द्रितो भवेन्नित्यं वासरं प्रपदैर्नयेत् ॥१०५

योगाभ्यासरतो नित्यं स्थानाऽऽसन-विहारवान्।
हेमन्त-ग्रीष्म-वर्षासु जलाग्न्याकाशमाश्रयेत् ॥१०६
दन्तोलूखलिको वापि कालपक्वभुजेव वा।
स्याद्वाश्मकुट्टको विप्रः फलस्नेहैश्च कर्मकृत् ॥१०७
शत्रौ मित्रे समस्त्वान्तस्तथैव सुख-दुःखयोः।
समदृष्टिश्च सर्वेषु न विशेद्वनगह्वरम् १०८
म्लेच्छव्याप्तानि सर्वाणि वनानि स्युः कलौ युगे।
न भूपाः शासितारश्च ग्रामोपान्ते वसेदतः ॥१०६
ग्रामाश्च नगरादेशास्तथारण्य-वनानि च।
क्षितीशरक्षितान्येव सर्वेषां फलदानि हि ॥११०
प्रथमं भूपतेस्तस्मात्कृत्यं शंसेद् द्विजाग्रजाः।
योगं वाऽरण्यवासं वा कुर्वीत तदनुज्ञया ॥१११
सुत्रामा-ऽनलवायूनां यमस्येन्दोर्विवस्वतः।
ईश-वित्तेशयोर्मात्रमात्राभ्यो निर्मितो नृपः ॥११२
पारत्रिकं ॥ यत्किञ्चिद्यत्किञ्चिदैहिकं तथा।
नृपाज्ञया द्विजातीनां तत्सर्वं सिध्यति ध्रुवम् ॥११३
भूपतेः प्रथमं तस्मात् साधोर्यज्ञादिकं द्विजः।
रक्षार्थं कथयित्वा तु यथा कार्यं समापयेत् ॥११४
धेनुः पूर्वं वसिष्ठस्य ह्यासीद्दुर्वाससोऽपि च।
वनवासाश्रमस्थस्य वह्निकार्याय तां श्रयेत् ॥११५
फलस्नेहा यदा न स्युः कालवैगुण्यतो द्विजाः।
तदा गोदुग्ध-सर्पिभ्यामग्निकार्यं समापयेत् ॥११६

तथा सर्वेषु कालेषु तथा सर्वाश्रमेषु च ।
गोदुग्धादि पवित्रं स्यात्सर्वकार्येषु सत्तमाः ॥११७
वनवासिषु सर्वेषु भिक्षां कुर्याद्वनाश्रमी ।
तदा सर्वं प्रकुर्वीत पितृदेवार्चनादिकम् ॥११८
अष्टौ भुञ्जीत वा ग्रासान् ग्रामादाहृत्य यत्नतः ।
वासनासंक्षयं गच्छेदनिलाश प्रागुदीचिकः ११६

विधाय विप्रो वनवासधर्मान् सर्वानिमानुक्तविधिक्रमेण ।
स शोध्य पापानि वपुर्विशोध्य ब्रह्माधिगच्छेत्परमं द्विजेन्द्राः ॥१२०

आश्रमत्रयधर्मान्वा चरित्वा प्राक् द्विजास्ततः ।
ह्यपरस्य वा तत पश्चाच्चतुर्थाश्रममाचरेत् ॥१२०
द्विजाग्रजो यदा पश्येत् वलीपलितमात्मनः ।
उपरामस्तथाक्षाणां क्षैण्यं कामस्य सद्द्विजाः ॥१२१
समीक्ष्य पुत्रं पौत्रं वा दृष्ट्वा वा दुहितुः सुतम् ।
अधीत्य विधिवद्वेदान् कृ वा यज्ञान्विधानतः ॥१२२
निश्चयं मनसः कृत्वा चतुर्थाश्रममाविशेत् ।
प्राजापत्यां विधायेष्टिं वनाद्वा सद्मनोऽपि वा ॥१२३
समस्तदक्षिणायुक्तान् सर्ववेदांस्ततश्च तान् ।
अग्नीनात्मनि चारोप्य दण्डान् विधिवदाहरेत् ॥१२४
किञ्चिद्वेदं समासाद्य तद्धर्मेण च वर्तयेत् ।
वाङ्मनःकायदण्डाश्च तथा सत्वादयो गुणाः ॥१२५
त्रयोऽपि नियता यस्य स त्रिदण्डीति कथ्यते ।
कमण्डल्वक्षमाला च भिक्षापात्रमथापरम् ॥१२६

कापायवासः कौपीनं कार्यार्थं यत्नमेव वा।
शिखा यज्ञोपवीतं च दण्डानां त्रितयं तथा ॥१२७
द्विकालं विधिवत्स्नानं भिक्षया चैकभोजनम्
शुद्धे कयृत्तिविप्रेषु सत्कर्मनिरतेषु च ॥१२८
भिक्षाचर्या यतेः प्रोक्ता व्रतचर्या तथैव च।
असम्भाषश्च शूद्रेण तथा च शिल्पि-कारुभिः ॥१२९
अवक्तृत्वं तथा स्त्रीभिः कृत्यमेतद्यतेः स्मृतम्।
न कदम्बकसंरोधो नित्यमेकान्तशीलता ॥१३०
सदैव प्राणसंरोधः सदैवाध्यात्मचिन्तनम्।
मृद्वेणु दार्वलाब्वश्ममयं पात्रं यते स्मृतम् ॥१३१
शुद्धिरद्भिरमीषां तु गोवालैश्चावघर्षणम्।
न दण्डैर्न च दण्डेन विना वा तेन वा तथा ॥१३२
मोक्षावाप्तिर्भवेत्पुंसां किंत्वस्याध्यात्मचिन्तनात्।
समत्वं सुख-दुःखेषु तथा विद्वेष-रागयोः ॥१३३
आत्मान्ययोः समानत्वमजस्रं चात्मचिन्तनम् ॥१३४
यतिभिस्त्रिभिरेकत्र द्वाभ्यां पञ्चभिरेव वा।
न स्थातव्यं कदाचित्स्यात्तिष्ठन्तो नाशमाप्नुयुः ॥१३५
बहुत्वं यत्र भिक्षूणां वार्तास्तत्र विचित्रकाः।
स्नेह-पैशून्य-मात्सर्यं भिक्षूणां नृपतेरपि ॥१३६
तस्मादेकान्तशीलेन भवितव्यं तपोर्थिना।
आत्माभ्यासरतश्चैव महाप्राप्त्यभिलाषुकः ॥१३७

त्रिदण्डग्रहणादेव यतित्वं नैव जायते।
अध्यात्मयोगयुक्तस्य ब्रह्मावाप्तिर्भवेत्तथा ।
जितेन्द्रियो हि दण्डार्हो युवा न स्यात्तथा सरुक् ॥१३८
युवा नीरुक् तथा भिक्षुरात्मवृद्धिप्रदूषकः ।
भिक्षुर्गेहे वसन्यत्र कामार्त्तोऽन्योऽभिगच्छति ॥१३९
तत्सद्मनार्थं वृद्धान्वै सह तेनैव पातयेत् ।
एकरात्रं तु निवसेद्भिक्षुर्यस्य गृहाङ्गणे ॥१४०
तस्य वै तारयेत्पूर्वान् विंशतिं पितृमातृतः ।
भिक्षुर्यस्यान्नभुक् ब्रह्मयोगाभ्यासरतो भवेत् ॥१४१
परिणामश्च योगेन कृतकृत्यो गृही भवेत् ।
निर्ममो निरहङ्कारः सर्वसहः प्रसन्नधी ॥१४२
ब्रह्मण्यात्मनि गोमायौ मुनौ म्लेच्छे च तुल्यदृक् ।
चिह्नानि धात्रा कथितानि धत्ते वर्तेत यो वै विहितेन भिक्षुः ।
योऽध्यात्मवेदी सततं जिताक्षः स ब्रह्मकाये गमनं करोति ॥१४३
वनस्थ-भिक्षुधर्मान्वै यानुवाच पराशरः ।
यथावदभिधायैतान् वक्ष्याम्याश्रमभेदकान् ॥१४४

इति वानप्रस्थभिक्षुधर्मवर्णनम् ।

॥ अथ चतुर्णामाश्रमाणाभेदवर्णनम् ॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि भेदमाश्रमसम्भवम् ।
ब्रह्मचर्यादिकानां तु याथातथ्यं निबोधत ॥१४५

चतुर्णामाश्रमाणां तु भेदो दृष्टो मनीषिभिः ।
प्रत्येकशो वदाम्येनं शृणुध्वं द्विजसत्तमाः ॥१४६
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ।
एतद्भेदान् प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं पापनाशनम् ॥१४७
चतुर्धा ब्रह्मचारी स्याद्गायत्रो वैधसस्तथा ।
प्राजापत्यो बृहन्चेति लक्षणानि पृथक् पृथक् ॥१४८
अक्षारलवणाशी स्यात् गायत्र्यभ्यासतत्परः ।
वर्तते भिक्षया नित्यं गायत्रोऽयं प्रकीर्तितः ॥१४६
चतुर्धा द्वादशाब्दानि योऽधीयानश्चतुश्रुतीः ।
भिक्षया ब्रह्मचर्येण तिष्ठेत् ब्राह्मः स उच्यते ॥१५०
गुरोर्वा गुरुपुत्रस्य तत्पत्न्या वापि सन्निधौ ।
यो वसेदभ्यसन् ज्ञानं ब्रह्मचारी स नैष्ठिकः ॥१५१
ऋतुकालाभिगामी सन् परस्त्रीं पर्व वर्जयेत् ।
वेदानध्येति भिक्षाभुक् प्राजापत्योऽयमुच्यते ॥१५२
गृहस्थस्तु चतुर्भेदो वार्ता-शालीनवृत्तिकौ ।
यायावरस्तथा चान्यो घोरसन्यासिकस्तथा ॥१५३
कृषि-गोरक्ष-वाणिज्यैः कुर्वन् सर्वाः क्रिया द्विजः ।
विहितैरात्मविधैश्च वार्तावृत्तिः स उच्यते ॥१५४
ददात्यध्येति यजते याजयेन्न च पाठयेत् ।
कुर्यात्कर्माप्रतिग्राही शालीनो ध्यानकृद्द्विजः ॥१५५
उक्तं मन् कारयेदन्यांक्रियां कुर्यात्प्रतिग्रहम् ।
पाठयेच्च तथात्मानं यायावरः स उच्यते ॥१५६

तिष्ठेदथ शिलोञ्छाभ्यामुद्धृताभिश्च उच्यते ।
आत्मवित्त्व क्रिया कुर्यात् घोरसंन्यासिक. स्मृत. ॥१५७
वानप्रस्थश्चतुर्भेदो वैखानस उदुम्बर ।
वालखिल्यो वनेवासी तल्लक्षणमथोच्यते ॥१५८
फलैर्मूलैरकृष्टान्नैरग्निमन् वने वसन् ।
कुर्यात्पञ्चमहायज्ञान् स वैखानस आत्मवित् ॥१५९
प्रातर्दृष्टदिगानीतैर्फलाकृष्टाशनेन्धनैः ।
उदुम्बरो मतो ज्ञानी पञ्चयज्ञाग्निकर्मकृत् ॥१६०
चतुर्थो न्यासकृदग्निकार्यं कुर्वन्वने वसन् ।
फलस्नेहैर्वनान्नैश्च बहुभि श्रुतिचोदितैः ॥१६१
उद्धृत्य परिपूताद्भिस्तथाऽयाचितवृत्तिक ।
फलैर्वन्यैर्धनान्नैश्च फेनप. पञ्चयज्ञकृत् ॥१६२
वनस्थो वालखिल्यो यो धत्ते वल्कलचीवरम् ।
अग्निकार्यकृदात्मन ऊर्जान्ते संचितं त्यजन् ॥१६३
चतुर्भेद परिव्राट् स्यात् कुटीचक-बहूदकौ ।
हंसा परमहंसाश्च वक्ष्यन्ते ते पृथक् पृथक् ॥१६४
पुत्रस्य भ्रातृपुत्रस्य भ्रातृ-दौहित्रयोरपि ।
तदुपान्तकुटीस्थो य. स भैक्ष्यवृत्तिभुक् द्विज ॥१६५
प्रतिचर्याकृत सोऽपि यो वास पूतवारिप ।
तथा त्रिदण्डभृत् शान्त आत्मज्ञ स कुटीचक ॥१६६
ज्ञेयो बहूदको नाम थ पवित्रितपादुक ।
शिरासनोपवीतानि धातुकाषायवस्त्रभृत् ॥१६७

आरम्भकाणि यान्येव तेषु यान्ति तदंशकाः।
आत्मा चान्यदवाप्नोति यातनीयं पुनर्वपुः ॥१९०
यः पश्येत् शृणुयाज्जिघ्रेत् स्वदेद्विद्यात्स्मरेद्वदेत्।
स्वप्याच्च जागृयाद्गच्छेद्विन्द्यात् गायेत् जपेत् पठेत् ॥१९१
गृह्णीयादर्पयेद्ध्यायेज्जायेत जनयेदपि।
सोऽस्ति कश्चित्परो देहाद्यो देहीति निगद्यते ॥१९२
नैकश्चेत्तस्यात्र देहेऽस्मिन् प्रत्यभिज्ञा कथं भवेत्।
एकदृक्-दृष्टिरूपस्य पुनरन्येन पश्यतः ॥१९३
अद्राक्षं यदहं वस्तु तदेवैतत्स्पृशाम्यथ।
यथाऽस्प्राक्षं च पश्यामि प्रतीतिर्यस्य जायते ॥१९४
दर्शन-स्पर्शनाभ्यां च ग्रहणादेकवस्तुनः।
अस्ति ह्यात्मा परो देहात्तथा देहास्ति कश्चन ॥१९५
गृही च गृहमध्यस्थो भग्नं किंचित्समाचरेत्।
देहे क्षतादिसंरोहात्ता देहास्ति कश्चन ॥१९६
ज्ञानयोगफलेनायं कर्मयोगफलेन च।
स एव भुज्यते कुर्वन् उद्देशो तस्य ताविति ॥१९
तार्यते कर्मणा चायं बध्यते कर्मणापि च।
उभयथापि नैवात्र प्रत्यक्षं दृश्यते द्विजाः ॥१९८
मायाविर्त्वं च मूकत्वमतिरिक्ताङ्गता क्रमात्।
अवाक्त्वं धान्यहर्तॄणां पैशून्ये पूतिनासिता ॥१९९
भक्तो वर्णकैश्चित्रैः स्वदेहं चित्रयेद्यथा।
कुर्वन्नानाविधं कर्म तथात्मा कर्मजास्तनूः ॥२००

जरायुजाण्डजादीनि वपूंषि योऽग्रहीन्निजैः ।
कर्मभिर्वर्णभेदैश्च चित्तदौर्गत्यरुग्युतः ॥२०१
बधिर-क्लीव-नि-स्वा-ऽन्धा जायन्ते पुरुषाधमाः ।
निरेनसः पुनर्भूत्वा विद्वद्भिप्रकुलेषु च ॥२०२
महाकुलेषु चान्येषु जायन्ते लक्षणान्विताः ।
धनवन्तः प्रजावन्तो विद्यावन्तो यशस्विनः ॥२०३
रूप-सौभाग्यसंयुक्ताः सर्वेषामुपकारकाः ।
ब्रह्माभ्यासरताः शान्ताः षट्कर्मनिरतास्तथा ॥२०४
पञ्चयज्ञकृतो नित्यमग्निष्टोमादिषु स्थिताः ।
द्विजोपास्तिकरा नित्यं गुर्वाचार्यादिपूजकाः ॥२०५
चतुराश्रमधर्माणां सेविनः समदर्शिनः ।
गुणैः सर्वैः समायुक्तास्तेजस्विनो जनप्रियाः ॥२०६
एवंभूताश्च ये विप्रास्तेषां विष्णुः सदान्तिके ।
विष्णुश्च सर्वदैवत्यस्तस्माद्विष्णुमना भवेत् ॥२०७
देवतार्चाकृतां नित्यं गुरूपास्तिकृतां तथा ।
ब्रह्मैवाभ्यसतां सम्यक् ब्रह्मसान्निध्यमिष्यते ॥२०८
उपास्यं तत्सदा ब्रह्म यावत्साधकतां व्रजेत् ।
ब्रह्माभ्यासाद्विदित्वा यत्संसरेन्नेह मानवः ॥२०९
वदन्ति ब्रह्मवेत्तारो ब्रह्माभ्यासमनेकशः ।
ब्रह्मापि द्विविधं धीमन्नपरं परमेव ॥२१०
समस्तं परमं ब्रह्म शब्दब्रह्मेति कीर्तितम् ।
प्रणवाख्यं त्र्यक्षरं तत्प्रागेव हि विशेषतः ॥२११

प्राणायामैस्तदभ्यस्य पूरकाद्यैश्च वायुभिः।
पूरक-कुम्भकौ वायू रेचकस्तु तृतीयकः ॥२१२
येन व्यावर्तते वायुर्नासाग्रान्निःसरेद्बहिः।
पूरयेत् श्वासयोगेन पूरकं तद्विदो विदुः ॥२१३
आपूर्य निश्चलीकृत्य यः कश्चिद्धार्यतेऽनिलः।
श्वासयोगं वदन्त्येनं कवयः कुम्भकं त्विति ॥२१४
ब्रह्मध्यानसमायुक्तं वायुं यो न बहिर्नयेत्।
कुम्भकः पवनः स स्याद्यो बहिर्नैव मुच्यते ॥२१५
रेचकं तद्विदुस्तज्ज्ञा रेच्यते यः शनैः शनैः।
न वेगाद्रेचयेद्वायुं सर्वथा विघ्नभाग् भवेत् ॥२१६
मोचयेन्मन्दमन्दं तु बहिः स्यात्कुम्भितो यथा।
नासाग्रस्थितपाणिस्तु सशिरश्चालनक्षमम् ॥२१७
अनिलं रेचयेद्योगी न मन्दं नातिवेगतः।
न ज्ञायतेऽनिलो यस्य निःसरन् नासिकाग्रतः ॥२१८
यस्यास्ते कुम्भितोऽजस्रं प्राणयोगी स उच्यते।
दीर्घायुस्त्वं परं ज्ञानं समत्वा योगसिद्धयः ॥२१९
देहे तस्याऽवतिष्ठन्ति प्राणो येन वशीकृतः।
यत्र तिष्ठति जीवःस्यान्निःसृतेमृत उच्यते ॥२२०
स किन्न धार्यते प्राणो ब्रह्मासिः सति यत्र तु।
प्राण एवायमात्मास्ते प्राणो देहस्य वाहकः ॥२२१
शरीरान्निःसृते प्राणे नात्मा विग्रहवाहकः।

देहं त्यक्त्वा यदा जीवो बहिराकाशमास्थितः ॥२२२
तदा निर्विषयो वायुर्भवेदत्र न संशयः ।
तदा स सर्वदेहेषु नासाग्रमास्थितः शिवः ॥२२३
प्रत्यक्षः सर्वभूतानां तिष्ठते न च लक्ष्यते ।
यदा न श्वसते वायुस्तदा निष्फलमुच्यते ॥२२४
नाभिसंस्थं तु विज्ञाय जन्मबन्धाद्विमुच्यते ।
देहस्थः सर्व सत्वानां स जीवति शृणोति च ॥२२५
धर्माधर्मैरयष्टब्धो देहे देहे व्यवस्थितः ।
स हृत्पंकजसंस्थस्तु अध ऊर्ध्वं प्रधावति ॥२२६
धर्माधर्मैर्महापाशैर्गृहीतः सन् प्रवर्तते ।
ऊर्ध्वमुच्छ्वसते यावत्प्राणाख्यस्तु समीरणः ॥२२७
तावत्प्राणस्तु विज्ञेयो यावन्नासाग्रमास्थितः ।
अग्रस्थं निष्कलं ब्रह्म यावन्न श्वसिति द्विज ॥२२८
श्वासेन हि समायोगादाकाशात्पुनरागतः ।
नासारन्ध्रसमालीनस्तदा निष्फलमुच्यते ॥२२६
स जीव इति विख्यातः स विष्णुः स महेश्वरः ।
ध्यातव्या देवतास्तत्र क्रमेण पूरकादिषु ॥२३०
विष्णुब्रह्मेश्वरास्तेषु स्थानेषु स्थानविद्द्विजैः ।
नीलपङ्कजवत् श्याममासीनं नाभिमध्यतः ॥२३१
महात्मानं चतुर्बाहुं पूरके तु हरिं स्मरेत् ।
हृत्पद्मे कुम्भके ध्यायेत् ब्रह्माणं पङ्कजासनम् ॥२३२
रक्तेन्दीवरवर्णाभं चतुर्वक्त्रं पितामहम् ।

रेचके शङ्करं ध्यायेल्ललाटस्थं त्रिशूलिनम् ॥२३३
शुद्धस्फटिकसङ्काशं संसारार्णवतारकम् ।
एवं श्वसनसंरोधाद्देवतात्रयचिन्तनात् ॥२३४
अग्नि वार्य्यंभसंयोगादन्तरं शुध्यते त्रिभि ।
निरोधादभवद्वायुस्तस्मादग्निस्ततो जलम् ॥२३५
इति त्रिदेवतायोगात् शुद्धयन्तेऽन्तः पुनर्द्विजाः ।
व्याहृतिप्रणवोपेताः प्राणायामास्तु षोडश ॥२३६
अपि भ्रूणहनं मासात्पुनन्त्यहरहः कृताः ।
प्रातरह्नि च सायं च पूरकं ब्रह्मणोऽन्तिकम् ॥२३७
रेचकेन तृतीयेन प्राप्नुयात्परमं पदम् ।
न प्राणेनाप्यपानेन वायुं वेगेन रेचयेत् ॥२३८
प्रागुक्तेन प्रयोगेण मोचयेत्प्राणसंयमी ।
शरीरं च शिरोग्रीवा विद्वान् प्राणी च पद्द्वयम् ॥२३९
सर्वाङ्गं निश्चलं धार्यमापूर्यसर्वनाडिका. ।
संवृत्याङ्गानि सर्वाणि कूर्मवध्यानकृद् द्विजः ॥२४०
यद्वासनतोऽचलाङ्गस्तु कुर्यादसुनिरोधनम् ।
इत्थं सुसंयमं विद्वान्विधिवत्समुपस्पृशेत् ॥२४१
अन्तरं शुध्यते यस्मात्तस्मादाचमनं स्मृतम् ।
इत्युक्तः प्राणसंरोधो देवतात्रयसंयुत. ॥२४२
त्रिमात्र प्रणवस्तत्र ध्यातव्य. सर्वयोगिभि ।
स्मर्यमाणस्य यानस्य विश्रान्ति स्यादमातृके ॥२४३
तत्परं निष्फलं ध्यानं तद्विदुर्ब्रह्मचिन्तकाः ।

मृदुमध्यान्तसत्वाच स्थूलसूक्ष्मानुभावत. ॥२४४
त्रिविधं प्राणसंरोधं विदुस्तत्त्ववेदिनः।
क्रियमाणो विशेषेण प्रत्याहारोऽयमुच्यते ॥२४५
सर्वं प्रागुक्तमेवास्य विशेषं च निबोधत ।
बाह्यं वायुं यथोत्थाय आकृष्य यच्छनैः शनैः ॥२४६
निरुन्ध्याद्विधिवद्योगी प्रत्याहारः स उच्यते।
व्याहृत्याऽभिमुखीकृत्य खानि यत्र निरुध्य च ॥२४७
चिन्तयेन्निश्चलीकृत्य प्रत्याहारः स उच्यते।
प्राणाद्या वायवः स्थूलाः सङ्कल्पाद्यास्तथाऽणवः ॥२४८
निरोद्धव्या दशाप्येते प्राणसंयमकारिभिः ।
वायुरेकोऽपि देहस्थः क्रियाभेदेन भिद्यते ॥२४९
प्रकर्पणासमन्ताच नयनादिक्रियाः स्मृताः ।
भविष्या-ऽतीतकालेभ्यः कर्मभ्यश्चाशुसंयमी ॥२५०
सर्वानिलास्तथा खानि निरुन्ध्यैकत्र धारयेत्।
स धीमान्वेदविद्विद्वान् स योगी ब्रह्मवित्तमः ॥२५१
स्थानं द्विजन्मा विधिवत्त्वजस्रमभ्यस्य संयाति विधेःपरस्य।
पराशरोक्तैर्बहुभि प्रकारैरुक्तो विधिः प्राणनिरोधनस्य ॥२५२
प्रत्याहारो विशेषस्तु प्रोक्तस्तस्यैव वित्तमाः ।
यदभ्यस्याप्नुयाद्ब्रह्म सर्वदानंदमव्ययम् ॥२५३
यतस्तु पुनरावृत्तिः कदाचिदिह दृश्यते।
संसृतिं नाप्नुयायेन शक्तिमुनुमद्ब्रवीत् ॥२५४

उक्तस्तु संयमः पूर्वं त्रिविधो मलनाशनः।
निबोधत चतुर्थं तु ध्यानं प्रणववेधसः ॥२५५
विधिवत्प्रणवध्यानमेकचित्तस्तु योऽभ्यसेत्।
ब्रह्माभ्येति स मुक्तात्मा स योगी योगिनां वरः ॥२५६
तद्ध्यानमसुसंरोधस्तुयं सम्यगिहोच्यते।
तदन्यथानपेक्षं च चित्तक्षेपविवर्जितम् ॥२५७
चतुर्णामाश्रमाणां तु भेदमुक्त्वा पराशरः।
अथाब्रवीद्द्विजा योगं शृणुध्वं पापनाशनम् ॥२५८
तच्छान्तं निर्मलं शुद्धं ध्यातव्यं हृत्सरोरुहे।
तद्धेयं तद्वरेण्यं च बीजं मुक्तेरतदुच्यते ॥२५९
सश्चिरय व्याहृतीः सप्त प्रणवाद्यास्तदन्तकाः।
सम्यगुक्तमिदं ध्यात्वा परब्रह्मणि योजयेत् ॥२६०
हुतभुक् पवनो जीवस्त्रयोऽप्येते हृदि स्थिताः।
एतत्सर्वं तु चैकत्र संस्मरेत् ध्यानकृद्द्विजः ॥२६१
ॐकारवर्मनालेन ब्दूधृत्योपरि योजयेत्।
योजयेत्तद्धमप्येवत्सिद्धयोगी स उच्यते ॥२६२
शून्यभूतस्तु यत्प्राणः श्वासं जीवेति संज्ञितम्।
यस्मादुत्पद्यते श्वासः पुनस्तत्र निवेशयेत् ॥२६३
आद्यं तं प्रणवं विद्वान् घटाकाशवदभ्यसेत्।
स पश्येन्निर्मलं शुद्धं पुरुषं तमसंशयम् ॥२६४
अन्तर्वक्रो बहिः (सम्यक्) सर्पन् सर्पवत्कुण्डलाकृतिः।

ध्यातव्यः प्रणवस्तत्र मध्यगं धाम संस्मरेत् ॥२६५
स मात्रा स च विन्दुश्च तदेव परमं पदम् ।
तदभ्यस्यं हि तज्ज्ञात्वा स तस्मिन्नेव लीयते ॥२६६
प्रथमं प्रणवो ऽव्यक्त स्त्यक्षरः परमाक्षरः ।
सर्वज्ञत्वमवाप्नोति प्राप्नोति परमं पदम् ॥२६७
पश्चमं तु पदं विद्वान् तत्तार्थमयतिष्ठते ।
नादविन्दुसमभ्यासात् प्राप्नुयात्परमं पदम् ॥२६८
पदं प्राप्य निवर्तन्ते धाम स्वं स्वान्तमेव च ।
सर्वेऽप्यमातृका वर्णाः पुनस्तत्र विशन्ति च ॥२६९
वर्णात्मा सप्तवर्णस्तु समस्तवर्णजीवनम् ।
न दीर्घं नापि ह्रस्वं च न घोषं नाप्यघोषवत् ॥२७०
न विसर्गं न तद्धीनं नानुस्वारविपर्ययः ।
हृदाकाशनिविष्टं यदचलत्वं प्रयाति चेत् ॥२७१
ज्ञानयोगे त्रिवर्णैर्वै विश्रतीत्यक्षराणि तु ।
तत्पदं योगिभिर्ध्येयं व्योम यस्य तु मध्यगम् ॥२७२
व्योमान्तं सततं ध्येयमनंताकाशमव्ययम् ।
चिन्तयामो वयं यद्वै धियो यो नः प्रचोदयात् ॥२७३
एतद्ब्रह्म त्रयीरूपमेतद्भर्गस्त्रयीमयम् ।
एषा सा परमा मुक्तिर्गत्वा यां न निवर्तते ॥२७४

आदाय चापं प्रणवं च बाणं सन्धाय चात्मानमनेन लक्ष्यम् ।
स तद्विधि तत्र निवेश्य योगी प्राप्नोति नित्यं स तु मुक्तिकामः ॥२७५

उद्देशतः किंचिदवादि विद्वन् ध्यानं विधेर्यत्प्रणिपूर्वकस्य ।
सर्वं विधानं विधिवच्च सम्यक् वक्तुं समर्थो विधिरेव चास्य ॥२७६

इति प्रणवध्यानविधिवर्णनम् ।

## अथ ध्यानयोगवर्णनम् ।

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि विधानं ध्यानकर्मणाम् ।
नानामतोदितं कार्यं परब्रह्माभिकारकम् ॥२७७
कर्मात्मकस्त्विह प्रोक्तः कः परात्मा परं च किम् ।
वक्ष्यमाणमिदं विप्राः शृणुध्वं भक्तितत्पराः ॥२७८
स्वीयेन कर्मणा येषां शरीरग्रहणं भवेत् ।
कर्मात्मानस्त उच्यन्ते निर्गता परमात्मनः ॥२७६
यं न स्पृशन्ति दुःखाद्यास्तथा सत्वादयो गुणाः ।
कादाचित्कं न कर्मास्ति परमात्मा ततः परम् ॥२८०
निद्रा-नाशौ न विद्येते गुणा यं न स्पृशन्ति हि ।
अजःसन् कथमेतस्मिल्लोके जातोऽभिधीयते ॥२८१
स्वात्मानमेव चात्मानं वेष्टयेत्कोशकारवत् ।
कर्मणैव प्रजातस्तु बाह्यस्वार्थविमोहितः ॥२८२
तस्माद्विवर्जयेत्कर्म स्वर्गादेरपि साधकम् ।
संसरेत्स्वर्गतः कर्मक्षये स तु पुनर्यतः ॥२८३
सीमैषा परमा विद्वन् ब्रह्मणः पात-मोक्षयोः ।
कर्मस्थानमियं धात्री कृतमत्रोपभुज्यते ॥२८४

वैदिकः कर्मयोगश्च द्विवोऽस्यावर्तकः स तु ।
येनेहावृत्तिकृत्तं च ज्ञानयोगमतोऽभ्यसेत् ॥२८५
हृदि निःसृतनाडीना सहस्राणा द्विसप्ततिः ।
तन्मध्यावस्थितं तेजः शशिप्रभं विभाति यत् ॥२८६
तन्मध्यमण्डले ह्यात्मा निर्धूमाचलदीपवत् ।
स ज्ञातव्यो निदिध्या तं संसरेन्न पुनर्यतः ॥२८७
पुटीभूतमधोवक्त्रं तद्दृत्पद्मं व्यवस्थितम् ।
नाभ्युत्थोदानवातेन कृतोर्ध्वास्यं विकासयेत् ॥२८८
विकास्य तस्य मध्यस्थमचलं दीपशिखेव तत् ।
तदूर्ध्वं निःसरच्छुभ्रं सूक्ष्मं तत्तु विचिन्तयेत् ॥२८९
ललनाद्वारनिर्गच्छन्योगी मूर्ध्नि तु चिन्तयेत् ।
तावत्तु चिन्तयेद्यावन्निरालम्बस्त्वमृच्छति ॥२९०
निरालम्बं यदा ध्यानं कुर्वाणो निश्चलो भवेत् ।
तदा तदुच्यते ब्रह्म स योगी ब्रह्मवित्तमः ॥२९१
तत्पदं च पदातीतं तत्प्राप्तो मुक्त उच्यते ।
इति ध्यानं विधातव्यं मुक्तिकृत्सद्भिर्द्विजैर्द्विजाः ॥२९२
भूतानामात्मभूतस्य तानि सम्यक् प्रपश्यतः ।
विमुह्यन्त्यमरा मार्गे पदं किमपदस्य तु ॥२९३
यो न तिष्ठति नो याति न किंचित्सर्व एव यः ।
अवाच्यो वाङ्मयो यश्च सकलश्रुतिरश्रुतिः ॥२९४
योऽप्यन्तिके दवीयांश्च योऽस्ति नास्ति स्वरूपकः ।
यस्य तत्त्वस्य संवित्तिः स तस्मिन्नेव लीयते ॥२९५

यस्तु सर्वाणि भूतानि पश्यत्यात्मगतानि तु ।
आत्मानं तेषु सर्वेषु ततो यो न विरज्यते ॥२९६
सर्वभूतात्मभूतात्मा यत्र पश्यति धीमतिः ।
शोक-मोहौ च किं तस्य ह्येकत्वमनुपश्यतः ॥२९७
समाम्नावुत्तमादिर्यन्मन्त्र-ब्राह्मणयोर्द्विजाः ।
ॐ खं ब्रह्मेति चाम्नायो दर्शकस्तस्य वेधसः ॥२९८
आत्मज्ञाने बहूपाया उक्तास्तद्धि मनीषिभिः ।
तैस्तैः सर्वैः स मन्तव्यो ज्ञातव्यश्चोपदेशतः ॥२९९
न वेदैर्गम्यता तस्य न शास्त्रैर्बहुभिः श्रुतैः ।
न यज्ञैर्न जपैर्होमैः शौचैर्वाप्रितयापि च ॥३००
गुरूपदेशतो भक्त्या सम्यगभ्यासतस्तथा ।
ज्ञातव्यः परमात्मैवं भक्तिश्रुतत्परेण च ॥३०१
ध्यानज्ञानस्य तद्भक्तेर्यत्र विश्रमते मनः ।
तदेवोपादिशेत्तस्य वस्तु ज्ञानोपदेशकम् ॥३०२
मनो यस्य निषण्णं तु जायते यत्र वस्तुनि ।
स तु ध्यायेत्तदेवेति यावत्स्यात्ध्यानसन्ततिः ॥३०३
तत्र ध्याने तु संलग्ने ह्यथात्मनि वा पुनः ।
ध्यानं योजयते योगी तं निरालम्बतां नयेत् ॥३०४
योगशास्त्रेषु यत्प्रोक्तं रहस्यारण्यकेषु च ।
तत्तथोपदिशेद्ध्यानं ध्यायेदपि तथैव च ॥३०५
प्रवदन्त्यन्यथा केचित् शुभादिभेदतत्त्वतः ।
त्रैविध्यं विदुषो विद्वन् सिद्धिदं च परापरम् ॥३०६

चित्तजं श्रुतिजं भावं भावनाभवमेव च ।
अविघ्नमात्मना सिध्येद्योगाभ्यासफलप्रदम् ॥३०७
आत्मशक्तिः शिवश्चेति चैतन्यमिति संज्ञिनम् ।
उत्तरोत्तरवैशिष्ट्याद्योगाभ्यासः प्रवर्तते ॥३०८
स एको निश्चलीभूतकर्मात्मा यमुपार्जितः ।
न बिभेति स एकाकी परेषां जायते भयम् ॥३०९
तदेवं गतिभिन्नद्धाध्यानं यस्यास्ति योगिनः ।
स विरोत्तमजं शान्तं कदाचित्संसरेन्न तु ॥३१०
ध्यम्बकश्च चतुर्वक्त्रश्चतुर्बाहुः परेश्वरः ।
एक एव महेशो वै तज्ज्ञैस्त्रिधेति कीर्त्यते ॥३११
नाभिमध्यस्थितं विद्धि वस्तु विद्वन् सुनिर्मलम् ।
रविवद् भ्राजमानं तु काशद्रश्मिगणैर्द्विज ॥३१२
चिन्तयेन् हृदि मध्यस्थं दीप्तिमत्सूर्यमण्डलम् ।
तस्य मध्यगतः सोमो वह्निश्चन्द्रशिखो महान् ॥३१३
तन्मध्ये तु परं सूक्ष्मं तद्ध्यायेद्योगमात्मनः ।
तन्मध्ये चिन्तयेदेतद्वक्ष्यमाणक्रमेण तु ॥३१४
बिन्दुमध्यगतो नादो नादमध्यगतो ध्वनिः ।
ध्वनिमध्यगतास्तारस्तारमध्यगतोंऽशुमान् ॥३१५
सत्यमध्यगतं ब्रह्म शान्तं तस्य तु मध्यगम् ।
परं पदं तु यच्छान्तं सम्यग्व्याहृत्य योजयेत् ॥३१६
जीवात्मा कायमध्यस्थस्तत्रापि देहवर्जितः ।
वक्त्र-नासापुटस्थस्तु भुञ्जीत विषयान् प्रभु ॥३१७

इत्येतद्ध्यानमार्गं तु वदन्ति कवयो द्विजाः ।
केचिदन्येऽन्यथा ब्रूयु रूपं ब्रह्मविदो विधेः ॥३१८
न नामापि हि दु खस्य शर्म यत्र निरन्तरम् ।
ब्रह्मणो रूपमानन्दं तन्मुक्तावुपलभ्यते ॥३१९
सर्वव्यापी य एवस्तु यश्चानन्तश्च भावुकः ।
स मन्तव्योऽजरो ह्यात्मा सर्वं व्याप्य च यः स्थित ॥३२०
एकं व्योम यथानैकं गृहाद्यैरुपलक्ष्यते ।
एको ह्यात्मा तथानेको जलागारेषु सूर्यवत् ॥३२१
विश्वरूपो मणिर्यद्वत् वर्णान् गृह्णात्यनेकशः ।
उपाधितस्तथात्मैको नानादेहेषु कर्मतः ॥३२२
कलाकाष्ठादिरूपेण वर्तमानादिभेदकृत् ।
एक कालो यथा नाना तथात्मैकोऽप्यनेकधा ॥३२३
देहमध्यस्थितं देवं यो न ध्यायति मूढधीः ।
सोऽङ्कलभ्यं मधु त्यक्त्वा क्लेशायाशो गिरिं व्रजेत् ॥३२४
यस्तीर्थयानं जप-यज्ञ-होमान् कुर्याद्धपुण्यान् न च वेत्ति विष्णुम् ।
स मांसपिण्डं परिहृत्य दूरादक्ष प्रधावेदधिरह्य वृन्नम् ॥३२५
सम्भ्राम्यते विधिवशात्करणोग्रचक्रे
पापेन कुम्भ इव धातृवरेण नूनम् ।
आरोप्य स्वार्थधृतदण्डमुखेन पूर्ण
रुपश्रसंस्थशिवतत्वमतिप्रहीण ॥३२६
द्वौ मार्गावात्मनो ज्ञेयौ ब्राह्मणब्रह्मचिन्तके ।
अभियाति विदित्वा यो सायुज्यं परवेधस. ॥३२७

विद्वान् धूमादिरेको वै द्वितीयस्त्वर्चिरादिकः ।
प्रत्येतव्यौ प्रयत्नेन यस्मवीत्तिर्न जायते ॥३२८
धूपः क्षपाऽसितः पक्षो दक्षिणायनमेव च ।
लोकःपित्र्यश्च सोमश्च मातरिश्वानुकर्षणम् ॥३२९
यथा धातृक्रमादेते सम्भवन्ति समाश्रिताः ।
अर्चिर्दिनं सितः पक्षस्तथा चैवोत्तरायणम् ॥३३०
देवलोकस्तथा सूर्यो विद्युतश्च क्रमाद्गिमान् ।
मानसाः पुरुषा यान्ति जानन्तो ब्रह्मलोकताम् ॥३३१
यत्र याता. पुनर्नेह संसरन्ति द्विजाः क्वचित ।
मार्गद्वयमिदं धीमन्मन्तव्यं सततं द्विजै ॥३३२
ज्ञानेन येन विज्ञातुर्ज्ञान-मोक्षौ च सिध्यत ।
गृहारण्यस्थ-भिक्षूणां त्रयाणामपि धीमताम् ॥३३३
ज्ञानमभ्यस्यमानं तु तथा दहति संसृतिम् ।
ज्ञानं समानमेतद्ध इति ब्रह्मविदो विदुः ॥३३४
यथा दहति चैधांसि समिद्धश्चाशुशुक्षणिः ।
तस्मान्मार्गद्वयेनापि आत्मा ज्ञेयो द्विजोत्तमैः ॥३३५
ये न जानन्ति ते यान्ति दन्दशूकादियोनिषु ।
यत्र गत्वा कृमित्वं वा कीटत्वमथ वाऽऽप्नुयुः ॥३३६
एताभ्योऽप्यधमास्वेव जायन्ते ते कुयोनिषु ।
विद्याविद्ये च मन्तव्ये ते हेतू स्वर्ग-मोक्षयोः ॥३३७
विद्या मोक्षप्रदा च स्यादविद्या मृत्युजन्मकृत् ।
ज्ञानयोगस्तथा कर्म विद्याविद्ये स्मृते बुधैः ॥३३८

अपवर्गाय द्वे चापि कर्म कृत्वा निवेदयेत् ।
कर्मापि क्रियमाणं वै निरपेक्ष तु मोक्षकृत् ॥३३९
विष्णवे गुरवे वापि कर्म कृत्वा निवेदयेत् ।
आत्मनः फलमिच्छंस्तु यत्कर्म कुरुते नरः ॥३४०
तेनैव वाञ्छितप्राप्तिस्तेनान्यद्वोपजायते ।
हरिर्वा नित्यमभ्यस्य सर्वभावेन सद्विजैः ॥३४१
तदभ्यासादवाप्नोति मृत्यौ दृष्टे हरिस्मृतिम् ।
एक एव हि स ध्येयो यत्परं नास्ति किञ्चन ॥३४२
विराट् सम्राट् महानेष सदा ध्येयो जितेन्द्रियैः ।
महान्तं पुरुषं देवं रविरूपं तमः परम् ॥३४३
ब्रह्मवित्सोऽतिमृत्युं वै प्रयात्येवानिवर्तकम् ।
एष एव नृणां पन्था ब्रह्मा वै यमुपासते ॥३४४
ये ये जन्मसवनेषु विधिवच्चैकचेतसः ।
न भक्त्या नापि योगेन नाभ्यासेनैकजन्मना ॥३४५
ब्रह्मप्राप्तिर्जायते पुंसां किन्तु स्याद्भूरिजन्मभिः ।
यद्देवा सन्तताभ्यासाद्ब्रह्म प्रतिपेदिरे ॥३४६
तन्मनुष्यैः कथं प्राप्यमेकेनैव च जन्मना ।
ज्ञानाभ्यासैर्न तद्ब्रह्म कृतैर्दंभस्वरूपकैः ॥३४७
न प्राप्यते परं ब्रह्म न वाप्यासनमुद्रया ।
बहुभिः किमुपायैस्तु प्रोक्तैर्वा ग्रन्थविस्तरैः ॥३४८
एकमेवाभ्यसेत्तत्त्वं येन चित्तं वसेद्धरिः ।

एकैव भावशुद्धिस्तु यथा स्यात्क्रियते तथा ॥३४६

अन्यत्कुर्यात्मनस्यन्यद्विरुद्धमिति सर्वथा।
भाव स्वर्गाय मोक्षाय नरकायापि स स्मृत ॥३५०

तस्मात्त शोधयेद्यभान्छुचि स्याद्भावशुद्धित ।
एकस्या पुत्र भर्त्तारौ हृदयोपरि योषित ॥३५१

भिन्नभावौ भवेता तौ भावमेव विशोधयेत्।
परिष्वक्तो नरो नार्या ह्लादमेति यथा युवा ॥३५२

तत्पश्योऽपि सकामो तां भावहीनो न कामयेत्।
एको भावो हरौ कार्यो यथाऽसौ निश्चलो भवेत् ॥३५३

तद्बुध्या पश्यता गच्छन् स्वर्गं मोक्षमवाप्नुयात्।
त्यक्तग्रामि विनिधान् भोगान् तपस्तप्त्वातिदुष्करम् ॥३५४

मृत्युकाले मतिर्या स्यात्ता गतिं याति मानव ॥

योगप्रयोग कथित समासात्व्यानस्य मार्गो बहुधाऽप्यथापि ।
योऽभ्यस्यमानस्तु भवेद्विधानात् महामितिक्रुधश्च वथा द्विजानाम् ॥३५५

प्रत्याहृतश्च योगश्च ध्यान विस्तरतस्तथा।
उक्त द्विजहितार्थाय महावानिकर तथा ॥३५६

अङ्गुल्यङ्गुष्ठयोर्नाद क्षण स्यात्तद्द्वय त्रुटि ।
द्वाभ्यां चैव लवस्ताभ्यां निमेषोऽपि लवद्वयम् ॥३५७

तै पञ्चदशभि काष्ठा ताश्च त्रिंशत्कला स्मृता।
द्वाविंशतित्रिभागस्तु घटिकेति प्रकीर्तित ॥३५८

तद्द्वय च मुहूर्त स्यात्तत्त्रिंशत्तु क्षपा दिनम्।
तत्पञ्चदशक पक्षस्तद्द्वय मास उच्यते ॥३५९

तद्द्वयं ऋतुरित्युक्तं तद्द्वयं काल उच्यते।
तत्सार्धमयनं प्रोक्तं तद्द्वयं वत्सरस्तथा ॥३६०
पञ्चभिस्तैर्युगं प्रोक्तं तद्द्वादशकपष्टिकम्।
पष्टिकःपष्टिगुणितो वाक्पतेर्युगमुच्यते ॥३६१
तद्द्वयं तु कलिःप्रोक्तस्तद्द्वयं द्वापरो भवेत्।
कलित्रयेण त्रेता स्यात्कृत'कलिचतुष्टयम् ॥३६२
पष्टिन्न सोऽपि कालज्ञैःप्रजानाथयुगः स्मृतः ॥३६३
कलिभिर्दशभिर्ब्रह्मन्! चतुर्युगमिति स्मृतम्।
चतुर्युगसहस्रेण ब्रह्माहःकल्प उच्यते ॥३६४
अष्टयुगा भवेत्सन्ध्या सायंसन्ध्या च तावती।
तदेकसप्ततिगुणं मन्वन्तरमिति स्मृतम् ॥३६५
मन्वन्तरद्वयेनेह शक्रपातः प्रकीर्तितः।
एतन्मानेन वर्षाणां शतं ब्रह्मक्षयः स्मृतः ॥३६६
ब्रह्मक्षयशतेनापि विष्णोरेकमहर्भवेत्।
एतद्दिवसमानेन शतवर्षेण तत्क्षयः ॥३६७
तत्क्षयस्त्रिगुणोष्टाभी रुद्रस्य त्रुटिरुच्यते।
एवमाह्निकमानेन प्रयातोऽब्दशते द्विजाः।
रुद्रश्चात्मनि लीयेत निष्कलंकं निरामयम् ॥३६८
निष्प्रकम्पं जगत् व्योम व्योमातीतं परं पदम्।
तन्निदिध्यासुसंबुध्या स तत्रैव विलीयते ॥३६९
परम्पराणा परमं विचिन्त्य परात्परं दिष्टपदादतीतम्।
क्षणादिकालं क्रमशोऽब्दमेव प्रयाति तं तत्पदमव्ययं च ॥३७०

नमात्सरूपं परमव्ययं च विश्वेश्वरं चित्तमरं प्रपद्ये ।
शान्तिं च गत्वा विधिना च योगी प्रयाति तद्धै पदमव्ययं च ॥३७१
कालज्ञानेन योगोऽयं योगिभिर्ध्यानकारिभिः ।
मुमुक्षुभिःसदा ज्ञेयं निरालम्बं परं पदम् ॥३७२
पराशरोदितं शास्त्रं चतुर्वर्णाश्रमाय च ।
वेदितव्यं प्रयत्नेन सदा ध्येयं द्विजातिभिः ॥३७३
दश द्वादश चाष्टौ वा सप्त षट् पंच वा त्रयः ।
दैविके पैतृके वापि श्लोकाः श्राव्या द्विजातिभिः ॥३७४
श्रावयिष्यति यः श्राद्धे ब्राह्मणान्भक्तितत्परः ।
प्रारयन्ति पितरस्तस्य तृप्तिं वै शाश्वतीं द्विजाः ॥३७५
य इदं शृणुयाद्वापि श्रावयेत्पाठयेदपि ।
स प्रध्वस्ततमस्तोमो ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥३७६
त्रिभिःश्लोकसहस्रैस्तु त्रिभिर्वृत्तशतैरपि ।
पराशरोदितं धर्मशास्त्रं प्रोवाच सुव्रतः ॥३७७
नमोऽस्तु याज्ञवल्क्याय मनवे विष्णवे नमः ।
गौतमाय वसिष्ठाय नमः पाराशराय च ॥३७८

इति श्री बृहत्पाराशरे धर्मशास्त्रे सुव्रतप्रोक्तायां स्मृत्यां योगनिरूपणो नाम द्वादशोऽध्यायः ।

॥ इति बृहत्पराशरस्मृतिः समाप्ता ॥

ॐ तत्सत्



॥ अथ ॥

# —॥ लघुहारीतस्मृतिः ॥—

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ वर्णाश्रमधर्मवर्णनम्।

ये वर्णाश्रमधर्मस्थास्ते भक्ताः केशवं प्रति ।
इतिपर्वं त्वया प्रोक्तं भूर्भुवःस्वर्द्विजोत्तमाः ॥१
वर्णानामाश्रमाणाञ्च धर्मान्नो ब्रूहि सत्तम ! ।
येन सन्तुष्यते देवो नारसिंहः सनातनः ॥२
अत्राहं कथयिष्यामि पुरावृत्तमनुत्तमम् ।
ऋषिभिः सह संवादं हारीतस्य महात्मनः ॥३
हारीतं सर्वधर्मज्ञमासीनमिव पावकम् ।
प्रणिपत्याब्रुवन् सर्वे मुनयो धर्मकाङ्क्षिणः ॥४
भगवन् ! सर्वधर्मज्ञ ! सर्वधर्मप्रवर्त्तक ! ।
वर्णानामाश्रमाणाञ्च धर्मान्नो ब्रूहि भार्गव ! ॥५
समासाद्योगशास्त्रञ्च विष्णुभक्तिकरं परम् ।
एतच्चान्यच्च भगवन् ! ब्रूहि नः परमो गुरुः ॥६

हारीतस्तानुवाचाथ तैरेवं चोदितो मुनिः।
शृण्वन्तु मुनयः! सर्वे! धर्मान् वक्ष्यामि शाश्वतान् ॥७
वर्णानामाश्रमाणाञ्च योगशास्त्रञ्च सत्तमाः!।
सन्धार्य्य मुच्यते मर्त्यो जन्मसंसारबन्धनात् ॥८
पुरा देवो जगत्स्रष्टा परमात्मा जलोपरि।
सुष्वाप भोगिपर्यङ्के शयने तु श्रिया सह ॥६
तस्य सुप्तस्य नाभौ तु महत् पद्ममभूत् किल।
पद्ममध्येऽभवद् ब्रह्मा वेदवेदाङ्गभूषणः ॥१०
स चोक्तो देवदेवेन जगत्सृज पुनः पुनः।
सोऽपि सृष्ट्वा जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥११
यज्ञसिद्धयर्थमनघान् ब्राह्मणान्मुखतोऽसृजत्।
असृजत् क्षत्रियान् बाह्वो वैश्यानप्युरुदेशतः ॥१२
शूद्रांश्च पादयोः सृष्ट्वा तेषाञ्चैवानुपूर्वशः।
यथा प्रोवाच भगवान् ब्रह्मयोनिं पितामहः ॥१३
तद्वचः संप्रवक्ष्यामि शृणुत द्विजसत्तमाः!।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं मोक्षफलप्रदम् ॥१४
ब्राह्मण्यां ब्राह्मणेनैवमुत्पन्नो ब्राह्मणः स्मृतः।
तस्य धर्मं प्रवक्ष्यामि तद्योग्यं देशमेव च ॥१५
कृष्णसारो मृगो यत्र स्वभावेन प्रवर्त्तते।
तस्मिन्देशे वसेद्धर्मः सिद्धयति द्विजसत्तमाः! ॥१६
षट् कर्माणि निजान्याहुर्ब्राह्मणस्य महात्मनः।
तैरेव सततं यस्तु वर्त्तयेत् सुखमेधते ॥१७

अध्यापनं चाध्ययनं याजनं यजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चेति षट् कर्माणीति चोच्यते ॥१८
अध्यापनञ्च त्रिविधं धर्मार्थमृक्थकारणात्।
शुश्रूषाकरणञ्चेति त्रिविधं परिकीर्त्तितम् ॥१९
एषामन्यतमाभावे वृथाचारो भवेद्द्विजः।
तत्र विद्या न दातव्या पुरुषेण हितैषिणा ॥२०
योग्यानध्यापयेच्छिष्यानयोग्यानपि वर्जयेत्।
विदितान् प्रतिगृह्णीयाद्गृहे धर्मप्रसिद्धये ॥२१
वेदञ्चैवाभ्यसेन्नित्यं शुचौ देशे समाहितः।
धर्मशास्त्रं तथा पाठ्यं ब्राह्मणैः शुद्धमानसैः ॥२२
वेदवित्पठितव्यं च श्रोतव्यञ्च दिवा निशि।
स्मृतिहीनाय विप्राय श्रुतिहीने तथैव च।
दानं भोजनमन्यच्च दत्तं कुलविनाशनम् ॥२३
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन धर्मशास्त्रं पठेद्द्विजः।
श्रुतिस्मृती च विप्राणां चक्षुषी देवनिर्मिते।
काणस्तत्रैकया हीनो द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्त्तितः ॥२४
गुरुशुश्रूषणञ्चैव यथान्यायमतन्द्रितः।
सायं प्रातरुपासीत विवाहाग्निं द्विजोत्तमः ! ॥२५
सुस्नातस्तु प्रकुर्वीत वैश्वदेवं दिने दिने।
अतिथीनागताञ्छक्त्या पूजयेदविचारतः ॥२६
अन्यानभ्यागतान् विप्राः ! पूजयेच्छक्तितो गृही।
स्वदारनिरतो नित्यं परदारविवर्जितः ॥२७

कृतहोमस्तु भुञ्जीत सायं प्रातरुदारधीः ।
सत्यवादी जितक्रोधो नाधर्मे वर्त्तयेन्मतिम् ॥२८
स्वकर्मणि च संप्राप्ते प्रमादान्न निवर्त्तते ।
सत्यां हिता वदेद्वाचं परलोकहितैषिणीम् ॥२९
एष धर्मः समुद्दिष्टो ब्राह्मणस्य समासत ।
धर्ममेव हि य· कुर्यात् स याति ब्रह्मणः पदम् ॥३०
इत्येष धर्म. कथितो मयायं पृष्टो भवद्भिस्त्वखिलाघहारी ।
वदामि राज्ञामपि चैव धर्मान् पृथक् पृथग्बोधत विप्रवर्य्याः ॥३१

इति हारीते धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ।

—※ ※—

## द्वितीयोऽध्यायः ।

### अथ चतुर्वर्णानां धर्मवर्णनम् ।

क्षत्रादीनां प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ।
येषु प्रवृत्ता विधिना सर्वे यान्ति परां गतिम् ॥१
राज्यस्थः क्षत्रियश्चापि प्रजाधर्मेण पालयन् ।
कुर्यादध्ययनं सम्यग्यजेद्यज्ञान् यथाविधि ॥२
दद्याद्दानं द्विजातिभ्यो धर्मबुद्धिसमन्वितः ।
स्वभार्य्यानिरतो नित्यं षड्भागार्हः सदा नृपः ॥३
नीतिशास्त्रार्थकुशलः सन्धिविग्रहतत्त्ववित् ।
देवब्राह्मणभक्तश्च पितृकार्यपरस्तथा ॥४

धर्मेण यजनं कार्यमधर्मपरिवर्जनम्।
उत्तमां गतिमाप्नोति क्षत्रियोऽप्येवमाचरन् ॥५
गोरक्षां कृषिवाणिज्यं कुर्याद्वैश्यो यथाविधि।
दानं देयं यथाशक्त्या ब्राह्मणानाञ्च भोजनम् ॥६
दम्भमोहविनिर्मुक्तस्तथा वागनसूयकः।
स्वदारनिरतो दान्तः परदारविवर्जितः ॥७
धनैर्विप्रान् भोजयित्वा यज्ञकाले तु याजकान्।
अप्रभुत्वञ्च वर्तेत धर्मव्यादेहपातनात् ॥८
यज्ञाध्ययनदानानि कुर्यान्नित्यमतन्द्रितः।
पितृकार्यपरश्चैव नरसिंहार्चनापरः ॥९
एतद्वैश्यस्य धर्मोयं स्वधर्ममनुतिष्ठति।
एतदाचरते योहि स स्वर्गी नात्र संशयः ॥१०
वर्णत्रयस्य शुश्रूषां कुर्याच्छूद्रः प्रयत्नतः।
दासवद्ब्राह्मणानाञ्च विशेषेण समाचरेत् ॥११
अयाचितप्रदाता च कष्टं वृत्यर्थमाचरेत्।
पाकयज्ञविधानेन यजेद्देवमतन्द्रितः ॥१२
शूद्राणामधिकं कुर्यादर्चनं न्यायवर्तिनाम्।
धारणं जीर्णवस्त्रस्य विप्रस्योच्छिष्टभोजनम्।
स्वदारेषु रतिश्चैव परदारविवर्जनम् ॥१३
इत्थं कुर्यात् सदा शूद्रो मनोवाक्कायकर्मभिः।
स्थानमैन्द्रमवाप्नोति नष्टपापः सुपुण्यकृत् ॥१४

वर्णेषु धर्मा विविधा मयोक्ता यथातथा ब्रह्ममुखेरिताः पुरा।
शृणुध्वमत्राश्रमधर्ममाद्यं मयोच्यमानं क्रमशो मुनीन्द्राः ॥१९

इति हारीते धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः।

-ooo-

## तृतीयोऽध्यायः।

### अथ ब्रह्मचर्याश्रमधर्मवर्णनम्।

उपनीतो माणवको वसेद्गुरुकुलेषु च।
गुरोः कुले प्रियं कुर्यात् कर्मणा मनसा गिरा ॥१
ब्रह्मचर्य्यमधःशय्या तथा वह्नेरुपासना।
उदकुम्भान् गुरोर्दद्याद्गोग्रासञ्चेन्धनानि च।
कुर्य्यादध्ययनञ्चैव ब्रह्मचारी यथा विधि।
विधिं त्यक्त्वा प्रकुर्वाणो न स्वाध्यायफलं लभेत् ॥२
यः कश्चित् कुरुते धर्मं विधिं हित्वा दुरात्मवान्।
न तत्फलमवाप्नोति कुर्व्वाणोऽपि विधिच्युतः ॥३
तस्माद्वेदव्रतानीह चरेत् स्वाध्यायसिद्धये।
शौचाचारमशेषं तु शिक्षयेद् गुरुसन्निधौ ॥४
अजिनं दण्डकाष्ठञ्च मेखलाञ्चोपवीतकम्।
धारयेदप्रमत्तश्च ब्रह्मचारी समाहितः ॥५
सायं प्रातश्चरेद्भैक्षं भोज्यार्थं संयतेन्द्रियः।
आचम्य प्रयतो नित्यं न कुर्याद्दन्तधावनम्।

छत्रञ्चोपानहञ्चैव गन्धमाल्यादि वर्जयेत् ।
नृत्यगीतमथालापं मैथुनञ्च विवर्जयेत् ॥६
हस्त्यश्वारोहणञ्चैव संत्यजेत् संयतेन्द्रियः ।
सन्ध्योपास्तिं प्रकुर्व्वीत ब्रह्मचारी व्रतस्थितः ॥७
अभिवाद्य गुरोः पादौ सन्ध्याकर्मावसानतः ।
तथा योगं प्रकुर्व्वीत मातापित्रोश्च भक्तितः ॥८
एतेषु त्रिषु नष्टेषु नष्टाः स्युः सर्वदेवताः ।
एतेषां शासने तिष्ठेद्ब्रह्मचारी विमत्सरः ॥९
अधीत्य च गुरो वेदान् वेदौ वा वेदमेव वा ।
गुरवे दक्षिणां दद्यात् संयमी ग्राममावसेत् ॥१०
यस्यैतानि सुगुप्तानि जिह्वोपस्थोदरं करः ।
संन्याससमयं कृत्वा ब्राह्मणो ब्रह्मचर्य्यया ॥११
तस्मिन्नेव नयेत् कालमाचार्य्ये यावदायुषम् ।
तदभावे च तत्पुत्रे वह्निष्ये वाथवा कुले ॥१२
न विवाहो न संन्यासो नैष्ठिकस्य विधीयते ॥१३
इमं योविधिमास्थाय त्यजेद्देहमतन्द्रितः ।
नेह भूयोऽपि जायेत ब्रह्मचारी दृढव्रतः ॥१४
यो ब्रह्मचारी विधिना समाहितश्चरेत् पृथिव्यां गुरुसेवने रतः ।
संप्राप्य विद्यामतिदुर्लभां शिवां फलञ्च तस्याः सुलभं नु विन्दति ॥१५

॥ इति हारीते धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥

## चतुर्थोऽध्यायः ।

### अथ गृहस्थाश्रमधर्म्मवर्णनम् ।

गृहीतवेदाध्ययनः श्रुतशास्त्रार्थतत्त्ववित् ।
असमानार्षगोत्रां हि कन्यां सभ्रातृकां शुभाम् ॥१
सर्वावयवसंपूर्णां सुवृत्तामुद्वहेन्नरः ।
ब्राह्मेण विधिना कुर्य्यात् प्रशस्तेन द्विजोत्तमः ॥२
तथान्ये बहवः प्रोक्ता विवाहा वर्णधर्म्मतः ।
औपासनञ्च विधिवदाहृत्य द्विजपुङ्गवाः ! ॥३
सायं प्रातश्च जुहुयात् सर्वकालमतन्द्रितः ।
स्नानं काय्यं ततोनित्यं दन्तधावनपूर्व्वकम् ॥४
उषःकाले समुत्थाय कृतशौचो यथाविधि ।
मुखे पर्य्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो नरः ॥५
तस्माच्छुष्कमथार्द्रं वा भक्षयेद्दन्तकाष्ठकम् ।
करञ्जं खादिरं वापि कदम्बं कुरवं तथा ॥६
सप्तपर्णपृश्निपर्णीजम्बुनिम्बं तथैव च ।
अपामार्गश्च बिल्वश्चार्कश्चोडुम्बरसेव च ॥७
एते प्रशस्ताः कथिता दन्तधावनकर्म्मणि ।
दन्तकाष्ठस्य भक्षश्च समासेन प्रकीर्त्तितः ॥८
सर्वे कण्टकिनः पुण्याः क्षीरिणश्च यशस्विनः ।
अष्टाङ्गुलेन मानेन दन्तकाष्ठमिहोच्यते ।
प्रादेशमात्रमदन्तानथवा तेन विशोधयेत् ॥६

प्रतिपत्पर्वषष्ठीषु नवम्याञ्चैव सत्तमाः॥
दन्तानां काष्ठसंयोगाद्दहत्यासप्तमं कुलम् ॥१०
अभावे दन्तकाष्ठानां प्रतिषिद्धदिनेषु च।
अपां द्वादशगण्डूषैर्मुखशुद्धिं समाचरेत् ॥११
स्नात्वा मन्त्रवदाचम्य पुनराचमनं चरेत्।
मन्त्रवत् प्रोक्ष्य चात्मानं प्रक्षिपेदुदकाञ्जलिम् ॥१२
आदित्येन सह प्रातर्मन्देहा नाम राक्षसाः।
युद्ध्यन्ति वरदानेन ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥१३
उदकाञ्जलिनिक्षेपा गायत्र्या चाभिमन्त्रिताः।
निघ्नन्ति राक्षसान् सर्व्वान् मन्देहाख्यान् द्विजेरिताः ॥१४
ततः प्रयाति सविता ब्राह्मणैरभिरक्षितः।
मरीच्याद्यैर्महाभागैः सनकाद्यैश्च योगिभिः ॥१५
तस्मान्न लङ्घयेत् सन्ध्यां सायं प्रातः समाहितः।
उल्लङ्घयति यो मोहात् स याति नरकं ध्रुवम् ॥१६
सायं मन्त्रवदाचम्य प्रोक्ष्य सूर्य्यस्य चाञ्जलिम्।
दत्त्वा प्रदक्षिणं कुर्य्याज्जलं स्पृष्ट्वा विशुद्ध्यति ॥१७
पूर्व्वां सन्ध्यां सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि।
गायत्रीमभ्यसेत्तावद् यावदादित्यदर्शनम् ॥१८
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां सादित्याञ्च यथाविधि।
गायत्रीमभ्यसेत्तावद्यावत्तारा न पश्यति ॥१९
ततश्चावसथं प्राप्य कृत्वा होमं स्वयं बुधः।
सञ्चिन्त्य पोष्यवर्गस्य भरणार्थं विचक्षणः ॥२०

ततः शिष्यहितार्थाय स्वाध्यायं किञ्चिदाचरेत् ।
ईश्वरञ्चैव कार्य्यार्थमभिगच्छेद्द्विजोत्तमः ॥२१
कुशपुष्पेन्धनादीनि गत्वा दूरं समाहरेत् ।
ततो माध्याह्निकं कुर्य्याच्छुचौ देशे मनोरमे ॥२२
विधिं तस्य प्रवक्ष्यामि समासात् पापनाशनम् ।
स्नात्वा येन विधानेन मुच्यते सर्वकिल्बिषात् ॥२३
स्नानार्थं मृदमानीय शुद्धाक्षततिलैः सह ।
सुमनाश्च ततो गच्छेन्नदीं शुद्धजलाधिकाम् ॥२४
नद्यां तु विद्यमानायां न स्नायादन्यवारिणि ।
न स्नायादल्पतोयेषु विद्यमाने बहूदके ॥२५
सरिद्वरं नदीस्नानं प्रतिस्रोतःस्थितश्चरेत् ।
तड़ागादिषु तोयेषु स्नायाद्य तदभावतः ॥२६
शुचिदेशं समभ्युक्ष्य स्थापयेत् सकलाम्बरम् ।
मृत्तोयेन स्वकं देहं लिम्पेत् प्रक्षाल्य यत्नतः ॥२७
स्नानादिकञ्च संप्राप्य कुर्य्यादाचमनं बुधः ।
सोऽन्तर्जलं प्रविश्याथ वाग्यतो नियमेन हि ।
हरिं संस्मृत्य मनसा मज्जयेदोरुमज्जले ॥२८
ततस्तीरं समासाद्य आचम्यापः समन्त्रतः ।
प्रोक्षयेद्वारुणैर्मन्त्रैः पावमानीभिरेव च ॥२९
कुशाग्रकृततोयेन प्रोक्ष्यात्मानं प्रयत्नतः ।
स्योनापृथिवीति मृद्गात्रे इदं विष्णुरिति द्विजाः ! ॥३०

ततो नारायणं देवं संस्मरेत् प्रतिमज्जनम्।
निमज्ज्यान्तर्जले सम्यक् क्रियते चाघमर्षणम् ॥३१
स्नात्वा क्षततिलैस्तद्वद्देवर्षिपितृभिः सह।
तर्पयित्वा जलं तस्मान्निष्पीड्य च समाहितः ॥३२
जलतीरं समासाद्य तत्र शुक्ले च वाससी।
परिधायोत्तरीयञ्च कुर्य्यान् केशान्न धूनयेत् ॥३३
न रक्तमुल्वणं वासो न नीलञ्च प्रशस्यते।
मलाक्तं गन्धहीनञ्च वर्जयेदम्बरं बुधः ॥३४
ततः प्रक्षालयेत् पादौ मृत्तोयेन विचक्षण।
दक्षिणन्तु करं कृत्वा गोकर्णाकृतिवत् पुनः ॥३५
त्रिः पिबेदीक्षितं तोयमास्यं द्विःपरिमार्जयेत्।
पादौ शिरस्ततोऽभ्युक्ष्य त्रिभिरास्यमुपस्पृशेत् ॥३६
अङ्गुष्ठानामिकाभ्याञ्च चक्षुषी समुपस्पृशेत्।
तथैव पञ्चभिर्मूर्द्ध्नि स्पृशेदेवं समाहितः ॥३७
अनेन विधिनाचम्य ब्राह्मणः शुद्धमानसः।
कुर्व्वीत दर्भपाणिस्तूदङ्मुखः प्राङ्मुखोऽपि वा ॥३८
प्राणायामत्रयं धीमान् यथान्यायमतन्द्रितः।
जपयज्ञं ततः कुर्य्याद्गायत्रीं वेदमातरम् ॥३९
त्रिविधो जपयज्ञः स्यात्तस्य तत्त्वं निबोधत।
वाचिकश्च उपांशुश्च मानसश्च त्रिधाकृतिः ॥४०
त्रयाणामपि यज्ञानां श्रेष्ठः स्यादुत्तरोत्तरः ॥४१

यदुच्चनीचोच्चरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः ।
मन्त्रमुच्चारयन् वाचा जपयज्ञस्तु वाचिकः ॥४२
शनैरुच्चारयन्मन्त्रं किञ्चिदोष्ठौ प्रचालयेत् ।
किञ्चिच्छ्रवणयोग्यः स्यात् स उपांशुर्जप. स्मृत. ॥४३
धिया पदाक्षरश्रेण्या अवर्णमपदाक्षरम् ।
शब्दार्थचिन्तनाभ्यान्तु तदुक्तं मानसं स्मृतम् ॥४४
जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति ।
प्रसन्ने विपुलान् भोगान् प्राप्नुवन्ति मनीषिण ॥४५
राक्षसाश्च पिशाचाश्च महासर्पाश्च भीषणाः ।
जपिताश्चोपसर्पन्ति दूरादेव प्रयान्ति ते ॥
छन्द ऋष्यादि विज्ञाय जपेन्मन्त्रमतन्द्रितः ।
जपेदहरहर्ज्ञात्वा गायत्रीं मनसा द्विजः ॥४७
सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् ।
गायत्रीं यो जपेन्नित्यं स न पापेन लिप्यते ॥४८
अथ पुष्पाञ्जलिं कृत्वा भानवे चोर्द्ध्वबाहुकः ।
उदुत्यञ्च जपेत् सूक्तं तच्चक्षुरिति चापरम् ॥४९
प्रदक्षिणमुपावृत्य नमस्कुर्याद्दिवाकरम् ।
ततस्तीर्थेन देवादीनद्भिः सन्तर्पयेद्द्विजः ॥५०
स्नानवस्त्रन्तु निष्पीड्य पुनराचमनं चरेत् ।
तद्वद्धर्मजनस्येह स्नानं दानं प्रकीर्तितम् ॥५१
दर्भासीनो दर्भपाणिर्ब्रह्मयज्ञविधानत. ।
प्राङ्मुखो ब्रह्मयज्ञं तु कुर्याच्छ्राद्धसमन्वित· ॥५२

ततोऽर्घ्यं भानवे दद्यात्तिलपुष्पाक्षतान्वितम् ।
उत्थाय मूर्द्धपर्यन्तं हंसः शुचिषदित्यृचा ॥५३
ततो देवं नमस्कृत्य गृहं गच्छेत्ततः पुनः ।
विधिना पुरुषसूक्तस्य गत्वा विष्णुं समर्चयेत् ॥५४
वैश्वदेवं ततः कुर्याद्बलिकर्मविधानतः ।
गोदोहमात्रमाकाङ्क्षेदतिथिं प्रति वै गृही ॥५५
अदृष्टपूर्वमज्ञानमतिथिं प्राप्तमर्चयेत् ।
स्वागतासनदानेन प्रत्युत्थानेन चाम्बुना ॥५६
स्वागतेनाग्नयस्तुष्टा भवन्ति गृहमेधिनः ।
आसनेन तु दत्तेन प्रीतो भवति देवराट् ॥५७
पादशौचेन पितरः प्रीतिमायान्ति दुर्लभाम् ।
अन्नदानेन युक्तेन तृप्यते हि प्रजापतिः ॥५८
तस्मादतिथये कार्यं पूजनं गृहमेधिना ।
भक्त्या च शक्तितो नित्यं विष्णोरर्चादनन्तरम् ॥५९
भिक्षाञ्च भिक्षवे दद्यात् परिव्राड्ब्रह्मचारिणे ।
अकल्पितान्नादुद्धृत्य सव्यञ्जनसमन्विताम् ॥६०
अकृते वैश्वदेवेऽपि भिक्षौ च गृहमागते ।
उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्वा विसर्जयेत् ॥६१
वैश्वदेवाकृतान् दोषाञ्छक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम् ।
नहि भिक्षुकृतान् दोषान् वैश्वदेवो व्यपोहति ॥६२
तस्मात् प्राप्ताय यतये भिक्षां दद्यात् समाहितः ।
विष्णुरेव यतिश्छायइति निश्चित्य भावयेत् ॥६३

सुवासिनीं कुमारीश्च भोजयित्वा नरानपि।
बालवृद्धांस्तत शेष स्वय भुञ्जीत वा गृही ॥६४
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि मौनी च मितभाषक।
अन्नमादौ नमस्कृत्य प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥६५
एष प्राणाहुतिं कुर्यान्मन्त्रेण च पृथक् पृथक्।
ततः स्वादुकरान्नञ्च भुञ्जीत सुसमाहित ॥६६
आचम्य देवतामिष्टां संस्मरन्नुदर स्पृशेत्।
इतिहासपुराणाभ्यां कञ्चित् कालं नयेद्बुध ॥६७
तत सन्ध्यामुपासीत वहिर्गत्वा विधानत।
कृतहोमस्तु भुञ्जीत रात्रौ चातिथिभोजनम् ॥६८
सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम्।
नान्तराभोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधि ॥६९
शिष्यानध्यापयेश्चापि अनध्याये विसर्जयेत्।
स्मृत्युक्तानखिलाश्चापि पुराणोक्तानपि द्विज ॥७०
महानवम्यां द्वादश्यां भरण्यामपि पर्वसु।
तथाक्षयतृतीयायां शिष्यान्नाध्यापयेद्द्विज ॥७१
माघमासे तु सप्तम्यां रथ्याख्यायां तु वर्जयेत्।
अध्यापनं समभ्यञ्जन् स्नानकाले च वर्जयेत् ॥७२
नीयमानं शवं दृष्ट्वा महीस्थ वा द्विजोत्तमा।
न पठेद्रुदितं श्रुत्वा सन्ध्यायां तु द्विजोत्तम ॥७३
दानानि च प्रदेयानि गृहस्थेन द्विजोत्तमा।
हिरण्यदानं गोदानं पृथिवीदानमेव च ॥७४

तथा चतुर्थकाले तु भुञ्जीयादष्टमेऽथवा।
षष्ठे च कालेऽप्यथवा वायुभक्षोऽथवा भवेत् ॥६
घर्मे पञ्चाग्निमध्यस्थस्तथा वर्षे निराश्रयः।
हेमन्ते च जले स्थित्वा नयेत् कालं तपश्चरन् ॥७
एवञ्च कुर्वता येन कृतबुद्धिर्यथाक्रमम्।
अग्निं स्वात्मनि कृत्वा तु प्रव्रजेदुत्तरां दिशम् ॥८
आदेहपातं वनगो मौनमास्थाय तापसः।
स्मरन्नतीन्द्रियं ब्रह्म ब्रह्मलोके महीयते ॥९
तपो हि यः सेवति वन्यवासः समाधियुक्तः प्रयतान्तरात्मा।
विमुक्तपापो विमलः प्रशान्तः स याति दिव्यं पुरुषं पुराणम् ॥१०

इति हारीते धर्मशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः।

---

॥ षष्ठोऽध्यायः ॥

अथ सन्न्यासाश्रमधर्मवर्णनम्।

अतः परं प्रवक्ष्यामि चतुर्थाश्रममुत्तमम्।
श्रद्धया तदनुष्ठाय तिष्ठन्मुच्येत बन्धनात् ॥१
एवं वनाश्रमे तिष्ठन् पातयंश्चैव किल्बिषम्।
चतुर्थमाश्रमं गच्छेत् संन्यासविधिना द्विजः ॥२
दत्त्वा पितृभ्यो देवेभ्यो मानुषेभ्यश्च यत्नतः।
दत्त्वा श्राद्धं पितृभ्यश्च मानुषेभ्य स्तथात्मनः ॥३

सर्वव्यञ्जनसंयुक्तं पृथक् पात्रे नियोजयेत् ।
सूर्यादिभूतदेवेभ्यो दत्वा संप्रोक्ष्य वारिणा ॥१५
भुञ्जीत पात्रपुटके पात्रे वाचम्यतो यतिः ।
वटकाश्वत्थपर्णेषु कुम्भीतैन्दुकपात्रके ॥१६
कोविदारकदम्बेषु न भुञ्जीयात् कदाचन ।
मलाक्ताः सर्व उच्यन्ते यतयः कांस्यभोजिनः ॥१७
कांस्यभाण्डेषु यत् पाको गृहस्थस्य तथैव च ।
कांस्ये भोजयतः सर्वं किल्बिषं प्राप्नुयात्तयोः ॥१८
भुक्त्वा पात्रे यतिर्नित्यं क्षालयेन्मन्त्रपूर्वकम् ।
न दूष्यते च तत्पात्रं यज्ञेषु चमसा इव ॥१९
अथाचम्य निदिध्यास्य उपतिष्ठेत भास्करम् ।
जपध्यानेतिहासैश्च दिनशेषं नयेद्बुधः ॥२०
कृतसन्ध्यस्ततो रात्रिं नयेद्देवगृहादिषु ।
हृत्पुण्डरीकनिलये ध्यायेदात्मानमव्ययम् ॥२१
यदि धर्मरतिः शान्तः सर्वभूतसमो वशी ।
प्राप्नोति परमं स्थानं यत्प्राप्य न निवर्तते ॥२२
त्रिदण्डभृद्योहि पृथक् समाचरेच्छनैः शनैर्यस्तु बहिर्मुखाधः ।
संमुच्य संसारसमस्तबन्धनात् स याति विष्णोरमृतात्मनः पदम् ॥२३

इति हारीते धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ।

---

यथान्नं मधुसंयुक्तम् मधुचान्नेन संयुतम्।
उभाभ्यामपि पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः ॥१०
तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम् ।
विद्यातपोभ्यां संपन्नो ब्राह्मणो योगतत्परः ॥११
देहद्वयं विहायाशु मुक्तो भवति बन्धनात्।
न तथा क्षीणदेहस्य विनाशो विद्यते कचित् ॥१२
मया ते कथितः सर्व्वो वर्णाश्रमविभागशः।
संक्षेपेण द्विजश्रेष्ठा ! धर्मस्तेषां सनातनः ॥१३
श्रुत्वैवं मुनयो धर्मं स्वर्गमोक्षफलप्रदम्।
प्रणम्य तमृषिं जग्मुर्मुदिताः स्वं स्वमाश्रमम् ॥१४
धर्मशास्त्रमिदं सर्वं हारीतमुखनिःसृतम्।
अधीत्य कुरुते धर्मं स याति परमां गतिम् ॥१५
ब्राह्मणस्य तु यत् धर्मं कथितं बाहुजस्य च।
ऊरुजस्यापि यत् कर्म्म कथितं पादजस्य च ।
अन्यथा वर्तमानस्तु सद्यः पतति जातितः ॥१६
यो यस्याभिहितो धर्मः स तु तस्य तथैव च।
तस्मात् स्वधर्मं कुर्व्वीत द्विजो नित्यमनापदि ॥१७
वर्णाश्चत्वारो राजेन्द्र ! चत्वारश्चापि चाश्रमाः।
स्वधर्मं ये तु तिष्ठन्ति ते यान्ति परमां गतिम् ॥१८
स्वधर्मेण यथा नृणां नारसिंहः प्रसीदति।
न तुष्यति तथान्येन कर्मणा मधुसूदनः ॥१९

ब्रूहि वर्णाश्रमाणान्तु नित्यनैमित्तिकक्रियाः ।
कर्त्तव्या मुनिशार्दूल ! नारीणाञ्च नृणाञ्च च ॥४
स्वरूपं जीवपरयोः कथं मोक्षपथस्य च ।
तत्प्राप्ते साधनं ब्रह्मन् ! वक्तुमर्हसि सुव्रत ! ॥५
एवमुक्तस्तु विप्रर्षिस्तेन राजर्षिणा तदा ।
उवाच परमप्रीत्या नमस्कृत्य जनार्द्दनम् ॥६

हारीत उवाच ।

शृणु राजन् ! प्रवक्ष्यामि सर्वं वेदोपबृंहितम् ।
यदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वं पृच्छतो मम भूपते ! ॥७
तदूब्रवीमि परं धर्मं शृणुष्वैकाग्रमानसः ।
सर्वेषामेव देवाना मनादिः पुरुषोत्तमः ॥८
ईश्वरस्तु स एवान्ये जगतो विभुरव्ययः ।
नारायणो वासुदेवो विष्णुर्विश्वात्मनो हरिः ॥६
स्रष्टा धाता विधाता च स एव परमेश्वरः ।
हिरण्यगर्भः सविता गुणभृद् निर्गुणोऽव्ययः ॥१०
परमात्मा परं ब्रह्म परं ज्योतिः परात्परः ।
इन्द्रः प्रजापतिः सूर्यः शिवो वह्निः सनातनः ॥११
सर्व्वात्मकः सर्वसुहृत् सर्वभृद्भूतभावनः ।
यमी च भगवान् कृष्णो मुकुन्दोऽनन्त एव च ॥१२
यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा ब्रह्मण्यो ब्रह्मणः पतिः ।
स एव पुण्डरीकाक्षः श्रीशो नाथोऽधिपो महान् ॥१३
सहस्रमूर्द्धा विश्वात्मा सहस्रकरपादवान् ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं हरेः ॥१४

॥ सप्तमोऽध्यायः ॥

अथ योगवर्णनम्।

वर्णानामाश्रमाणाश्च कथितं धर्मलक्षणम्।
येन स्वर्गापवर्गाश्च प्राप्नुवन्ति द्विजातयः ॥१
योगशास्त्रं प्रवक्ष्यामि सङ्क्षेपात् सारमुत्तमम्।
यस्य च श्रवणाद्यान्ति मोक्षञ्चैव मुमुक्षवः ॥२
योगाभ्यासबलेनैव नश्येयुः पातकानि तु।
तस्माद्योगपरो भूत्वा ध्यायेन्नित्यं क्रियापरः ॥३
प्राणायामेन वचनं प्रत्याहारेण चेन्द्रियम्।
धारणाभिर्वशे कृत्वा पूर्वं दुर्धर्षणं मनः ॥४
एकाकारमना मन्दं बुधैरुपमलामयम्।
सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं ध्यायेत् जगदाधारमुच्यते ॥५
आत्मानं बहिरन्तार्थं शुद्धचामीकरप्रभम्।
रहस्येकान्तमासीनो ध्यायेदामरणान्तिकम् ॥६
यत्सर्वप्राणि हृदयं सर्वेषाञ्च हृदिस्थितम्।
यच्च सर्वजनैर्ज्ञेयं सोऽहमस्मीति चिन्तयेत् ॥७
आत्मलाभसुखं यावत्तपोध्यानमुदीरितम्।
श्रुतिस्मृत्यादिकं धर्मं तद्विरुद्धं न चाचरेत् ॥८
यथा रथोऽश्वहीनस्तु यथाश्वो रथिहीनकः।
एवं तपश्च विद्या च संयुतं भेषजं भवेत् ॥९

यथान्नं मधुसंयुक्तम् मधुवान्नेन संयुतम् ।
उभाभ्यामपि पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः ॥१०
तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम् ।
विद्यातपोभ्यां संपन्नो ब्राह्मणो योगतत्परः ॥११
देहद्वयं विहायाशु मुक्तो भवति बन्धनात् ।
न तथा क्षीणदेहस्य विनाशो विद्यते क्वचित् ॥१२
मया ते कथितः सर्व्वो वर्णाश्रमविभागशः ।
संक्षेपेण द्विजश्रेष्ठा ! धर्मस्तेषां सनातनः ॥१३
श्रुत्वैवं मुनयो धर्मं स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ।
प्रणम्य तमृषिं जग्मुर्मुदिताः स्वं स्वमाश्रमम् ॥१४
धर्मशास्त्रमिदं सर्वं हारीतमुखनिःसृतम् ।
अधीत्य कुरुते धर्मं स याति परमां गतिम् ॥१५
ब्राह्मणस्य तु यत् कर्म कथितं बाहुजस्य च ।
ऊरुजस्यापि यत् कर्म्म कथितं पादजस्य च ।
अन्यथा वर्तमानस्तु सद्यः पतति जातितः ॥१६
यो यस्याभिहितो धर्म स तु तस्य तथैव च ।
तस्मात् स्वधर्मं कुर्व्वीत द्विजो नित्यमनापदि ॥१७
वर्णाश्चत्वारो राजेन्द्र ! चत्वारश्चापि चाश्रमाः ।
स्वधर्मं ये तु तिष्ठन्ति ते यान्ति परमां गतिम् ॥१८
स्वधर्मेण यथा नृणां नारसिंहः प्रसीदति ।
न तुष्यति तथान्येन कर्मणा मधुसूदनः ॥१६

## ॥ सप्तमोऽध्यायः ॥

### अथ योगवर्णनम्।

वर्णानामाश्रमाणाञ्च कथितं धर्मलक्षणम्।
येन स्वर्गापवर्गञ्च प्राप्नुवन्ति द्विजातयः ॥१
योगशास्त्रं प्रवक्ष्यामि सङ्क्षेपात् सारमुत्तमम्।
यस्य च श्रवणाद्यान्ति मोक्षञ्चैव मुमुक्षवः ॥२
योगाभ्यासबलेनैव नश्येयुः पातकानि तु।
तस्माद्योगपरो भूत्वा ध्यायेन्नित्यं क्रियापरः ॥३
प्राणायामेन वचनं प्रत्याहारेण चेन्द्रियम्।
धारणाभिर्वशे कृत्वा पूर्वं दुर्धर्षणं मनः ॥४
एकाकारमनानन्दं बुद्धेरूपमनामयम्।
सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं ध्यायेत् जगदाधारमुच्यते ॥५
आत्मानं बहिरन्तस्थं शुद्धचामीकरप्रभम्।
रहस्येकान्तमासीनो ध्यायेदामरणान्तिकम् ॥६
यत्सर्वप्राणि हृदयं सर्वेषाञ्च हृदिस्थितम्।
यच्च सर्वजनैर्ज्ञेयं सोऽहमस्मीति चिन्तयेत् ॥७
आत्मलाभसुखं यावत्तपोध्यानमुदीरितम्।
श्रुतिस्मृत्यादिकं धर्मं तद्विरुद्धं न चाचरेत् ॥८
यथा रथोऽश्वहीनस्तु यथाश्वो रथिहीनकः।
एवं तपश्च विद्या च संयुतं भेषजं भवेत् ॥९

यथान्नं मधुसंयुक्तम् मधुचान्नेन संयुतम् ।
उभाभ्यामपि पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः ॥१०
तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम् ।
विद्यातपोभ्यां संपन्नो ब्राह्मणो योगतत्परः ॥११
देहद्वयं विहायाशु मुक्तो भवति बन्धनात् ।
न तथा क्षीणदेहस्य विनाशो विद्यते क्वचित् ॥१२
मया ते कथितः सर्व्वो वर्णाश्रमविभागशः ।
संक्षेपेण द्विजश्रेष्ठा ! धर्मस्तेषां सनातनः ॥१३
श्रुत्वैवं मुनयो धर्मं स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ।
प्रणम्य तमृषिं जग्मुर्मुदिताः स्वं स्वमाश्रमम् ॥१४
धर्मशास्त्रमिदं सर्वं हारीतमुखनिःसृतम् ।
अधीत्य कुरुते धर्मं स याति परमां गतिम् ॥१५
ब्राह्मणस्य तु यत् कर्म कथितं बाहुजस्य च ।
ऊरुजस्यापि यत् कर्म्म कथितं पादजस्य च ।
अन्यथा वर्तमानस्तु सद्यः पतति जातितः ॥१६
यो यस्याभिहितो धर्मः स तु तस्य तथैव च ।
तस्मात् स्वधर्मं कुर्व्वीत द्विजो नित्यमनापदि ॥१७
वर्णाश्चत्वारो राजेन्द्र । चत्वारश्चापि चाश्रमाः ।
स्वधर्मं ये तु तिष्ठन्ति ते यान्ति परमां गतिम् ॥१८
स्वधर्मेण यथा नृणां नारसिंहः प्रसीदति ।
न तुष्यति तथान्येन कर्मणा मधुसूदनः ॥१९

अतः कुर्वन्निजं कर्म यथाकालमतन्द्रितः।
सहस्रानीकदेवेशं नारसिंहञ्च सालयम् ॥२०
उत्पन्नवैराग्यबलेन योगी ध्यायेत्परं ब्रह्म सदा क्रियावान्।
सत्यं सुखं रूपमनन्तमाद्यं विहाय देहं पदमेति विष्णोः ॥२१

इति लघुहारीते धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः।

इति लघुहारीतस्मृतिः समाप्ता।

ॐ तत्सत् ।

## ॥ अथ ॥

# वृद्धहारीतस्मृतिः।

श्रीगणेशायनमः।

## ॥ प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ पञ्चसंस्कारप्रतिपादनवर्णनम्।

अम्बरीषस्तु तं गत्वा हारीतस्याश्रमं नृपः।
ववन्दे तं महात्मानं बालार्कसदृशप्रभम् ॥१
संपृष्टः कुशलस्तेन पूजितः परमासने।
उपविष्ट स्ततो विप्रमुवाच नृपनन्दनः ॥२
भगवन्! सर्वधर्मज्ञ! तत्त्ववेदविदाम्वर!।
पृच्छामि त्वां महाभाग। परमं धर्ममव्ययम् ॥३

ब्रूहि वर्णाश्रमाणान्तु नित्यनैमित्तिकक्रिया ।
कर्तव्या मुनिशार्दूल । नारीणाञ्च नृपस्य च ॥४
स्वरूपं जीवपरयो कथ मोक्षपथस्य च ।
तत्प्राप्ते साधन ब्रह्मन् । वक्तुमर्हसि सुव्रत । ॥५
एवमुक्तस्तु विप्रर्षिस्तेन राजर्षिणा तदा ।
उवाच परमप्रीत्या नमस्कृत्य जनार्दनम् ॥६

हारीत उवाच ।

शृणु राजन् । प्रवक्ष्यामि सर्वं वेदोपबृंहितम् ।
यदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वं पृच्छतो मम भूपते । ॥७
तद्ब्रवीमि परं धर्मं शृणुष्वैकाग्रमानस' ।
सर्वेषामेव देवाना मनादि पुरुषोत्तम ॥८
ईश्वरस्तु स एवान्ये जगतो विभुरव्यय ।
नारायणो वासुदेवो विष्णुर्ब्रह्मात्मनो हरि ॥९
स्रष्टा धाता विधाता च स एव परमेश्वर ।
हिरण्यगर्भ सविता गुणभृद् निर्गुणोऽव्यय ॥१०
परमात्मा परं ब्रह्म परं ज्योति परात्पर ।
इन्द्र प्रजापति सूर्य शिवो वह्नि सनातन ॥११
सर्वात्मक सर्वभुक्त् सर्वसृद्भूतभावन ।
यमी च भगवान् कृष्णो मुकुन्दोऽनन्त एव च ॥१२
यज्ञो यज्ञपतिर्यज्या ब्रह्मण्यो ब्रह्मण पति ।
स एव पुण्डरीकाक्ष श्रीशो नाथोऽधिपो महान् ॥१३
सहस्रमूर्द्धा विश्वात्मा सहस्रकरपादवान् ।
यद्गत्वा न विवर्तन्ते तद्धाम परमं हरे ॥१४

चतुर्भिः शोभनोपायैः साध्योऽयं सुमहात्मनः।
तुरीयपदयोर्भक्त्या सुसिद्धोऽय मुदाहृतः ॥१५
त स्वीकुर्वन्ति विद्वांसः स्वस्वरूपतया सदा।
नैसर्गिकं हि सर्वेषां दास्यमेव हरेः सदा ॥१६
स्वाम्यं परस्वरूपं स्याद्दास्यं जीवस्य सर्वदा।
प्रकृत्या स्वात्मनो रूपं स्वाम्यं दास्यमिति स्थितिः ॥१७
दास्यमेव परं धर्मं दास्यमेव परं हितम्।
दास्येनैव भवेन्मुक्तिरन्यथा निरयं भवेत् ॥१८
विष्णोर्दास्यं परा भक्तिर्येषां तु न भवेत् क्वचित्।
तेषामेव हि संसृष्टं निरयं ब्रह्मणा नृप ! ॥१९
नारायणस्य दासा ये न भवन्ति नराधमाः।
जीवन्त एव चाण्डाला भविष्यन्ति न संशयः ॥२०
तस्माद्दास्यं परां भक्तिमालम्ब्य नृपसत्तम !।
नित्यं नैमित्तिकं सर्वं कुर्यात्प्रीत्यै हरेः सदा ॥२१
तस्य स्वरूपं रूपञ्च गुणांश्चापि विभूतयः।
ज्ञात्वा समर्चयेद्विष्णुं यावज्जीव मतन्द्रित. ॥२४
तमेव मनसा ध्यायेद्वाचा सङ्कीर्तयेत्प्रभुम्।
जपेच जुहुयाद्भक्तो तद्वानेकविलक्षणः ॥२३
शङ्खचक्रोर्ध्व पुण्ड्रादिधारणं दास्यलक्षणम्।
तन्नामकरणञ्चैव वैष्णवत्वमिहोच्यते ॥२४
अवैष्णवाश्च ये विप्रा ह्यपदास्ते नराधमाः।
तेषां तु नरके वासः कल्पकोटिशतैरपि ॥२५

तदादि वर्णसञ्चारी मन्त्ररत्नार्थतत्त्ववित् ।
वैष्णवः [redacted] जगत्पूज्यो याति विष्णोः परं पदम् ।२५
अचक्रधारी यो विप्रो बहुवेदश्रुतोऽपि वा ।
स जीवन्नेव चण्डालो मृतो निरयमाप्नुयात् ॥२६
तस्मात्ते हरिसंस्काराः कर्त्तव्या धर्मकाङ्क्षिणाम् ।
अयमेव परं धर्म्मः प्रधानं सर्वकर्म्मणाम् ॥२७

इति वृद्धहारीतस्मृत्यां विशिष्टधर्मशास्त्रे पञ्चसंस्कार-प्रतिपादनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।

---

## ॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥

### अथ पुण्ड्रसंस्कारवर्णनम् ।

अम्बरीष उवाच ।

भगवन् ! वैष्णवाः पञ्च संस्काराः सर्व्वकर्मणाम् ।
प्रधानमिति यच्चोक्तं सर्वै रेव महर्षिभिः ॥१
तद्विधानं ममाचक्ष्व विस्तरेणैव सुव्रत ! ।

हारीत उवाच ।

श्रृणु राजन् ! प्रवक्ष्यामि निर्मला वैष्णवाः क्रियाः ॥२
यदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वं वसिष्ठाद्यैश्च वैष्णवैः ।

संस्काराणां तु सर्वेषां माद्यं चक्रादिधारणम् ॥३
तत् कर्तव्यं हि सर्वेषां विधीनां वै द्विजन्मनाम् ।
आचार्यं संश्रयेत् पूर्वमनघं वैष्णवं द्विजम् ॥४
शुद्धसत्त्वगुणोपेतं नवेज्याकर्मकारणम् ।
सत्सम्प्रदायसंयुक्तं मन्त्ररत्नार्थकोविदम् ॥५
ज्ञानवैराग्यसम्पन्नं वेदवेदाङ्गपारगम् ।
शासितारं सदाचार्यैः सर्वधर्मविदांवरम् ॥६
महाभागवतं विप्रं सदाचारनिषेवणम् ।
आलोक्य सर्वशास्त्राणि पुराणानि च वैष्णवाः ॥७
तदर्थमाचरेद्यस्तु स आचार्य उदाहृतः ।
आस्तीक्यमानसं सद्भिरुपेतं धर्मवत्सलम् ॥८
श्रद्दधानं सदाचारं गुरुशुश्रूषतत्परम् ।
सम्वत्सरं परीक्ष्यार्थं तं शिष्यं शासयेद्गुरुः ॥ ६
तस्याऽऽदौ पञ्च संस्कारान् कुर्यात् सम्यग्विधानतः ।
प्रातः स्नात्वा शुचौ देशे पूजयित्वा जनार्दनम् ॥१०
स्नातं शिष्यं समानीय तेनैव सह देशिकः ।
स्नाप्य पञ्चामृतैर्दिव्यैश्चक्रादीनर्चयेत्ततः ॥११
पुष्पैर्धूपैश्च दीपैश्च नैवेद्यैर्विविधैरपि ।
तत्तत्प्रकाशकैर्मन्त्रैरर्चयेत् पुरतो हरेः ॥१२
अग्नौ होमं प्रकुर्वीत इध्माधानादिपूर्वकम् ।
पौरुषेण तु सूक्तेन पायसं घृतमिश्रितम् ॥१३

आज्येन मूलमन्त्रेण हुत्वा चाष्टोत्तरं शतम् ।
वैष्णव्या चैव गायत्र्या जुहुयात् प्रयतो गुरुः ॥१४
पश्चादग्नौ विनिक्षिप्य चक्राद्यायुधपञ्चकम् ।
पूजयित्वा सहस्रारं ध्यात्वा तद्वह्निमण्डले ॥१५
षडक्षरेण जुहुयादाज्यं विंशतिसंख्यया ।
सर्वैश्च हेतिमन्त्रैश्च एकैकाज्याहुतिं क्रमात् ॥१६
ततः प्रदक्षिणं कृत्वा स शिष्यो वह्निमास्मवान् ।
नमस्कृत्वा ततो विष्णुं जप्त्वा मन्त्रवरं शुभम् ॥१७
प्राङ्मुखं तु समासीनं शिष्यमेकाग्रचेतसम् ।
प्रतपेच्चक्रशङ्खौ द्वौ हेतिभिर्मन्त्रमुख्यत् ॥१८
दक्षिणे तु भुजे चक्रं वामांशे शङ्खमेव च ।
गदां च भालमध्ये तु हृदये नन्दकं सदा ॥१९
मस्तके तु तथा शार्ङ्गं मद्वयेद्विमलं तदा ।
पश्चात् प्रक्षाल्य तोयेन पुनः पूजां समाचरेत् ॥२०
होमशेषं समाप्याथ वैष्णवान् भोजयेत्ततः ।
एवं तापः क्रियाः कार्याः वैष्णव्यः कल्मषापहाः ॥२१
प्रधानं वैष्णवं तेषां तापसंस्कारमुत्तमम् ।
तापसंस्कारमात्रेण परां सिद्धिमवाप्नुयात् ॥२२
केचित्तु चक्रशङ्खौ द्वौ प्रतप्तौ बाहुमूलयोः ।
धारयन्ति महात्मानश्चक्रमेकं तु चापरे ॥२३
वैष्णवानां तु हेतीनां प्रधानं चक्रमुच्यते ।
तेनैव बाहुमूले तु प्रतप्तेनाङ्कयेद्बुधः ॥२४

जात पुत्रे पिता स्नात्वा होमं कृत्वा विधानतः ।
तेनाग्निनैव सन्तप्तचक्रेण भुजमूलयोः ॥२५
अङ्कयित्वा शिशोः पश्चान्नाम कुर्याच्च वैष्णवम् ।
पश्चात्सर्वाणि कर्माणि कुर्वीतास्य विधानतः ॥२६
अङ्कयित्वा स (न) चक्रेण यत्किञ्चित्कर्म सञ्चरेत् ।
तत्सर्वं याति वैफल्यमिष्टापूर्तादिकं नृप ! ॥२७
कार्येन्मन्त्रदीक्षायां चक्राद्याः पञ्च हेतयः ।
चक्रं वै कर्मसिध्यर्थं जातकर्मणि धारयेत् ॥२८
अचक्रधारी विप्रस्तु सर्वकर्मसु गर्हितः ।
अवैष्णवः समापन्नो नरकं चाधिगच्छति ॥२९
चक्रादिचिह्नरहितं प्राकृतं कलुषान्वितम् ।
अवैष्णवस्तु तं दूरात् श्वपाकमिव सन्त्यजेत् ॥३०
अवैष्णवस्तु यो विप्रः श्वपाकादधमः स्मृतः ।
अश्राद्धे यो ह्यपाङ्क्तेयो रौरवं नरकं व्रजेत् ॥३१
अवैष्णवस्तु यो विप्रः सर्वधर्मयुतोऽपिवा ।
गवां (स पापण्डेति) पण्डति विज्ञेयः सर्वकर्मसु नार्हति ॥३२
तस्माच्चक्रं विधानेन तप्तं वै धारयेद्द्विजः ।
सर्वाश्रमेषु यसतां स्त्रीणा च श्रुतिचोदनात् ॥३३
अनायुधासो असुरा अदेवा इति वै श्रुतिः ।
चक्रेण तामपवप इत्यचा समुदाहृतम् ॥३४
अपेत्यमङ्कमित्युक्तं वपेति श्रवणं तदा ।
तस्माद्वै तप्तचक्रस्य चाङ्कनं मुनिभिः श्रुतम् ।
पवित्रं विततं ग्राह्यं प्रभोर्गात्रे तु धारितम् ॥३५

श्रुत्यैव चाङ्कयेद्गात्रे तद्ब्रह्मसमवाप्तये ।
यत्ते पवित्रमर्चिष्यमग्ने वीततमन्तरा ॥३६
ब्रह्मेति निहितञ्चैव ब्रह्मणो श्रुतिरुदिता ।
पवित्रमिति चैवाग्निरग्निरं चक्रमुच्यते ॥३७
अग्निरेव सहस्रारः सहस्रा नेमिरुच्यते ।
नेमितप्ततनुः सूर्यो ब्रह्मणा समतां व्रजन् ॥३८
यत्ते पवित्रमर्चिष्यमग्नेस्तु न सुनिहितः ।
दक्षिणे तु भुजे विप्रो बिभृयाद्वै सुदर्शनम् ॥३९
सव्ये तु शङ्खं बिभृयादिति ब्रह्मविदो विदुः ।
इत्यादिश्रुतिभिः प्रोक्तं विष्णोश्चक्रस्य धारणम् ॥४०
पुराणेष्वितिहासेषु सात्त्विकेषु स्मृतिष्वपि ।
शङ्खचक्रोर्द्ध्वपुण्ड्रादिरहितं ब्राह्मणं नृप ! ॥४१
यः श्राद्धे भोजयेद्विप्रः पितॄणां तस्य दुर्गतिः ।
शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रादिचिह्नैः प्रियतमैर्हरेः ॥४२
रहितः सर्वधर्मेभ्यश्च्युतो नरकमाप्नुयात् ।
रुद्रार्चनं त्रिपुण्ड्रस्य धारणं यत्र दृश्यते ॥४३
तच्छूद्राणां विधिः प्रोक्तो न द्विजानां कदाचन ।
प्रतिलोमानुलोमाना दुर्गागणभैरवाः ॥४४
पूजनीया यथार्हेण विल्वचन्दनवारिणम् ।
यक्षराक्षसभूतानि विद्याधरगणस्तदा ॥४५
चण्डालानामर्चनीया मद्यमांसनिषेवणाम् ।
स्ववर्णविहितं धर्ममेवं ज्ञात्वा समाचरेत् ॥४६

रुद्रार्चनाद्ब्राह्मणस्तु शूद्रेण समतां व्रजेत् ।
यक्षभूतार्चनात् सद्यश्चण्डालत्वमवाप्नुयात् ॥४७
न भस्म धारयेद्विप्रः परमापद्गतोऽपि वा ।
मोहाद्वै विभृयाद्यस्तु ससुरापो भवेद्ध्रुवम् ॥४८
तिर्यक् पुण्ड्रधरं विप्रं पट्टाम्बरधरं तथा ।
श्वपाक इव वीक्षेत न सम्भाषेत कुत्रचित् ।
तस्माद्द्विजातिभिर्धार्य्यं मूर्द्ध्वं पुण्ड्रं विधानतः ॥४६
मृदा शुभ्रेण सततं सान्तरालं मनोहरम् ।
स्नात्वा शुद्धेऽपि पूर्वाह्णे विष्णुमभ्यर्च्य देशिकः ॥५०
स्नातं शिष्यं समाहूय होमं कुर्वीत पूर्ववत् ।
परोमात्रेति सूक्तेन पायसं मधुमिश्रितम् ॥५१
हुत्वोऽथमूलमन्त्रेण शतमष्टोत्तरं घृतम् ।
स्थण्डिले [illegible] ततः पश्चान्मण्डलानि यदा क्रमात् ॥५२
दीक्षणष्टमध्ये चत्वारि विन्यसेन् पुरतो हरेः ।
विलिखेत्तत्र पुण्ड्रादि विस्तारायामभेदतः ॥५३
तेष्वर्चयेत्ततो धीमान् केशवादीननुक्रमात् ।
तत्र तत्र च तन्मूर्तिं ध्यात्वा मन्त्रैः समर्चयेत् ॥५४
गन्धपुष्पादि सकलं मन्त्रैणैवार्चयेद्गुरुम् ।
प्रदक्षिण मनुव्रज्य स शिष्यः प्रणमेत्तथा ॥५५
तद्बाहौ निक्षिपेच्छिष्यः केशवादीननुक्रमात् ।
हृदि विन्यस्य पुण्ड्राणि गुरूक्तानि स वैष्णवः ॥५६

शुभ्रेणैव मृदा पश्चाद्विभृयात् सुसमाहितः ।
त्रिसन्ध्यासु मृदा विप्रो यागकाले विशेषतः ॥५७
श्राद्धे दाने तथा होमे स्वाध्याये पितृतर्पणे ।
श्रद्धालुरूर्द्ध्वपुण्ड्राणि विभृयाद्द्विजसत्तमः ॥५८
श्राद्धो होमस्तथा दानं स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।
भस्मीभवति तत्सर्वमूर्ध्वपुण्ड्रम्विना कृतम् ॥५९
ऊर्ध्वपुण्ड्रं विना यस्तु श्राद्धं कुर्व्वीत स द्विजः ।
सच तद्राक्षसैर्नीतं नरकं चाधिगच्छति ॥६०
ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनन्तु यः श्राद्धे भोजयेद्द्विजम् ।
अश्नन्ति पितरस्तस्य विण्मूत्रं नात्र संशयः ॥६१
तस्मात्तु सततं धार्यमूर्ध्वपुण्ड्रं द्विजन्मना ।
धारयेन्न तिर्यक् पुण्ड्रमापद्यपि कदाचन ॥६२
तिर्यक्पुण्ड्रधरं विप्रं चण्डालमिव सन्त्यजेत् ।
सोऽनर्हः सर्वकृत्येषु सर्वलोकेषु गर्हितः ॥६३
ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनः सन् सन्ध्याकर्म्म समाचरेत् ।
सर्वं तद्राक्षसैर्नीतं नरकञ्च स गच्छति ॥६४
यदि स्यात्तु मनुष्याणां मूर्ध्वपुण्ड्रविवर्जितम् ।
द्रष्टव्यन्नव तत्किञ्चित् श्मशानमिव तद्भवेत् ॥६५
ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदा शुभ्रं ललाटे यस्य दृश्यते ।
चण्डालोऽपि हि शुद्धात्मा विष्णुलोके महीयते ॥६६
ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्ये तु ललाटे सुमनोहरे ।
लक्ष्म्या सह समासीनो रमते तत्र वै हरिः ॥६७

निरन्तरालं यः कुर्य्यादूर्ध्वपुण्ड्रं द्विजाधमः।
स हि तत्र स्थितं विष्णुं श्रियञ्चैव व्यपोहति ॥६८
अथेदमूर्ध्वपुण्ड्रन्तु यः करोति द्विजाधमः।
कल्पकोटिसहस्राणि रौरवं नरकं व्रजेत् ॥६६
तस्माद्रागान्वितं पुण्ड्रन्धरेद्विष्णुपदाकृति।
ललाटादिषु चाङ्गेषु सर्व्वकर्मसु वैष्णवः ॥७०
नासिकामूलमारभ्य ललाटान्तेषु विन्यसेत्।
अङ्गुलद्वयमात्रन्तु मध्यच्छिद्रं प्रकल्पयेत् ॥७१
पार्श्वे चाङ्गुलमात्रन्तु विन्यसेद्द्विजसत्तमः।
पुण्ड्राणामन्तराले तु हारिद्रां धारयेच्छ्रियम् ॥७२
ललाटे पृष्ठयोः कण्ठे भुजयोरुभयोरपि।
चतुरङ्गुलमात्रन्तु विभृयादायतं द्विजः ॥७३
उरस्यष्टाङ्गुलं धार्यं भुजयोरायतं तदा।
उदरे पार्श्वयोस्त्रिस्यमायतन्तु दशाङ्गुलम् ॥७४
केशवादि नमोऽन्तैश्च प्रणवाद्यैरनुक्रमात्।
ललाटे केशवं रूपं कुक्षौ नारायणं न्यसेत् ॥७५
वक्ष स्थले माधवञ्च गोविन्दं कण्ठदेशतः।
विष्णुञ्च दक्षिणे पार्श्वे वाह्वोश्च मधुसूदनम् ॥७६
त्रिविक्रमन्तु वामांसे वामनं वामपार्श्वतः।
श्रीधरं वामवाहौ तु हृषीकेशं तदा भुजे ॥७७
पृष्ठे च पद्मनाभन्तु ग्रीवे दामोदरं सदा।
तत्प्रक्षालनतोयेन वासुदेवेति मूर्धनि ॥७८

केशवस्तु सुवर्णाभः शङ्खचक्रगदाधरः ।
शुक्लाम्बरधरः सौम्यो मुक्ताभरणभूषितः ॥७९
नारायणो घनश्यामः शङ्खचक्रगदासिभृत् ।
पीतवासा मणिमयैर्भूषणैरुपशोभितः ॥८०
माधवश्चोत्पलश्यामश्चक्रशार्ङ्गगदासिभृत् ।
चित्रमाल्याम्बरधरः पुण्डरीकनिभेक्षणः ॥८१
गोविन्दः शशिवर्णः स्यात्पद्मशाङ्गगदासिभृत्
रक्तारविन्दपादाब्ज स्तसकाञ्चनभूषणः ॥८२
गौरवर्णो भवेद्विष्णुश्चक्रशाङ्गहलासिभृत् ।
क्षौमाम्बरधरः स्रग्वी केयूराङ्गदभूषितः ॥८३
अरविन्दनिभः श्रीमान् मधुजिद्कमलान(न)नः ।
चक्रं शार्ङ्गं च मुसलं पद्मं दोर्भिर्बिभर्त्यसौ ॥८४
त्रिविक्रमो रक्तवर्णः शङ्खचक्रगदासिभृत् ।
किरीटहारकेयूरकुण्डलैश्च विराजितः ॥८५
वामनः कुन्दवर्ण स्यात् पुण्डरीकायतेक्षणः ।
दोर्भिर्वज्रं गदां चक्रं पद्मं हैमं बिभर्त्यसौ ॥८६
श्रीधरः पुण्डरीकाभ्य श्चक्रशार्ङ्गी च पद्मधृक् ।
रक्तारविन्दनयनो मुक्तादामविभूषित. ॥८७
विद्युद्वर्णो हृषीकेशश्चक्रशार्ङ्गहलासिभृत् ।
रक्तमाल्याम्बरधरः पुण्डरीकावतंसकः ॥८८
इन्द्रनीलनिभश्चक्रशङ्खपद्मगदाधरः ।
पद्मनाभः पीतवासा श्चित्रमाल्यानुलेपनः ।
दामोदरः सार्वभौमः पद्मशार्ङ्गासिशङ्खभृत् ॥८९

पीतवासा विशालाक्षो नानारत्नविभूषितः ।
एवं पुण्ड्राणि सततं धारयेद्वैष्णवोत्तमः ॥६०
पुण्ड्रसंस्कार इत्येवं शिष्येणापि च कारयेत् ।
मन्त्रशेषं समाप्याथ वैष्णवान् भोजयेत्ततः ॥६१

इति पुण्ड्रसंस्कारो द्वितीयः ।

अथ वैष्णवानांनामसंस्कारवर्णनम् ।

तृतीयं नाम संस्कारं कुर्वीत शुभवासरे ॥६२
स्नात्वा संपूज्य देवेशं गन्धपुष्पादिभिर्गुरुः ।
नामाधिदैवतं पश्चात् पूजयेत् प्रयतात्मवान् ॥६३
द्वादशैव तु मासास्तु केशवाद्यैरधिष्ठिता ।
आरभ्य मार्गशीर्षं तु यदा संख्या द्विजोत्तमः ॥६४
यस्मिन्मासि भवेद्दीक्षा तन्मूर्तेर्नाम चोदितम् ।
नृसिंहरामकृष्णाख्यं दासनाम प्रकल्पयेत् ॥६५
शक्त्या दशावताराणां यजेयन्नाम वैष्णवः ।
नामद्वयमप्रयत्नेन वैष्णवं पापनाशनम् ॥६६
यस्य वै वैष्णवं नाम नास्ति चेत्तु द्विजन्मनः ।
अनामिकः स विज्ञेयः सर्वकर्मसु गर्हितः ॥६७
चक्रस्य धारणं यस्य जातकर्मणि सम्भवेत् ।
तत्र वै मासनामापि दद्याद्विप्रो विधानतः ।
ध्यात्वा समर्चयेन्नाममूर्तिं मन्त्रेण देशिकः ॥६८

धूपं दीपञ्च नैवेद्यं ताम्बूलञ्च समर्पयेत् ।
प्रदक्षिण मनुव्रज्य भक्त्या सम्यक् प्रणम्य च ॥९९
तन्मन्त्रं मूलमन्त्रं वा जपेत्साहस्रसङ्ख्यया ।
पश्चाद्धोमं प्रकुर्वीत शतमष्टोत्तरं हविः ॥१००
वैष्णवैस्तु सुधाकैश्च जुहुयात् सर्पिषा तदा ।
नाम दद्यात् ततः शिष्यं मन्त्रतोये समाप्लुतम् ॥१०१
ततः पुष्पाञ्जलिं दत्वा होमशेषं समापयेत् ।
वैष्णवान् भोजयेत्पश्चाद्दक्षिणाभिश्च तोषयेत् ॥१०२
एवं हि नामसंस्कारं कुर्वीत द्विजसत्तमः ।
गुणयोगेन चान्यानि विष्णोर्नामानि लौकिके ॥१०३
विशिष्टं वैष्णवं नाम सर्वकर्मसु चोदितम् ।
हरेः परं पितुर्नाम यो वदत्यपरं श्रुतम् ॥१०४
अतिरोचनकं दिव्यं तृतीयं श्रुतिचोदितम् ।
तस्माद्भगवतो नाम सर्वेषां मुनिभिः स्मृतम् ॥१०५

इति नामसंस्कार स्तृतीयः ।

अथ वैष्णवानामन्त्रसंस्कारवर्णनम् ।

एवं तृतीयसंस्कारं कृत्वा वै वैदिकोत्तमः ।
चतुर्थमन्त्रसंस्कारं कुर्वीत द्विजसत्तमः ॥१०६
ततः (प्रात) स्नात्वा विधानेन पूजयेत् जगतां पतिम् ।
अष्टोत्तरसहस्रं तु मन्त्ररत्नं जपेद्गुरुः ॥१०७

स्नातं शिष्यं समाहूय सुवेषं समलङ्कृतम्।
आदाय कलशं रम्यं पवित्रोदकपूरितम् ॥१०८
पञ्चपल्लवसंयुक्तं पञ्चरत्नसमन्वितम्।
मङ्गलद्रव्यसंयुक्तं मन्त्रेणैवाभिमन्त्रयेत् ॥१०९
सम्मार्जयेत् ततः शिष्यं तज्जलेन कुशैः शुभैः।
सूक्तैश्च विष्णुदेवत्यैः पावमानैस्तथैव च ॥११०
अष्टोत्तरशतं पश्चान्मन्त्ररत्नेन मार्जयेत्।
अभिषिच्य ततो मूर्ध्नि शुक्लवस्त्रधरं शुचिम् ॥१११
स्वलङ्कृतं समाचान्त मूर्ध्वपुण्ड्रधरं तदा।
पवित्रहस्तं पद्माक्षमालया समलङ्कृतम् ॥११२
निवेश्य दक्षिणे स्वस्य आसने कुशनिर्मिते।
स्वगृह्योक्तविधानेन पुरतोऽग्निं प्रकल्पयेत् ॥११३
पौरुषेण तु सूक्तेन श्रीसूक्तेन तथैव च।
मध्वाज्यमिश्रितं रम्यं पायसं जुहुयाद्गुरुः ॥११४
अष्टोत्तरशतं पश्चादाज्यं मन्त्रद्वयेन च।
मूलमन्त्रेण जुहुयाच्चरुं घृतविमिश्रितम् ॥११५
केशवादीन् समुद्दिश्य नित्यान् मुक्तांस्तथैव च।
एकैकस्माहुतिं हुत्वा होमशेषं समापयेत् ॥११६
ततः प्रदक्षिणं कृत्वा नमस्कृत्वा जनार्दनम्।
आचार्यः स्वगुरुं नत्वा जपेद्गुरुपरम्पराम् ॥११७
मातरं सर्वजगतां प्रपद्येत श्रियं ततः।
त्वं माता सर्वलोकानां सर्वलोकेश्वरप्रिये! ॥११८

अपराधशतैर्जुष्टं नम स्तेन मम च्युतम् ।
एवं ऽप्य लक्ष्मीं तां श्रियं सद्गुरुभावत ॥११६
नित्ययुक्तं तया देव्या वात्सल्यादिगुणान्वितम् ।
शरण्यं सर्वलोकानां प्रपद्ये तं सनातनम् ।
नारायण ! दयासिन्धो ! वात्सल्यगुणसागर ! ॥१२०
एनं रक्ष जगन्नाथ ! बहुजन्मापराधिनम् ।
इत्याचार्येण सन्दिष्ट प्रपद्येत जनार्दनम् ॥१२१
प्रपद्येत ततः शिष्यो गुरुमेव दयानिधिम् ।
गुरो ! त्वमेव मे देव स्त्वमेव परमागतिः ॥१२२
त्वमेव परमो धर्म स्त्वमेव परमं तपः ।
इति प्रपन्नमाचार्यो निवेद्य पुरतो हरेः ॥१२३
प्रागग्रेषु समासीनं दर्भेषु सुसमाहितः ।
स्वाचार्यं पुरतो ध्यात्वा नमस्कृत्याथ भक्तिम न् ॥१२४
गुरोः परम्परां जप्त्वा हृदि ध्यात्वा जनार्दनम् ।
कृपया वीक्षितं शिष्यं दक्षिणं ज्ञानदक्षिणम ॥१२५
निक्षिप्य हस्तं शिरसि वामं हृदि च विन्यसेत् ।
पादौ गृहीत्वा शिष्यस्तु गुरोः प्रयतमानस ॥१२६
भो ! गुरो ! ब्रूहि मन्त्रं मे ब्रूयादिति दयानिधे ! ।
अध्यापयेत्ततस्त मे मन्त्ररत्नं शुभाद्वयम् । १२७
सन्न्यासश्च समुद्रश्च सर्पिपण्डोऽधिदैवतम् ।
सार्थमध्यापयेच्छिष्यं प्रयतं शरणागतम् ॥१२८

अष्टाक्षरं द्वादशार्णं षट्कृष्णीं वैष्णवीं तदा ।
रामकृष्णनृसिंहाख्यान् मन्त्रान् तस्मै निवेदयेत् ॥१२६
न्यासे चाप्यर्चने वापि मन्त्रमेकान्तिनं श्रयेत् ।
अवैष्णवोपदिष्टेन मन्त्रेण नरकं व्रजेत् ॥१३०
अवैष्णवाद्गुरोर्मन्त्रं य पठेद्वैष्णवो द्विज ।
कल्पकोटिसहस्राणि पच्यते नरकात्मना ॥१३१
अचक्रधारिण यस्तु मन्त्रमध्यापयेद्गुरु ।
रौरवं नरकं प्राप्य चाण्डालीं योनिमाप्नुयात् ॥१३२
तस्माद्दीक्षाविधानेन शिष्य भक्तिसमन्वितम् ।
मन्त्रमध्यापयेद्विद्वान् वैष्णव पापनाशनम् ॥१३३
अनधीत्य द्वयं मन्त्र योऽन्यवैष्णवमुत्तमम् ।
अधीत्यमन्त्रसंसिद्धि न प्राप्नोति न संशय ॥१३४
जातकर्मणि वा चौले तथा मौञ्जीनिबन्धने ।
चक्रस्य धारणं यत्र भवेत्तस्य तु तत्र वै ॥१३५
उपनीय गुरु शिष्यं गृह्योक्तविधिना तत ।
अध्यापयेत्त सावित्रं तपोमन्त्र द्वयं शुभम् ॥१३६
प्राप्तमन्त्र स्तत शिष्य पूजयेच्छ्रद्धया गुरुम् ।
गोभूहिरण्यरत्नाद्यै वासोभिर्भूषणैरपि ॥१३७
सद्वृत्तं शासयेच्छिष्यमाचार्य संशितव्रत ।
स्वरूपं साधनं भाव्यं मन्त्रेणास्मै निवेदयेत् ॥१३८
द्वयेन वृत्तियाथात्म्यं सम्यगस्मै निवेदयेत् ।
आचार्याधीनवृत्तिस्तु सयतस्तु वसेत् सदा ॥१३९

कर्मणा मनसा वाचा हरिमेव भजेत् सुधीः।
यावच्च तीरपातन्तु द्वयमावर्त्तयेत्सदा ॥१४०
एवं हि विधिना सम्यङ्मन्त्रसंस्कारसंकृतः ॥१४१

इति मन्त्रसंस्कारश्चतुर्थः।

## अथ पञ्चसंस्कारविधिनामवर्णनम्।

मन्त्रार्थतत्वविदुषं यागतन्त्रे नियोजयेत्।
पूर्वाह्णे पूजयेद्देवं तस्य प्रियतरं शुभः ॥१४२
मन्त्ररत्नविधानेन गन्धपुष्पादिभिर्गुरुः।
अर्चयित्वाच्युतं भक्त्या होमं पूर्ववदाचरेत् ॥१४३
सर्वैश्च वैष्णवैः सूक्तैः पायसं घृतमिश्रितम्।
आज्यं मन्त्रेण होतव्यं शतमष्टोत्तरं तदा ॥१४४
शक्त्या च वैष्णवैर्मन्त्रैः सर्वैर्होमं समाचरेत्।
एकैकमाहुतिं हुत्वा सर्वावरणदेवता ॥१४५
प्रणवादिचतुर्थ्यन्तैः स्तेषां वै नामभिर्यजेत्।
होमशेषं समाप्याथ वैष्णवान् भोजयेत्तदा ॥१४६
मन्त्ररत्नेन तद्बिम्बं पुष्पाञ्जलिशतं यजेत्।
प्रणम्य भक्त्या देवेशं जप्त्वा मन्त्रमनुत्तमम् ॥१४७
आहूय प्रणतं शिष्यं तद्बिम्बं दर्शयेद्गुरुः।
कृपयाथ ततस्तस्मै दद्यद्बिम्बं हरेर्गुरुः ! ॥१४८

एवं रक्ष जगन्नाथ! केवलं कृपया तव।
अर्चनं यत्कृतं तेन विभो! स्वीकर्तुमर्हसि ॥१४९
एवं लब्ध्वा गुरोर्बिम्बं पूजयेत्तं प्रयत्नतः।
हिरण्यवस्त्राभरणयानशय्यासनादिभिः ॥१५०
ततः प्रभृति देवेशमर्चयेद्विधिना सदा।
श्रौतस्मार्तागमोक्तानां ज्ञात्वाऽन्यतममच्युतम् ॥१५१

इति वृद्धहारीतस्मृत्यां विशिष्टधर्मशास्त्रे पञ्चसंस्कार-
विधानं नाम द्वितीयोऽध्यायः।

---

॥ तृतीयोऽध्यायः ॥

अथ भगवन्मन्त्रविधानवर्णनम्।

अम्बरीष उवाच।

भगवन्! सर्वमन्त्राणां विधानं मम सुव्रत!।
ब्रूहि सर्वमशेषेण प्रयोगं सार्थसंक्रमम् ॥१

हारीत उवाच।

शृणु राजन्! प्रवक्ष्यामि मन्त्रयोगमनुत्तमम्।
यथोक्तं विष्णुना पूर्वं ब्रह्मणा परमात्मना ॥२
सर्वेषामेव मन्त्राणां प्रथमं गुह्यमुत्तमम्।
मन्त्ररत्नं नृपश्रेष्ठ! सद्यो मुक्तिफलप्रदम् ॥३

सर्वैश्वर्यप्रदं पथ्यं सर्वेषां सर्वकामदम्।
यस्योशारणमात्रेण परितुष्टो भवेद्धरिः ॥४
देशकालादिनियममरिमित्रादिशोधनम्।
स्वरवर्णादिदोषश्च नैतस्य प्रणकं न तु ॥५
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथेतराः।
तस्याधिकारिणः सर्वे सत्वशीलगुणा यदि ॥६
पञ्चसंस्कारसम्पन्नाः श्रद्धावन्तोऽनसूयकाः।
भक्त्या परमयाविष्टा युक्तास्तस्याधिकारिणः ॥७
पञ्चविंशाक्षरो मन्त्रः पदैः षड्भिः समन्वितः।
वाक्यद्वयं परं श्रेयं मन्त्ररत्नमनुत्तमम् ॥८
यदाश्रयति विद्यादिः संश्रितां जगतां पतिम्।
तया विद्याऽनपायिन्या संयुतः परमः पुमान् ॥९
नारायणोऽच्युतः श्रीमान् वात्सल्यगुणसागरः।
नाथः सुशीलः सुलभः सर्वज्ञः शक्तिमान् परः ॥१०
आपद्बन्धुः सदा मित्रं परिपूर्णमनोरथः।
दयासुधाब्धिः सविता वीर्यवान् द्युतिमान् विभुः ॥११
प्रपद्ये चरणौ तस्य शरणं श्रेयसे मम।
श्रीमते विष्णवे नित्यं सर्वावस्थासु सर्वदा ॥१२
निर्ममो निरहङ्कारः कैङ्कर्यं करवाण्यहम्।
एवमर्थं विदित्वैव पश्चान्मन्त्रं प्रयोजयेत् ॥१३
नारायणो महाशब्दो गायत्री च परा शुभा।
स्वयं नारायणः श्रीमान् देवता समुदाहृतः ॥१४

करयो स्तलयोराद्य मक्षरं विन्यसेद् द्विजः ।
शेषाक्षराणि देयानि चतुर्विंशतिपर्वसु ॥१५
पदपदैरङ्गुलिन्यास मङ्गेषु च यथाक्रमम् ।
षडङ्ग षट्पदे कृत्वा मन्त्रार्थञ्च यथाक्रमम् ॥१६
मूर्ध्नि भाले नेत्रनासाश्रवणेषु तथाऽऽनने ।
भुजयोर्हृदयदेशेच स्तनयोर्नाभिमण्डले ॥१७
पृष्ठे च जघने कट्योरुर्वोर्जान्वोश्च पादयोः ।
पञ्चविंशाक्षराण्यस्य क्रमेणाङ्गेषु विन्यसेत् ॥१८
एवं न्यासविधिं कृत्वा पश्चाद्ध्यानं समाचरेत् ।
इन्दीवरदलश्यामं कोटिसूर्याग्निवर्चसम् ॥१६
चतुर्भुजं सुन्दराङ्गं सर्वाभरणभूषितम् ।
पद्मासनस्थं देवेशं पुण्डरीकनिभेक्षणम् ॥२०
रक्तारविन्दमदशादिव्यहस्तपदाञ्चितम् ।
माणिक्यमुकुटोपेतं नीलकुन्तलशोभितम् ॥२१
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं वनमालाविराजितम् ।
दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गं दिव्यपुष्पावतंसकम् ॥२२
हारकुण्डलकेयूरनूपुरादि विराजितम् ।
कटकैरङ्गुलीयैश्च पीतवस्त्रेण शोभितम् ॥२३
शङ्खचक्रगदाचक्रपाणिनं पुरुषोत्तमम् ।
वामाङ्के चिन्तयेत्तस्य देवीं कमललोचनाम् ॥२४
तरुणीं सुकुमाराङ्गीं सर्वलक्षणशोभिताम् ।
दुकूलवस्त्रसंयुक्ता सर्वाभरणभूषिताम् ॥२५

तप्तकाञ्चनसङ्काशां पीनोन्नतपयोधराम् ।
रत्नकुण्डलसंयुक्तां नीलकुन्तलशीर्षजाम् ॥२६
दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गीं दिव्यपुष्पावतंसकाम् ।
मातुलिङ्गं च रक्ताब्जं दर्पणं वरदं तथा ॥२७
देवी च बिभ्रती दोर्भिश्चिन्तयेद्विष्णुं सदा ।
एवं ध्यात्वा परं नित्यमर्चयेदच्युतं द्विजः ॥२८
यथात्मनि तथा देवे न्यासकर्म समाचरेत् ।
अर्चयेदुपचारैश्च मनसा वा जनार्दनम् ॥२९
आवाहनासने पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् ।
स्नानं वस्त्रोपवीते च भूषणं गन्धमेव च ॥३०
पुष्पं धूपं तथा दीपं नैवेद्यं च प्रदक्षिणम् ।
नमस्कारञ्च ताम्बूलं पुष्पमालां निवेदयेत् ॥३१
नमस्कृत्य गुरुन् पश्चाज्जपेन्मन्त्रं समाहितः ।
अष्टोत्तरसहस्रन्तु शतमष्टोत्तरं तथा ॥३२
ध्यायन्वै मनसा देवं जपेदेकाग्रमानसः ।
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि समासीनः कुशासने ॥३३
त्रिसन्ध्यासु जपेदेवं सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ।
आद्यन्ते जपस्यास्य प्राणायामान समाचरेत् ॥३४
पूरकः कुम्भको रेच्य प्राणायामस्त्रिलक्षणः ।
वामेन पूरयेद्वायुं वाह्यं नासा जपन्मनुम् ॥३५
उभाभ्यां धारणं वायोः कुम्भकं समुदाहृतम् ।
तद्रेचनं दक्षिणेन रेचनं समुदाहृतम् ॥३६

पर्यायेण पुनश्चैवं प्राणायामत्रयं क्रमात् ।
पूरके कुम्भके चैव रेचके च विशेषतः ॥३७
अष्टाविंशतिवारं तु जपेन् मन्त्रं समाहितः ।
उत्तमं मुनिभिः प्रोक्तं प्राणायामं नृपोत्तम ! ॥३८
अथ द्वादशवारं तु उत्तमं तत्प्रकीर्तितम् ।
पञ्चवारं तु कनीयः स्यात्रिवारं मधमं स्मृतम् ॥३९
मनसा वाथवेत्त्वं पश्चादर्थं विचिन्तयेत् ।
प्राणायामत्रयं कृत्वा पश्चान्न्यासं समाचरेत् ॥४०
स्नात्वा शुक्लाम्बरधरः कृत्वा सन्ध्यादिकर्म च ।
धृतोर्ध्वपुण्ड्रदेहश्च पवित्रकर एव च । ४१
धृत्वा पद्माक्षमालां च सन्निधा वासने स्थितः ।
भूतशुद्धिविधानञ्च कृत्वा मन्त्रं प्रयोजयेत् ॥४२
अष्टाक्षरस्य मन्त्रस्य गुरुर्नारायणः स्मृतः ।
छन्दश्च देवी गायत्री परमात्मा च देवता ।
जपश्चाष्टाक्षरो मन्त्रः सर्वपापप्रणाशनः ॥४३
सर्वदुःखहरः श्रीमान् सर्वकामफलप्रदः ।
सर्वदेवात्मको मन्त्रस्ततो मोक्षप्रदो नृणाम् ॥४४
ऋचो यजूंषि सामानि तथैवाथर्वणानि च ।
सर्वमष्टाक्षरान्तःस्थं तथान्यदपि वाङ्मयम् ॥४५
सर्वार्थो वेदगर्भश्च वेदाश्चाष्टाक्षरे स्थिताः ।
अष्टाक्षरस्तु प्रणवे अकारे प्रणवः स्थितः ॥४६

इह लौकिकमैश्वर्यं स्वर्गाद्यं पारलौकिकम् ।
कैवल्यं भगवत्त्वञ्च मन्त्रोऽयं साधयिष्यति ॥४७
सकृदुच्चारणान्नृणां चतुर्वर्गफलप्रदम् ।
स्वरूपं साधनं प्राप्यं ददाति हि समग्रसा ॥४८
महापापं चातिपापं विद्यते चोपपापकम् ।
जपादस्य मनोराज्ञ प्रणश्यन्ति न संशयः ॥४९
अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च ।
सकृदष्टाक्षरं जप्त्वा लभते नात्र संशयः ॥५०
गवामयुतदानस्य पृथिव्या मण्डलस्य च ।
कन्याशतसहस्रस्य गजाश्वानां तथैव च ॥५१
दानस्य यत्फलं नृणां सत्पात्रे नृपनन्दन ! ।
शतवारं मनुं जप्त्वा तत्फलं सर्वमाप्नुयात् ॥५२
सार्थं समुद्रं सन्न्यासं सर्षिच्छन्दोऽधिदैवतम् ।
अष्टाक्षरमनुं ज्ञात्वा विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥५३
पदत्रयात्मकं मन्त्रं यतु यो सहितं तदा ।
स्वरूपसाधनोपेयमिति मत्वा जपेद्ध्रुवः ॥५४
प्रणवेन स्वरूपं स्यात् साधनं मनसा तथा ।
सन्निभतया चतुर्थ्यात्र पुरुषार्थो भवेन्मनोः ॥५५
अकारश्चाप्युकारश्च मकारश्चेति तत्त्वतः ।
तान्येकधा समभवंस्तदोमित्येतदुच्यते ॥५६
तस्मादोमिति प्रणवो विज्ञेयः साक्षरात्मकः ।
वेदत्रयात्मकं ज्ञेयं भूर्भुवःस्वरितीति वै ॥५७

अकारस्तु भवेद्विष्णु स्त्वृग्वेद उदाहृतः ।
उकारस्तु भवेल्लक्ष्मीर्यजुर्वेदात्मको महान् ॥५८
मकारस्तु भवेज्जीव स्तयोर्दास उदाहृत ।
पञ्चविंशाक्षरः साक्षात् सामवेदस्वरूपवान् ॥५९
पञ्चविंशोऽयं पुरुषः पञ्चविंश आत्मेति श्रुतेः ।
आत्मा पञ्चविंशः स्यादिति मम त्मानं संस्मरेत् ॥६०
इत्यौपनिषदं ह्यर्थं विदित्वा स्वं निवेदयेत् ।
अवधारणमन्ये तु मध्यमार्णं वदन्ति हि ॥६१
तदेवाग्नि स्तदायु स्तत्सूर्य स्तदपि चन्द्रमाः ।
इत्येवं धारणश्रुतेरेवमेवोपदृ हितम् ॥६२
ङ(ओं)कारेणैव श्रीशब्दः प्रोच्यते मुनिसत्तमः ।
न्यायेन गुणसिद्धिस्तु तस्यैव श्रीपतेर्वरो ॥६३
श्रीरस्येशाना जगतो विष्णुपत्नीति वै श्रुतिः ।
कल्याणगुणसिद्धिस्तु लक्ष्मीभर्तुश्च नेतरा ॥६४
सामानाधिकरण्यस्यात्कारणत्वं तदोच्यते ।
अकार एव सर्वेषामक्षराणां हि कारणम् ॥६५
अकारो वै सर्वा वागित्यादि श्रुतिवच स्तथा ।
स्पर्शोष्मभिर्व्यज्यमानो नानाबहुविधोऽभवत् ॥६६
कारणत्वं तथैवास्य विष्णोर्वै जगतां पतेः ।
तस्मात् स्रष्टा च दाता च विधाता जगतां हरिः ॥६७
रक्षिता जीवलोकस्य गुणवानेव सर्वगः ।
अनन्या विष्णुना लक्ष्मी र्भास्करेण प्रभा यथा ॥६८

लक्ष्मीमनुपगामिनीमिति श्रुतिवचो महत् ।
तस्मादकारो वै विष्णुः श्रीश एव जगत्पतिः ॥६९
लक्ष्मीपतित्वं तस्यैव नान्यस्येति सुनिश्चितम् ।
नित्यैवैषा जगन्माता हरेः श्रीरनपायिनी ॥७०
यथा सर्वगतो विष्णु स्तथैवैषा जगन्मयी ।
तस्मादकारो वै विष्णुर्लक्ष्मीभर्ता जगत्पतिः ॥७१
तस्मिंश्चतुर्थीयुक्तत्वात् त्रिपदस्य च संग्रहः ।
अकार प्रथमा तस्माच्चतुर्थ्यां संग्रहं न तु ॥७२
तत्र श्रुतिविरोधत्वान्न युक्तमिति चोदितम् ।
महसे ब्रह्मणे त्वा वै ओमित्यात्मानं युञ्जीत ॥७३
परस्य चात्मनो तस्माद्भेद स्तत्र सुनिश्चितः ॥७४
इमस्माकं तपस्यैव श्रुत्युक्तमपि पार्थिव ! ।
तौ शाश्वतौ विपश्चिता वियन्तावित्ति वै तथा ॥७५
गृभिश्च दया प्रागेवग़त्मा न विश्वभृत् ।
असोयमर्त्यो मर्त्येन नयेनेत्यैरयोनिना ॥७६
इत्यादि श्रुतयो भेदं वदन्ति परजीवयोः ।
दास्यमेवात्मनां विष्णोः स्वरूपं परमात्मनः ॥७७
साम्यं लक्ष्मीवत्प्रोक्तं देवादीनां तथात्मनाम् ।
अनन्यशेषरूपा वै जीवास्तस्य जगत्पतेः ॥७८
दास्यं स्वरूपं सर्वेषामात्मनां सततं हरेः ।
भगवच्छेषमात्मानमन्यथा यः प्रपद्यते ॥७९

अस्वातन्त्र्यात्तु जीवानामधीनं परमात्मनः।
नमसा प्रोच्यते तस्मान्मदन्ताममतोऽर्पितम् ॥९०
स्वरूपादित्रिवर्गस्य संसिद्धिर्नतु सैव हि।
नमसा रहितं सर्वं विफलं सम्प्रकीर्तितम् ॥९१
नमसैव हि संसिद्धिर्भवेदत्र न संशयः।
पुरतः पृष्ठतश्चैव पार्श्वतश्चापरोपत ॥९२
नमसैक्ष्यते राजन्! त्रिवर्गः सर्वदेहिनाम।
मकारेण स्वतन्त्रः स्यान्नस्तं निषिध्यति ॥९३
तस्माच्च नम इत्यत्र स्वातन्त्र्यमपनोदति।
द्व्यक्षरस्तु भवेन्मृत्युस्त्र्यक्षरस्तु हि शाश्वतम् ॥९४
ममेति द्व्यक्षरं मृत्युर्न ममेति तु शाश्वतम्।
न ममेति च सर्वत्र स्वातन्त्र्यरहितस्य वै ॥९५
युज्यते मुनिभिः सम्यक् सर्वकर्मसु पार्थिव!।
तस्मात्तु नमसा युक्ता मन्त्राः सर्वे च पार्थिव! ॥९६
सर्वसिद्धिप्रदा नृणां भवन्त्यत्र न संशयः।
नमसा रहिता ये तु न तु मुक्तिप्रदा नृणाम् ॥९७
तस्मात् नमसैवैषां पारतन्त्र्यत्वमीशितुः।
पारतन्त्र्याद्धि मे सिद्धिं स्वातन्त्र्यान्नाशमेष्यति ॥९८
दास्यमेव हि जीवानां प्रोच्यते नमसैव तु।
नमसा रहितं लोके किञ्चिदत्र न विद्यते ॥९९
नमो देवेभ्यो नम इति येषामीशो तथा मनः।
इत्यश्चिदेनो नमसा आविवासेति वै श्रुतिः ॥१००

क्षयैरकारः सम्प्रोक्तो नकारस्तं निषिध्यति ।
तस्मात्तु नर इत्यत्र नित्यत्वेनोच्यते जनः ॥१०१
नारा इति समूहत्वे बाहुल्यत्वाज्जनस्य च ।
तेषामयनमावासस्तेन नारायणः स्मृतः ॥१०२
महाभूतान्यहङ्कारो महदव्यक्तमेव च ।
अण्डं तदन्तर्गता ये लोकाः सर्वे चतुर्दश ॥१०३
चतुर्विधशरीराणि काल कर्मेति च जगत् ।
प्रवाहरूपेणैवैषा नारत्वेनोच्यते बुधैः ॥१०४
तेषामपि निवासत्वान्नारायण इतीरितः ।
अन्तर्बहिश्च जगतो धाता स च सनातनः ॥१०५
स्रष्टा नियन्ता शरणं विधाता भूतभावनः ।
माता पिता सखा भ्राता निवासश्च सुहृद्गतिः ॥१०६
योनौ श्रियः श्री परमस्तेन नारायण स्मृतः ।
नराणां सर्वजगतामयनं शरणं हरिः ॥१०७
तस्मान्नारायण इति मुनिभिः सम्प्रकीर्त्यते ।
सर्वेषु देशकालेषु सर्वावस्थासु सर्वदा ॥१०८
तस्यैव किङ्करोऽस्मीति चतुर्थ्यां परमात्मन ।
भगवत्परिचर्यैव जीवाना फलमुच्यते ॥१०९
तद्विना किं शरीरेण यातनास्य जनस्य तु ।
यस्मिन् शरीरे जीवानां न दास्यं परमात्मनः ॥११०
तदेव निरयं प्रोक्तं सर्वदुःखफलं भवेत् ।
दास्यमेव फलं विष्णोर्दास्यमेव परं सुखम् ॥१११

दास्यमेव हरेर्मोक्षं दास्यमेव परं तपः ।
ब्रह्माद्याः सकला देवा वशिष्ठाद्या महर्षयः ।
काङ्क्षन्तः परमं दास्यं विष्णोरेव यजन्ति तम् ॥११२
तस्माच्चतुर्थ्या मन्त्रस्य प्रधानं दास्यमुच्यते ।
न दास्यवृत्ति र्जीवानां नाशहेतु परस्य हि ॥११३
इत्थं सञ्चिन्त्य मन्त्रार्थ जपेन्मन्त्रमतन्द्रितः ।
अविदित्वा मनोरर्थं जपेत् प्रयतमानसः ॥११४
न संसिद्धिमवाप्नोति स्वरूपञ्च न विन्दति ।
संसारञ्च समुद्रञ्च सर्पिचण्डोऽधि दैवतम् ॥११५
साद्धं स यक्षं सद्ध्यानं मन्त्रमेव प्रपूजयेत् ।
नारायणार्प गायत्री दैवी चन्द्रोऽधिदेवता ॥११६
परमात्मा च लक्ष्मीशो विष्णुरेवाच्युतो हरिः ।
प्रणवस्तु भवेद्वीजं चतुर्थी शक्तिरुच्यते ॥११७
क्रुद्धोल्काय महोल्काय विष्णूल्काय तथैव च ।
ज्वालकाय सहस्रोल्काय पञ्चाङ्गो न्यास उच्यते ॥११८
हृन्मूर्ध्नाश्च शिखायाञ्च कवचो नेत्रयोर्न्यसेत् ।
पञ्चाङ्गन्यासमित्युक्तं सर्वमन्त्रेषु वैष्णवैः ॥११९
यदा त्रयेण कुर्वीत षडङ्गं तु यथाक्रमम् ।
मूर्ध्न्यानने च हृदये भुजयोर्जघने तथा ॥१२०
पृष्ठे च जान्वो पदयोर्मन्त्रार्णानि यदा न्यसेत् ।
अष्टाक्षराण्यष्टदिक्षु क्रमेण तदनन्तरम् ॥१२१

दूर्वाभिर्जुहुयात्तद्वद्भवेद्भूमिमभीप्सितम् ।
राज्यकामो जपेन्नित्यं षडर्ध्दं ह्ययुतं तथा ॥१४४
सहस्रं जुहुयान् नित्यं पायसं घृतमिश्रितम् ।
चक्रवर्ती भवेत् सद्य पद्माभर्तुः प्रसादतः ॥१४५
द्वादशार्द्धं जपेदेवं सततं विजितेन्द्रियः ।
आत्महोमो तु यो नित्यमिन्द्रत्वं लभते न र ॥१४६
लक्षञ्जपेद्य यो नित्यं त्रिंशद्वर्षं जितेन्द्रियः ।
ब्रह्मत्वं वा शिवत्वं वा समाप्नोति न संशयः ॥१४७
यावज्जीवं तु यो नित्यमयुतं सुसमाहितः ।
सहस्रं वा शतं वापि होतव्यं वह्निमण्डले ॥१४८
आज्येन चरुणा वापि तिलैर्वा शर्करान्वितैः ।
पद्मैर्वा बिल्वपत्रैर्वा समिद्भिः पिप्पलस्य वा ।
कोमलैस्तुलसीपत्रैरर्चयित्वा सनातनम् ॥१४९
अनन्तविहगेशाना क्षिप्रमन्यतमो भवेत् ।
किमत्र बहुनोक्तेन सर्वसिद्धिप्रदो नृणाम् ॥१५०
श्रीमदष्टाक्षरो मन्त्रो नित्यप्रियतमो हरेः ।
आसीनो वा शयानो वा तिष्ठन्वा यत्र कुत्रचित् ॥१५१
जपेदष्टाक्षरं मन्त्रं तस्य विष्णु प्रसीदति ।
संस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥१५२
अमितः सर्वदेवानां यो जपेत्सततं मनुम् ।
ब्रह्मघ्नो वा कृतघ्नो वा महापापयुतोऽपि वा ॥१५३

अष्टाक्षरस्य जप्तारं दृष्ट्वा पापैः प्रमुच्यते ।
अष्टाक्षरस्य जप्तारो यथा भागवतोत्तमाः ॥१५४
पुनन्ति सकलं लोकं सदेवासुरमानुषम् ।
अष्टाक्षरस्य जप्तारं प्रणमेद्यस्तु भक्तितः ॥१५५
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ।
अचिन्त्यमेतन्माहात्म्यं मनोरस्य जगत्पतेः ॥१५६
न हि वक्तुं मया शक्यं ब्रह्मादित्रिदशैरपि ।
अथ वक्ष्यामि माहात्म्यं द्वादशार्णस्य पार्थिव ।॥१५७
यस्योच्चारणमात्रेण द्वादशाब्दफलं लभेत् ।
नमो भगवते नित्यं वासुदेवाय शार्ङ्गिणे ॥१५८
प्रणवेन समायुक्तं द्वादशार्णमनुं जपेत् ।
पूर्वत्प्रणवस्यार्थं नमसश्च महामनो ॥१५९
ऐश्वर्यं च तथा वीर्यं तेजः शक्तिरनुत्तमा ।
ज्ञानं बलं यदेतेषां षण्णां भगवदीरितः ॥१६०
एभिर्गुणैः पूर्णवाच्यः स एव भगवान् हरिः ।
नित्या च या भगवती प्रोच्यते मुनिसत्तमैः ॥१६१
ऐश्वर्यरूपा सा देवी सुभगा कमलालया ।
ईश्वरी सर्वजगतां विष्णुपत्नी सनातनी ॥१६२
तस्याः पतित्वा धीशस्य भगवानिति चोच्यते ।
तस्मात्तु भगवान् श्रीमानेकार्थो मुनिभिः स्मृतः ॥१६३
भगवानिति शब्दोऽयं तथा पुरुषइत्यपि ।
निरुपाधौ च वर्तेत वासुदेवेऽखिलात्मनि ॥१६४

वक्ष्यन्ति केचिद्भगवान् ज्ञानवानिति सत्तमाः।
तद्वासुदेवेनोक्तं स्यात्सामान्यत्वात्ततोऽन्यथा ॥१६५
तस्मात्कल्याणगुणवान् श्रीमान् योऽसौ जगत्पतिः।
स एव भगवान् विष्णुर्वासुदेवः सनातनः ॥१६६
भगवते श्रीमते चेत्येकार्थे हि प्रोच्यते बुधैः।
गुणवान् भगवानेव सृष्टिस्थिति विनाशकृत् ॥१६७
द्वौ द्वौ गुणावधिष्ठाय सर्वाश्रम करोत्प्रभुः।
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च सङ्कर्षण इतीरितः ॥१६८
भगवान् वासुदेवोऽसौ सृष्ट्याद्यमकरोत् स्वयम्।
ऐश्वर्यवीर्यवान् सर्गे प्रद्युम्न पर्यपद्यत ॥१६६
तेज शक्ति समाविश्य अनिरुद्धो ह्यपालयत्।
बलज्ञाने तथा द्वे तु सङ्कर्षणो ह्यधिष्ठितः ॥१७०
अकरोद्भगवानेव संहारं जगतः पुन.।
एवं षड्गुणपूर्णत्वात् पतित्वात्त्वपि च श्रियः ॥१७१
सर्गादे. कारणत्वाच्च भगवानिति चोच्यते।
सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः ॥१७२
ततः स वासुदेवेति विद्वद्भिः परिपठ्यते।
चतुर्थी पूर्वसिद्धित्वात् कैङ्कर्यार्थं महात्मनः ॥१७३
एवं ज्ञात्वा मनोरथं द्वादशार्णस्य चक्रिणः।
संसिद्धिं परमाप्नोति सम्यगावर्त्य चेतसा ॥१७४
गत्वा गत्वा निवर्तन्ते सर्वक्रतुफलैरपि।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते द्वादशाक्षरचिन्तका ॥१७५

द्वादशार्णं सकृज्जप्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
ब्रह्महत्यादिपापानि तत्संसर्गकृतानि च ॥१७६
द्वादशार्णं मनोर्जप्तु देहत्र्यमिरिवेन्धनम् ।
सर्वसौभाग्यसुखदं पुत्रपौत्राभिवर्द्धनम् ॥१७७
सर्वकामप्रदं नृणामायुरारोग्यवर्द्धनम् ।
देवत्वममरेशत्वं शिवब्रह्मत्वमेव च ॥१७८
द्वादशार्णं मनुं जप्त्वा समाप्नोति न संशयः ।
दुराचारोऽपि सर्वाशी कृतघ्नो नास्तिकोऽपि वा ॥१७९
द्वादशार्णमनुं जप्त्वा विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।
प्रजापतिः कश्यपश्च मनुः स्वायम्भुवस्तथा ॥१८०
सप्तर्षयो प्रवक्ष्यन्ते ऋषयस्तस्य कीर्तिताः ।
वशिष्ठः कश्यपोऽत्रिश्च विश्वामित्रश्च गौतमः ॥१८१
जमदग्निर्भरद्वाजस्त्वेते सप्तमहर्षयः ।
भगवान् वासुदेवो वै देवतास्य प्रकीर्तित· ॥१८२
छन्दश्च परमा दैवी गायत्री समुदाहृता ।
साधकानां सदा राजन् कामधेनुरितीरितः ॥१८३
दशाङ्गुलीषु तलयोर्द्वादशार्णानि विन्यसेत् ।
पदैश्चतुर्भिरङ्गेषु विन्यसेत्तदनन्तरम् ॥१८४
चतुरङ्गेषु विन्यस्य मन्त्रेणोत्तरयोर्द्वयोः ।
मूर्ध्न्यास्यनेत्रयोर्नासाकर्णयोर्भुजयो स्तथा ।
हृदि कुक्षौ तथा गुह्ये ऊर्वोर्जान्वोश्च पादयोः ॥१८५

मन्त्राणांनि तु नित्यस्य क्रमेणैव नृपोत्तम ।
अचक्राय निचक्राय सुचक्राय तथैव च ॥१८६
तथा त्रैलोक्यचक्राय महाचक्राय वै तथा ।
असुरान्तक्चक्राय स्वहान्तं प्रणवादिकम् ॥१८७
हृदयादिषडङ्गेषु यथाशास्त्रं प्रयोजयेत् ।
क्षीराब्धौ शेषपर्यङ्के समासीनं श्रिया सह ॥१८८
नीलजीमूतसङ्काशं तप्तकाञ्चनभूषणम् ।
पीताम्बरधरं देवं रक्ताब्जदललोचनम् ॥१८९
दीर्घैश्चतुर्भिर्दोर्भिश्च सर्वाभरणभूषितैः ।
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गान् बिभ्राण परमेश्वरम ॥१९०
नानाकुसुमसम्बद्धनीलकुन्तलशीर्षजम् ।
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं वनमालाविभूषितम् ॥१९१
समाश्लिष्टं श्रिया दिव्या पद्मया पद्महस्तया ।
स्तूयमानं विमानस्थैर्देवगन्धर्वकिन्नरैः ॥१९२
मुनिभि सनकाद्यैश्च सेवितश्च सुरर्षिभि ।
एवं ध्यात्वा हरिं नित्यं जपेन्मन्त्रं समाहितः ॥१९३
अर्चयित्वा हृषीकेशं सुगन्धकुसुमै सदा ।
शालग्रामादिकस्थाप्यर्चस्मानं जपेद् बुधः ॥१९४
जपित्वा दशसाहस्रं यावज्जीवं समाहित ।
वैष्णवं पदमाप्नोति पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥१९५
आयुष्कामो जपेन्नित्यं वत्सरं निर्जितेन्द्रिय ।
संख्या द्वादशसाहस्रं होमं तिलसहस्रकम् ॥१९६

लभेतांऽऽयुः शतसमा दुःखरोगविवर्जितम् ।
विवाहकामी षण्मासं जपेन्नित्यं जितेन्द्रियः ॥१९७
आज्यहोमी सहस्रन्तु लभेत्कन्यां सुलक्षणाम् ।
सम्पत्कामो जपेन्नित्यं वत्सरन्तु सहस्रशः ॥१९८
साज्यैश्च व्रीहिभिर्होमी सहस्रं श्रियमाप्नुयात् ।
राज्यमिन्द्रपदं चापि शिवत्वं ब्रह्मतामपि ॥१९९
बहुकालं बिल्वपत्रैः कमलैर्वा जपेन्मनुम् ।
जुहुयाच्च जपेन्नित्यं तत्तत्प्राप्नोत्यसंशयम् ॥२००
यं यं कामयते चित्ते तत्र तत्र नृपोत्तम ! ।
जुहुयान्मालतीपुष्पैर्युतं विजितेन्द्रियः ॥२०१
तां तां सिद्धिमवाप्नोति पदं चाप्नोति वैष्णवम् ।
द्वादशार्णेन मनुना पक्षे पक्षे द्विजोत्तमः ॥२०२
द्वादश्यां पूजयेद्विष्णुं कोमलैस्तुलसीदलैः ।
विष्णुतुल्य वपुः श्रीमान् ! मोदते परमे पदे ॥२०३
द्वादशार्णमनोरेवंविधानं प्रोच्यते नृप ! ।
अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि षडक्षरमनोरिदम् ॥२०४
विधानं सर्वफलदं जन्ममृत्युविकृन्तनम् ।
ओंनमो विष्णवे चेति षडक्षर मुदाहृतम् ॥२०५
पूर्वप्रणवस्यार्थं नमःशब्द उदाहृतः ।
व्याप्तत्वाद्व्यापकत्वाच्च विष्णुरित्यभिधीयते ॥२०६
सदैकरूपरूपत्वात् सर्व्वात्मत्वाद्विमुक्ततः ।

स्यादोम्बीजं नमः शक्तिर्मनोरस्य प्रकीर्तितम् ।
त्रिभिः पदैः षडङ्गेषु यथासंख्यं सुविन्यसेत् ॥२१८
अङ्गुलीष्वपि चाङ्गेषु मन्त्रार्णानि यथाक्रमात् ।
मूर्ध्न्यास्ये हृदये बाह्वोः पृष्ठे गुह्ये यथाक्रमम् ॥२१९
विन्यस्य चक्रन्यासं च पश्चाद्ध्यानेषु तन्मयम् ।
प्रणवेनोन्मुखीकृत्य हृत्पङ्कजमधोमुखम् ॥२२०
विकासयेच्च मन्त्रेण विमलं तस्य केशरम् ।
तस्योपरि च वह्न्यर्कसोमबिम्बानि चिन्तयेत् ॥२२१
तत्र रत्नमयं पीठं तन्मध्येऽष्टदलाम्बुजम् ।
तस्मिन् कोटिशशाङ्काभं सर्वलक्षणलक्षितम् ॥२२२
चतुर्भुजं सुन्दराङ्गं युवानं पद्मलोचनम् ।
कोटिकन्दर्पलावण्यं नीलभ्रूलतिकालकम् ॥२२३
श्लक्ष्णनासं रक्तगण्डं विम्बितोज्ज्वलकुण्डलम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मधारणं दोर्भिरुज्ज्वलैः ॥२२४
केयूराङ्गदहाराद्यै र्भूषणैश्चन्दनैरपि ।
अलङ्कृतं गन्धपुष्पै रक्तहस्तं हृत्पिपङ्कजम् ॥२२५
मुक्ताफलाभद्रःशालि वनमालाविभूषितम् ।
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं दिव्यपीताम्बरं हरिम् ॥२२६
तप्तकाञ्चनवर्णाभं पद्मया पद्महस्तया ।
समाश्लिष्टमभुं देवं ध्यात्वा विष्णुमयो भवेत् ॥२२७
मनसैवोपचाराणि कृत्वा मन्त्रं जपेत्ततः ।
त्रिसन्ध्यासु जपेन्नित्यं सहस्रं साष्टकं द्विजः ॥२२८

विष्णोर्लोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिवर्जितम् ।
पूर्वं दशपदं होमाद्यं कृत्वा सिद्धिं नरो लभेत् ॥२२९
भगवत्सन्निधौ वापि तुलसीकाननेऽपि वा ।
तदाहितमना जप्त्वा पदशो नियतेन्द्रियः ॥२३०
तिलहोमायुतं कृत्वा सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ।
एवं विष्णुमनोः प्रोक्तं विधानं नृपसत्तम ! ॥२३१
विधानेनाधुनाऽमुष्य मन्त्रस्यापि ब्रवीमि ते ।
षडक्षरं दाशरथेस्तारकब्रह्म कथ्यते ॥२३२
सर्वैश्वर्यप्रदं नृणां सर्वकामफलप्रदम् ।
एतमेव परं मन्त्रं ब्रह्मरुद्रादिदेवताः ॥२३३
ऋषयश्च महात्मानो मुक्ता जप्त्वा भवाम्बुधौ ।
एतन्मन्त्रमगस्त्यस्तु जप्त्वा रुद्रत्वमाप्नुयात् ॥२३४
ब्रह्मत्वं काश्यपो जप्त्वा कौशिकस्त्वमरेशताम् ।
कार्त्तिकेयो मनुश्चैव इन्द्राग्नी गिरिनारदौ ॥२३५
वालखिल्यादिमुनयो देवतात्वं प्रपेदिरे ।
एष वै सर्वलोकानामैश्वर्यस्यैव कारणम् ॥२३६
इममेव जपेन्मन्त्रं रुद्रस्त्रिपुरघातकः ।
ब्रह्महत्यादिनिर्मुक्तः पूज्यमानोऽभवत् सुरैः ॥२३७
अद्यापि काश्यां रुद्रस्तु सर्वेषां त्यक्तजीविनाम् ।
दिशत्येतन्महामन्त्रं तारकब्रह्मनामकम् ॥२३८
तस्य श्रवणमात्रेण सर्व एव दिवं गताः ।
श्रीरामाय नमो ह्येष तारकब्रह्मनामकः ॥२३९

नाम्नो विष्णोः सहस्राणां तुल्य एव महामनुः ।
अनन्तो भगवन्मन्त्रो नानेव तु समाः कृताः ।
श्रियो रमणसामर्थ्यात्सौकर्यगुणगौरवात् ॥२४०
श्रीराम इति नामेदं तस्य विष्णोः प्रकीर्तितम् ।
रमया नित्ययुक्तत्वाद्राम इत्यभिधीयते ॥२४१
रकारमैश्वर्यबीजं मकारस्तेन संयुतः ।
अवधारणयोगेन रामेत्यस्मान्मनोः स्मृतः ॥२४२
शक्तिः श्री रुच्यते राजन् ! सर्व्वाभीष्टफलप्रदा ।
श्रियो मनोरमो योऽसौ स राम इति विश्रुतः ॥२४३
चतुर्थ्या नमसश्चैव सोऽर्थः पूर्ववदेव हि ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च अगस्त्याद्या महर्षयः ॥२४४
छन्दश्च परमा देवी गायत्री समुदाहृता ।
श्रीरामो देवता प्रोक्तः सर्वैश्वर्यप्रदो हरिः ॥२४५
अङ्गुलीष्वपि चाङ्गेषु न्यासकर्माद्यबीजतः ।
मूर्ध्न्यास्ये हृदये पृष्ठे गुह्ये चरणयो स्तथा ॥२४६
वैष्णवाद्य गुरोः पञ्चसंस्कारविधिपूर्वकम् ।
अधीत्य मन्त्रं विधिना पश्चाद्देवं जपेद्बुधः ॥२४७
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथेतराः ।
मन्त्राधिकारिणः सर्वे ह्यनन्यशरणा यदि ॥२४८
स्नानादिकृतकृत्यः सन्नूर्ध्वपुण्ड्रः पवित्रधृन् ।
कृष्णाजिने समासीनः प्राणायामी च न्यासकृत् ॥२४९

ध्यायेत्कमलपत्राक्षं जानकीसहितं हरिम्।
नैव ध्यानं प्रकुर्वीत विग्रहे सति शार्ङ्गिणः ॥२५०
चन्दनागुरुकर्पूरवासिते रत्नमण्डपे।
वितानैः पुष्पमालाद्यैः धूपैर्दिव्यैर्विराजिते ॥२५१
तन्मध्ये कल्पवृक्षस्य छायायां परमासने।
नानारत्नमये दिव्ये सौवर्णे सुमनोहरे ॥२५२
तस्मिन् बालार्कसङ्काशे पङ्कजेऽष्टदले शुभे।
वीरासने समासीनं वामाङ्काश्रितसीतया ॥२५३
सुस्निग्धशाद्वलश्यामं कोटिवैश्वानरप्रभम्।
युवानं पद्मपत्राक्षं कनकाम्बरशोभितम् ॥२५४
सिंहस्कन्धातुलांसं कम्बुग्रीवं महाहनुम्।
पीनवृत्तायतस्निग्धमहाबाहुचतुष्टयम् ॥२५५
विशालवक्षसं रक्तहस्तपादतलं शुभम्।
बन्धूकस्मितमुक्ताभदन्तौष्ठद्वयशोभितम् ॥२५६
पूर्णचन्द्राननं स्निग्धं भ्रूयुगं घननासिकम्।
रम्भोरुद्वयमानीलकुन्तलं स्मितचन्दनम् ॥२५७
तरुणादित्यसङ्काशकुण्डलाभ्यां विराजितम्।
हारकेयूरकटकैरङ्गुलीयैश्च भूषणैः ॥२५८
श्रीवत्सकौस्तुभाभ्याञ्च वैजयन्त्या विभूषितम्।
हरिचन्दनलिप्ताङ्गं कस्तुरीतिलकाञ्चितम् ॥२५९
शङ्खचक्रधनुर्बाणान् बिभ्राणं दोर्भिरायतैः।
वामाङ्के सुस्थितां देवीं तप्तकाञ्चनसन्निभाम् ॥२६०

पद्माक्षीं पद्मवदनां नीलकुञ्चितशीर्षजाम्।
आढ्ययौवनां नित्यां पीनोन्नतपयोधराम् ॥२६१
दुकूलवस्त्रसम्वीतां भूषणैरुपशोभिताम्।
भज तां कामदां पद्महस्तां सीतां विचिन्तयेत् ॥२६२
लक्ष्मणं पश्चिमे भागे धृतच्छत्रं महाबलम्।
पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ बालव्यजनपाणिनौ ॥२६३
अग्रतस्तु हनूमन्तं बद्धाञ्जलिपुटं तथा।
सुग्रीवं जाम्बवन्तञ्च सुषेणञ्च विभीषणम् ॥२६४
नीलं नलञ्चाङ्गदञ्च ऋषभं दिक्षु पूजयेत्।
वशिष्ठो वामदेवश्च जाबालिरथ कश्यपः ॥२६५
मार्कण्डेयश्च मौद्गल्य स्तथा पर्वतनारदौ।
द्वितीयावरणं प्रोक्तं रामस्य परमात्मनः ॥२६६
धृष्टिर्जयतो विजयः सुराष्ट्रो राष्ट्रवर्धनः।
अशोको धर्मपालश्च सुमन्तुश्चाष्टमन्त्रिणः ॥२६७
तृतीयावरणं तस्य तत्र चन्द्रादिदेवताः।
कुमुदाद्याश्च चण्डाद्या विमाने चान्तरीयकाः ॥२६८
एवं भ्रातरा जगन्नाथं पूजयेन्मनसाऽपि वा।
षट्सहस्रं जपेन्मन्त्रं जुहुयाच्च सहस्रकम् ॥२६९
जुहुयाच्छक्त्या वापि शतं पुष्पाञ्जलिं न्यसेत्।
एवं संपूज्य देवेशं यावज्जीवमतन्द्रितः ॥२७०
तद्देहपतने तस्य सारूप्यं परमे पदे।
विद्या स्त्री राज्यवित्ताद्यं यं यं कामयते हृदि ॥२७१

सकृद् (कृषि) भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः।
उभयो सङ्गतिर्यत्र तद्ब्रह्मेत्यभिधीयते ॥२६४
णकारश्च षकारश्च बलप्राणा वुभौ स्मृतौ।
आत्मन्येतौ समायुक्तौ जगतोऽस्यापि कृष्णतः ॥२६५
तस्मात् कृष्णेति मन्त्रोऽयं वाचकः परमात्मनः।
कृष्णेति परमो मन्त्र. सर्ववेदाधिकः स्मृत ॥२६६
श्रिय सत प्राणपदात् श्रीकृष्ण इति वै स्मृतः।
एवमर्थं विदित्वैव पश्चान्मन्त्रं जपेद्बुध. ॥२६७
सर्वकामप्रदत्वाच्च बीजं कान्दर्पमुच्यते।
नित्यानपाया श्रीशक्तिर्मणोरस्य प्रयुज्यते ॥२६८
देवर्षि र्नारदस्तस्य गायत्री छन्द उच्यते।
देवता रुक्मिणी भर्त्ता कृष्ण. सर्वफलप्रदः ॥२६९
पूर्ववद्विधिना मन्त्रं गृहीत्वा वैष्णवाद्गुरोः।
स्नानवस्त्रादिभि. शुद्ध कृत्य कृष्णोर्ध्वपुण्ड्रधृत् ॥३००
तुलसीकानने रम्ये देशे वा प्राङ्मुखः शुभे।
कुशे कृष्णाजिने वापि पुष्पे वा शुभवासरे ॥३०१
समासीनस्तु कुर्वीत प्राणायामांश्च पूर्ववत्।
आदिबीजेन कुर्वीत षडङ्गेषु यथाक्रमम् ॥३०२
अङ्गुलीष्वपि तेनैव न्यासकर्म समाचरेत्।
मुख बाह्वोश्च हृदये ध्वजे जान्वोश्च पादयोः ॥३०३
विन्यस्य मन्त्रवर्णानि चक्रं न्यासं ततः कृतम्।
पूर्व(जन्ममयादीनि)वन्मन्त्रपादीनि
स्मरे(दाभरणानि)च्छाभरणनि च ॥३०४

विचित्रशुभपर्यङ्के दिव्यकल्पतरोरधः ।
सुगन्धपुष्पसङ्कीर्णे सर्वतः सुविचित्रिते ॥३०५
तस्मिन् देव्या समासीनं रुक्मिण्या रुक्मवर्णया ।
नीलोत्पलाभं कन्दर्पलावण्यं पद्मलोचनम् ॥३०६
चन्द्राननं जपापुष्परक्तहस्तपदाम्बुजम् ।
नीलकुञ्चितकेशं च सुकपोलं सुनासिकम् ॥३०७
सुभ्रूयुगं सुबिम्बोष्ठं सुदन्तालिविराजितम् ।
उन्नतांसं दीर्घबाहुं पीनवक्षसमन्वयम् ॥३०८
निरङ्कचन्द्रनखरं सर्वलक्षणलक्षितम् ।
श्रीवत्सकौस्तुभोद्भासं वनमालामहोरसम् ॥३०९
पीताम्बरं भूषणाढ्यं बालार्काभं सुकुण्डलम् ।
हारकेयूरकटकैरङ्गुलीयैश्च शोभितम् ॥३१०
मौक्तिकान्वितनासाग्रं कस्तूरीतिलकाञ्चितम् ।
हरिचन्दनलिप्ताङ्गं सदैवाऽऽरूढयौवनम् ॥३११
मन्दारपारिजातादिकुसुमैः कबरीकृतम् ।
अनर्घ्यमुक्ताहारैश्च तुलसी वनमालया ॥३ २
चक्रशङ्खसमेताभ्यामुद्बाहुभ्यां विराजितम् ।
इतराभ्यां तथा देवीं समाश्लिष्टं निरन्तरम् ॥३१३
अलङ्कृताभिः सत्यादिमहिषीभिः समावृतम् ।
कालिन्दी सत्यभामा च मित्रविन्दा च सत्यवित् ॥३१४
सुनन्दा च सुशीला च जाम्बवती सुलक्षणा ।
एता महिष्यः संप्रोक्ताः कृष्णस्य परमात्मनः ॥३१५

ताभिश्च राजकन्यानां सहस्रं परिसेवितम् ।
तारकावृत्तराजेव शोभितं निधिभिश्च तम् ॥३१६
एवं ध्यात्वा हरिं नित्यमर्चयित्वा जपेन्मनुम् ।
शालग्रामे च तुलसीवने वा स्थण्डिले हृदि ॥३१७
स्मृत्वा जपेत् त्रिसन्ध्यासु षट्सहस्रं मनुं द्विजः ।
विष्णुतुल्यवपुः श्रीमान्विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥३१८
सर्वसिद्धिमवाप्नोति इह लोके परत्र च ।
विद्यार्थी वेणुगायन्तं जपेत् ध्यायन् ऋतुत्रयम् ॥३१९
जुहुयात् कुसुमैः शुभ्रं विद्यासिद्धिमवाप्नुयात् ।
आयुष्कामी तु पूर्वाह्णे वत्सरान् ह्ययुतं जपेत् ॥३२०
ध्यायेच्छिशुतनुं कृष्णं तिलैर्हुत्वाऽऽयुराप्नुयात् ।
कन्यार्थी तु जपेत्सायं षोडशं त्ययुतं हरिम् ॥३२१
ध्यात्वा सहस्रं जुहुयाल्लाजैर्मधुविमिश्रितः ।
स्त्रियं लभेत् स्वाभिमतां रूपौदार्यवतीं सतीम् ॥३२२
सम्पत्कामी जपेन्नित्यं मध्याह्ने तु ऋतुत्रयम् ।
द्वारकायां सुधर्मायां रत्नसिंहासने स्थितम् ॥३२३
शङ्खादिनिधिभी राजकुलैरपि सुसेवितम् ।
हारादिभूषणैर्युक्तं शङ्खाद्यायुधधारिणम् ॥३२४
ध्यात्वा संपूज्य होमं च जपश्चायुत संख्यया ।
अब्जबिल्वदलैर्वाऽपि होमं मधुविमिश्रितम् ॥३२५
शाश्वतीं श्रियमाप्नोति कुबेरसदृशो भवेत् ।
रूपलावण्यकामी तु रा(स)ममण्डलमध्यगम् ॥३२६

ध्यायन्स्त्रिमासमयुतं जप्त्वा लावण्यवान् भवेत् ।
एवं कृष्णमनोरस्य माहात्म्यं परिकीर्तितम् ॥३२७
अनन्तान् भगवन्मत्रान् वक्तुं शक्यं न ते मया ।
वाराहं नारसिंहञ्च वामनं तुरगाननम् ॥३२८
क्रमेणैव तु वक्ष्यामि यथावच्छृणु पार्थिव ! ।
हुङ्कारं प्रथमं बीजमाद्यं वाराहमुच्यते ॥३२९
पश्चात्तु धरणीबीजं लक्ष्मीबीजं ततः परम् ।
त्रीन् बीजानादितः कृत्वा पश्चान्मन्त्रप्रयोजनम् ॥३३०
ओं नमो भगवते पश्चाद्वराहरूपाय भूर्भुवः ।
स्वः पतयेति भूपतित्वं मे देहीति तदाप्यायस्वेति ॥३३१
अङ्गुलीषु यथाऽङ्गेषु बीजेनाऽऽद्येन वै क्रमात् ।
यथा सन्न्यासवद्भूत्वा पश्चाद्ध्यानं समाचरेत् ॥३३२
बृहत्तनुं बृहद्ग्रीवं बृहद्दंष्ट्रं सुशोभनम् ।
समस्तवेदवेदाङ्गसाङ्गोपाङ्गयुतं हरिम् ॥३३३
रजताद्रिसमप्रख्यं शतबाहुं शतेक्षणम् ।
उद्धृत्य दंष्ट्रया भूमिं समालिङ्ग्य भुजैर्मुदा ॥३३४
ब्रह्मादित्रिदशैः सर्वैः सनकाद्यैर्मुनीश्वरैः ।
स्तूयमानं समन्ताच्च गीयमानञ्च किन्नरैः ॥३३५
एवं ध्यात्वा हरिं नित्यं प्रजपेदष्टोत्तरं शतम् ।
जप्त्वा लभेच्च भूपत्वं ततो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥३३६
नमो यज्ञवराहाय इत्यष्टाक्षरको मनुः ।
उक्तबीजत्रयं पूर्वं कृत्वा मन्त्रं जपेद्बुधः ॥३३७

मूलमन्त्रमिदं प्राहुर्नारदं मुनिपुङ्गवाः ।
एतमेव परं मन्त्रं जप्त्वा भूमिपतिर्भवेत् ॥३३८
नित्यमष्टसहस्रं तु जपेद्विष्णुं विचिन्तयन् ।
कमलैर्बिल्वपत्रैर्वा जुहुयाच्च दशांशकम् ॥३३९
एवं संवत्सरं जप्त्वा सार्वभौमो भवेद्ध्रुवम् ।
राज्यं कृत्वा च धर्मेण पश्चाद्विष्णुपदं व्रजेत् ॥३४०
विधानं नारसिंहस्य मनोर्वक्ष्यामि सुव्रत ।
उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् ॥३४१
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्योर्मृत्युं नमाम्यहम् ।
आर्षं ब्रह्माऽनुष्टुप्छन्दो देवता च नृकेसरी ॥३४२
चतुश्चतुश्च षट् षट्च षट्चतुश्च यथाक्रमात् ।
शिरो ललाटनेत्रेषु मुखबाहङ्घ्रिसन्धिषु ॥३४३
साग्रेषु कुक्षौ हृदये गले पार्श्वद्वयेऽपि च ।
अपराङ्गे ककुद्मे(दि)च न्यसेद्वर्णान्यनुक्रमात् ॥३४४
वायोर्दशाक्षरं यत्तु नकारं जपेत् सकृत् ।
बिन्दुना सहितं यत्तु नृसिंहं बीजमुच्यते ॥३४५
अङ्गुलीषु तथाङ्गेषु न्यासस्तेनैव चोदितम् ।
तद्बीजमादितः कृत्वा मन्त्रं पश्चात्प्रयोजयेत् ॥३४६

ओं नमो भगवते वासुदेवाय नमो नरसिंहाय ज्वालामालिने दीर्घदंष्ट्रायाग्निनेत्राय सर्वरक्षोघ्नाय सर्वभूतविनाशाय दह दह पच पच रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा इति ज्वालामालिपातालनृसिंहाय नमः ॥ बीजेनैवन्यासः । आं ह्रीं क्ष्रौं श्रौं हुं फट् ॥

अस्य मन्त्रस्य ब्रह्मऋषिः पङ्क्तिश्छन्दो नृसिंहो देवता नृसिंहास्त्रमिदं बीजेनैव न्यासः।

श्रीकारपूर्वो नृसिंहो द्विजैर्यादुपरि स्थितः।
त्रिःसप्तकृत्वो जप्तु स्यान्महाभयनिवारणम्॥३४७
अस्य ब्रह्मा च रुद्रश्च प्रह्लादश्च महर्षयः।
तथैव जगति च्छन्दो देवता च नृकेसरी।
न्यासं बीजेन कुर्वीत ततो ध्यानं नृपोत्तम!॥३४८
माणिक्याद्रिसमप्रभं निजरुचा सन्त्रस्तरक्षोगणम्।
जानुन्यस्तकराम्बुजं त्रिनयनं रत्नोल्लसद्भूषणम्॥
बाहुभ्यां धृतशङ्खचक्रमनिशं दंष्ट्रोल्लसत्स्वाननम्।
ज्वालाजिह्वमुदग्रकेशनिचयं वन्दे नृसिंहं प्रभुम्॥३४९
उग्रकोटिरविप्रभं नरहरिं कोटिक्षपेशोज्ज्वलम्
दंष्ट्राभिः सुसुखोज्ज्वलं नरमुखे दीर्घैरलेकैर्भुजैः॥
निर्भिन्नासुरनायकन्तु शशभृत्सूर्याग्निनेत्रत्रयम्
विद्युज्जिह्वसटाकलापभयदं वह्निं वहन्तं भजे॥३५०
कोपादालोलजिह्वं विवृतनिजमुखं सोमसूर्याग्निनेत्रं-
पादादानाभिरक्तं प्रसभमुपरि संभिन्नदैत्येन्द्रगात्रम्॥
चक्रं शङ्खं सपाशाङ्कुशमुसलगदाशार्ङ्गं बाणान्वहन्तम्
भीमं तीक्ष्णाग्रदंष्ट्रं मणिमयविविधाकल्पमीडे नृसिंहम्॥३५१
महाभयेष्विदं ध्यानं सौम्यमभ्युदयेषु च।
सौवर्णं मण्डपान्तस्थं पद्मं ध्यायेत्सकेसरम्॥३५२
पञ्चास्यवदनं भीमं सोमसूर्याग्निलोचनम्।

तरुणादित्यदित्यसङ्काशं कुण्डलाभ्यां विराजितम् ॥३५३
उपेयन्यासं सुमुखं तीक्ष्णदंष्ट्रैर्विराजितम् ।
व्यात्तास्य मरणोग्रश्च भीषणैर्नयनैर्युतम् ॥३५४
सिंहस्कन्धानुरूपासं वृत्तायचतुर्भुजम् ।
जपासमाङ्घ्रिहस्ताब्जं पद्मासनसुसंस्थितम् ॥३५५
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं वनमालाविराजितम् ।
केयूराङ्गदहाराढ्यं नूपुराभ्यां विराजितम् ॥३५६
चक्राब्जाभयवरचतुर्हस्तं विभुं स्मरेत् ।
वामाङ्के संस्थितां लक्ष्मीं सुन्दरीं भूषणान्विताम् ॥३५७
दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गीं दिव्यपुष्पोपशोभिताम् ।
गृहीतपद्मयुगलमातुलिङ्गधरां चलाम् ॥३५८
एवं देवीं नृसिंहस्य वामाङ्गोपरिसंस्थिताम् ।
ध्यात्वा जपेज्जपं नित्यं पूजयेच्च यथाविधि ॥३५६
ओं ह्रीं श्रीं श्रीं नृसिंहाय नमः ॥
इमं लक्ष्मीनृसिंहस्य जपेन सर्वार्थदं मनुम् ।
अष्टोत्तरसहस्रं वा जपेत्तु सन्ध्यासु वाग्यतः ॥३६०
अखण्डबिल्वपत्रैश्च जुहुयादाज्यमिश्रितैः ।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति षण्मासं प्रयतो भवेत् ॥३६१
देवत्वममरेशत्वं गन्धर्वत्वं तथा नृप ।
प्राप्नुवन्ति नराः सर्वे स्वर्गं मोक्षञ्च दुर्लभम् ॥३६२
यं यं कामयते चित्ते तं तमेवाऽऽप्नुयाद् ध्रुवम् ।
ऋष्यर्थी तत्र गायत्री नरसिंहश्च देवता ॥३६३

तदेव वीजं शक्तिः श्रीर्मनोरस्य विधीयते ।
न्यासमध्येन वीजेन चार्चनं तुलसीदलैः ॥३६४
पूर्वोक्तविधिना पीठे पूजयित्वा समाहितः ।
परितः पूजयेद्दिक्षु गरुडं शङ्करं तथा ॥३६५
शेषञ्च पद्मयोनिञ्च श्रियं मायां धृतिं तथा ।
पुष्टिं समर्थदिक्षु ततो लोकेश्वरान् यजेत् ॥३६६
महाभागवतं दैत्यनाशकं देवमग्रतः ।
एवं सम्पूज्य देवेशं नारसिंहं सनातनम् ॥३६७
तत्पदं समवाप्नोति मुदितः सज्जनैः सह ।
कर्पूरधवलं देवं दिव्यकुण्डलभूषितम् ॥३६८
किरीटकेयूरधरं पीताम्बरधरं प्रभुम् ।
पद्मासनस्थं देवेशं चन्द्रमण्डलमध्यगम् ॥३६९
सूर्य्यकोटिप्रतीकाशं पूर्णचन्द्रनिभाननम् ।
मेखलाजिनदण्डादिधारणं वटुरूपिणम् ॥३७०
कलधौतमयं पात्रं दधानं वसुपूजितम् ।
पीयूषकलशं वामे दधानं द्विभुजं हरिम् ॥३७१
सनकाद्यैः स्तूयमानं सर्वदेवैरुपासितम् ।
एवं ध्यात्वा जपेन्नित्यं स्वासने च समाहितः ॥३७२
विष्णवे वामनायेति प्रणवादिनमोऽन्तकः ।
इन्द्रापिश्च विराट्छन्दो देवता वामनः स्वयम् ॥३७३
सुधावीजं सुदीर्घन्तु वीजमाद्यन्तु वामनम् ।
तेनैव तु षड्ङ्गाद्यं न्यासं कुर्व्वीत वैष्णवः ॥३७४

एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं सन्ध्यासु विजितेन्द्रियः।
सर्ववेदार्थतत्त्वज्ञो भवेदत्र न संशयः॥३८३

अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरन्तु वा।
जपेच्च जुहुयाच्चैवं साज्यैः शुभ्रैः सतण्डुलैः॥३८४
विद्यासिद्धिमवाप्नोति षण्मासं द्विजसत्तमः।
अष्टादशानां विद्यानां बृहस्पतिसमो भवेत्॥३८५
सहस्रारं हुं फडित्येवं मूलं सौदर्शनं मनुम्।
अहिर्बुध्न्योऽनुष्टुभस्य देवता च सुदर्शनम्॥३८६
अचक्राय विचक्राय सुचक्राय तथैव च।
विचक्राय सुचक्राय ज्वालाचक्राय वै क्रमात्॥३८७
षडङ्गेषु च विन्यस्य पश्चाद्ध्यानं समाचरेत्।
नमश्चक्राय स्वाहेति दशदिक्षु यथाक्रमम्॥३८८
चक्रेण सह बध्नामीत्युक्त्वा प्रतिदिशेत्ततः।
त्रैलोक्यं रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा इति वै क्रमात्॥३८९
अग्निप्रकारमन्त्रोऽयं सर्वरक्षाकरः परः।
ओं मूर्ध्नि स भ्रूमध्ये हं मुखे स्राहमधीत्यतः॥३९०
रं गुह्ये हं तु जान्वोश्च फट् पदद्वयसन्धिषु।
कल्पान्तार्कप्रकाशं त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तम्
रक्ताक्षं पिङ्गकेशं रिपुकुलभयदम्भीमदंष्ट्राट्टहासम्।
शङ्खं चक्रं गदाब्जं पृथुतरमुशलं चापपाशाङ्कुशाग्निम्
बिभ्राणन्दोर्भिराद्यं मनसि मुररिपुं भावयेच्चक्रसंज्ञम्॥३९१

बहुजन्मबहुक्लेशगर्भवासादि दुःखिते।
वसामि सर्वदोषाणामालये दुःखभाजने ॥७
अस्माद्विमोक्षणायैव चिन्तयिष्यामि केशवम्।
वैकुण्ठे परमव्योम्नि दुग्धाब्धौ वैष्णवे पदे ॥८
अनन्तभोगिपर्यङ्के समासीनं श्रिया सह।
इन्द्रनीलनिभं श्यामं चक्रशङ्खगदाधरम् ॥९
पीताम्बरधरं देवं पद्मपत्रायतेक्षणम्।
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं सर्वाभरणभूषितम् ॥१०
चिन्तयित्वा नमस्कृत्वा कीर्तयेद्दिव्यनामभिः।
सङ्कीर्त्य नामसाहस्रं नमस्कृत्वा गुरूनपि ॥११
तुलसीं काञ्चनं गाञ्च संस्पृश्याथ समाहितः।
दूराद्बहिर्विनिष्क्रम्य शुचौ देशे च निर्जने ॥१२
कर्णस्थ ब्रह्मसूत्रस्तु शिरः प्रावृत्य वाससा।
कुर्यान्मूत्रपुरीषे च ष्ठीवनोच्छ्वासवर्जितः ॥१३
अहन्युदङ्मुखो रात्रौ दक्षिणाभिमुखस्तथा।
समाहितमना मौनी विण्मूत्रे विसृजेत्ततः ॥१४
उत्थायावस्थितः शौचं कुर्यादभ्युद्धृतैर्जलैः।
गन्धलेपक्षयकरं यथासङ्ख्या मृदा शुचिः ॥१५
अर्द्धप्रसृतिमात्रां तु मृदं दद्याद्यथोक्तवत्।
पङ्पाले त्रिलिङ्गे तु सव्यहस्ते तथा दश ॥१६
उभयोः सप्त दद्याच्च तिस्रस्तिस्रस्तु पादयोः।
आजह्वान्मणिबन्धात्तु प्रक्षाल्य शुभवारिणा ॥१७

उपविष्टः शुचौ देशे अन्तर्जानुकरस्तथा।
पवित्रपाणिराचामेत् प्रसृतिस्थः स वारिणा ॥१८
त्रिः प्राश्याङ्गुष्ठमूलेन द्विरोन्मृज्य कपोलकौ।
मध्यमाङ्गुलिभिः पश्चाद्द्विरोष्ठौ मृजयेत्तथा ॥१९
नासिकौष्ठान्तरं पश्चात् सर्वाङ्गुलिभिरेव च।
पादौ हस्तौ शिरश्चैव जलैः संमार्जयेत्ततः ॥२०
अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां तु स्पृशेत् द्वौ नासिकापुटौ।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु चक्षुःश्रोत्रे जलैः स्पृशेत् ॥२१
कनिष्ठाङ्गुष्ठनाभिश्च तलेन हृदयन्ततः।
सर्वाङ्गुलिभिः शिरसि बाहुमूले तथैव च।
नामभिः केशवाद्यैश्च यथासङ्ख्यमुपस्पृशेत् ॥२२
द्विराचामेत्तु सर्वत्र विण्मूत्रोत्सर्जने त्रयम्।
सामान्यमेतत् सर्वेषां शौचं तु द्विगुणोदितम् ॥२३
आचम्यातःपरं मौनी दन्तान् काष्ठेन शोधयेत्।
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि कषायं तिक्तकण्टकम् ॥२४
कनिष्ठाग्रमितस्थूलं द्वादशाङ्गुलमायतम्।
पर्वाधः कृतकूर्चेन तेन दन्तान्निकर्षयेत् ॥२५
अपां द्वादशगण्डूषैः वक्त्रं संशोधयेद्द्विजः।
मुखं संमार्जयित्वाऽथ पश्चादाचमनं चरेत्।
पवित्रपाणिराचम्य पश्चात् स्नानं समाचरेत् ॥२६
नद्यां तडागे खाते वा तथा प्रस्रवणे जले।
तुलसीमृत्तिकां धात्रीमुपलिप्य कलेवरे ॥२७

अभिमन्त्र्य जलं पश्चान्मूलमन्त्रेण वैष्णवः।
निमज्ज्य तुलसीमिश्रं जलं सम्प्राशयेत्ततः ॥२८
आचम्य मार्ज्जनं कुर्यात् कुशैः सतुलसीदलैः।
पौरुषेण तु सूक्तेन आपो हि ष्ठादिभिस्तथा ॥२९
निमज्ज्याप्सु जले पश्चात्त्रिरभ्यस्याघमर्षणम्।
उत्थाय पुनराचम्य पश्चादप्सु निमज्ज्य वै ॥३०
मन्त्ररत्नं त्रिवारं तु जपन्ध्यायन् सनातनम्।
पिबेदुत्थाय तेनैव त्रिवारमभिमन्त्रितम् ॥३१
आचम्य तर्पयेद्देवान् पितॄनपि विधानतः।
निष्पीड्य कूले वस्त्रं तु पुनराचमनं चरेत् ॥३२
धौतवस्त्रं सोत्तरीयं सकौपीनं धरेत्स्थिरम्।
निबद्धशिखकच्छस्तु द्विराचम्य यथाविधि ॥३३
धारयेदूर्ध्वपुण्ड्राणि मृदा शुभ्राणि वैष्णवः।
श्रीकृष्णतुलसीमूलमृदा वाऽपि प्रयत्नतः ॥३४
मन्त्रेणैवाभिमन्त्र्याथ ललाटादिषु धारयेत्।
नासिकामूलमारभ्य विभूयाच्छ्रीपदाकृति ॥३५
सान्तरालं भवेत् पुण्ड्रं दण्डाकारं तु वा तथा।
ललाटादि तथा पश्चाद्ग्रीवान्तं केशवादिभिः ॥३६
नाम्ना द्वादशभिर्मूर्ध्नि वासुदेवं तदाम्बुना।
पवित्रपाणिः शुद्धात्मा सन्ध्यां कुर्यात् समाहितः ॥३७
प्रादेशमात्रौ कौशेयौ साग्रौ मूलयुतौ तथा।
अन्तर्गर्भौ सुविमलौ पवित्रे कारयेद्द्विजः ॥३८

देवार्चने जपे होमे कुर्यादग्राद्यं पवित्रकम्।
इतरे वर्तुलग्रन्थिरेव धर्मो विधीयते ॥३६
पथि दर्भाश्रिता दर्भा ये दर्भा यज्ञभूमिषु।
स्तरणासनपिण्डेषु ब्रह्मयज्ञे च तर्पणे ॥४०
पाने भोजनकाले च धृतान् दर्भान् विसर्जयेत्।
सपवित्रकरेणैव आचामेत्प्रयतो द्विज. ॥४१
आचान्तस्य शुचि. पाणिर्यथापाणि स्तथा कुश.।
सन्ध्याचमनकाले तु धृतं न परिवर्जयेत् ॥४२
अप्रसूता स्मृता दर्भा समिधस्तु (प्रसूतास्तु) कुशा स्मृता।
समूलास्तु कुशा ज्ञेया छिन्नाग्रास्तृणसंज्ञिताः ॥४३
कुशोदकेन यत्कण्ठं नित्यं सशोधयेद्द्विज।
न पर्युषन्ति पापानि ब्रह्मकूर्चं दिने दिने ॥४४
कुशासनं सदापूत जपहोमार्चनादिषु।
केरोनैव कृत कर्म सर्वमानन्त्यमश्नुते ॥४५
तस्मात् कुशपवित्रेण स ध्या कुर्यात् यथाविधि।
स्वगृह्योक्तविधानेन सन्ध्योपासिं समाचरेत् ॥४६
ध्यात्वा नारायणं देवं रविमण्डलमध्यगम्।
गायत्र्याऽर्घ्यं प्रदद्याच्च जपं कुर्वीत भक्तिमान् ॥४७
सूर्यस्याभिमुखो जप्त्वा सावित्रीं नियतात्मवान्।
उपस्थानं तत कृत्वा नमस्कुर्यात्ततो हरिम् ॥४८
नमो ब्रह्मण इत्यादि जपित्वाऽथ विसर्जयेत्।
तत सन्तर्पयेद्विष्णु मन्त्ररत्नेन मन्त्रवित् ॥४६

शतवारं सहस्रं वा तुलसीमिश्रितैर्जलैः ।
वैकुण्ठपार्षदं पश्चात्तर्पयेच्च यथाविधि ॥५०
अनन्तद्वीपारेसादिदेवतानामनुक्रमात् ।
एकैकमञ्जलिं दत्त्वा पश्चादाचमनं चरेत् ।
श्रीशस्याऽऽराधनार्थं वै कुर्यात् पुष्पस्य सञ्चयम् ॥५१
तुलसीबिल्वपत्राणि दूर्वां कौशेयमेव च ।
विष्णुक्रान्तं मरुवकं केशाम्बुदलं तथा ॥५२
उशीरं जातिकुसुमं कुन्दञ्चैव कुरण्टकम् ।
शमीचम्पाकुन्दञ्च चूतपुष्पं च माधवीम् ॥५३
पिप्पलस्य प्रवालानि जाम्बवं पाटलं तथा ।
आस्फोटं कुटजं लोध्रं कर्णिकारञ्च किंशुकम् ॥५४
नीपार्जुने शिंशपञ्च श्वेतकिंशुकनामकम् ।
जम्बीरं मातुलिङ्गं च यूथिकाचयं तथा ॥५५
पुन्नागं वकुलं नागकेशराशोकमल्लिकाः ।
शतपत्रं च हारिद्रं करवीरं प्रियङ्गु च ॥५६
नीलोत्पलं तूत्पलञ्च नन्द्यावर्तञ्च केतकम् ।
घटजं स्थलपद्मं च सर्वाणि जलदानि च ॥५७
तत्कालसम्भवं पुष्पं गृहीत्वाऽथ गृहं विशेत् ।
वितानादियुते दिव्यधूपदीपैर्विराजिते ॥५८
चन्दनागरुकस्तूरी कर्पूरामोदवासिते ।
विचित्ररङ्गवल्याढ्ये मण्डपे रत्नपीठके ॥५९

विस्तीर्णपुष्पपर्यङ्के देव्या सहितमच्युतम् ।
सन्निधा वासने स्थित्वा कुशे पद्मासने स्थितः ॥६०
प्राणायामविधानेन भूतशुद्धिं विधाय च ।
प्राणायामत्रयं कृत्वा पश्चाद्ध्यानं यथोक्तवत् ॥६१
परव्योम्नि स्थितं देवं लक्ष्मीनारायणं विभुम् ।
पराभिः शक्तिभिर्युक्तं भूलीलाविमलादिभिः ॥६२
अनन्तविहगाधीशसैन्याद्यैः सुरसत्तमैः ।
चण्डाद्यैः कुमुदाद्यैश्च लोकपालैश्च सेवितम् ॥६३
चतुर्भुजं सुन्दराङ्गं नानारत्नविभूषणम् ।
वामाङ्कस्थश्रिया युक्तं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥६४
मन्त्ररत्नविधानेन न्यासमुद्रादिसंकुलम् ।
पञ्चोपनिषदं न्यासं कुर्यात् सर्वत्र कर्मसु ॥६५
ओ मीशाय नमः परायेति परमेष्ठ्यात्मने नमः ।
ओं यां नमः परायेति ततः पुरुषात्मने नमः ॥६६
ओं रां नमः परायेति ततो विश्वात्मने नमः ।
ओं वां नमः परायेति रवनिवृत्यात्मने नमः ॥६७
ओं लां नमः परायेति ततः सर्वात्मने नमः ।
शिरोनासाग्रहृदयगुह्यपादेषु विन्यसेत् ॥६८
यथाक्रमेण तन्मन्त्रान् पश्चाङ्गेषु क्रमान्न्यसेत् ।
तन्मुद्रया तदाऽऽनाय दद्यादासनमेव च ॥६९
पाद्यार्घ्याचमनस्नानपात्राणि स्थाप्य पूजयेत् ।
पृथिव्या शुभजलं पात्रेषु कुसुमैर्युतम् ॥७०

द्रव्याणि निक्षिपेत् तेषु मङ्गलानि यथाक्रमात् ।
उशीरं चन्दनं कुष्ठं पाद्यपात्रे विनिक्षिपेत् ॥७१
विष्णुक्रान्तञ्च दूर्वाञ्च कौशेयान् तिलसर्षपान् ।
अक्षतांश्च फलं पुष्पमर्घ्यपात्रे विनिक्षिपेत् ॥७२
जातीफलञ्च कर्पूर मेलाञ्चाचमनीयके ।
मकरन्दं प्रवाल ञ्च रत्नं सौवर्णमेव च ॥७३
तानि दद्यात् स्नानपात्रे धात्री सुरतरुं तथा ।
द्रव्याणामप्यलाभे तु तुलसीपत्रमेव च ॥७४
चन्दनं वा सुवर्णं वा कौशेयं वा विनिक्षिपेत् ।
दर्शयेत् सुरभेर्मुद्रां पूजयेत् कुसुमव्रजैः ॥७५
अभिमन्त्र्य च मन्त्रेण पुष्पैर्धूपैर्निवेदयेत् ।
अनन्तं चोद्धरण्या च दद्यात्पाद्यादिकं तथा ॥७६
तत्पात्रक्षालनं कृत्वा तथा पुष्पाञ्जलिं न्यसेत् ।
सौवर्णानि च रौप्याणि ताम्रकांस्यानि योजयेत् ॥७७
पात्राणामप्यलाभे तु शङ्खमेकं विशिष्यते ।
शङ्खोदकं सदा पूतमतिप्रियतरं हरेः ॥७८
उद्धरिण्या जलं दद्यात्तासु शङ्खं निमज्जयेत् ।
अष्टाक्षरेण मनुना मन्त्ररत्नेन वा यजेत् ॥७९
पाद्यार्घ्याचमनं दत्त्वा मधुपर्कं निवेदयेत् ।
पुनराचमनं दत्त्वा पादपीठं निवेदयेत् ॥८०
दन्तधावनगण्डूषदर्पणालोचनं तथा ।
निवेद्याभ्यञ्जनं तैलेनोद्वर्त्तं केशरञ्जनम् ॥८१

वेदा वेदवती धात्री महालक्ष्मीः सुखालया ।
भार्गवी च वरा सीता रेवती रुक्मिणी प्रभा ॥६२
मत्स्यकूर्मादिमूर्तीनां शक्तयः सम्प्रकीर्तिताः ।
एवं सशक्तयः पूज्याः केशवाद्याः सुरेश्वराः ॥६३
पश्चात्सशक्तयः पूज्या श्चक्रशङ्खादिहेतयः ।
शङ्खं चक्रं गदां पद्मं शार्ङ्गञ्च मुसलं हलम् ॥६४
बाणञ्च खड्गखेटं च छुरिका दिव्यहेतयः ।
भद्रा सौम्या तथा माया जया च विजया शिवा ॥६५
सुमङ्गला सुनन्दा च हिता रम्या सुरक्षिणी ।
शक्तयो दिव्यहेतीनां पूजनीयाः सनातनाः ॥६६
बर्हिर्लोकेश्वराः पूज्याः साध्याश्च समरुद्गणाः ।
एवमावरणं सर्वमर्चयेत्परमात्मनः ।
पुनरर्घ्यादिकं दत्त्वा धूपदीपैर्निवेदयेत् ॥६७
प्रागुदीच्याञ्च सदशं नागराजं तथापरे ।
पुरतो वैनतेयञ्च पूजयेच्छक्तिभिः सह ॥६८
सेनापतेः सूत्रवती नागराजस्य वारुणीम् ।
भद्राञ्चलां तथा यस्य पूजयेद्वैष्णवोत्तमः ॥६६
गुग्गुलुं महिषाक्षीञ्च सालनिर्यासमेव च ।
अगरुं देवदारुञ्च उशीरं श्रीफलं तथा ॥१००
ह्रीवेरं चन्दनं मुस्ता दशाङ्गं धूपमुच्यते ।
गवाज्येन च संयोज्यं दद्याद्धूपं सुवासितम् ॥१०१

अश्वत्थं प्लक्षनीपञ्च वटमारग्वधं तथा ।
कलम्बिका च निर्गुण्डिमुण्डिवार्त्ताकमेव च ॥११३
कपरं लशुनञ्चैव श्वेतञ्च बृहतीफलम् ।
मत्यचर्मातकञ्चैव चिञ्चिलञ्चेति यत्नतः ॥११४
निशेयानि च भक्ष्याणि वर्जयेद्यज्ञकर्म्मणि ।
श्लेष्मातकञ्च विड्जानि प्रत्यक्षलवणं तथा ॥११५
अनिर्दशाहगोक्षीरमवत्साया स्तथाऽऽविकम् ।
औष्ट्रमेकशफञ्चैव पशूनां विड्भुजामपि ॥११६
अतिदीर्णं तथा तक्रं करनिर्म्मन्थितन्दधि ।
ताम्रेण संयुतं गव्यं क्षीरञ्च लवणान्वितम् ॥११७
घृतं लवणसंयुक्तं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ।
सूपान्नञ्च गुडान्नञ्च शर्करामधुसंयुतम् ॥११८
मरीचिमिश्रं दध्यन्नं पायसान्नं फलैः सह ।
तुलसीदलसम्मिश्रं जलैः सम्प्रोक्ष्य वाग्यतः ॥११९
अष्टाविंशतिवारन्तु मूलमन्त्राभिमन्त्रितम् ।
मुद्राश्च सौरभेयीन्ता दर्शयेन्मन्त्रमुच्चरन् ॥१२०
सुधाब्धिममृतं बीजं चिन्तयन् परमात्मनः ।
दद्यात् पुष्पाञ्जलिं पश्चाद्दशवारं समाहितः ॥१२१
पेयणक्रियया (आपोशानक्रिया)पूर्वमन्नमस्मै निवेदयेत् ।
शतवारं जपेन्मन्त्रं घण्टाशब्दं निनादयन् ॥१२२
जपेत्पीयूषदैवत्यान्मन्त्रानेकाग्रचेतसा ।
हरेर्भुक्तवतः पश्चाद्दद्याद्वारि सुवासितम् ॥१२३

तिलैर्वा कुसुमै र्वाऽपि यवैर्मिश्रमिरेव वा ।
यज्ञरूपं हरिं ध्यात्वा सर्ववेदमयं विभुम् ॥१३५
दिव्याभरणसम्पन्नं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
वरदं पुण्डरीकाक्षं वामाङ्कस्थश्रियं हरिम् ॥१३६
यज्ञस्वरूपिणं वह्नौ ध्यायन् मन्त्रद्वयेन च ।
सर्वैश्च वैष्णवैर्मन्त्रैरेकैकेनाऽऽहुतिं तथा ॥१३७
नामभिः केशवाद्यैश्च सूक्तैं विष्णुप्रकाशकै ।
वकुण्ठपार्षदं सर्वं हुत्वा चैव ततो बलिम् ॥१३८
क्षिपेच्चतुर्विधान् भूतानुदिश्य च ततो भुवि ।
आचम्य पूजयेत्पश्चात्तदीयान् सुसमाहित ॥१३९
तेभ्य. प्रणम्य भक्त्याऽथ सन्तर्प्य पितृदेवता ।
वेदमध्यापयेच्छक्त्या धर्मशास्त्रश्च संहिता ॥१४०
सात्त्विकानि पुराणानि सेतिहासानि वैष्णव ।
सर्वोपनिषदामर्थं सद्भि सह विचिन्तयेत् ॥१४१
योगक्षेमार्थबुद्धिश्च कुर्य्याच्छक्त्या यथार्हत ।
ब्राह्मणा॰ क्षत्रिया वैश्या शूद्रा वर्णा यथाक्रमम् ॥१४२
आद्यास्त्रयो द्विजा प्रोक्ता स्तेषा वै मन्त्रसत्क्रिया ।
सवर्णेभ्य. सवर्णासु जायन्ते हि सजातय ॥१४३
तेषां सङ्करयोगाश्च प्रतिलोमानुलोमजा ।
विप्रान्मूर्धाभिषिक्तस्तु क्षत्रियायामजायत ॥१४४
वैश्यायान्तु तथाऽऽम्बष्ठो निषाद शूद्रया तथा ।
राजन्याद्वैश्यशूद्रान्तु माहिष्योग्रौ तु तौ स्मृतौ ॥१४५

पुष्पाणि फलमूलाद्यं सद्द्रव्यं मुनिभिः स्मृतम् ।
सर्वत्र परिगृह्णीयाद् भूमिं धान्यं फलादिकम् ॥१५७
भूमिं यस्तु प्रगृह्णाति भूमिं यस्तु प्रयच्छति ।
तावुभौ पुण्यकर्माणौ नियतौ स्वर्गगामिनौ ॥१५८
धान्यं करोति दातारं प्रगृहीतारमेव च ।
धान्यं नृपवरश्रेष्ठ ! इहलोके परत्र च ॥१५९
तस्माद्धान्यं धरित्रीञ्च प्रतिगृह्णीत सर्वतः ।
कुसुम्भधान्य एव स्यात् कुसुम्भधान्यवान् नृप ! ॥१६०
शीलोञ्छेनापि वा जीवेच्छ्रे यानेषा परो वरः ।
जीवेद्यायावरेणैव विप्रः सर्वत्र सर्वदा ॥१६१
वर्जयित्वैव पाषण्डान् पतिताश्चान्यदविकान् !
कृषिणा वाऽपि जीवेत सतां चानुमतेन वा ॥१६२
न वाहयेदनड्वहं क्षुधार्तं श्रान्तमेव च ।
तस्य पुंस्त्वमहित्वैव वाहयेद् द्विजपुङ्गवः ॥१६३
कर्मलोप मकुर्वन्वै कृषिं कुर्वीत वै द्विजः ।
हरेः पूजा यथाकालं कृपिलोपे समाचरेत् ॥१६४
न ब्राह्मंच सन्त्यजेद् विप्र स्तथा यज्ञादिकर्म च ।
आपदापि न कुर्वीत सेवां वाणिज्यमेव च ॥१६५
असत्प्रतिग्रहं स्तेयं तथा धर्मस्य विक्रयम् ।
अन्यायोपार्जितं द्रव्यमापद्यपि विवर्जयेत् ॥१६६
भृतकाध्यापनं चैव सदासत्कर्मभावनम् ।
प्रीतये वासुदेवस्य यद्दत्तमसतामपि ॥१६७

शूद्रां वैश्यात् तु करणस्त्वेते वै तेऽनुलोमजाः ।
विप्राया क्षत्रियात् सूतः वश्याद्वैदेहिकस्तथा ॥१४६
चण्डालस्तु तथा शूद्रात्सर्वकर्मसु गर्हितः ।
मागधः क्षत्रियायां वै वेश्याक्षत्रात् तु शूद्रतः ॥१४७
शूद्रादयोगवं वैश्या जनयामास वै सुतम् ।
रथकारः करण्यान्तु माहिष्येण प्रजायते ॥१४८
असत्सन्ततयो ज्ञेयाः प्रतिलोमानुलोमजाः ।
प्रतिलोमास्तु च जाता गर्हिताः सर्वकर्मणाम् ॥१४९
एतेषां ब्राह्मणाद्याश्च षट्कर्मसु नियोजिताः ।
त्रिकर्मसु क्षत्रविशावेकस्मिन् शूद्रयोनिजः ॥१५०
प्रतिग्रहश्च वृत्त्यर्थं ब्राह्मणस्तु समाचरेत् ।
असद्देयासतां प्रोक्तं निषिद्धं तद्विवर्जयेत् ॥१५१
पाषण्डाः पतिताः पापास्तथैव प्रतिलोमजाः ।
कुलटाश्च विकर्मस्था असतः परिकीर्तिताः ॥१५२
लवणं तिलकार्पासं चर्म्म च श्रपुसीसकम् ।
आयसं मधु मांसञ्च विषशस्त्रं घृतं गजम् ॥१५३
विल्वियं गजगुप्यञ्च सर्षपं जलमेव च ।
तृणं कापुञ्च कूष्माण्डं शिंशपाश्च विवर्जयेत् ॥१५४
महिषीं गर्दभञ्चैव वाजिनञ्च तथाऽऽविकम् ।
दासीमजां यानशय्या न चर्मानडुहन्तुलाम् ॥१५५
एवमाद्यमसद्द्रव्यं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ।
धान्यं वासांसि भूमिश्च सुवर्णं रत्नमेव च ॥१५६

पुष्पाणि फलमूलाद्यं सद्द्रव्यं मुनिभिः स्मृतम् ।
सर्वत्र परिगृह्णीयाद् भूमिं धान्यं फलादिकम् ॥१५७
भूमिं यस्तु प्रगृह्णाति भूमिं यस्तु प्रयच्छति ।
तावुभौ पुण्यकर्माणौ नियतौ स्वर्गगामिनौ ॥१५८
धान्यं करोति दातारं प्रगृहीतारमेव च ।
धान्यं नृपवरश्रेष्ठ ! इहलोके परत्र च ॥१५९
तस्माद्धान्यं धरित्रीञ्च प्रतिगृह्णीत सर्वतः ।
कुसुम्भधान्य एव स्यात् कुसुम्भधान्यवान् नृप ! ॥१६०
शीलोञ्छेनापि वा जीवेच्छ्रेयानेवां परो वरः ।
जीवेद्यायावरेणैव विप्रः सर्वत्र सर्वदा ॥१६१
वर्जयित्वैव पाषण्डान् पतितांश्चान्यदविकान् !
कृषिणा वाऽपि जीवेत सतां चानुमतेन वा ॥१६२
न वाहयेदनड्वहं क्षुधार्तं श्रान्तमेव च ।
तस्य पुंस्त्वमहित्वैव वाहयेद् द्विजपुङ्गवः ॥१६३
कर्मलोप मकुर्वन्वै कृषिं कुर्वीत वै द्विजः ।
हरेः पूजां यथाकालं कृषिलोपे समाचरेत् ॥१६४
न ब्राह्मण्य सन्त्यजेद् विप्र स्तथा यज्ञादिकर्म च ।
आपद्यपि न कुर्वीत सेवां वाणिज्यमेव च ॥१६५
असत्प्रतिग्रहं स्तेयं तथा धर्मस्य विक्रयम् ।
अन्यायोपार्जितं द्रव्यमापद्यपि विवर्जयेत् ॥१६६
मृतकाध्यापनं चैव सदासत्कर्मभावनम् ।
प्रीतये वासुदेवस्य यद्दत्तमसतामपि ॥१६७

महाभागवतस्पर्शात्तत्सदित्युच्यते बुधैः ।
तापादीन् पञ्च संस्कारा स्तथाकारै स्त्रिभिर्युतः ॥१६८
हरेरनन्यशरणो महाभागवतः स्मृतः ।
यक्षराक्षसभूताना तामसाना दिवौकसाम् ॥१६६
तेषां यत्प्रीतये दत्तं तथा यद्यपि वर्जयेत् ।
बुद्धरुद्रौ तथा वायुर्दुर्गागणसुभैरवाः ॥१७०
यम स्कन्दो नैर्ऋ्तश्च तामसा देवताः स्मृताः ।
एवं विशुद्धिं द्रव्यस्य ज्ञात्वा गृह्णीत सत्तमः ॥१७१
कृषिस्तु सर्ववर्णानां सामान्यो धर्म उच्यते ।
प्रतिग्रहस्तु विप्राणा राज्ञा क्ष्मापालनं तथा ॥१७२
कुसीदञ्चैव वाणिज्यं विशामेव प्रकीर्तितम् ।
सेवावृत्तिस्तु शूद्राणा कृषिर्वा सम्प्रकीर्तिता ॥१७३
अशक्तस्तु भवेद्राजा पृथिव्या. परिपालने ।
जीवेद्वाऽपि विशा वृत्त्या शूद्राणा वा यथासुखम् ॥१७४
कृषिर्वृत्तिः पाशुपाल्यं सर्वेषां न निषिध्यते ।
स्तेयं परस्त्रीहरणं हिंसा कुहककौशिके ॥१७५
स्त्रीमद्यमासलवणविक्रयं पतितं स्मृतम् ।
अपकृष्टनिकृष्टानां जीवितं शिल्पकर्मभिः ॥१७६
हीनन्तु प्रतिलोमानामहीन मनुलोमिनाम् ।
चर्मत्रैणववस्त्राणां हिंसाकर्म च नेजनम् ॥१७७
गाणिक्यं(माणिक्यं)यपनाग्निश्च (यवनाग्नश्च)मद्यमांसक्रिया तथा ।
सारथ्यं वाहकानाञ्च रथानां भूभृतामपि ॥१७८

एवमादि निषिद्धं यत्प्रातिलोम्यं यदुच्यते ।
यत्सौम्यशिल्पं लोकेऽस्मिन् सौम्यं तदनुलोमकम् ॥१७६
मृद्दारुशैललोहाद्या शिल्पं सौम्यमिहोच्यते ।
न्यायेन पालयेद्राजा पृथिवीं शास्त्रमार्गतः ॥१८०
स्वराष्ट्रकृतधर्मस्य सदा षड्भागसिद्धये ।
राज्ञां राष्ट्रकृतं पापमिति धर्मविदो विदुः ॥१८१
तस्मात्पापसंयुक्तां यथा संरक्षयेद्ध्रुवम् ।
अग्निदञ्चरदं घोरं हिंस्रं दुर्वृत्तमेव च ॥१८२
धूर्तं पतितमित्यादीन् हन्यादेवाविचारयन् ।
अङ्कयित्वा श्वपादेन गर्दभे चाधिरोह्य वै ॥१८३
प्रवासयेत् स्वराष्ट्रात्तु ब्राह्मणं पतितं नृपः ।
कुलटां कामचारेण गर्भघ्नीं भर्तृहिंसकाम् ॥१८४
निकृत्तकर्णनासोष्ठीं कृत्वा नारीं प्रवासयेत् ।
न्यायेन दण्डनं राज्ञः स्वर्गकीर्तिविवर्धनम् ॥१८५
अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा तथा दण्ड्यानदण्डयन् ।
अयशो महदाप्नोति नरकं चाधिगच्छति ॥१८६
दिग्दण्डस्त्वथ वाग्दण्डो धनदण्डो वधस्तथा ।
ज्ञात्वाऽपराधं देशं च जनं कालमतोऽपि वा ॥१८७
वयः कर्म च वित्तञ्च दण्डं न्यायेन पातयेत् ।
निश्चित्य शास्त्रमार्गेण विद्वद्भिः सह पार्थिवः ॥१८८
गुरूणां तु गुरुं दण्डं पापानां च लघोर्लघुम् ।
व्यवहारान् स्वयं पश्यन् कुर्यात् सभ्यैर्वृतोऽन्वहम् ॥१८६

मिथ्यापवादशुद्ध्यर्थं पञ्च दिव्यानि कल्पयेत्।
ज्ञात्वा शुद्धेषु दिव्येषु शुद्धान्वै मानयेत्तथा॥१९०
तन्मिथ्याशंसिनं दुष्टं जिह्वाच्छेदेन दण्डयेत्।
परद्रव्यादिहरणं परदाराभिमर्शनम्॥१९१
यः कुर्यात् तु बलात् तस्य हस्तच्छेदः प्रकीर्तितः।
यो गच्छेत् परदारांस्तु बलात्कामाच्च या नरः॥१९२
सर्वस्वहरणं कृत्वा लिङ्गच्छेदश्च दापयेत्।
दहेत्कूटाग्निना देहं गुरुस्त्रीगामिनं तदा॥१९३
ब्रह्मघ्नं च सुरापं वा गोस्त्रीबालनिषूदनम्।
देवविप्रस्वहर्तारं शूलमारोपयेन्नरम्॥१९४
दैवतं ब्राह्मणं गाश्च पितृमातृगुरूंस्तथा।
पादेन ताडयेद्यस्तु तस्य तच्छेदनं स्मृतम्॥१९५
तेषामुपरि हस्तं तु दोष्णो श्छेदन्तु कामतः।
प्रत्येकं दण्डनं कुर्याद्दुष्टं त्तस्य परस्त्रियाम्॥१९६
चुम्बने तालुविच्छेदो द्वौ हस्तौ परिरम्भणे।
हस्तस्याङ्गुलिविच्छेदः केशादिग्रहणे स्त्रियः॥१९७
दाहयेत्तप्ततैलेन हस्तमुष्ट्या च ताडनम्।
सुरतं याचमानस्य जिह्वाच्छेदं च कामतः॥१९८
कामेङ्गितेषु सर्वत्र ताल्वोश्च दहनं स्मृतम्।
दृष्ट्वा मुहुः प्रेरणे तु नेत्रयोः स्फोटनं चरेत्॥१९९
मानकूटं तुलाकूटं कूटसाक्ष्यकृता नृणाम्।
सहस्रं दापयेद्दण्डं धृत्वा स्वस्यापनायने॥२००

येषु केषु च पापेषु शरीरे दण्डनं स्मृतम् ।
तेषु तेष्वङ्कनेनैव अक्षतो ब्राह्मणो व्रजेत् ॥२०१
पापानेवाङ्कयित्वाऽस्य मुण्डयित्वा शिरोरुहान् ।
सर्वस्वहरणं कृत्वा राष्ट्रात् सम्यक् प्रवासयेत् ॥२०२
अवैष्णवं विकर्मस्थं हरिवासरभोजनम् ।
ब्राह्मणं गार्दभं यानमारोप्यैव विवासयेत् ॥२०३
न्यायेन पालयेद्राजा धर्मान् षड्भाग माहरेत् ।
त्रिभागमाहरेद्धान्याद्धनात् षड्भागमेव च ॥२०४
गोभूहिरण्यवासोभिर्धान्यरत्नविभूषणैः ।
पूजयेद्ब्राह्मणान् भक्त्या पोषयेच्च विशेषतः ॥२०५
विम्बानि स्थापयेद्विष्णोर्ग्रामेषु नगरेषु च ।
चैत्यान्यायतनान्यस्य रम्याण्येव तु कारयेत् ॥२०६
वस्त्रपुष्पोपहारौघं भूषेन्यादि समर्पयेत् ।
इतरेषां सुराणां च वैदिकानां जनेश्वरः ॥२०७
धर्मतः कारयेद्यश्च चैत्यान्यायतनानि तु ।
वापी कूपतडागादि फलपुष्पवनानि च ॥२०८
कुर्वीत सुविशालानि पूर्वकान्यपि पालयेत् ।
फलितं पुष्पितं वाऽपि वनं छिन्द्यात्तु यो नरः ॥२०६
तडागसेतुं यो भिन्द्यात् तं शूलेनानुरोहयेत् ।
अग्निदं गरदं गोघ्नं बालस्त्रीगुरुघातिनम् ॥२१०
भगिनीं मातरं पुत्रीं गुरुदारान् स्नुषामपि ।
साध्वीं तपस्विनीं वाऽपि गच्छन्तमतिपापिनम् ॥२११

हिंस्रयन्त्रप्रयोक्तारं दाहयेद् वै कटाग्निना ।
अदण्डयित्वा दुर्वृत्तान् तत्पापं पृथिवीपतिः ॥२१२
सम्प्राप्य निरयं गच्छेत्तस्मात्तान् दण्डयेत्तथा ।
यः स्ववर्णाश्रमं हित्वा स्वच्छन्देन तु वर्तयेत् ॥२१३
तं दण्डयेद्वर्षशतं नाशयेत्तद्विदेशतः ।
सर्वेष्वेतेषु पापेषु धनदण्डं प्रयोजयेत् ॥२१४
पितेव पालयेद्भृत्यान् प्रजाश्च पृथिवीपतिः ।
प्रजासंरक्षणार्थाय संग्रामं कारयेन्नृपः ॥२१५
तस्मिन् मृत्युर्भवेच्छ्रेयो राज्ञः संग्राममूर्द्धनि ।
मृतेन लभ्यते स्वर्गं जितेन पृथिवी स्त्रियम् ॥२१६
यशः कीर्त्तिविवृध्यर्थं धर्मसंग्राममाचरेत् ।
मुक्तशीर्षं मुक्तनखं त्यक्तहेतिं पलायितम् ॥२१७
न हन्याद्वन्दिनं राजा युद्धे प्रेक्षणकुञ्जनान् ।
भग्ने स्वसैन्यपुञ्जे च संग्रामे विनिवर्तिनः ॥२१८
पदे पदे समग्रस्य यज्ञस्य फलमश्नुते ।
नातः परतरो धर्मो नृपाणां नरशालिनाम् ॥२१९
युद्धलब्धा महीशस्य दीयते नृपसत्तमैः ।
जित्वा शत्रून्महीं लब्ध्वा लब्धां यत्नेन पालयेत् ॥२२०
पालितां वर्धयेन्नित्यं वृद्धां पात्रे विनिक्षिपेत् ।
पात्रमित्युच्यते विप्रस्तपोविद्यासमन्वितः ॥२२१
न विद्यया केवलया तपसा वाऽपि पात्रता ।
श्रुतमध्ययनं शीलं तप इत्युच्यते बुधैः ॥२२२

ईश्वरस्याऽऽत्मनश्चापि ज्ञानं विद्येति चोच्यते ।
तथाविधेषु पात्रेषु दत्त्वा भूमिं धनं नृपः ॥२२३
शासनं कारयेत्सम्यक् स्वहस्तलिखितादिभिः ।
उपजीव्योपसर्पेच्च रम्ये देशे नृपोत्तमः ॥२२४
दुर्गाणि तत्र कुर्वीत जनकस्यात्मगुप्तये ।
तत्र कर्मसु निष्णातान् कुशलान् धर्मनिष्ठितान् ॥२२५
सत्यशौचयुतान् शुद्धानध्यक्षान् स्थापयेत् नृपः ।
अशीतिभागो वृद्धिः स्यान्मासि मासि सबन्धके ॥२२६
अबन्धकं स्याद्द्विगुणं यथा तत्कालमात्रकम् ।
लेखयेत्तद्दणं सम्यक् समामासादिकल्पनैः ॥२२७
देयं सवृद्धयाधविके(धनिने) पुरुषैस्त्रिभिरेव तत् ।
निर्धनस्तु शनैर्दद्यात्तथाकालं यथोदयम् ॥२२८
औद्धत्याद्वा बलाद्वा तु न दद्याद्धनिने ऋणम् ।
दण्डयित्वैव तं राजा धनिने दापयेदृणम् ॥२२९
छिन्ने दग्धेऽथवा पत्रे साक्षिभिः परिकल्पयेत् ।
वस्त्रधान्यहिरण्यानां चतुस्त्रिद्विगुणादिभिः ॥२३०
न सन्ति साक्षिण स्तत्र देशकालान्तरादिभिः ।
शोधयित्वा तु दिव्येन दापयेद्धनिने ऋणम् ॥२३१
मध्यस्थस्थापितं द्रव्यं वर्धते न ततः परम् ।
कृते प्रतिग्रहे चाऽऽधौ पूर्वो वै बलवत्तरः ॥२३२
अवधिर्द्विविधं प्रोक्तं भोग्यं गोप्यं तथैव च ।
क्षेत्रारामादिकं भोग्यं गोप्यं द्रव्यमुपस्करम् ॥२३३

गोप्याधिभोग्ये नो वृद्धिः सोपकारे तथापि ते।
नष्टं देयं विनष्टश्च द्रव्यं राजकृतादृते ॥२३४
उपस्थितस्य भोक्तव्य माधिस्तेनोऽन्यथा भवेत्।
प्रयोजने सति धनं कुलेऽन्यस्याधिमाप्नुयान् ॥२३५
तत्कालकृतमूल्ये वा तत्र तिष्ठेदवृद्धिकम्।
विना धारणकाद्वापि विक्रीणीतमसाक्षिकम् ॥२३६
तं धनस्वमनाख्याय धान्यमस्य न दीयते।
तदा यदधिकं द्रव्यं प्रतिदेयं तथैव च ॥२३७
न दाप्योऽपहृतन्त्यक्तराजदैविकतस्करैः।
न प्रदद्यात्तु तन्मोहात्स दण्ड्य श्चोरवत्तदा ॥२३८
ददीत स्वेच्छया दण्डं दापयेद्वापि सोदरम्।
याचितान्वाहितन्यायान्निक्षेपादिष्वयं विधिः ॥२३६
सुराकामद्यूतकृतं वृथा दानं तथैव च।
दण्डशुल्कानुशिष्टश्च पुत्रो दद्यान्न पैतृकम् ॥२४०
पितरि प्रोषिते प्रेते व्यसनाभिप्लुतेऽपि वा।
पुत्रपौत्रैर्ऋणं देयं निह्नुते साक्षिचोदितम् ॥२४१
रिक्थग्राही ऋणं दद्याद्योषिद्ग्राहस्तथैव च।
पुत्रो न स्वाश्रितद्रव्यः पुत्रहीनस्तु रिक्थिनः ॥२४२
प्रातिभाव्य मृणं मास्यं देयं तस्मै यथोचितम्।
दीयते स्यात्प्रतिभुवा धनिने तु ऋणं यथा ॥२४३
द्विगुणं तत्प्रदातव्यं दण्डं राज्ञे च तत्समम्।
पुत्रादिभिर्न दातव्यं प्रविभाज्य मृण स्त्रियाम् ॥२४४

प्रतिपन्नं स्त्रिया देयं पत्या चैवहि यत् कृतम्।
स्वयं कृतं तु यदृणं नान्यस्त्री दातुमर्हति ॥२४५
पत्यै स्वकं धनं पुत्रा विभजेयु सुनिर्णितम्।
मातृकञ्चेद् दुहितरस्तदभावे तु तत्सुत ॥२४६
भगिन्यश्च प्रमुदिताः पैतृकादाहरेद्धनात्।
न स्त्रीधनं तु दायादा विभजेयुरनापदि ॥२४७
पितृमातृसुताभ्रातृपत्यपत्याद्युपागतम्।
आधिवेतनिकाद्यं च स्त्रीधनं परिकीर्तितम् ॥२४८
अपुत्रा योषितश्चैव भर्तव्या साधुवृत्तयः।
निर्वास्या व्यभिचारिण्य. प्रतिकूलास्तथैव च ॥२४९
नैव भागं वनस्थानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम्।
पाषण्डपतितानां च नचावदिककर्मणाम् ॥२५०
विभक्तेष्वनुजो जात. सवर्णो यदि भागभाक्।
अविभक्तपितृकाणां पितृव्यात् भागकल्पना ॥२५१
द्वै मातृणा मातृतश्च कल्पयेद्वा समोऽपिवा।
विभक्तस्यास्य पुत्रस्य पत्नी दुहितरस्तथा ॥२५२
पितरौ भ्रातरश्चैव तत्सुताश्च सपिण्डिनः।
सम्बन्धिबान्धवाश्चैव क्रमाद् वै रिक्थभागिनः ॥२५३
सीम्नोऽपवादे क्षेत्रेषु सामन्ताः स्थविरादयः।
गोपा. सीमाकृषाणां च सर्वे वनगोचराः ॥२५४
नयेयु रेते सीमानं स्थूणाङ्गारतुषद्रुमैः।
न तु वल्मीकनिम्नास्थिचैत्याद्यैरुपशोभिताः ॥२५५

औरसो दत्तकश्चैव क्रीतः कृत्रिम एव च।
क्षेत्रजः कानिकश्चैव दौहित्रः सप्तमः स्मृतः ॥२५६
पिण्डजश्च परश्चैषां पूर्वाभावे परः परः।
पुत्रः पौत्रश्च तत्पुत्रः पुत्रिकापुत्र एव च ॥२५७
पुत्री च भ्रातरश्चैव पिण्डदाः स्युर्यथाक्रमात्।
एवं धर्मेण नृपतिः शासयेत्सर्वदा प्रजाः ॥२५८
यदुक्तं मनुना धर्मं व्यवहारपदं प्रति।
विलोक्य तच्च विद्वद्भि र्वीतरागै र्विमत्सरैः ॥२५९
विमृश्य धर्मविद्भिश्च विमलैः पापभीरुभिः।
धर्मेणैव सदा राजा शासयेत् पृथिवीं स्वकाम् ॥२६०
विपरीता दण्डयेद्वै यावद्दर्पोपनाशनम्।
सभ्या अपि च दण्ड्या वै शास्त्रमार्गविरोधिनः ॥२६१
राजधर्मोऽयमित्येवं प्रसङ्गात् कथितो मया।
कात्यायनेन मनुना याज्ञवल्क्येन धीमता ॥२६२
नारदेन च सम्प्रोक्तं विस्तरादिदमेव हि।
तस्मान्मया विस्तरेण नोक्त मत्र नृपोत्तम ! ॥२६३
परं भागवतं धर्मं विस्तरेण ब्रवीमि ते।
विष्णोरभ्यर्चनं यत्तु नित्यं नैमित्तिकं नृप ! ॥२६४
यदाह भगवान् धातुस्तेन स्वायम्भुवस्य च।
नारदस्य च मे सम्यक् तदद्य कथयामि ते ॥२६५

इति वृद्धहारीतस्मृतौ विशिष्टधर्मशास्त्रे प्राप्तकालभगवत्-
समाराधनविधिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः।

## ॥ पञ्चमोऽध्यायः ॥

### अथ भगवन्नित्यनैमित्तिकसमाराधनविधिवर्णनम् ।

अम्बरीष उवाच ।

भगवन् ! ब्रह्मणा यत्तु सम्प्रोक्तं स्वात्मनोः पुरा ।
तत्सर्वं परमं धर्मं वक्तुमर्हसि मेऽनघ ! ॥१

हारीत उवाच ।

सर्गादौ लोककर्ताऽसौ भगवान् पद्मसम्भवः ।
मन्वादिप्रमुखान् विप्रान् ससृजे धर्मगुप्तये ॥२
मनुं भृगुं वसिष्ठञ्च मरीचिं दक्षमेव च ।
अङ्गिराः पुलहश्चैव पुलस्त्योऽत्रिर्महातपाः ॥३
वेदान्तपारगास्ते च तं प्रणम्य जगद्गुरुम् ।
भगवन् ! परमं धर्मं भवबन्धापनुत्तये ॥४
वद सर्वमशेषेण श्रोतुमिच्छामहे वयम् ।
इत्युक्तः स द्विजैः सोऽपि ब्रह्मा नत्वा जनार्दनम् ॥५
वेदान्तगोचरं धर्मं तेषां वक्तुं प्रचक्रमे ।
सर्वेषामपि लोकानां स्रष्टा धाता जनार्दनः ॥६
सर्ववेदान्ततत्त्वार्थसर्वयज्ञमयः प्रभुः ।
यज्ञो वै विष्णुरित्यत्र प्रत्यक्षं श्रूयते श्रुतिः ॥७
इज्यते यत् समुद्दिश्य परमो धर्म उच्यते ।
भगवन्तं समुद्दिश्य हूयते यत्र कुत्र वै ॥८
तत्र हिंसाफलं पापं भवेदत्र विगर्हितम् ।
तस्मात् सर्वस्य यज्ञस्य भोक्तारं पुरुषं हरिम् ॥९

ध्यात्वैव जुहुयात्तस्मै हव्यं दीप्ते हुताशने ।
मुखमग्निर्भगवतो विष्णोः सर्वगतस्य वै ॥१०
तस्मिन्नेव यजन्नित्यमुक्तमं मुनिसत्तमाः ।
यजेद्विप्रमुखे शक्त्या जलमन्नफलादिकम् ॥११
प्रीतये वासुदेवस्य सर्वभूतनिवासिनः ।
तमेव चार्चयेन्नित्यं नमस्कुर्यात्तमेव हि ॥१२
ध्यात्वा जपेत्तमेवेशं तमेव ध्यापयेद्धृदि ।
तन्नामैव प्रगातव्यं वाचा वक्तव्य मेव च ॥१३
व्रतोपवासनियमान् तमुद्दिश्यैव कारयेत् ।
तत्समर्पितभोगः स्यादन्नपानादिभक्षणे ॥१४
मतिः स्वार्थं सदारेषु नेतरत्र कदाचन ।
न हिंस्यात्सर्वभूतानि यज्ञेषु विधिना विना ॥१५
सोऽहं दासो भगवतो मम स्वामी जनार्दनः ।
एव वृत्तिर्भवेदस्मिन् स्वधर्मः परमो मतः ॥१६
एष निष्कण्टकः पन्था तस्य विष्णोः परं पदम् ।
अन्यत्तु कुपथं ज्ञेयं निरयप्राप्तिहेतुकम् ॥१७
भगवन्तं मनुद्दिश्य यः कर्म कुरुते नरः ।
स पाषण्डीति विज्ञेयः सर्वलोकेषु गर्हितः ॥१८
यो हि विष्णुं परित्यज्य सवलोकेश्वरं हरिम् ।
इतरानर्चते मोहात्स लोकायतिकः स्मृतः ॥१९
स्वकधर्मं परित्यज्य यो ह्यधर्मे च वर्तते ।
पतितः स तु विज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥२०

यः कर्म कुरुते विप्रो विना विष्ण्वर्चनं क्वचित् ।
ब्राह्मण्याद् भ्रश्यते सद्य श्चण्डालत्वं स गच्छति ॥२१
ब्राह्मणो वैष्णवो विप्रो गुरुरग्र्यश्च वेदवित् ।
पर्य्यायेण च विद्येत नामानि क्ष्मासुरस्य हि ॥२२
तस्माद्वैष्णवत्वेन विप्रत्वाद् भ्रश्यते हि सः ।
अर्चयित्वाऽपि गोविन्दमितरानर्चयेत् पृथक् ॥२३
अवैष्णवत्वं तस्यापि मिश्रभक्त्या भवेद् ध्रुवम् ।
भोक्तारं सर्वयज्ञानां सर्वलोकेश्वरं हरिम् ॥२४
ज्ञात्वा तत्प्रीतये सर्वान् जुहुयात्सततं हरिम् ।
दानं तपश्च यज्ञश्च त्रिविधं कर्म कीर्त्तितम् ॥२५
तत्सर्वं भगवत्प्रीत्यै कुर्वीत सुसमाहितः ।
तस्मात्तु वैष्णवा विप्राः पूजनीया यथा हरिः ॥२६
ये [illegible] वै हेतुकं वाक्यमाश्रित्यैव स्ववाग्बलात् ।
वैष्णवं प्रतिषिध्यन्ति ते लोकायतिकाः स्मृताः ॥२७
यो यत्तु वैष्णवं लिङ्गं धृत्वा च तमसाऽऽवृतः ।
त्यजेद्वैष्णवं धर्मं सोऽपि पाषण्डतां व्रजेत् ॥२८
तस्मात्तु वैष्णवो भूत्वा वैदिकीं वृत्तिमाश्रितः ।
कुर्वीत भगवत्प्रीत्यै कुर्य्याद्यज्ञादिकर्म यत् ॥२९
तद्विशिष्टमिति प्रोक्तं सामान्यमितरं स्मृतम् ।
फलहीना भवेत्सा तु सामान्या वैदिकक्रिया ॥३०
तोयवर्जितवापीव निरर्था भवति ध्रुवम् ।
नैसर्गिकन्तु जीवानां दास्यं विष्णोः सनातनम् ॥३१

तद्विना वर्त्तते मोहादाचारः सनातनात् ।
तस्मात्तु भगवद्दास्यमात्मनां श्रुतिचोदितम् ॥३२
दास्यं विना कृतं यत्तु तदेव कलुषं भवेत् ।
विशिष्टं परमं धर्मं दास्यं भगवतो हरेः ॥३३

ऋषय ऊचुः ।

कथं दास्यं हि तद्वृत्तिः कथं नैसर्गिकं नृणाम् ।
तत्सर्वं ब्रूहि तत्त्वेन लोकानुग्रहकाम्यया ॥३४

ब्रह्मोवाच ।

सुदर्शनोर्ध्वं पुण्ड्रादिधारणं दास्यमुच्यते ।
तद्विधिर्वैदिकी या च तदाज्ञा चोदिता क्रिया ॥३५
तत्राप्याराधनत्वेन कृता पापस्य नाशिनी ।
निरूपणत्वाद्दास्यस्य धार्यं चक्रं महात्मनः ॥३६
अङ्गत्वात् सर्वधर्माणां वैष्णवत्वाच्च धर्मतः ।
कर्म कुर्याद्भगवतस्तस्मै राज्ञा मनुस्मरन् ॥३७
विधिनैव प्रतप्तेन चक्रेणवाङ्कयेद्भुजे ।
तथैव विभृयाद्भाले पुण्ड्रं शुभ्रतरं मृदा ॥३८
विभृयादुपवीतन्तु सव्यस्कन्धे विधानतः ।
कण्ठे पद्माक्षमालाञ्च कौशेयं दक्षिणे करे ॥३९
उभे चिह्ने विना विप्रो न भवेद्धि कथञ्चन ।
न लभेत्कर्मणां सिद्धिं वैदिकानां विशेषतः ॥४०
आश्रमाणां चतुर्णाञ्च स्त्रीणाञ्च श्रुतिचोदनात् ।
अङ्क्येच्छङ्खचक्राभ्यां प्रतप्ताभ्यां विधानतः ॥४१

एकैकमुपवीतन्तु यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ।
गृहिणाश्च वनस्थाना मुपवीतद्वयं स्मृतम् ॥४२
सोत्तरीयं त्रयं वाऽपि बिभृयाच्छुभतन्तुना ।
त्रयमूर्ध्वं द्वयं तन्तु तन्तुत्रय मधोवृतम् ॥४३
त्रिवृच्च ग्रन्थिनैकेन उपवीतमिहोच्यते ।
अर्ककार्पासकौशेयक्षौमशोणमयानि च ॥४४
तन्तूनि चोपवीतानां योज्यानि मुनिसत्तमाः ! ।
सर्वेषामप्यलाभे तु कुर्व्यात् कुशमयं द्विजः ॥४५
ऐणेयमुत्तरीयं स्याद्वनस्थब्रह्मचारिणाम् ।
शुक्लकाषायवसने गृहस्थस्य यतेः क्रमात् ॥४६
उक्तालाभेषु सर्वेषाङ्कुशचीरं विशिष्यते ।
मौञ्जी वै मेखला दण्डं पालाशं ब्रह्मचारिणः ॥४७
त्रयस्तु वैष्णवा दण्डा यतेः काषायवाससी ।
कुशचीरं वल्कलं वा वनस्थस्य विधीयते ॥४८
कटीसूत्रश्च कौपी ं नहृश्च शुक्लवाससा !
कुण्डके चाङ्गुलीयानि गृहस्थस्य विधीयते ॥४९
मुण्डिनौ सूक्ष्मशिखिनौ यत्यन्तेवासिनावुभौ ।
वानप्रस्थो यतिर्वा स्यात्सदा वै श्मश्रुरोमधृत् ॥५०
सुकेशी सुशिखो वा स्याद् गृहस्थः सौम्यवेषवान् ।
यतिश्च ब्रह्मचारी च उभौ भिक्षाशनौ स्मृतौ ॥५१
शाकमूलफलाशी स्याद्वनस्थः सततं द्विजः ।
कुसूलकुम्भधान्यो वा स्याह्निको वा भवेद्गृही ॥५२

प्रतिगृहेण सौम्येन जीवेद्यायावरेण वा ।
यस्त्वेकं दण्डमालम्व्य धर्मं ग्राह्यं परित्यजेत् ॥५३
विकर्मस्थो भवेद्विप्रः स याति नरकं ध्रुवम् ।
शिखायज्ञोपवीतादि ब्रह्मकर्म यतिस्त्यजेत् ॥५४
सजीवं न च चण्डालो मृतश्वानोऽभिजायते ।
स्वरूपेणैव धर्मस्य त्यागो ह्यनिर्भवेद् ध्रुवम ॥५५
कर्मणां फलसन्त्यागः सन्न्यासः स उदाहृतः ।
अनाश्रितः कर्मफलं कृत्यं कर्म समाचरेत् ॥५६
स सन्न्यासी च योगी च स मुनिः सात्विकः स्मृतः ।
तुष्ट्यर्थं वासुदेवस्य धर्मं वै यः समाचरेत् ॥५७
स योगी परमैकान्तं हरेः प्रियतमो भवेत् ।
मोहाद्दास्यं विना विष्णोः किञ्चित्कर्म समाचरेत् ॥५८
न तस्य फलमाप्नोति तामसीं गतिमश्नुते ।
हित्वा यज्ञोपवीतन्तु हित्वा चक्रस्य धारणम् ॥५६
हित्वा शिखोर्ध्वपुण्ड्रे च विप्रत्वाद् भ्रश्यते ध्रुवम् ।
पञ्चसंस्कारपूर्वेण मन्त्रमध्यापयेद् गुरुः ॥६०
संस्काराः पञ्च कर्तव्याः पारमैकान्त्यसिद्धये ।
प्रतिसम्वत्सरं कुर्यादुपाकर्म ह्यनुत्तमम् ॥६१
सर्ववेदव्रतं कृत्वा तत्र सम्पूजयेद्धरिम् ।
दद्यादत्रोपवीतानि विष्णवे परमात्मने ॥६२
ब्राह्मणेभ्यश्च दत्त्वाऽथ विभृयात् स्वयमेव च ।
तदग्नौ पूज्य सन्तर्प्य चक्रञ्चैवाङ्कयेद् भुजे ॥६३

एवं प्रात्याह्निकं धार्यमुपवीतं सुदर्शनम् ।
पुण्ड्रास्तु प्रतिसन्ध्यन्तु नित्यमेव च धारयेत् ॥६४
द्वारवत्युद्भवं गोपी चन्दनं वेङ्कटोद्भवम् ।
सान्तरालं प्रकुर्वीत पुण्ड्रं हरिपदाकृति ॥६५
श्राद्धकाले विशेषेण कर्ता भोक्ता च धारयेत् ।
अयं पञ्चकतत्त्वज्ञः पञ्चसंस्कारदीक्षितः ॥६६
महाभागवतो विप्रः सततं पूजयेद्धरिम् ।
नारायणः परं ब्रह्म विप्राणां दैवतं सदा ॥६७
तस्य भुक्तावशेषन्तु पावनं मुनिसत्तमाः ! ।
हरिभुक्तोऽपि तं दद्यात्पितृणाञ्च दिवौकसाम् ॥६८
तदेव जुहुयाद् वह्नौ भुञ्जीयात्तु तदेव हि ।
हरेरनर्पितं यत्तु देवानामर्पितञ्च यत् ॥६९
मद्यमांससमं प्रोक्तं तद्भुञ्जीयान्कदाचन !
हरेः पादजलं ग्राह्यं नित्यं नान्यदिवौकसाम् ॥७०
सुराणामितरेषां तु फलपुष्पजलादिकम् ।
निर्माल्यमशुभं प्रोक्तमस्पृश्यं हि कदाचन ॥७१
विधिरेष द्विजातीनां नेतरेषां कदाचन ।
शिवार्चनं त्रिपुण्ड्रञ्च शूद्राणां तु विधीयते ॥७२
तद्विधाना मिदं ये च विप्राः शिवपरायणाः ।
ते वै देवलका ज्ञेयाः सर्वकर्मबहिष्कृताः ॥७३
वैखानसास्तु ये विप्राः हरिपूजनतत्पराः ।
न ते देवलका ज्ञेया हरिपादाब्जसंश्रयात् ॥७४

आपहृत्य हरेर्द्रव्यं ग्रामार्थनपरो भवेत्।
भक्त्या संपूज्य देवेशं नासौ देवलकः स्मृतः ॥७५
भक्त्या योऽभ्यर्चयेद्देवं ग्रामार्थं हरिमव्ययम्।
प्रसादतीर्थस्वीकाराज्ञासौ देवलकः स्मृतः ॥७६
शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रादिधारणं स्मरणं हरेः।
तन्नामकीर्तनञ्चैव तत्पादाम्बुनिषेवणम् ॥७७
तत्पादवन्दनञ्चैव तं निवेदितभोजनम्।
एकादश्युपवासश्च तुलस्यैवार्चनं हरेः ॥७८
तदीयानामर्चनञ्च भक्तिर्नवविधास्मृता।
एतैर्नवविधैर्युक्तो वैष्णवः प्रोच्यते बुधैः ॥७९
एतैर्गुणैर्विहीनस्तु न तु विप्रो न वैष्णवः।
कर्मणा मनसा वाचा न प्रमाद्येज्जनार्दनम् ॥८०
भक्तिः सा सात्विकी ज्ञेया भवेदव्यभिचारिणी।
नान्यं देवं नमस्कुर्यान्नान्यं देवं प्रपूजयेत् ॥८१
नान्यप्रसादं भुञ्जीत नान्यदायतनं विशेत्।
न त्रिपुण्ड्रं तथा कुर्यात्पञ्चाकारं जगत्त्रयम् ॥८२
यतिर्यस्य गृहे भुङ्क्ते तस्य भुङ्क्ते हरिं स्वयम्।
हरिर्यस्य गृहे भुङ्क्ते तस्य भुङ्क्ते जगत्त्रयम् ॥८३
महाभागवतो विप्रः सततं पूजयेद्धरिम्।
पाञ्चकाल्प विधानेन निमित्तेषु विशेषतः ॥८४
अप्स्वग्नौ हृदये सूर्ये स्थण्डिले प्रतिमासु च।
षट्सु तेषु हरेः पूजा नित्यमेव विधीयते ॥८५

स्नानकाले तु संप्राप्ते नद्यां पुण्यजले शुभे ।
ध्यात्वा नारायणं देवं नागपर्यङ्कशायिनम् ॥८६
द्वादशार्णेन मनुना सोऽर्चयित्वाऽक्षतादिभिः ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा ततः स्नानं समाचरेत् ॥८७
एतद्ध्यर्चनं प्रोक्तं ब्राह्मणस्य जगत्पतेः ।
होमकाले तु सततं परिस्तीर्यानलं शुभम् ॥८८
यज्ञरूपं महात्मानं चिन्तयेत् पुरुषोत्तमम् ।
साङ्गत्रयीमयं शुभ्रदिव्याङ्गोपाङ्गशोभितम् ॥८९
सर्वलक्षणसम्पन्नं शुद्धजाम्बूनदप्रभम् ।
युवानं पुण्डरीकाक्षं शङ्खचक्रधनुर्धरम् ॥९०
सर्वयज्ञमयं ध्यायेद्वामाङ्काश्रितपद्मया ।
सम्पूज्य चाक्षतैरेव पश्चाद्धोमं समाचरेत् ॥९१
प्राणाग्निहोत्रसमये सम्यगाचम्य वारिणा ।
कुशासने समासीनः प्राग्वा प्रत्यङ्मुखोऽपि वा ।
पतिष्यासनमात्मानं प्राणायामं समाचरेत ॥९२
मन्त्रेणोद्बुध्य हृदयपङ्कजं केशरान्वितम् ।
तस्मिन्वह्न्यर्कशीतांशुबिम्बान्यनु विचिन्तयेत् ॥९३
सर्वाक्षरमयं दिव्यरत्नपीठं तदुत्तरे ।
तन्मध्येऽष्टदलं पद्मं ध्यायेत्कल्पतरोरधः ॥९४
वीरासने समासीनं तस्मिन्नीशं विचिन्तयेत् ।
स्निग्धदूर्वादलश्यामं सुन्दरं भूषणैर्युतम् ॥९५

पीताम्बरं युवानं च चन्दनस्रग्विभूषितम्।
शरत्पद्मासनं रक्तपद्माभाङ्घ्रिकरद्वयम् ॥९६
स्निग्धवर्णं महाबाहुं विशालोरस्कमव्ययम्।
चक्राद्यङ्गगदाबाणपाणिं रघुवरं हरिम् ॥९७
जानकीलक्ष्मणोपेतं मनसैवार्चयेद्विभुम्।
मन्त्रद्वयेनार्चयित्वा जप्त्वा चैव षडक्षरम् ॥९८
पश्चाद् वै जुहुयात् पञ्च प्राणानभ्यर्च्य तं पुनः।
ध्यायन्वै मनसा विष्णुं सुखं भुञ्जीत वाग्यतः ॥९९
एवं ह्यर्चनं विष्णोरुक्तमं मुनिसत्तमाः।।
अत्यन्ताभिमता विष्णो ह्र्यतपूजा परमात्मनः ॥१००
सन्ध्याकाले तु सम्प्राप्ते रविमण्डलमध्यगम्।
हिरण्यगर्भं पुरुषं हिरण्यवपुषं हरिम् ॥१०१
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं वैजयन्तीविराजितम्।
शङ्खचक्रादिभिर्युक्तं भूषितैर्दोर्भिरायतैः ॥१०२
शुक्लाम्बरधरं विष्णुं मुक्ताहारविभूषितम्।
ध्यात्वा समर्चयेद्देवं कुसुमैरक्षतैरपि ॥१०३
प्रणवेन च सावित्र्या पश्चात् सूक्तं निवेदयेत्।
ध्यायन्नेवं जपेद्विष्णुं गायत्रीं भक्तिसंयुतः ॥१०४
तथैवाभ्यर्च्य गोविन्दं नमस्कृत्वा विसर्जयेत्।
एवमभ्यर्चयेद्देवं त्रिसन्ध्यासु तथा हरिम् ॥१०५
वैश्वदेवावसाने तु पुरस्ताद् वै विभावसोः।
उपलिप्य स्थण्डिले तु जुहुयाद्भक्तिकर्म तत् ॥१०६

ध्यात्वा सर्वगतं विष्णुं घनश्यामं सुलोचनम्।
कौस्तुभोद्भासितोरस्कं तुलसीवनमालिनम् ॥१०७
पीताम्बरधरं देवं रत्नकुण्डलशोभितम्।
हरिचन्दनलिप्ताङ्गं पुण्डरीकायतेक्षणम् ॥१०८
मौक्तिकान्वितनासाग्रं जगन्मोहनविग्रहम्।
गोपीजनैः परिवृतं वेणुं गायन्तमच्युतम् ॥१०९
ध्यात्वा कृष्णं जगन्नाथं पूजयित्वा यथाविधिः।
जुहुयाद्धरिचक्रं तद्देवानुद्दिश्य सत्तमाः! ॥११०
जप्त्वा कृष्णमनुं पश्चादभ्यर्च्य मनसा हरिम्।
आचम्य प्रयतो भूत्वा नमस्कृत्य विसर्जयेत् ॥१११
स्थण्डिलेऽभ्यर्चनं विष्णोरेवं कुर्याद्विधानतः।
त्रिसन्ध्यास्वर्चयेद् विष्णुं प्रतिमासु विशेषतः ॥११२
सुवर्णरजताद्यैर्वा शिलादार्वादिनाऽपि वा।
कृत्वा बिम्बं हरेः सम्यक् सर्वावयवशोभितम् ॥११३
सर्वलक्षणसम्पन्नं सर्वायुध समन्वितम्।
ततोऽधिवासनं कुर्यात्त्रिरात्रं शुद्धवारिषु ॥११४
तत्रार्चयेद्विधानेन जपहोमादिकर्मभिः।
स्नाप्य पञ्चामृतैर्गव्यैस्तदा मन्त्रजलैरपि ॥११५
यजवेद्यां समारोप्य पूजयेत्तत्र दीक्षितः।
मङ्गलद्रव्यसंयुक्तैः पूर्णकुम्भैः समन्वितः ॥११६
शरावैर्द्रव्यसम्पूर्णैः पताकैस्तोरणादिभिः।
कुम्भेषु वासुदेवादीन् सुरान् संपूजयेत् क्रमात् ॥११७

वासुदेवो हयग्रीवस्तथा सङ्कर्षणो विभुः।
महावराहः प्रद्युम्नो नारसिंहस्तथैव च ॥११८
अनिरुद्धो वामनश्च पूजनीया यथाक्रमात्।
तस्य पूर्णशरावेषु लोकेशानर्चयेत्ततः ॥११९
मध्ये तु वारुणं कुम्भं पञ्चरत्नसमन्वितम्।
पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्ध्यात्वाऽस्मिन् जलशायिनम् ॥१२०
ततः संपूजयेद्देवं धान्योपरि निधाय च ॥१२१
व्याघ्रचर्म्म समास्तीर्य तस्मिन् कौशेयवाससि।
निवेद्य पूजयेद् बिम्बं मूलमन्त्रेण वैष्णवः ॥१२२
तोरणेषु चतुर्दिक्षु चण्डादीनर्चयेत् तदा।
कुमुदादि सुरान् दिक्षु तथा धर्मादिदेवताः ॥१२३
संपूज्य विधिना तस्मिन् पश्चाद्धोमं समाचरेत्।
आग्नेयं कल्पयेत् कुण्डं मेखलाद्युपशोभितम् ॥१२४
अश्वत्थाद् वा शमीगर्भादाहृत्याग्नौ विनिक्षिपेत्।
वणवस्य गृहाद्वाऽपि समानीयानलं द्विजः ॥१२५
गृह्योक्तविधिनैवात्र प्रतिष्ठाप्य हुताशनम्।
इध्माधानादि पर्यन्तं कृत्वा होमं समाचरेत् ॥१२६
पायसेन गवाज्येन तिलैर्व्रीहिभिरेव च।
चतुर्भिर्वैष्णवैः सूक्तैः पायसं जुहुयाद्धविः ॥१२७
हिरण्यगर्भसूक्तेन श्रीसूक्तेन तथैव च।
अहं रुद्रेभिरिति च गवाज्यं जुहुयात्ततः ॥१२८

त्वमग्ने द्युभिरिति च सूक्तेन प्रत्यृचन्त्रिभिः ।
अस्य वामेति सूक्तेन प्रत्यृचं व्रीहिभिस्तथा ॥१२६
अग्निं नरो दीधितिभिः सूक्तेन प्रत्यृचं तथा ।
समिद्भिः पिप्पलीरौद्रैर्होतव्यं मुनिसत्तमाः ! ॥१३०
अष्टोत्तरं सहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा
होतव्यमाज्यं पश्चात्तु तथा मन्त्र · [illegible]यम् ॥१३१
वैकुण्ठपार्षदं होमं पायसेन घृतेन वा ।
समाप्य होमं हविषः शेषं तस्मै निवेदयेत् ।
चतुर्मन्त्रांश्चतुर्वेदांश्चतुर्दिक्षु जपेत्ततः ॥१३२
तत्र जागरणं कुर्य्याद्गीतवादित्रनर्त्तकैः ।
रजन्यां तु व्यतीतायां स्नात्वा नद्यां विधानतः ॥१३३
वैकुण्ठतर्पणं कुर्य्यादृत्विग्भिर्ब्राह्मणैः सह ।
तर्पयित्वा पितॄन् देवान्वाग्यतो भवनं विशेत् ॥१३४
आचम्य पूर्ववत् पूजां कृत्वा होमं समाचरेत् ।
जुहुयाद्ब्रह्मणः स्तुत्यैः सूक्तैश्च घृतपायसम् ॥१३५
पौरुषेण तु सूक्तेन श्रीसूक्तेन तथैव च ।
वैकुण्ठपार्षदं हुत्वा कर्मशेषं समापयेत् ॥१३६
नयनोन्मीलनं कुर्य्यात् सुमुहूर्तेन वैष्णवः ।
महाभागवतः श्रेष्ठः सूक्ष्महेमशलाकया ॥१३७
द्रव्येनैव प्रकुर्व्वीत नयनोन्मीलनं हरेः ।
निवेश्य भद्रपीठे तु स्नापयेत् सुसमाहितः ॥१३८

सवश्च वैष्णवैः सूक्तैश्च त्रिजः कलशोदकैः।
ततस्तन्मध्यमं कुम्भमादाय द्विजसत्तमः ॥१३६
स्नापयेन्मन्त्ररत्नेन शतवारं समाहितः।
सौवर्णेन च ताम्रेण शङ्खेन रजतेन वा ॥१४०
स्नाप्य पञ्चामृतैर्गव्यैरुद्धृत्य शुभचन्दनैः।
मन्त्रेण स्नापयित्वा च तुलसीमिश्रितैर्जलैः ॥१४१
वासोभिर्भूषणैः सम्यगलङ्कृत्य च वैष्णवः।
उपचारैः समभ्यर्च्य पश्चान्नीराजयेत्तदा ॥१४२
अलङ्कृते शुभे गेहे पीठे संस्थापयेद्धरिम्।
सूक्तेनोत्तानपादस्य दृढं स्थाप्य सुखासने ॥१४३
अष्टोत्तरशतं वारं शुभमन्त्रचतुष्टयात्।
ध्यात्वा पुष्पाञ्जलिं दद्यान्महाभागवतोत्तमः ॥१४४
नत्वा गुरून् परं धाम्नि स्थितं देवं सनातनम्।
ध्यात्वैव मन्त्ररत्नेन तस्मिन् बिम्बे निवेशयेत् ॥१४५
अर्चयित्वोपचारैस्तु मङ्गलानि निवेदयेत्।
दर्पणं कपिलां कन्या शङ्खं दूर्वाक्षतान् पयः ॥१४६
सौवर्णमाज्यं लाजांश्च मधुसर्षपमञ्जनम्।
एवं त्रयोदशे मासि मङ्गलानि निवेदयेत् ॥१४७
तथैव दशमुद्राश्च मन्त्रेणैव समीक्षयेत्।
तद्बिम्बमूर्त्ति मन्त्रेण पश्चाद्दशशतानि तु ॥१४८
पुष्पाणि दद्याद्भक्त्या च जपेच्च सुसमाहितः।
सतिलैस्तण्डुलैः शुभ्रैर्जुहुयाच्च द्विजोत्तमः ॥१४६

आशिषो वाचनं कृत्वा दीपैर्नीराजयेत्तदा ।
भोजयित्वा ततो विप्रान् दक्षिणाभिश्च तोषयेत् ॥१५०
आचार्यं मृत्विजश्चापि विशेषेण समर्चयेत् ।
सद्‌र्धिं संप्रहेन्नित्यं होमार्थं परमात्मन ॥१५१
त्रिरात्रमु सर्वं तत्र कुर्य्याच्छक्त्या यतात्मवान् ।
वैष्णवै पापमाप्नुश्च तत्र पुष्पाञ्जलिं चरेत् ॥१५२
आज्येन चरुणा वाऽपि होमं कुर्वीत वैष्णव ।
प्रत्यह भोजयेद्विप्रान् वैष्णवान् घृतपायसम् ॥१५३
तन्मूर्तिप्रीतये शक्त्या दद्याद्वासांसि दक्षिणा. ।
कुर्य्यादवभृथेष्टिं च महाभागवतै सह ॥५४
सहस्रनामभिर्विष्णो. सूक्तैर्विष्णुप्रकाशकै ।
नद्यामवभृथं कृत्वा तर्पयेत्पितृदेवता. ॥१५५
अस्य वामेति सूक्तेन पायसं मधुसंयुतम् ।
आज्येन मूलमन्त्रेण सहस्रं जुहुयात्तदा ॥१५६
आशिषो वाचनं कृत्वा भोजयेद्द्विजसत्तमान् ।
एवं संस्थापयेद्देवमर्चयेद्विधिना तदा ॥१५७
गृहार्चायां स्थापने तु लघुतन्त्रं समाचरेत् ।
आधिवासनशय्यादि मन्त्रमत्र विवर्जयेत् ॥१५८
एकत्र पञ्चगव्येषु विनिक्षिप्य परेऽहनि ।
पञ्चामृतै स्नापयित्वा पश्चदुद्वर्तनादिकम् ॥१५६
आदाय कलशं शुद्धं पवित्रोदकपूरितम् ।
निक्षिप्य पञ्चरत्नानि सुवर्णतुलसीदलम् ॥१६०

चन्दनाक्षतदूर्वाश्च तिलान् धात्रीश्च सर्षपम् ।
अभिमन्त्र्य कुशैः पश्चान्मन्त्ररत्नेन वैष्णवः ॥१६१
शतवारं सहस्रं वा मन्त्रेणवाभिषेचयेत् ।
सवश्च वैष्णवैः सूक्तैर्गायत्र्या वैष्णवेन च ॥१६२
नामभिः केशवाद्यैश्च सर्वैर्मन्त्रैश्च वैष्णवैः ।
स्नाप्य वस्त्रैर्भूषणैश्च शुभे धान्ये निवेशयेत् ॥१६३
स्थण्डिलेऽग्निं प्रतिष्ठाप्य इध्माधानादि पूर्ववत् ।
होमं कुर्याद् गवाज्येन पायसान्नेन वैष्णवः ॥१६४
कर्तुरौपासनाग्नौ तु होममन्त्र (तन्त्रं) विशिष्यते ।
प्रत्यृचं वैष्णवे सूक्ते जुहुयाद् घृतपायसम् ॥१६५
अस्य वामेति सूक्तेन गवाज्यं जुहुयात्ततः ।
मन्त्ररत्नेन जुहुयादष्टोत्तरसहस्रकम् ॥११६६
तद्विम्बमूर्तिमन्त्रेण तिलहोमं तथैव च ।
अविज्ञातस्तु तन्मत्रे मूलमन्त्रेण वा यजेत् ॥१६७
यजेत्त्रोश्च प्रकाशैश्च गायत्र्या विष्णुसंज्ञया ।
वैकुण्ठपार्षदं होमं कृत्वा होमं समापयेत् ॥१६८
नयनोन्मीलनं कृत्वा सौवर्णेन कुशेन वा ।
निवेश्याऽऽवाहयेत्पीठे मन्त्ररत्नेन वैष्णवः ॥१६९
मन्त्रेणैवार्चनं कृत्वा पश्चात् पुष्पाञ्जलिं यजेत् ।
तस्मिन्बिम्बे तु तन्मूर्तिं ध्यात्वा नियतमानसः ॥१७०
अष्टोत्तरसहस्रन्तु दद्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः ।
सर्वैश्च वैष्णवैः सूक्तैर्दद्यात् पुष्पाणि वैष्णवः ॥ १७१

ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात्पायसान्नं घृतान्वितम् ।
शक्त्या च दक्षिणा दत्त्वा विशेषेणार्चयेद् गुरुम् ॥ १७२
सहस्रनामभिः स्तुत्वा आशीर्भिरभिवादयेत् ।
प्रदक्षिणानमस्कारान् कुर्व्वीतात्र पुनः पुनः ॥१७३
प्रसीद मम नाथेति भक्त्या सम्प्रार्थयेद्विभुम् ।
दीप्तैर्नीराजयेत्पश्चाच्छक्त्या तेन समाहितः ॥१७४
हुतशेषं हविः प्राश्य जप्त्वा मन्त्र मनुत्तमम् ।
ध्यायन् कमलपत्राक्षं भूमौ स्वप्यात् कुशोत्तरम् ॥१७५
एवं गृहार्चां विम्बस्य विष्णुं संस्थाप्य वैष्णवः ।
अर्चयेद्विधिना नित्यं यावद्देहनिपातनम् ॥१७६
शालग्रामशिलायान्तु पूजनं परमात्मनः ।
कोटिकोटिगुणाधिक्यं भवेदत्र न संशयः ॥१७७
न जपो नाधिवासश्च न च संस्थापनक्रिया ।
शालग्रामार्चने विष्णुस्तस्मिन् सन्निहितस्तथा ॥१७८
मूर्तीनान्तु हरे स्तस्य यस्यां प्रीतिरनुत्तमा ।
तस्यामेव तु तां ध्यात्वा पूजयेत् तद्विधानतः ॥१७९
मूर्त्यन्तरमविम्बे तु न यष्टव्यं तदेव तत् ।
शालग्रामशिलायान्तु यष्टव्या इष्टमूर्तयः ॥१८०
अर्चनं वन्दनं दानं प्रणामं दर्शनं नृणाम् ।
शालग्रामशिलायान्तु सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥१८१
न (स)स्नावः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ।
यो वहेच्छिरसा नित्यं सालग्रामशिलाजलम् ॥१८२

असत्यकथनं हिंसामभक्ष्याणाञ्च भक्षणम् ।
शालग्रामजलं पीत्वा सर्वं दहति तत्क्षणात् ॥१८३

द्विजानामेव नान्येषां शालग्रामशिलार्चनम् ।
बालकृष्णवपुर्देवं पूजयेत्तद् द्विजः सदा ॥१८४

पठेद्वाऽप्यर्चयेद् विष्णु विशिष्ट शूद्रयोनिजः ।
स्थण्डिले हृदये वाऽपि पूजयेत्तद् द्विजः सदा ॥१८५

वाराहं नारसिंहञ्च हयग्रीवञ्च वामनम् ।
ब्राह्मण पूजयेद्विष्णुं यज्ञमूर्तिञ्च केवलम् ॥१८६

क्षत्रिय पूजयेद्रामं केशव मधुसूदनम् ।
नारायणं वासुदेवमनन्तञ्च जनार्दनम् ॥१८७

प्रद्युम्न मनिरुद्धञ्च गोविन्दञ्चाच्युतं हरिम् ।
सङ्कर्षणं तथा कृष्णं वेश्य. सपूजयेत्त र ॥१८८

बालं गोपालवेषं वा पूजयेच्छूद्रयोनिजः ।
सर्व एव हि संपूज्या विप्रेण मुनिसत्तमा ॥१८९

सर्वेऽपि भगवन्मूर्त्या जप्तव्या. सर्वसिद्धिदा. ।
तस्माद्द्विजोत्तम पूज्य सर्वपां भूतिमिच्छताम् ॥१९०

पञ्चसंस्कारसम्पन्नो मन्त्ररत्नार्थकोविदः ।
शालग्रामशिलायां तु पूजयेत पुरुषोत्तमम् ।
पूजितस्तुलसीपत्रैर्दद्याद्वि सकलं हरि ॥१९१

य. श्राद्धं कुरुते विप्र शालग्रामशिलाग्रत ।
पितॄणां तत्र तृप्तिः स्याद् गयाश्राद्धादनन्तरम् ॥१९२

जप्तं हुतं तथा दानं वन्दनं च सतः क्रिया ।
शालग्रामसमीपे तु सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥१६३
ध्यात्वा कमलपत्राक्षं शालग्रामशिलोपरि ।
पौरुषेण तु सूक्तेन पूजयेत् पुरुषोत्तमम् ॥१६४
अनुष्टुभस्य सूक्तस्य त्रिष्टुबन्त्याऽस्य देवता ।
पुरुषो यो जगद्बीजमृषिर्नारायणः स्मृतः ॥१६५
प्रथमां विन्यसेद्वामे द्वितीयां दक्षिणे करे ।
तृतीयां वामपादे तु चतुर्थीं दक्षिणे तथा ॥१६६
पञ्चमीं वामजानौ तु षष्ठीं वै दक्षिणे तथा ।
सप्तमीं वामकट्यां तु अष्टमीं दक्षिणेऽपि च ॥१६७
नवमीं नाभिदेशे तु दशमीं हृदि विन्यसेत् ।
एकादशीं कण्ठदेशे द्वादशीं वामबाहुके ॥१६८
त्रयोदशीं दक्षिणे तु स्वास्यदेशे चतुर्दशीम् ।
अक्ष्णोः पञ्चदशीं मूर्ध्नि षोडशीञ्चैव विन्यसेत् ॥१६९
एवं न्यासविधिं कृत्वा पश्चाद् ध्यानं समाचरेत् ।
सहस्रार्कप्रतीकाशङ्कन्दर्पायुतसन्निभम् ॥२००
युवानं पुण्डरीकाक्षं सर्वाभरणभूषितम् ।
पीनवृत्तायतैर्दोर्भिश्चतुर्भिर्भूषणान्वितैः ॥२०१
चक्रं पद्मं गदां शङ्खं बिभ्राणं पीतवाससम् ।
शुक्लपुष्पानुलेपञ्च रक्तहस्तपदाम्बुजम् ॥२०२
सुस्निग्धनीलकुटिलकुन्तलैरुपशोभितम् ।
श्रिया भूम्या समाश्लिष्टपार्श्वं ध्यात्वा समर्चयेत् ॥२०३

यथाऽऽत्मनि तथा देवे न्यासकर्म्म समाचरेत् ।
आद्ययाऽऽवाहनं विष्णोरासनं च द्वितीयया ॥२०४
तृतीयया च तत्पाद्यं चतुर्थ्याऽर्घ्यं निवेदयेत् ।
पञ्चम्याऽऽचमनीयं तु दातव्यं च ततः क्रमात् ॥२०५
षष्ठ्या स्नानन्तु सप्तम्या वस्त्रमप्युपवीतकम् ।
अष्टम्या चैव गन्धन्तु नवम्याथ सुपुष्पकम् ॥२०६
दशम्या धूपकञ्चैव मेकादश्या च दीपकम् ।
द्वादश्या च त्रयोदश्या चरुं दिव्यं निवेदयेत् ॥२०७
चतुर्दश्या नमस्कारं पञ्चदश्या प्रदक्षिणम् ।
षोडश्या शयनं दत्त्वा शेषकर्म्म समाचरेत् ॥२०८
स्नानवस्त्रोपवीतेषु चरौ चाऽचमनं चरेत् ।
हुत्वा षोडशभिर्मन्त्रैः षोडशाऽऽज्याहुतीः क्रमात् ॥२०६
तथवाऽऽज्येन होतव्यं मूद्भिः पुष्पाञ्जलिं चरेत् ।
तत्र सर्वं जपेत् सद्य पौरुषं सूक्तमुत्तमम् ॥२१०
कृत्वा माध्याह्निकस्नान मूर्द्ध्व पुण्ड्रधरस्ततः ।
नित्यां सन्ध्यामुपास्याथ रविमण्डलमध्यगम् ॥२११
हरिं ध्यायन्नगदः स्यादेनसः शुचिरित्यृचा ।
सावित्रीं च जपेत्तिष्ठन् प्राणानायम्य पूर्वतः ॥२१२
सौरेण चानुवाकेन उपस्थानजपं तथा ।
आत्मानं च परीक्ष्याथ दर्भान्तरपुटाञ्जलिम् ॥२१३
दक्षिणाङ्के तु विन्यस्य जपयज्ञाप्तये बुधः ।
सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं तु जपेत्तदा ॥२१४

शक्त्या च चतुरो वेदान् पुराणं वैष्णवं जपेत् ।
चरितं रघुनाथस्य गीता भगवतो हरे ॥२१५
ध्यायन्वै पुण्डरीकाक्षं जप्त्वा वाऽप उपस्पृशेत् ।
पूर्ववत्तर्पयेद्देवं वैकुण्ठपार्षदं तथा ॥२१६
देवानृषी न्पितॄन्श्चैव तर्पयित्वा तिलोदकैः ।
निष्पीड्य वस्त्रमाचम्य गृहमाविश्य पूर्ववत् ॥२१७
पूजयित्वाऽच्युतं भक्त्या पौरुषेण विधानत ।
दैवं भूतं पैतृकं च मानुषञ्च विधानत ॥२१८
प्रीतये सर्वयज्ञस्य भोक्तु विष्णो र्यजेत्तत ।
चकुण्ठं वैष्णवं होमं पूर्ववज्जुहुयात्तदा ॥२१९
चतुर्विधेभ्यो भूतेभ्यो वलिं पश्चाद्विनिक्षिपेत् ।
द्वारि गोदोहमात्रन्तु तिष्ठेदतिथिवाञ्छया ॥२२०
भोजयेच्चाऽऽगतान् काले फलमूलौदनादिभि ।
महाभागवतान् विप्रान् विशेषेणैव पूजयेत् ॥२२१
मधुपर्कप्रदानेन पाद्यार्घ्याचमनादिभि ।
गन्धै पुष्पैश्च ताम्बूले धूपै दीपै निवेदने ॥२२२
ब्रह्मासने निवेश्यैव पूजयेच्छ्रद्धयाऽन्वित ।
सकृ-संपूजिते विप्रे महाभागवतोत्तमे ॥२२३
षष्टिं वर्षसहस्राणि हरि संपूजितो भवेत् ।
मोहादनर्चयेद्यस्तु महाभागवतोत्तमम् ॥२२४
कोटिजन्मार्जितात्पुण्याद् ध्वस्यते नात्र संशय ।
गृहे तस्य न चाश्नाति शतवर्षाणि केशव ॥२२५

गुरुं हि सर्वदेवानां महाभागवतोत्तमः ।
तस्मिन् सम्पूजिते विप्रे पूजितं स्याज्जगत्त्रयम् ॥२२६
अर्थपञ्चकतत्त्वज्ञः पञ्चसंस्कारसंस्कृतः ।
नवभक्तिसमायुक्तो महाभागवतः स्मृतः ॥२२७
काले समागते तस्मिन् पूजिते मधुसूदनः ।
क्षणादेव प्रसन्नः स्यादीप्सितानि प्रयच्छति ॥२२८
महाभागवतानाञ्च पिबेत्पादोदकं तु यः ।
शिरसा वा श्रयेद्भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२२९
यस्मिन् कस्मिन् हि वसति महाभागवतोत्तमे ।
अप्येकरात्रमथवा तद्देशस्तीर्थसम्मितः ॥२३०
भोजयित्वा महाभागान् वैष्णवानतिथीनपि ।
ततो बालसुहृद्वृद्धान् बान्धवांश्च समागतान् ॥२३१
भोजयित्वा यथा शक्त्या यथाकालं जितक्षुधः ।
भिक्षां दद्यात् प्रयत्नेन यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥२३२
शूद्रो वा प्रतिलोमो वा पथि श्रान्तः क्षुधातुरः ।
भोजयेत्तं प्रयत्नेन गृहमभ्यागतो यदि ॥२३३
पाषण्डः पतितो वाऽपि क्षुधार्त्तो गृहमागतः ।
नैव दद्यात् स्वपकान्नमाममेव प्रदापयेत् ॥२३४
स्वशक्त्या तर्पयित्वैवमतिथीनागतान् गृहे ।
सम्यङ्निवेदितं विष्णोः स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥२३५
प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च सम्यगाचम्य वारिणा ।
विष्णोरभिमुखं पीठे हेमदिग्धे कुशोत्तरे ॥२३६

प्राग्वा प्रत्यङ्मुखो वाऽपि आन्तोरन्त करः शुचिः ।
उदङ्मुखो वा पैत्र्ये तु समासीताभिपूजितः ॥२३७
वंशतालादिपत्रेषु कृतं वसनमश्म च ।
कपाल मिष्टकं चापि पर्णं तृणमयं तथा ॥२३८
चर्मासनं शुष्ककाष्ठं स्थलं पर्य्यङ्कमेव च ।
निषिद्धधातु पीठं च दान्तमस्थिमयञ्च यत् ॥२३९
दग्धं परावितं ताम्रमायसञ्च विवर्जयेत् ।
विभीतकन्तिन्दुकञ्च करञ्जं व्याधिघातकम् ॥२४०
भल्लातकं कपित्थं च हिन्तालं शिग्रुमेव च ।
निषिद्धतरवो ह्येते सर्वकर्मसु गर्हिताः ॥२४१
शुद्धदारुमये पीठे समासीने कुशोत्तरे ।
पीठे त्वलाभे सौम्ये स्यात् केवलं कुशविष्टरम् ॥२४२
चतुरस्रं त्रिकोणं वा वर्तुलञ्चार्द्ध चन्द्रकम् ।
वर्णानामानुपूर्वेण मण्डलानि यथाक्रमात् ॥२४३
स्वलङ्कृते मण्डलेऽस्मिन् विमलं भाजनं न्यसेत् ।
स्वर्णं रौप्यं च कांस्यं वा पर्णं वा शास्त्रचोदितम् ॥२४४
षत्तु पट्पलं कांस्यं तदर्धं पादमेव वा ।
गृहिणामेव भोज्यं स्यात् ततो हीनन्तु वर्जयेत् ॥२४५
पलाशपद्मपत्रे तु गृही यत्नेन वर्जयेत् ।
यतीनाञ्च वनस्थानां पितॄणाञ्च शुभप्रदम् ॥२४६
वटाश्वत्थार्कपर्णानि कुम्भीतिन्दुकयोस्तथा ।
एरण्डतालविल्वेषु कोविदारकरञ्जके ॥२४७

भल्लातकाश्वपर्णाना पर्णानि परिवर्जयेत् ।
मोचागर्भपलाशं च वर्जयेत्तु सर्वदा ॥२४८
मधुकं कुटजं ब्राह्मजम्बूप्लक्षमुदुम्बरम् ।
मातुल(लु)ङ्गं पनसं च मोचाचर्मदलानि च ॥२४६
पालाश्वत्थं श्रीपर्णं शुभानीमानि भोजने ।
यथाकालोपपन्ने तु भोजने घृतसंस्कृते ॥२५०
पत्न्यादिभिर्दत्तवस्तु वासुदेवार्पिते शुभे ।
गायत्र्या मूलमन्त्रेण संप्रोक्ष्य शुभवारिणा ॥२५१
ऋतसत्याभ्यामिति च मन्त्राभ्यां परिषेचयेत् ।
अन्नरूपं विराजं संध्यात्वा मन्त्रं जपेद्बुध. ॥२५२
ध्यात्वा हृत्पङ्कजे विष्णुं सुधांशुसदृशद्युतिम ।
शङ्खचक्रगदापद्मपाणिं वै दिव्यभूषणम् ॥२५३
मनसैवार्चयित्वाऽथ मूलमन्त्रेण वैष्णवः ।
पादोदकं हरेः पुण्यं तुलसीदलमिश्रितम् ॥२५४
अमृतोपस्तरणमसीति मन्त्रेण प्राशयेत् ।
उद्दिश्यैव हरिं प्राणान् जुहुयात् सघृतं हविः ॥२५५
अन्नलाभे तु होतव्यं शाकमूलफलादिभिः ।
पञ्चप्राणाद्या हुतयो मन्त्रैस्तैर्जुहुयाद्वरे ॥२५६
श्रद्धायां प्राणे(नि)विष्टेति मन्त्रेण च यथाक्रमात् ।
तर्जनीमध्यमाङ्गुष्ठै प्राणायेति यजेद्वनि ॥२५७
मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैरपानायेत्यनन्तरम् ।
कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्व्यानायेत्याहुतिं ततः ॥२५८

कनिष्ठतर्जन्यङ्गुष्ठैरुदानायेति वै यजेत्।
समानायेति जुहुयात्सर्वरङ्गुलिभिर्द्विजः ॥२५६
अयमग्निर्वैश्वानरिरित्यात्मानमनन्तरम्।
शतमष्टोत्तरं मन्त्रं मनसैव जपेत्ततः ॥२६०
ध्यायन् नारायणं देवं भुञ्जीयात् तु यथासुखम्।
वक्त्रादपातयन् ग्रासं चिन्तयन्मधुसूदनम ॥२६१
नाऽऽसनारूढपादस्तु न वेष्टितशिरास्तथा।
न स्कन्दयन् न च हसन वहिर्नाप्यवलोकयन् ॥२६२
नाऽऽत्मीयान् प्रलपन् जल्पन् वह्निर्जानुकरो न च ।
न वादकोपितनर.(पादारोपितकर)पृथिव्यामपि वा न च ॥२६३
न प्रसारितपादश्च नोत्सङ्गकृतभाजनः।
नाश्नीयाद्भार्यया सार्धं न पुत्रैर्वापि विह्वलः ॥२६४
न शयानो नातिसक्तो न विमुक्तशिरोरुहः।
अन्नं वृथा न विकिरन् निष्ठीवन् नातिकाङ्क्षया ॥२६५
नातिशब्देन भुञ्जीत न वस्त्रार्थोपवेष्टितः।
प्रगृह्य पात्रं हस्तेन भुञ्जीयात् पैतृकं यदि ॥२६६
चषके पुटके वाऽपि पिबेत्तोयं द्विजोत्तमः।
तक्रं वाऽप्यथ वा क्षीरं पानकं वाऽपि भोजने ॥२६७
वक्त्रेण सान्त्वधर्मेन दत्तमन्येन वा पिबेत्।
ग्रासशेषं नचाश्नीयात्पीतशेषं पिबेन्न तु ॥२६८
शाकमूलफलादीनि दन्तच्छिन्नं न खादयेत्।
उद्धृत्य वामहस्तेन तोयं वक्त्रेण यः पिबेत् ॥२६६

स सुरा वै पिबेद् व्यक्तं सद्यः पतति रौरवे।
शब्देनापोशने पीत्वा शब्देन दधिपायसे ॥२७०
शब्देनाम्ररसं क्षीरं पीत्वैव पतितो भवेत्।
प्रत्यक्षलवणं शुक्तं क्षीरं च लवणान्वितम् ॥२७१
दधि हस्तेन मथितं सुरापानसमं स्मृतम्।
आरनालरसं तद्वत्तद्वैवानर्पितं हरेः ॥२७२
आसनेन तु पात्रेण नैव दद्याद्घृतादिकम्।
नोच्छिष्टं घृतमादद्यात् पैतृके भोजने विना ॥२७३
तथैव तु पुरोडाशं प्रदद्याच्चैव माक्षिकम्।
पानीयं पायसं क्षीरं घृतं लवणमेव च ॥२७४
हस्तदत्तं न गृह्णीयात्तुल्यं गोमांसभक्षणम्।
अपूपं पायसं माषं (मासं) यावकं कृसरं मधु ॥२७५
केवलं यो वृथाऽश्नाति तेन भुक्तं सुरासमम्।
करञ्जं मूलकं शिग्रु लशुनं तिलपिष्टकम् ॥२७६
तलास्थि श्वेतवृन्ताकं सुरापानसमं स्मृतम्।
अन्यच्च फलमूलाद्यं भक्ष्यं पानादिकञ्च यत् ॥२७७
स्रक्चन्दनादि ताम्बूलं यो भुङ्क्ते ह्यनर्पितम्।
कल्पकोटिसहस्राणि रेतोविण्मूत्रभाग् भवेत् ॥२७८
तस्मात्सर्वं सुविमलं हरिभुक्तं यथोक्तवत्।
स पवित्रेण यो भाङ्क्ते सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥२७९
ध्यायन् नारायणं देवं वाग्यतः प्रयतात्मवान्।
भुक्त्वावनतिरुप्यैव प्राशयेदम्बु निर्मलम् ॥२८०

अमृतापिधानमसीतिमन्त्रेण कुशपाणिना ।
किञ्चिदन्नमुपादाय पीतशेषेण वारिणा ॥२८१

पैतृकेण तु तीर्थेन भूमौ दद्यात्तदर्थिनाम् ।
रौरवे नरके घोरे वसतां क्षुत्पिपासया ॥२८२

तेषामन्नं सोदकञ्च अक्षय्यमुपतिष्ठतु ।
इति दत्त्वोदकं तेषां तस्मिन्नेवाऽऽसने स्थितः ॥२८३

प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च चषकं संशोध्य वारिभि ।
द्विराचम्य विधानेन मन्त्रेण प्राशयेज्जलम् ॥२८४

पीत्वा मन्त्रजलं पश्चादाचम्य हृदयाम्बुजे ।
राममिन्दीवरश्यामं चक्रशाङ्र्गधनुर्धरम् ॥२८५

युवानं पुण्डरीकाक्षं ध्यात्वा मन्त्रं जपेद्बुधः ।
समासीनः सुखासने वेदमध्यापयेत्ततः ।
सच्छिष्यान् यांस्तु शास्त्रं वा स्नेहाद्वा धर्मसंहिताम् ॥२८६

इतिहासपुराणं वा कथयेच्छृणुयाच्च वा ।
रव्यास्तङ्गते सन्ध्यां बहिः कुर्वीत पूर्ववत् ॥२८७

बहिः सन्ध्या शतगुणं गोष्ठे शतगुणं तथा ।
गङ्गाजले सहस्रं स्यादनन्तं विष्णुसन्निधौ ॥२८८

उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां जप्त्वा जप्यं समाहित. ।
पूर्ववत् पूजयेद्विष्णुं गन्धपुष्पाक्षतादिभि. ॥२८९

अष्टाक्षरविधानेन निवेद्यैवं समाहितः ।
सायमौपासनं हुत्वा वैष्णवं होममाचरेत् ॥२९०

स सुरा वै पिबेद् व्यक्तं सद्यः पतति रौरवे।
शब्देनापोशने पीत्वा शब्देन दधिपायसे ॥२७०
शब्देनान्नरसं क्षीरं पीत्वैव पतितो भवेत्।
प्रत्यक्षलवणं शुक्तं क्षीरं च लवणान्वितम् ॥२७१
दधि हस्तेन मथितं सुरापानसमं स्मृतम्।
आरनालरसं तद्वत्तथैवानार्पितं हरेः ॥२७२
आसनेन तु पात्रेण नैव दद्याद्घृतादिकम्।
नोच्छिष्टं घृतमादद्यात् पैतृके भोजने विना ॥२७३
तथैव तु पुरोडाशं पृषदाज्यञ्च माक्षिकम्।
पानीयं पायसं क्षीरं घृतं लवणमेव च ॥२७४
हस्तदत्तं न गृह्णीयात्तुल्यं गोमांसभक्षणम्।
अपूपं पायसं मापं (मांसं) यावकं कृसरं मधु ॥२७५
केवलं यो वृथाऽश्नाति तेन भुक्तं सुरासमम्।
करञ्जं मूलकं शिग्रु लशुनं तिलपिष्टकम् ॥२७६
तलास्थि श्वेतवृन्ताकं सुरापानसमं स्मृतम्।
अन्यच्च फलमूलान्नं भक्ष्यं पानादिकञ्च यत् ॥२७७
स्रक्चन्दनादि ताम्बूलं यो भुङ्क्ते ह्यनर्पितम्।
कल्पकोटिसहस्राणि रेतोविण्मूत्रभाग् भवेत् ॥२७८
तस्मात्सर्वं सुविमलं हरिभुक्तं यथोक्तवत्।
स पवित्रेण यो भाङ्क्ते सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥२७९
ध्यायन् नारायणं देवं वाग्यतः प्रयतात्मवान्।
भुक्त्वाचमनतिरस्यैव प्राशयेदम्बु निर्मलम् ॥२८०

अमृतापिधानमसीतिमन्त्रेण कुशपाणिना ।
किञ्चिदन्नमुपादाय पीतशेषेण वारिणा ॥२८१
पैतृकेण तु तीर्थेन भूमौ दद्यात्तदर्थिनाम् ।
रौरवे नरके घोरे वसतां क्षुत्पिपासया ॥२८२
तेषामन्नं सोदकञ्च अक्षय्यमुपतिष्ठतु ।
इति दत्त्वोदकं तेषां तस्मिन्नेवाऽऽसने स्थित ॥२८३
प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च वस्त्रं संशोध्य वारिभि ।
द्विराचम्य विधानेन मन्त्रेण प्राशयेज्जलम् ॥२८४
पीत्वा मन्त्रजलं पश्चादाचम्य हृदयाम्बुजे ।
राममिन्दीवरश्यामं चक्राङ्कुशधनुर्धरम् ॥२८५
युवानं पुण्डरीकाक्षं ध्यात्वा मन्त्रं जपेद्बुधः ।
समासीनः सुखासने वेदमध्यापयेत्तत ।
सच्छिष्यान् यास्तु शास्त्रं वा स्नेहाद्वा धर्मसंहिताम् ॥२८६
इतिहासपुराणं वा कथयेच्छृणुयाच्च वा ।
रवावस्तङ्गते सन्ध्यां बहि कुर्वीत पूर्ववत् ॥२८७
बहिः सन्ध्या शतगुणं गोष्ठे शतगुणं तथा ।
गङ्गाजले सहस्रं स्यादनन्तं विष्णुसन्निधौ ॥२८८
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां जप्त्वा जप्यं समाहित ।
पूर्ववत् पूजयेद्विष्णु गन्धपुष्पाक्षतादिभि ॥२८९
अष्टाक्षरविधानेन निवेद्यैवं समाहितः ।
सायमौपासनं हुत्वा वैष्णवं होममाचरेत् ॥२९०

नाशुचिर्मलिनो वाऽपि न चैव मलिनां तथा ।
न क्रुद्धां न च क्रुद्धः सन् न रोगी नच रोगिणीम् ॥३०२
न गच्छेत् क्रूरदिवसे मघामूलद्वयोरपि ।
ब्राह्मेति मुहूर्ते उत्थाय आचामेत्प्रयतात्मवान् ॥३०३
यती च ब्रह्मचारी च वनस्थो विधवा तथा ।
अजिने कम्बले वाऽपि भूमौ स्वप्याम् कुशोत्तरे ॥३०४
ध्यायन्तः पद्मनाभं तु शयीरन् विजितेन्द्रियाः ।
अर्पयेद् वाऽर्चयेद्विष्णुं त्रिकालं श्रद्धयाऽन्विताः ॥३०५
आचरेयुः परं धर्मं यथावृत्त्यनुसारतः ।
प्रातः कृष्णं जगन्नाथं कीर्तयेत् पुण्यनामभिः ॥३०६
शौचादिकन्तु यत्कर्म पूर्वोक्तं सर्वमाचरेत् ।
नैमित्तिकविशेषेण पूजयेत् पतिमव्ययम् ॥३०७
तत्तत्काले तु तन्मूर्तेः र्चनं मुनिभिः स्मृतम् ।
प्रसुप्ते पद्मनाभे तु नित्यं मासचतुष्टयम् ॥३०८
द्रोण्यान्दोलायामपि वा भक्त्या संपूजयेद्विभुम् ।
क्षीराब्धौ शेषपर्यङ्के शयानं रमया सह ॥३०९
नीलजीमूतसङ्काशं सर्वालङ्कारसुन्दरम् ।
कौस्तुभोद्भासिततनुं वैजयन्त्या विराजितम् ॥३१०
लक्ष्मीघनकुचस्पर्शशुभोरस्कं सुवर्चसम् ।
ध्यात्वैवं पद्मनाभन्तु द्वादशार्णेन नित्यशः ॥३११
पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैः त्रिसन्ध्यास्वपि वैष्णवः ।
निवेद्य पायसान्नं तु दद्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः ॥३१२

सर्वैश्च वैष्णवैः (मन्त्रै) सूक्तैर्मध्वाज्यतिलपायसैः।
हुत्वा दत्त्वा दशार्णेन सहस्रं जुहुयात्ततः ॥३२४
पश्चादारोपयेद्विष्णोः पवित्राणि शुभानि वै।
पवस्व सोम इति च जपन् सूक्तं सुपावनम् ॥३२५
निवेदयेत्पवित्राणि तथा विष्णोर्यथाक्रमात्।
मन्दिरं कुशरायोक्त्रेण वेष्टयन् परमात्मनः ॥३२६
वितानपुष्पमालाद्यं रलङ्कृत्य च सर्वतः।
सहस्रं द्वादशार्णेन भक्त्या पुष्पाञ्जलिं न्यसेत् ॥३२७
अथोपनिषदुक्तानि पञ्चसूक्तान्यनुक्रमात्।
स्वयाहन् पीतमित्यादि जपन् पुष्पाञ्जलिं तत. ॥३२८
ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात् स्वयं कुर्वीत पारणम्।
शक्त्या वा चोत्सवं कुर्यात्त्रिरात्रं वैष्णवोत्तमः ॥३२९
प्रत्यब्दमेवं कुर्वीत पवित्रारोपणं हरे.।
क्रतुकोटिसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयः ॥३३०
तत्र दुर्भिक्षरोगादिभयं नास्ति कदाचन।
संप्राप्ते कार्तिके मासे सायाह्ने पूजयेद्धरिम् ॥३३१
हृद्यैः पुष्पैश्च जातीभिः कोमलैस्तुलसीदलैः।
अर्चयेद्विष्णु गायत्र्याऽनुवाकैर्वैष्णवैरपि ॥३३२
पावमान्यैश्च तन्मासं भक्त्या पुष्पाञ्जलिं न्यसेत्।
अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा ॥३३३
अष्टाविंशतिं वा शक्त्या दद्याद्दीपान् सुपालिकान्।
सुवासितेन तैलेन गव्याज्येनाथवा हरे. ॥३३४

अष्टोत्तरशतं नित्यं तिलहोमं समाचरेत् ।
मनुना वैदिकेनापि गायत्र्या विष्णुसंज्ञया ॥३३५
हुत्वा पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा साष्टाङ्गमेव नत्वा विभोः ।
हविष्यं मोदनं शुद्धं नक्तं भुञ्जीत वाग्यतः ॥३३६
तैलं क्षारं तथा मांसं निष्पावान्माषिकं तथा ।
चणकानपि माषांश्च वर्जयेत्कार्तिकेऽखिलान् ॥३३७
भोजयेद्वैष्णवान् विप्रान् नित्यं दानादिशक्तितः ।
अन्ते च भोजयेद्विप्रान् दक्षिणाभिश्च तोषयेत् ॥३३८
एवं संपूज्य देवेशं कार्तिके मधुकोटिभिः ।
पुण्यं प्राप्यानघो भूत्वा विष्णुलोके महीयते ॥३३९
दशमीमिश्रितां त्यक्त्वा वैष्टायामकगोऽर्च्ये ।
उपोष्यैकादशी शुद्धा द्वादशी वाऽपि वैष्णवः ॥३४०
स्नात्वाऽऽमलक्या नद्यां तु विधानेन हरिं यजेत् ।
सुगन्धकुसुमैः धैरुरचाद्यैश्च सर्वशः ॥३४१
रात्रौ जागरणं कुर्यात् पुराणं संहितां पठेत् ।
जागरेऽस्मिन्प्रशक्तश्चेद्दर्भानास्तीर्य वैष्णवः ॥३४२
पुरतो वासुदेवस्य भूमौ स्वप्यात्समाहितः ।
ततः प्रभातसमये तुलसीमिश्रितैर्जलैः ॥३४३
स्नात्वा सन्तर्प्य देवेशं तुलस्या मूलमन्त्रतः ।
द्वयेन वा विष्णुसूक्तैः कुर्यात् पुष्पाञ्जलींस्ततः ॥३४४
तथैव जुहुयादाज्यं मन्त्रेणैव शतं ततः ।
पायसान्नं निवेद्येशे ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ॥३४५

ध्यायन् कमलपत्राक्षं स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ।
अह्नः शेषं समानीय पुराणं वाचयन् बुधः ॥३४६
सायाह्ने समनुप्राप्ते दोलायां पूजयेद्धरिम् ।
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्भक्ष्यैर्नानाविधैरपि ॥३४७
ब्राह्मणस्यतु सूक्तैश्च शनैर्दोलां प्रचालयेत् ।
इतिहासपुराणाभ्यां गीतवाद्यैः प्रबन्धकैः ॥३४८
एवं संपूजयेद्देवं तस्यां निशि समाहितः ।
मध्याह्ने पूजयेद्विष्णुं वैष्णवेन समाहितः ॥३४९
चम्पकैः शतपत्रैश्च करवीरैः सितैरपि ।
वैष्णवेनैव मन्त्रेण पूजयेत्कमलापतिम् ॥३५०
नकरीन्द्रेति सूक्तेन दद्यात् पुष्पाञ्जलिं हरेः ।
मन्त्रेणाष्टोत्तरशतं दद्यात् पुष्पाणि भक्तितः ॥३५१
तथैव होमं कुर्वीत तिलैर्व्रीहिभिरेव वा ।
शुद्धान्नं फलयुतं नैवेद्यं विनिवेदयत् ॥३५२
दीपैर्नीराजनं कृत्वा वैष्णवान् भोजयेत्ततः ।
मन्दवारे तु सायाह्ने तावत्सम्यगुपोषितः ॥३५३
तिलैः स्नात्वा विधानेन सन्तर्प्य च सनातनम् ।
नृसिंहवपुषं देवं पूजयेत्तद्विधानतः ॥३५४
मन्त्रराजेन गायत्र्या मूलमन्त्रेण वा यजेत् ।
अखण्डबिल्वपत्रैश्च जातिकुन्दैश्च यूथिकैः ॥३५५
छत्र. पश्चोशना शान्त्याः त्वमग्ने ! द्युभिरीति च ।
दद्यात् पुष्पाञ्जलिं भक्त्या मन्त्रेणैन शतं यथा ॥३५६

त्वं सोम इति सूक्तेन प्रत्यृ च कुसुमैयजेत् ।
पश्चाद्धोमं प्रकुर्वीत पायसान्नं सशर्करम ॥३६८
मन्त्रेणाष्टोत्तरशतं सूक्तेन प्रत्यृचं तथा ।
अग्निसोमानुवाकेन समिद्भिः पिप्पलैर्यजेत् ॥३६९
सहस्रनामभि स्तुत्वा नमस्कृत्वा जनार्दनम् ।
वैष्णवान् भोजयेत्पश्चात्पायसान्नेन शक्तित ॥३७०
स्वयं भुक्त्वा हविः शेषं शयीत नियतेन्द्रियः ।
एवं संपूज्य देवेशं पौर्णमास्यां जनार्दनम ॥३७१
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णु सायुज्यमाप्नुयात् ।
मघायामपि पूर्वाह्णे स्नात्वा कृष्ण जलैर्द्विजः ॥३७२
सन्तर्प्य मूलमन्त्रेण तिलमिश्रितवारिभिः ।
तर्पयित्वा पितॄन्देवानर्चयेदच्युतं तत ॥३७३
कृष्णैश्च तुलसीपत्रै. केतकैः कमलैरपि ।
शोणितैः करवीरैश्च जपाकुटजपाटलैः ॥३७४
अस्य वामेति सूक्तेन दद्यात् पुष्पाञ्जलिं हरेः ।
मन्त्रेणाष्टोत्तरशतं कृष्णं श्रीतुलसीदलै ॥३७५
तथैव जुहुयादग्नौ तिलैः कृष्णै सशर्करैः ।
आज्येन पौरुषं सूक्तं प्रत्यृचं जुहुयात् तत. ॥३७६
नारायणानुवाकेन उपस्थाय जनार्दनम् ।
सुसंयावैः सौहृदैश्च शाल्यन्नं विनिवेदयेत् ॥३७७
वैष्णवान् भोजयेत्पश्चात्स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ।
तस्यां रात्रौ जपेन्मन्त्रमयुतं हरिसन्निधौ ॥३७८

अर्चयेद्भूधरं देवं तन्मन्त्रेणैव वैष्णवः।
दूरादिहेति सूक्तेन दद्यात् पुष्पाञ्जलिं द्विजः ॥३६०
मन्त्रेण च सहस्रं तु शतं वाऽपि यजेत्तदा।
तिलैश्च जुहुयात्तद्वत् सूक्तेन प्रत्यृचं घृतम् ॥३६१
सूपान्नं कृसरान्नं च भक्ष्यापूपान् घृतप्लुतान्।
नवेद्यं विनिवेद्येशे ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ॥३६२
एवं संपूज्य देवेशं संक्रान्तौ ग्रहणे हरिम्।
कल्पकोटिसहस्राणि विष्णुलोके महीयते ॥३६३
वैशाखे पूजयेद्रामं काकुत्स्थं पुरुषोत्तमम्।
सीतालक्ष्मणसंयुक्तं मध्याह्ने पूजयेद्विभुम् ॥३६४
पुन्नागकेतकीपद्मैरुत्पलैः करवीरकैः।
चाम्पेयैर्बकुलैः पूजा षड्गुणैव कारयेत् ॥३६५
जातवेदसेति सूक्तेन कुर्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः।
संक्षेपेण शतश्लोक्या प्रतिश्लोकं यजेत्ततः ॥३६६
पुष्पाञ्जलिं सहस्रं तु मन्त्रेणैव यजेत्ततः।
त्वमग्न इति सूक्तेन पायसं जुहुयादृचा ॥३६७
पश्चान्मन्त्रेणाऽऽज्यहोमो नैवेद्यं पायसं घृतम्।
कदलीफलं शर्करा च पानकं च निवेदयेत् ॥३६८
पञ्च सप्त त्रयो वाऽपि पूजनीया द्विजोत्तमाः।
सुहृद्यैरन्नपानाद्यैर्गोहिरण्यादिदक्षिणैः ॥३६९
हविष्यान्नं स्वयं भुक्त्वा पठेद्रामायणं नरः।
एवं संपूज्य विधिवद्राघवं जानकीयुतम् ॥४००

लोध्रनीपार्जुनैर्नागैः कर्णिकारैः कदम्बकैः।
कोविदारैः करवीरैर्बिल्वैरास्फोटकैरपि ॥४१२
दशाक्षरेण मन्त्रेण पूजयेत् पुरुषोत्तमम्।
ये त्रिंशतीति सूक्तेन दद्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः ॥४१३
श्रीकृष्णं तुलसीपत्रैः प्रत्यृचं पूजयेद्विभुम्।
श्रीकृष्णाय नम इति सूक्तेनाष्टोत्तरं शतम् ॥४१४
पूजयित्वाऽथ होमन्तु तिलैः कृष्णैर्घृतान्वितैः।
प्रत्यृचं वैष्णवे सूक्ते जुहुयात् पुरुषोत्तमम् ॥४१५
समिद्भिः पिप्पलैश्चापि मन्त्रेणाष्टोत्तरं शतम्।
नामभिः केशवाद्यैश्च चरुं पश्चाद् घृतप्लुतम् ॥४१६
वैष्णव्या चैव गायत्र्या वृषदाज्यं शतं तथा।
गुडोदनं सर्पिषाऽक्तं भक्ष्याणि विविधानि च ॥४१७
क्षीरान्नं शर्करोपेतं नैवेद्यञ्च समर्पयेत्।
वैष्णवान् भोजयेत्पश्चात् स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥४१८
एवमभ्यर्च्य गोविन्दं कृष्णाष्टम्या विधानतः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥४१९
द्वयोरप्यनयोः श्रीशं कूर्मरूपं समर्चयेत्।
ससागरां महीं सर्वां लभते नात्र संशयः ॥४२०
अर्चयेन्मूलमन्त्रेण गन्धपुष्पाक्षतादिभिः।
अग्रयित्वा विधानेन हविष्यं व्यञ्जनैर्युतम् ॥४२१
सुदीर्घयन्त्रजान् सूपघृतमिश्रान् निवेदयेत्।
अहं पूर्वेति सूक्तेन कुर्यात्पुष्पाञ्जलिं ततः ॥४२२

षडक्षरेण मन्त्रेण गन्धमाल्यानुलेपनैः ।
अभ्यर्च्य जगतामीशं जपेन्मन्त्रं समाहितः ।
शान्तिं शास्त्रं पुराणञ्च नाम्नां विष्णोः सहस्रकम् ॥४३४
पावमानैर्विष्णुसूक्तैः कुर्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः ।
रामायणशतश्लोक्या दद्यात् पुष्पाणि वैष्णवः ॥४३५
सशर्करं पायसान्नं कपिलाघृतसंयुतम् ।
रम्भाफलं पानकञ्च नैवेद्यं विनिवेदयेत् ॥४३६
पीतानि नागपर्णानि स्निग्धपूगीफलानि च ।
कर्पूरेण च संयुक्तं ताम्बूलञ्च समर्पयेत् ॥४३७
दीपान्नीराजयेद्भक्त्या नमस्कृत्य पुनः पुनः ।
प्रीतये रघुनाथस्य कुर्याद्दानानि शक्तितः ॥४३८
षडक्षरेण साहस्रं तिलैर्वा पायसेन वा ।
कमलै र्बिल्वपत्रै र्वा घृतेन जुहुयात्ततः ॥४३९
अस्य वामेति सूक्तेन समिद्भिः पिप्पलस्य तु ।
वैकुण्ठपार्षदं हुत्वा होमशेषं समापयेत् ॥४४०
रात्रौ जागरणं कुर्यात् द्वित्रियामं समर्चयेत् ।
प्रभाते विमले चापि ततो भरतजन्मनि ॥४४१
तृतीयेऽहनि मध्याह्ने सौमित्रे र्जन्मवासरे ।
सानुजं जगतामीशमर्चयेत् पूर्ववद् द्विजः ॥४४२
पूजां पुष्पाञ्जलिं होमं जपं ब्राह्मणभोजनम् ।
अविच्छिन्नं यथा कुर्यादग्निहोत्रं त्रिवासरम् ॥४४३

तन्मन्त्रमन्त्ररत्नाभ्यां माधवं विधिना यजेत्।
मण्डकान् क्षीरसंयुक्तान् शाल्यन्नं घृतसंयुतम् ॥४५५
कृष्णरम्भाफलैर्जुष्टं नैवेद्यं विनिवेदयेत्।
अत जीवत्व इत्यादि षट्सूक्तैः कुसुमैर्यजेत् ॥४५६
मन्त्रेणाष्टोत्तरशतं कोमलैस्तुलसीदलैः।
संपूज्य होमं कुर्वीत साज्येन चरुणा ततः ॥४५७
विहीमोतोरित्यतेन सूक्तेन प्रत्यृचं द्विजः।
कमले बिल्वपत्रे वा मन्त्रेणाष्टोत्तरं शतम् ॥४५८
हुत्वाऽथ पौरुषं सूक्तं श्रीसूक्तं जुहुयाद् द्विजः।
सहस्रनामभिः स्तुत्वा वैष्णवान् भोजयेत्ततः ॥४५९
हुतशेषं स्वयं भुक्त्वा भूमौ स्वप्याज्जितेन्द्रियः।
एवं संपूज्य देवेशं माधव्यां मधुसूदनः ॥४६०
सर्वान् कामानवाप्नोति हरिसायुज्यमाप्नुयात्।
घशाख्यां पौर्णमास्यान्तु मध्याह्ने पुरुषोत्तमम् ॥४६१
अर्चयेद्रक्तकमलैरुत्पलैः पाटलैरपि।
ह्रीवेरकरवीरैश्च गायत्र्या विष्णुसंज्ञया ॥४६२
दध्यन्नं फलसंयुक्तं पायसञ्च निवेदयेत्।
प्रत्यृचं वेद्विं सूक्तैः प्रत्यृचं जुहुयात्ततः ॥४६३
सौराष्ट्रे द्वेति सूक्तेन दीपैर्नीराजयेत्ततः।
शक्त्या विप्रान् भोजयित्वा पूजयेद्देशिकं तथा ॥४६४
तस्मिन् सम्पूजितो देवः प्रत्यक्षस्तत्क्षणाद्भवेत्।
शयने भोजयेद्विष्णुं पूजयेच्छ्रद्धयाऽन्वितः ॥४६५

कुशप्रसूनदूर्वाब्जपुण्डरीककदम्बकैः ।
मूलमन्त्रेण श्रीविष्णुं गायत्र्या च समर्चयेत् ॥४६६
सत्येनोत्तमसूक्तेन ऋग्भिः पुष्पाञ्जलिं यजेत् ।
मन्त्रेणाष्टोत्तरशतं तुलसीपल्लवैस्तथा ॥४६७
पश्चाद्धोमं प्रकुर्व्वीत विष्णुसूक्तैः सुपायसम् ।
मन्त्ररत्नेन जुहुयादाज्यमष्टोत्तरं शतम् ॥४६८
सशर्करं पायसान्नमपूपान्विनिवेदयेत् ।
विश्वजितेति सूक्तेन कुर्य्यान्नीराजनं ततः ॥४६९
भोजयेद्वैष्णवान् विप्रान् पूजयेच्च विशेषतः ।
सर्व्वान् कामानवाप्नोति हयमेधायुतं लभेत् ॥४७०
प्राजापत्यर्क्षसंयुक्ता नभः कृष्णाष्टमी यदा ।
नभस्यस्यैव भवेत्सा तु जयन्ती परिकीर्तिता ॥४७१
तस्यां जातो जगन्नाथः केशवः कंसमर्दनः ।
तस्मिन्नुपोष्य विधिवत्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४७२
अष्टमी रोहिणीयोगो मुहूर्तं वा दिवानिशम् ।
मुख्यकाल इतिख्यातस्तत्र जातः स्वयं हरिः ।
मासद्वये यथालाभे योगे तस्मिन् दिवा निशि ॥४७३
नवमी रोहिणीयोगः कर्तव्यो वैष्णवैर्द्विजैः ।
रात्रियोगस्तु बलवान् तस्यां जातो जनार्द्दनः ॥४७४
तिलेन वै भवान्ते च पारणा यत्र चोच्यते ।
। प्रातरेव हि पारणा ॥४७५

पूर्वेद्युर्नियमं कुर्य्याद्दन्तधावनपूर्वकम् ।
प्रातः स्नात्वा विधानेन पूजयेत् कृष्णमव्ययम् ॥४७६
षडक्षरेण मन्त्रेण बालकृष्णतनुं हरिम् ।
सुकृष्णतुलसीपत्रैरर्चयेच्छ्रद्धयाऽन्वितः ॥४७७
दुग्धं क्षीरं शर्कराश्च नवनीतं निवेदयेत् ।
सहस्रमयुतं वाऽपि जपेन्मन्त्रं षडक्षरम् ॥४७८
गवाज्यं जुहुयाद्वह्नौ कृष्णमन्त्रेण पायसम् ।
सहस्रं शतवारं वा प्रत्यृचं विष्णु सूक्तके ॥४७६
हुत्वा सुगन्धिपुष्पाणि तैरेव च समर्चयेत् ।
सहस्रनाम्नां गीतानां पठनं गुरुपूजनम् ॥४८०
वैष्णवान् भोजयेच्छक्त्या हुतशेषं सकृत्स्वयम् ।
हुत्वा (भुक्त्वा) कुशोत्तरे स्वप्याद्भूमौ नियमवान् शुचिः ॥४८१
परेऽह्नु पोष्य विधिवत् स्नात्वा नद्यां विधानतः ।
तर्पयित्वा जगन्नाथं पितॄन्देवांश्च तर्पयेत् ॥४८२
पूर्ववत् पूजयित्वेशं जपहोमादिकं चरेत् ॥४८३
अवैष्णवं द्विजं तस्मिन् वाङ्मात्रेणापि (न) वार्चयेत् ।
पुराणादिप्रपाठेन रात्रौ जागरणं चरेत् ॥४८४
शीतांशावुदिते स्नात्वा शुक्लाम्बरधरः शुचिः ।
नवो नवो भवतीत्यृचाऽर्घ्यं विनिवेदयेत् ॥४८५
अर्चयेन्मातुरुत्सङ्गे स्थितं कृष्णं सनातनम् ।
तुलसीगन्धपुष्पैश्च कस्तूरीचन्द्रचन्दनैः ॥४८६

षडक्षरेण मन्त्रेण भक्त्या सम्पूजयेद्धरिम् ।
वसुदेवं नन्दगोपं बलभद्रञ्च रोहिणीम् ॥४८७
यशोदा च सुभद्रा च माया दिक्षु प्रपूजयेत् ।
प्रह्लादादीन् वैष्णवांश्च तथा लोकेश्वरानपि ॥४८८
धूप दीपञ्च नैवेद्यं ताम्बूलञ्च समर्पयेत् ।
अनूतमिति सूक्तेन भक्त्या नीराजनं तथा ॥४८९
शन्न इत्यादिसूक्तैश्च दद्यात् पुष्पाणि वैष्णवः ।
दशाक्षरेण मन्त्रेण पूजयेत् पुरुषोत्तमम् ॥४९०
सहस्रनामभि स्तुत्वा शय्यायां विनिवेशयेत् ।
गीतं नृत्यञ्च वाद्यञ्च यथा शक्त्या च कारयेत् ॥४९१
ततः प्रभ तत्समये सन्ध्यामन्वास्य वैष्णवः ।
दशाक्षरेण मन्त्रेण तुलसीचन्दनादिभि ॥४९२
सम्पूज्य वैष्णवै सूक्तै कुर्यात् पुष्पाञ्जलिं तत ।
मन्त्रेण जुहुयादाज्यं सहस्र हव्यवाहने ॥४९३
ममाग्न इति सूक्ताभ्या जुहुयात्पायसं तत ।
परोमात्रेति सूक्तेन चरुं तिलविमिश्रितम् ॥४९४
सर्वश्च भगवन्मन्त्रैरेकैकामाहुतिं यजेत् ।
नामभि केशवाद्यैश्च तथा सङ्कर्षणादिभिः ॥४९५
वैकुण्ठपार्षदं हुत्वा होमशेषं समापयेत् ।
ततो मङ्गलवादित्रै यानै योक्तैश्च चामरैः ॥४९६
लाजै हरिद्राचूर्णैश्च गन्धै पुष्पै सुगन्धिभिः ।
मुदा विकीरयन् सर्वे बालवृद्धाश्च मध्यमाः ॥४९७

नार्य्यश्च रमणीः सार्द्धं सुवासिन्यश्च योषितः ।
आरोप्य शिविकायान्तु देवकीनन्दनं हरिम् ॥४६८
अकर्दमां नदीं रम्या तडागं वा मनोहरम् ।
गच्छेयुर्माहशैवालजलौकादिविवर्जितम् ॥४६६
कुर्य्यादवभृथं तत्र पावमान्यैः पवित्रकैः ।
विष्णुसूक्तैश्च सुस्नात्वा देवान् पितॄंश्च तर्पयेत् ॥५००
विचित्राणि च भक्ष्याणि दद्यात्तत्र शुभान्वितः ।
गृहं गत्वा तथैवेशं पूर्ववत्पूजयेद् द्विजः ॥५०१
भोजयित्वा ततो विप्रान् दक्षिणाभिश्च तोषयेत् ।
हिरण्यवस्त्राभरणैराचार्यं पूजयेत्तु सः ॥५०२
स्वयञ्च पारणां कुर्य्यात् पुत्रपौत्रसमन्वितः ।
सायाह्ने समनुप्राप्ते दोलायामर्चयेद्धरिम् ॥५०३
चतुः स्तम्भां चतुर्धामवितानाद्यैरलङ्कृताम् ।
धूपैर्दीपैश्चैव रम्यां दोलां सम्पूजयेद् द्विजः ॥५०४
स्तम्भेषु वेदान् मन्त्रांश्च धामस्वभ्यर्च्य कच्छपम् ।
पादेष्वाशागजान् पीठे सप्तच्छन्दांसि चाऽऽस्तरे ॥५०५
प्रणवञ्चाऽऽतपत्रे तु शेषं केतौ खगेश्वरम् ।
इतिहासपुराणानि सर्वतः परिपूजयेत् ॥५०६
तस्यां निवेश्य दोलायां वासुदेवं श्रियः पतिम् ।
उपचारैरर्चयित्वा शनैर्दोलाञ्च दोलयेत् ॥५०७
वेदाद्यैर्ब्राह्मणस्पत्यैः सूक्तैरङ्गैर्द्विजोत्तमः ।
सामगानैः प्रबन्धैश्च गायन् कृष्णं जगद्गुरुम् ॥५०८

षडक्षरेण मन्त्रेण भक्त्या सम्पूजयेद्धरिम् ।
वसुदेवं नन्दगोपं बलभद्रञ्च रोहिणीम् ॥४८७
यशोदा च सुभद्रां च मायां दिक्षु प्रपूजयेत् ।
प्रह्लादादीन् वैष्णवांश्च तथा लोकेश्वरानपि ॥४८८
धूपं दीपञ्च नैवेद्यं ताम्बूलञ्च समर्पयेत् ।
अतूलमिति सूक्तेन भक्त्या नीराजनं तथा ॥४८९
शन्न इत्यादिसूक्तैश्च दद्यात् पुष्पाणि वैष्णवः ।
दशाक्षरेण मन्त्रेण पूजयेत् पुरुषोत्तमम् ॥४९०
सहस्रनामभिः स्तुत्वा शय्यायां विनिवेशयेत् ।
गीतं नृत्यञ्च वाद्यञ्च यथा शक्त्या च कारयेत् ॥४९१
ततः प्रभातसमये सन्ध्यामन्वास्य वैष्णवः ।
दशाक्षरेण मन्त्रेण तुलसीचन्दनादिभिः ॥४९२
सम्पूज्य वैष्णवैः सूक्तैः कुर्य्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः ।
मन्त्रेण जुहुयादाज्यं सहस्रं हव्यवाहने ॥४९३
ममाग्न इति सूक्ताभ्यां जुहुयात्पायसं ततः ।
परोमात्रेति सूक्तेन चरुं तिलविमिश्रितम् ॥४९४
सर्वञ्च भगवन्मन्त्रैरेकैकामाहुतिं यजेत् ।
नामभिः केशवाद्यैश्च तथा सङ्कर्षणादिभिः ॥४९५
वैकुण्ठपार्षदं हुत्वा होमशेषं समापयेत् ।
ततो मङ्गलवादित्रै यानै योक्त्रैश्च चामरैः ॥४९६
लाजैः हरिद्राचूर्णैश्च गन्धैः पुष्पैः सुगन्धिभिः ।
मुदा विकीरयन् सर्वे बालवृद्धाश्च मध्यमाः ॥४९७

नार्य्यश्च रमणैः सार्द्धं सुवासिन्यश्च योषितः।
आरोप्य शिविकायान्तु देवकीनन्दनं हरिम् ॥४६८
अकर्द्दमां नदीं रम्यां तडागं वा मनोहरम्।
गच्छेयुर्माहशैवालजलौकादिविवर्जितम् ॥४६६
कुर्य्यादवभृथं तत्र पावमान्यैः पवित्रकैः।
विष्णुसूक्तैश्च सुस्नात्वा देवान् पितॄंश्च तर्पयेत् ॥५००
विचित्राणि च भक्ष्याणि दद्यात्तत्र शुभान्वितः।
गृहं गत्वा तथैवेशं पूर्ववत्पूजयेद् द्विजः ॥५०१
भोजयित्वा ततो विप्रान् दक्षिणाभिश्च तोषयेत्।
हिरण्यवस्त्राभरणैराचार्यं पूजयेत्तु सः ॥५०२
स्वयञ्च पारणां कुर्य्यात् पुत्रपौत्रसमन्वितः।
सायाह्ने समनुप्राप्ते दोलायामर्चयेद्धरिम् ॥५०३
चतुः स्तम्भां चतुर्धामवितानाद्यैरलङ्कृताम्।
धूपैर्दीपैश्चैव रम्यां दोलां सम्पूजयेद् द्विजः ॥५०४
स्तम्भेषु वेदान् मन्त्रांश्च धामस्वभ्यर्च्य कच्छपम्।
पादेष्वाशागजान् पीठे सप्तच्छन्दांसि चाऽऽस्तरे ॥५०५
प्रणवञ्चाऽऽतपत्रे तु शेषं केतौ खगेश्वरम्।
इतिहासपुराणानि सर्वतः परिपूजयेत् ॥५०६
तस्यां निवेश्य दोलाया वासुदेवं श्रियः पतिम्।
उपचारैरर्चयित्वा शनैर्दोलाञ्च दोलयेत् ॥५०७
वेदाद्यैर्ब्राह्मणस्तस्यैः सूक्तै रङ्गैर्द्विजोत्तमः।
सामगानैः प्रबन्धैश्च गायन् कृष्णं जगद्गुरुम् ॥५०८

सुवासिन्यो दोलयित्वा वैष्णवान् पूजयेत्ततः।
एवं संपूज्य देवेशं पापैर्मुक्तो हरिं व्रजेत् ॥५०६

दोलाया दर्शनं विष्णोर्महापातकनाशनम्।
कोटियागानुजं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥५१०

शिवब्रह्मादयो देवा नारदाद्या महर्षयः।
दोलाया दर्शनार्थं वै प्रयान्त्यनुचरैः सह ॥५११

गन्धर्वाप्सरसः सर्वा विमानस्थाः सकिन्नराः।
गायन्ति सामगानैश्च दोलायमर्चितं हरिम् ॥५१२

गवाज्यसंयुतैर्दीपैर्मन्त्रथा नीराजनं चरेत्।
मरुत्व इन्द्रसूक्तेन मङ्गलाशीर्भिरेव च ॥५१३

ताम्बूलफलपुष्पाद्यैर्वैष्णवान् भोजयेत्ततः।
आशिषोवाचनं कृत्वा नमस्कृत्य विसर्जयेत् ॥५१४

एवं संपूज्य देवेशं जयन्त्यां मधुसूदनम्।
सर्वांल्लोकान् जयेत्त्वाशु याति विष्णोः परं पदम् ॥५१५

मासि भाद्रपदे शुक्ले द्वादश्यां विष्णुदैवते।
आदित्यामुदभूद्विष्णुरुपेन्द्रो वामनोऽव्ययः ॥५१६

तस्यां स्नानोपवासाद्यमक्षय्यं परिकीर्तितम्।
श्रीकृष्णजन्मवत् सर्वं कुर्यादत्रापि वैष्णवः ॥५१७
सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥५१८

माघमासे तु सप्तम्यां मुदिते चैव भास्करे।
स्नात्वा नद्यां विधानेन पूजयेत् पुरुषोत्तमम् ॥५१६

रक्तैश्च करवीरैश्च कुमुदेन्दीवरादिभिः ।
मन्त्ररत्नेनार्चयित्वा पायसान्नं निवेदयेत् ॥५२०
यतश्च गोपा इत्यादि दश सूक्तान्यनुक्रमात् ।
पुष्पाणि दद्याद्भक्त्या वै प्रत्यृचं वैष्णवोत्तमः ॥५२१
सहस्रं शतवारं वा मन्त्रेणापि यजेत्ततः ।
पश्चाद्धोमं प्रकुर्वीत तिलैः कृष्णैः सशर्करैः ॥५२२
वैष्णवैरनुवाकैश्च मन्त्ररत्नेन मन्त्रवित् ।
वैकुण्ठपार्षदं हुत्वा शेषं कर्म्म समाचरेत् ॥५२३
नीराजनं ततो दद्यादयं गौरित्यनेन तु ।
इति वा इति सूक्तेन उपस्थाय जनार्दनम् ॥५२४
सहस्रनामभिः स्तुत्वा वैष्णवान् भोजयेत्ततः ।
गुरुं सम्पूजयेद्भक्त्या भुञ्जीत सद्भविः सकृत् ॥५२५
अधःशायी ब्रह्मचारी जपेद्रात्रौ समाहितः ।
एवं सम्पूज्य देवेशं तस्मिन्नहनि वैष्णवः ॥५२६
त्रिकोटिकुलमुद्धृत्य वैष्णवं पदमाप्नुयात् ।
द्वादश्यामपि तस्यां वै यज्ञवाराहमच्युतम् ॥५२७
वैष्णव्या चैव गायत्र्या पूजयेत् प्रयतात्मवान् ।
महिषाख्यं घृताक्तं वै धूपं दद्यात् प्रयत्नव ॥५२८
दद्यादष्टाङ्गदीपं च गवाज्येन च वैष्णवः ।
सशर्कराज्यं सूपान्नं मोदकान् कृसरं तथा ॥५२९
इक्षुदण्डानि रम्याणि फलानि च निवेदयेत् ।
प्र ते महीति सूक्तेन दद्यात् पुष्पाणि भक्तिमान् ॥५३०

सर्वैश्च वैष्णवैः सूक्तै ब्रह्मणा पायसेन वा ।
मधुसूक्तेन होतव्यं गायत्र्या विष्णुसंज्ञया ॥५३१
आज्येन वैष्णवैर्मन्त्रैः त्रिशतं त्रिभिरेव तु ।
वैकुण्ठपार्षदं हुत्वा होमशेषं समापयेत् ॥५३२
भोजयेद् ब्राह्मणान् भक्त्या गुरुं चापि प्रपूजयेत् ।
सर्वयज्ञेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु यत्फलम् ॥५३३
तत्फलं लभते मर्त्यो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।
कोदण्डस्थे दिनकरे तस्मिन्मासि निरन्तरम् ॥५३४
अरुणोदयवेलाया प्रातः स्नानं समाचरेत् ।
तर्पयित्वा विधानेन कृतकृत्यः समाहितः ॥५३५
नारायणं जगन्नाथमर्चयेद्विधिवद् द्विजः ।
पौरुषेण विधानेन मूलमन्त्रेण वा यजेत् ॥५३६
शतपत्रैश्च जातीभिस्तुलसीबिल्वपुष्करैः ।
गन्धैर्धूपैश्च दीपैश्च नैवेद्यैर्विविधैरपि ॥५३७
पायसान्नं शर्करान्नं मुद्गान्नं सघृतं हविः ।
सुधासितञ्च दध्यन्नमपूपान् मधुमिश्रितान् ॥५३८
मोदकान् पृथुकान् लाजान् शष्कुली(सक्तुभि.)चणकानपि ।
विविधानि च भक्ष्याणि फलानि च निवेदयेत् ॥५३९
वेदपारायणेनैव मासमेकं निरन्तरम् ।
ऋचां दशसहस्राणि ऋचां पञ्चशतानि च ॥५४०
ऋचामशीतिपादश्च पारायणं प्रकीर्तितम् ।
वेदपारायणेनैव प्रत्यृचं कुसुमान्यजेत् ॥५४१

रात्रौ होमं प्रकुर्वीत तिलैर्व्रीहिभिरेव वा ।
सर्वर्यदेऽप्यशक्तस्तु होमकर्मणि वैष्णवः ॥५४२
वैष्णवैरनुवाकैर्वा प्रत्यहं जुहुयाद् बुधः ।
यजुषाऽपि तथा साम्नां शक्त्या पुष्पाञ्जलिं चरेत् ॥५४३
अशक्तो यस्तु वेदेन प्रतिवासरमच्युतम् ।
मूलमन्त्रेण साहस्रं दद्यात् पुष्पाञ्जलिं द्विजः ॥५४४
तेनैव जुहुयाद्भक्त्या सहस्रं वह्निमण्डले ।
अथवा रघुनाथस्य चारित्रेण महात्मनः ॥५४५
प्रतिश्लोकेन पुष्पाणि दद्यान्मासं निरन्तरम् ।
अधःशायी ब्रह्मचारी सकृद्भोजी भवेद्द्विजः ॥५४६
मासान्ते तु विशेषेण पूजयेद् वैष्णवान् द्विजान् ।
एवमभ्यर्च्य गोविन्दं धनुर्मासे निरन्तरम् ॥५४७
दिने दिने वैष्णवेज्या फलं प्राप्नोत्यसंशयः ।
यं यं कामयते चित्ते तं तमाप्नोति पुरुषः ॥५४८
महद्भिः पातकैर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ।
ततोमास्युदिते भानौ माससेकं निरन्तरम् ॥५४९
स्नात्वा नद्यां तडागे वा तर्पयेत्पतिमच्युतम् ।
अर्चयेन्माधवं नित्यं तन्मन्त्रेणैव तत्र वै ॥५५०
मन्त्ररत्नेन वा नित्यं माधवीचूतचम्पकैः ।
मण्ड(क)पानि विचित्राणि शर्कराज्ययुतानि च ॥५५१
शाल्यन्नं दधिसंयुक्तं मोदकांश्च निवेदयेत् ।
वैष्णवैः पावमानैश्च कुर्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः ॥५५२

तिलैश्च जुहुयाद्वह्नौ मधुशर्करमिश्रितै ।
प्रत्यृच पुरुषसूक्तेन श्रीसूक्तेनापि वैष्णव ॥५५३
सहस्र मूलमन्त्रेण तन्मन्त्रेणापि वै द्विज ।
सहस्र वा शत वाऽपि शक्त्या च जुहुयाद् बुध ॥५५४
यज्ञे यज्ञमिति मृचा दीपान्नीराजयेत्तत ।
रात्रौ दोलार्चन कुर्याद्वैष्णवैर्द्विजसत्तमै ॥५५५
मासान्ते भोजयेद्विप्रान् वासोऽलङ्कारभूषणै ।
एव सम्पूजिते तस्मिन् प्रसन्नोऽभूज्जनार्दन ॥५५६
ददाति स्वपद दिव्य योगिगम्य सनातनम् ।
फाल्गुन्या पौर्णमास्या वै उदिते च निशाकरे ॥५५७
उपोष्य विधिनद्भक्ति पूजयेद्वैष्णवोत्तम ।
तिलैश्च करवीरैश्च कर्णिकारैश्च पाटलै ॥५५८
कुन्दसहस्रकुसुमैर्यजेत् त कमलापतिम् ।
विष्णुसूक्त प्रत्यृच च चरणाज्येन मन्त्रत ॥५५९
ब्रह्मा देवानामनेन दीपान्नीराजयेत्तत ।
प्रसन्नो नित्यमनेन उपस्थाय सनातनम् ।
वैष्णवान् भोजयेद्भक्त्या भुञ्जीयाद्वाग्यत स्वयम् ॥५६०
एव सम्पूज्य देवश तस्या रात्रौ सनातनम् ।
षष्टिवर्षसहस्रस्य पूजामाप्नोत्यसशय ॥५६१
एव सम्पूजयेद्विष्णु निमित्तेषु विशेषत ।
यथाकाल यथावर्ण यथाशक्त्या यथाबलम् ॥५६२
यथोक्तपुष्पालाभे तु तुलस्या वै समर्चयेत् ।

नैवेद्यस्याप्यलाभे तु हविष्यं वा निवेदयेत् ॥५६३
सूक्तानि वैष्णवान्येव सूक्तालाभे यथा जपेत् ।
एकेन वा पौरुषेण सूक्तेन जुहुयाद्यथा ॥५६४
सर्वत्राऽऽज्यं प्रशस्तं स्याद्धोमद्रव्याद्यलाभतः ।
मन्त्रालाभे मूलमन्त्रं सर्वतन्त्रेषु यो यजेत् ॥५६५
उपस्थानन्तु सर्वत्र तद्विष्णोरिति वा ऋचा ।
नीराजनन्तु सर्वत्र श्रिये जातेत्यनेन वा ॥५६६
तत्कालोचितं सर्वं मनसा वाऽपि पूजयेत् ।
तुलसीमिश्रितं तोयं भक्त्या वाऽपि समर्पयेत् ॥५६७
सर्वेष्वेषु निमित्तेषु महाभागवतोत्तमान् ।
सम्पूज्य परिपूर्णत्वमाप्नोत्यत्र न संशयः ॥५६८

इति वृद्धहारीतस्मृतौ विशिष्टपरमधर्मशास्त्रे भगवन्नित्यनैमित्तिक-समाराधनविधिर्नाम पञ्चमोऽध्यायः ।

---

॥ षष्ठोऽध्यायः ॥

अथ महापापादिप्रायश्चित्तप्रकरणविधौ ।

प्रथमं भगवतः यात्रोत्सववर्णनम् ।

हारीत उवाच ।

महोत्सवविधिं कुर्याद्देवस्य परमात्मनः ॥१
ग्रामार्चायाः प्रकुर्वीत यथोक्तविधिना नृप ! ।
यात्रोत्सवे कृते विष्णोः श्रुतिस्मृत्युक्तमार्गतः ॥२

अनावृष्ट्यभिदुर्भिक्षभयं नास्त्यत्र किञ्चन।
वारिजं वातजं वाऽग्निसर्पविद्युद्द्विपत्कृतम् ॥३
महारोगग्रहैश्चैवं यद्भयं ग्रामवासिनाम्।
कृते महोत्सवे तत्र भयं नास्ति न संशयः ॥४
तस्य दासा भविष्यन्ति नानाजनपदेश्वराः।
सार्वभौमो भवेद्राजा भक्त्या कृत्वा महोत्सवम् ॥५
नवाह्निकं च सप्ताहं पञ्चाहं त्र्यहमेव तथा।
सम्वत्सरे भृतौ मासि पक्षेत् कुर्यात् क्रमेण तु ॥६
तस्मिन्नादौ शुभदिने स्वस्तिवाचनपूर्वकम्।
अङ्कुरार्पणमादौ तु गरुत्मत्केतुमुच्छ्रयेत् ॥७
थाश्च पङ्क्तित्योपधयः केतुको वेद इत्यपि।
अश्वत्थाख्यशमीगर्भशुभामरणिमाहरेत् ॥८
निर्मथितेति सूक्तेन तथैवासीदमीति च।
आभ्यां च प्रत्यृचं तस्मिन्निध्माधानादि पूर्ववत् ॥६
चर्वाज्यैरथमन्त्रीति उपस्थायार्च्चयेत्तथा॥
तदाग्निं संग्रहेत्तावदुत्सवः परिपूर्यते ॥१०
दीक्षित स भवेत्तावदाचार्यो विजितेन्द्रियः।
वेदवेदाङ्गविच्छौतस्मार्तकर्मविधानवत् ॥११
महाभागवतो विप्रस्तान्त्रिकः सर्वकर्मसु।
लौकिके वा प्रकुर्वीत मथिताग्निं चेद्यदि ॥१२
आभ्यामेव च सूक्ताभ्यामग्नौ देवं यजेद्बुधः।
प्रातः (स्नात्वा) स्मार्तविधानेन धौतवस्त्रोर्ध्वपुण्ड्रधृत् ॥१३

ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैर्दान्तैर्यागभूमिं विशेद्गुरु ।
देवालयस्य मध्ये तु वेदिं रम्यां प्रकल्पयेत् ॥१४
अङ्कुरार्पणपात्रैश्च भद्रकुम्भैरलङ्कृताम् ।
वितानकुसुमायुक्तां कृत्वा तत्र सुखासने ॥१५
महोत्सवार्हं बिम्बं च निवेश्यारिभम् प्रपूजयेत् ।
श्रीभूनिलादिसंयुक्तं नित्यैः परिजनैर्वृतम् ॥१६
मन्त्ररत्नविधानेन पूजयित्वा जगद्गुरुम् ।
इमे विप्रस्येत्यादिभि स्त्रिभि सूक्तैश्च पूजयेत् ॥१७
सुरभीणि च पुष्पाणि प्रत्यृचं विनिवेदयेत् ।
चतुर्दिक्षु च चत्वारो ब्राह्मणा मन्त्रवित्तमा ॥१८
वाराहं नारसिंहं च वामनं राघवं मनुम् ।
ईशान्यादिषु चत्वारो विष्णुमन्त्रान् विदिक्षु च ॥१९
वेद्या दक्षिणत कुण्डं (कुम्भ) लक्षणा(ख)न्वितं च तत्र तु ।
हुताशनं प्रतिष्ठाप्य इध्माधानान्तिकं चरेत् ॥२०
सर्वैश्च वैष्णवै सूक्तैश्चरुं तिलविमिश्रितम् ।
प्रत्यृच जुहुयाद्वह्नौ मध्वाज्यगुडमिश्रितम् ॥२१
आज्यं श्रीभूमिसूक्ताभ्यां त्व सोम इति पायसम् ।
पूर्वोक्तैर्वैष्णवैर्मन्त्रैस्तिलैर्व्रीहिभिरेव वा ॥२२
प्रत्येकं जुहुयात्पश्चादष्टोत्तरशतं क्रमात् ।
वैकुण्ठपार्षदं हुत्वा होमशेष समापयेत् ॥२३
सुदध्यन्नं फलयुतं पानकञ्च निवेदयेत् ।
ताम्बूलञ्च समर्प्याथ ऋत्विजश्चापि पूजयेत् ॥२४

ततः स्यन्दनमानीय पताकाच्छत्रसंयुतम् ।
श्वेतैः सलक्षणैस्त्वथयानमश्वैः प्रकल्पितैः ॥२५
वस्त्रपुष्पमणिस्वर्णभूषितं तत्र चित्रितम् ।
तस्मिन् मृदुतरश्लक्ष्णपर्यङ्कं स्थाप्य देशिकः ॥२६
तस्मिन्निवेश्य देवेशं देवीभ्यां सहितं हरिम् ।
अर्चयेद् गन्धपुष्पाद्यैर्धूपदीपादिभिस्तथा ॥२७
रथचक्रेषु वेदांश्च धर्मादीनपि पूजयेत् ।
आधारशक्तिमाधारे ईषादण्डे पुराणकम् ॥२८
छन्दांसि कूबरे तत्र पर्यङ्के भुजगाधिपम् ।
हयेषु चतुरो मन्त्रान् योक्त्रेष्वङ्गानि षट् च वै ॥२९
ध्वजे पताकराजानं छत्रेऽनन्तं स्वराणि तु ।
तालवृन्ते चामरे च अक्षराणि च पूजयेत् ॥३०
अभ्यर्च्यैवं रथं दिव्यं पश्चात् संपूजयेद्धरिम् ।
दिक्पालावरणांश्चैव मर्चयेद्दिक्षु सर्वतः ॥३१
जीमूतस्येति सूक्तेन तत्र पुष्पाञ्जलिं चरेत् ।
मरुत्वानिन्द्रेति सूक्तेन कृत्वा नीराजनं ततः ॥३२
वनस्पतीति सूक्तेन वादयेत्पटहादिकम् ।
गीतैर्नृत्यैश्च वादित्रैः पुण्यस्तोत्रैर्मनोहरैः ॥३३
हयैर्गजैः स्यन्दनैश्च परितस्तर्पयेत्प्रभुम् ।
ऋत्विजः पुरतो वेदानङ्गानि च जपेत्तदा ॥३४
गायेत् सामानि भक्त्या वै पुरतः पार्श्वतो हरेः ।
कुङ्कुमैः कुसुमैर्लाजैर्विकिरन्वै समन्ततः ॥३५

स्वलङ्कृतेषु विधिषु पर्यटन् सेवयेत्प्रभुम् ।
गृहद्वारेषु मार्गेषु मर्त्यैरिक्षुभिरेव च ॥३६
कुसुमै धूपदीपैश्च ताम्बूलैश्चापि सेवयेत् ।
एवं निवेश्य देवेश पुनर्गेहं निवेशयेत् ॥३७
तमभि प्रगायतेति जपन् सूक्तं निवेशयेत् ।
प्रसन्नाज मित्यनेन दीपान्नीराजयेत्तत ॥३८
पीठे निवेश्य देवेशमुपचारान् समर्पयेत् ।
वयमुपेत्य ध्यायेम आशिषो वाचन चरेत् ॥३९
अनेन विधिना कुर्यादुत्सवं प्रतिवासरम् ।
जपेर्होमै स्तथा दानैर्विप्राणां भोजनैरपि ॥४०
समाप्ते चोत्सवे विष्णो कुर्यादवभृथ शुभम् ।
नदीं तालं तडागं वा देवेन सहितो व्रजेत् ॥४१
स्यन्दनादिषु यानेषु स्थिता नार्य स्वलङ्कृता ।
पुरुषाश्च हरिद्राश्च चूर्णादीन् विकिरन्मिथ ॥४२
कुर्यादवभृथं तत्र विशिष्टैर्ब्राह्मण सह ।
वासुदेवोत्सवे स्नानमश्वमेधफल लभेत् ॥४३
स्नात्वा सन्तर्प्य देवादीन् प्रविश्य हरिमन्दिरम् ।
यजेतावभृथेष्टिंच अस्य वामेति सूक्तत ॥४४
चरुमाज्यं तिलैर्वापि अनुवाकैश्च वैष्णवै ।
एव हुत्वावभृथेष्टि यै वैष्णवान् भोजयेत्तत ॥४५
गुरुञ्च ऋत्विजश्चैव पूजयेद्भक्तित स्तत ।
पिबासोमेत्यध्यायेन कुर्यात् स्वस्त्ययन हरे ॥४६

दृच्छन्ति त्वेत्य ध्यानेन प्रत्यृचश्च द्वयेन च ।
अष्टोत्तरशतं जुहुयात्कुसुमैरेव वैष्णवः ॥४७
हिरण्यगर्भसूक्तेन तथैवाऽऽज्यं द्विजोत्तमः ।
पुनरेव तु होतव्यं हुत्वा वैकुण्ठपार्षदम् ॥४८
होमशेषं समाप्याथ वैष्णवान् भोजयेदपि ।
सर्वयज्ञसमाप्तौ तु पुष्पयागं समाचरेत् ॥४९
सर्वं सम्पूर्णतामेति परितुष्टो जनार्दनः ।
एवं महोत्सवं कुर्यात्प्रत्यब्दं परमात्मनः ॥५०
अथ नित्योत्सवे पूजा होमश्चात्र विधीयते ।
शिविकायां निवेश्येशं पूजयित्वा विधानतः ॥५१
तत्र चामरवादित्रभृङ्गारै स्तालवृन्तकै ।
दीपिकाभि रनेकाभिर्दूर्वाकुसुमाक्षतैः ॥५२
फलमोदकहस्ताभिर्नारीभिः समलङ्कृतम् ।
देवस्याऽऽयतनं रम्यं त्रिः प्रदक्षिणमाचरेत् ॥५३
तत्तन्मन्त्रान् जपेद्दिक्षु सर्वासु द्विजपुङ्गवाः ।
बलिश्च निक्षिपेत्तासु देवानुद्दिश्य पूर्वतः ॥५४
प्राची विश्वजिते सूक मन्ने तव अनन्तरम् ।
याम्ये परे इमा सन्तु मोपुणस्तु तदन्तरम् ॥५५
यश्चिद्धेति प्रतीच्यान्तु विहिहोत्येत्यनन्तरम् ।
स सोम इति सौम्यान्तु कद्रुद्रायेत्यनन्तरम् ॥५६
प्रजापतिं तथा चोर्द्ध मधश्च पृथिवीं क्षिपेत् ।
एवं दिक्षु बलिं दत्त्वा परिणीय जनार्दनम् ॥५७

स्तुतिभिः पुष्कलाभिश्च भवनं सम्प्रवेशयेत्।
पीठे निवेश्य देवेशं पूजयित्वा विधानत. ॥५८
विह्लितोतादि सूक्तेन दद्यात् पुष्पाणि शार्ङ्गिणे ।
नीराजनं ततो दद्यात् ध्रुवसूक्तेन वैष्णवः ॥५६
शाययित्वा च शय्यायां दद्यात् पुष्पाणि मन्त्रत. ।
इमं महेति सूक्ताभ्यां पूजयेत् विष्णुमव्ययम् ॥६०
सौदर्शनेन मन्त्रेण रक्षां कुर्यात्समन्ततः ॥६१
एवं नित्योत्सवं कुर्याद्रात्रौ चाहनि सर्वदा ।
गुरूणामन्त्यदिवसे भगवज्जन्मवासरे ॥६२
कार्तिक्यां श्रावणे वाऽपि कुर्याद्दिक्षिश्च वैष्णवीम् ।
उपोष्य पूर्वदिवसे दीक्षित सुसमाहितः ॥६३
स्वस्तिवाचनपूर्वेण कारयेदङ्कुरार्पणम् ।
नद्यां स्नात्वा च ऋत्विग्भि श्चतुर्भि र्वेदपारगैः ॥६४
पौरुषेण विधानेन पूजयेत् पुरुषोत्तमम् ।
गन्धै र्नानाविधैः पुष्पै र्धूपै र्दीपै र्निवेदनैः ॥६५
फलैश्च भक्ष्यभोज्यैश्च ताम्बूलाद्यै. प्रपूजयेत् ।
अर्घ्याद्यैरुपचारैस्तु सूक्तान्ते.पूजयेद्धरिम् ॥६६
अध्यान्ते मण्डलान्ते नैवेद्यैर्विविधैरपि ।
पूजयित्वा हरिं भक्त्या वैष्णवान् भोजयेत्तथा ॥६७
आज्येन चरुणा वाऽपि तिलैः पद्मैरथापि वा ।
समिद्भिर्बिल्वपत्रै र्वा होमं कुर्वीत वैष्णवः ॥६८

यज्ञरूपं हरिं ध्यायन् प्रत्यृचं वेदसंहिताम् ।
होम समाप्यते यावत्तावद्वै दीक्षितो भवेत् ॥६६
जुहुयाद्वै गार्हपत्यो सोऽग्निमभ्यर्च्य भूपते ॥
अग्निरक्षणमप्युक्तं यावदिष्टिः समाप्यते ॥७०
विशिष्टान् वैष्णवान् विप्रान् भोजयेत्प्रतिवासरम् ।
ऋत्विजश्च पठेत्तावच्चतुर्मन्त्रान् समाहितः ॥७१
यजेदवभृथेष्टिं च पावमान्यैश्च वैष्णवैः ।
अन्ते सपूजयेद्विप्रान् वासोऽलङ्कारभूषणैः ॥७२
ऋत्विजश्च गुरुं चैव पूजयेच्च विशेषतः ।
एवमिष्टिन्तु यः कुर्याद्वैष्णवीं वैष्णवोत्तम ॥७३
क्रतूनां दशकोटीनां फलं प्राप्नोत्यसंशयः ।
यस्मिन्देशे वैष्णवेष्ट्या पूजितो मधुसूदनः ॥७४
दुर्भिक्षरोगाग्निभयं तस्मिन् नास्ति न संशयः ।
अशक्तः सर्ववेदेन कर्तुमिष्टिं च वैष्णवीम् ॥७५
सर्वैश्च वैष्णवैः सूक्तैर्जुहुयात्प्रत्यृचं हविः ।
तैरेव पुष्पाञ्जलिं च कुर्यादिष्ट्याः प्रपूर्तये ॥७६
अथवा मूलमन्त्रं तु लक्षं जप्त्वा हुताशने ।
अयुतं जुहुयात्तद्वत्पुष्पाणि च सनातने ॥७७
इष्टिः सपूर्णतां याति सर्ववेदा सदक्षिणा ।
एवमिष्टिं प्रकुर्वीत प्रत्यब्दं वैष्णवोत्तम ॥७८
तुष्ट्यर्थं वासुदेवस्य वंशस्योज्जीवनाय च ।
वृष्ट्यर्थमपि लोकस्य देवतानां हिताय च ॥७९

पिता वा यदि वा माता भ्राता वाऽन्ये सुहृज्जनाः।
यदि पञ्चत्वमापन्नाः कथं कुर्याद् द्विजोत्तमः ॥७९
कनिष्ठवर्जमेवात्र वपनं मुनिभिः स्मृतम्।
स्नात्वाऽऽचम्य विधानेन कारयेत् पूजनं हरेः।
रङ्गवल्यादिभि स्तत्र कुर्यात् सर्वत्र मङ्गलम् ॥८०
रोदनं वर्जयित्वैव गोमयेन शुचि स्थलम्।
विलिप्य मण्डले तत्र धान्यस्योपर्युलूखलम् ॥८१
कलशांस्तु चतुर्दिक्षु तण्डुलोपरि निक्षिपेत्।
हिरण्यपञ्चगव्यानि पञ्चत्वक्पल्लवान् न्यसेत् ॥८२
वाससा तन्तुना वाऽपि वेष्टयेत् त्रिः प्रदक्षिणम्।
उलूखले वासुदेवं कलशेषु क्रमेण च ॥८३
प्रद्युम्न मनिरुद्धञ्च सङ्कर्षण मधोक्षजम्।
सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यैर्भक्त्या भक्ष्यं निवेदयेत् ॥८४
अभ्यर्च्य मुसलं पुष्पैर्गायत्र्या प्रणवेन च।
हरिद्रामवहन्यात्तु परोमात्रेति वै जपन् ॥८५
भगवन्मन्दिरे विष्णुं हरिद्राद्यैः प्रपूजयेत्।
पितुः शरीरं विधिवत् स्नापयेत्कलशोदकैः ॥८६
तिलैश्च पञ्चगव्यैश्च गायत्र्या वैष्णवेन च।
उद्वर्त्यं सर्वकर्मणेति स्नापयेत्पितरं सुतः ॥८७
नारायणानुवाकेन चैवं स्नाप्य ततः पितुः।
धौतवस्त्रञ्च सम्वेष्ट्य भूषणैर्भूषयेत्ततः ॥८८

गन्धमाल्यैरलङ्कृत्य शुचौ देशे कुशोत्तरे ।
तिलोपरि विधायैनं वस्त्रं हित्वाऽन्यत सुतम् ॥८९
धारयेदुत्तरीये द्वे यावत्कर्म समाप्यते ।
हुत्वैवोपासनं तस्य आर्द्रयज्ञीयकाष्ठके ॥९०
शिबिकां धारयित्वाऽथ वंशमूल्यादिभि शुभाम् ।
तस्मिन्निवेश्य तं प्रेतं वाहकान्वरयेत्तत ॥९१
स्ववर्णवैष्णवानेव पूजयेत् स्वर्णदक्षिणै ।
वहेयुस्तेऽपि भक्त्या तं पठन् विष्णुस्तवान् मुदा ॥९२
हरिद्रालाजपुष्पाणि विकिरन् वैष्णवा मुदा ।
वादित्रनृत्यगीताद्यैः व्रजेयु कीर्तयन् हरिम् ।
हुताग्निमग्रत धृत्वा गच्छेयुस्तस्य बान्धवा ॥९३
वाहकानामलाभे तु शकटे गोवृषान्विते ।
निधाय शिबिकां रम्यां प्रनयुर्नगराद्बहि ॥९४
दक्षिणेन मृतं शूद्रं पुरद्वारेण निर्हरेत् ।
पश्चिमोत्तरपूर्वेषु यथासङ्ख्यं द्विजातय. ॥९५
प्राग्द्वार सर्ववर्णानां न निषिद्धं कदाचन ।
गत्वा शुभतरं देशं रम्यं शुभजलान्वितम् ॥९६
यत्तृणसमाकीर्णं अमेध्यादिविवर्जितम् ।
खातयेत्तत्र कुण्डं तु निम्नं हस्तद्वयं तदा ।
द्वाभ्यां त्रिभिर्वा विस्तार चतुरायतमेव च ॥९६
तत संमार्जनं कृत्वा गोमयाम्बुविसारिणा ।
सम्प्रोक्ष्य वह्निं काष्ठैः स्थितिं कुर्याद्यथाविधि ॥९७

आस्तीर्य दक्षिणामेवमेणाजिन मनुत्तमम् ।
तस्मिन्नास्तीर्य्य दर्भांस्तु विकीर्य च तिलांस्तथा ॥९८
तस्मिन्निवेश्य तं देवं (प्रेतं) घृताक्तं नववस्त्रकम् ।
ईषद्धौतं नवं श्वेतं सदृशं यन्न धारितम् ॥९९
अहतं तद्विजानीयाद्दैवे पित्र्ये च कर्मणि ।
परिषिच्य चितिं पश्चादापोऽयस्मानितीत्यृचा ॥१००
परिस्तीर्य शुभैर्दर्भैरपसव्येन सव्यतः ।
अरण्यग्निं निधायास्य पात्रासादानमाचरेत् ॥१०१
प्रोक्षणं चमसाज्येन चरुमिध्मस्रुवौ तथा ।
आसात्योक्तविधानेन इध्माधानान्तमाचरेत् ॥१०२
स्वगृह्योक्तविधानेन हुत्वा सर्वमशेषतः ।
पश्चादाज्ययुतं हव्यं जुहुयादुपवीतवान् ॥१०३
सोमानमित्योदनेन प्रत्यृचं तत आज्यतः ।
तं महेन्द्रेति सूक्तेन हुत्वा प्रत्यृचमेव च ॥१०४
एप इत्यनुयाकाभ्यां पुनराज्यं यजेत्ततः ।
सर्वैश्च वैष्णवैर्मन्त्रैः पृथगष्टोत्तरं शतम् ॥१०५
तिलैश्च जुहुयात्पादमष्टाविंशतिमेव वा ।
एकैकामाहुतिं पश्चाद्वैकुण्ठपार्षदं यजेत् ॥१०६
ब्रह्ममेध इति प्रोक्तं मुनिभिर्ब्रह्मतत्परैः ।
महाभागवतानां वै कर्तव्यमिदमुत्तमम् ॥१०७
केशवार्पितसर्वाङ्गं शरीरं मङ्गलाद्वयम् ।
न वृथा दापयेद्विद्वान् ब्रह्ममेधविधिं विना ॥१०८

परमावगतेनापि कर्त्तव्यं हि द्विजन्मनः।
द्रव्यालाभेऽपि होतव्यं यज्ञियैश्च प्रसूनकैः ॥१०६
शूद्रस्यापि विशिष्टस्य परमैकान्तिनस्तथा।
स्वाहाकारं च वेदं च हित्वा पुष्पैर्यजेच्छुभैः ॥११०
शुद्धगोमद्भिः परिषिच्य परिस्तीर्य कुशैस्तिलैः।
नामभिः केशवाद्यैश्च तथा सङ्कर्षणादिभिः ॥१११
मत्स्यकूर्म्मादिभिश्चैव वेदार्थोक्तप्रबन्धकैः।
नमोऽन्तमेव जुहुयात् स्वाहाकारं विवर्जयेत् ॥११२
अमन्त्रकं प्रकुर्वीत शूद्रः सर्वमशेषतः।
दग्ध्वा शरीरं विधिवद्वैष्णवस्य महात्मनः ॥११३
यन्मरणे सद्यश्शुद्धिमिति मत्वा विचक्षणः।
स्नानार्थं पुण्यसलिलं प्रव्रजेद्भागवतैः सह ॥११४
अनुलिप्य पूर्वं सर्वं गोमयं वा तिलैः सह।
दूर्वाप्रैरक्षतैर्लाजैः स्नानं कुर्वीत मङ्गलम् ॥११५
स्वगृह्योक्तविधानेन तस्य पुत्राः सगोत्रजाः।
पिण्डोदकप्रदानाद्यं सर्वमन्त्यौर्ध्व देहिकम् ॥११६
निर्वर्त्य विधिना धर्मं सामान्येनाप्यशेषतः।
विशिष्टं परमं धर्मं नारायणबलिं ततः ॥११७
प्रकुर्वीत वैष्णवैः सार्द्धं यथाशास्त्रमतन्द्रितः।
निमन्त्रयेत्तु पूर्वेद्युः ब्राह्मणान् वैष्णवान् शुभान् ॥११८
चतुर्विंशतिसंख्याकान् महाभागवतोत्तम।
केशवादीन् समुद्दिश्य चतुर्विंशति वैष्णवान् ॥११९

रात्रौ निमन्त्र्य सम्पूज्य तैः सार्द्धं विजितेन्द्रियः ।
प्रातरुत्थाय तैर्गत्वा नदीं पुण्यजलान्विताम् ॥१२०
धात्रीफलानुलिप्ताङ्गो निमज्ज्य विमले जले ।
जपन् वै वैष्णवान् सूक्तान् स्नानं कुर्वीत वै द्विजः ॥१२१
वैकुण्ठतर्पणं कुर्यात् कुसुमैः सतिलाक्षतैः ।
गृहं गत्वाऽर्चयेद्देवं सर्वावरणसंयुतम् ॥१२२
सुगन्धपुष्पैर्विविधैर्गन्धैर्धूपैश्च दीपकैः ।
नैवेद्यैर्भक्ष्यभोज्यैश्च फलैर्नीराजनैरपि ॥१२३
अर्चयित्वा विधानेन मूलमन्त्रेण वैष्णवः ।
पुरतोऽग्निं प्रतिष्ठाप्य इध्माधानं समाचरेत् ॥१२४
चरुं सशर्कराज्यन्तु जुहुयाद्वह्निमण्डले ।
प्रत्यृचं वैष्णवैः सूक्तैः केशवाद्यैश्च नामभिः ॥१२५
हुत्वाऽथ वैष्णवैर्मन्त्रैः पृथगष्टोत्तरं शतम् ।
गवाज्येनैव जुहुयाच्चतुर्भि वैष्णवोत्तमः ॥१२६
वैकुण्ठपार्षदं हुत्वा होमशेषं समापयेत् ।
अग्नेरुत्तरभागेन गोमयेनानुलिप्य च ॥१२७
आस्तीर्य दर्भान् प्रागग्रान् चतुर्विंशतिसंख्यया ।
उदक्प्रावणिकेनैव केशवादिक्रमेण तु ॥१२८
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैस्तत्तन्मन्त्रैः पृथक् पृथक् ।
मध्वाज्यतिलमिश्रेण चरुणा पायसेन वा ॥१२९
कुशेषु तेषु दद्यात्तु पिण्डान् तीर्थं विधानतः ।
स्वाहाकारेण मनसा केशवादीन् क्रमेण वै ॥१३०

दत्त्वा पिण्डान् समभ्यर्च्य गन्धपुष्पाक्षतोदकैः ।
नित्यमभ्यर्च्य गुरुभ्यो वैष्णवेभ्यस्तथैव च ॥१३१
दद्यात् पिण्डत्रयं चैव तेषां दक्षिणतः क्रमात् ।
विष्णोर्नुकेति सूक्तेन उपस्थानजपं तथा ॥१३२
प्रदक्षिणं नमस्कारं कृत्वा भक्त्याऽथ वैष्णवः ।
पिण्डांस्तु सलिले दत्त्वा स्नात्वा संपूज्य केशवम् ॥१३३
ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात्पादप्रक्षालनादिभिः ।
अर्घ्याद्यैर्गन्धपुष्पाद्यैर्वासोऽलङ्कारभूषणैः ॥१३४
केशवादीन् समुद्दिश्य नित्यान् मुक्तांश्च वैष्णवान् ।
सम्पूज्य विधिवद्भक्त्या महाभागवतोत्तमान् ॥१३५
पायसं सगुडं भाज्यं शुद्धान्नं पानकं फलं ।
सम्भोज्य विप्रानाचान्तान् प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥१३६
दक्षिणाभिमुखो भूत्वा भूमौ दद्यात् कुशोत्तरे ।
अयं नारायणबलिर्मुनिभिः सम्प्रकीर्तितः ॥१३७
दशाहाद्यानां च सर्वेषां कर्तव्यो वैष्णवोत्तमैः ।

तस्माद्भागवतश्रेष्ठमेकं वाऽपि सुपूजयेत्।
हरिश्च देवताश्चैव पितरश्च महर्षयः ॥१४२
तस्मिन् सम्पूजिते विप्रे तुष्यन्त्येव न संशयः।
अर्चनं मन्त्रपठनं ध्यानं होमश्च वन्दनम् ॥१४३
मन्त्रार्थचिन्तनं योगो वैष्णवानाञ्च पूजनम्।
प्रसादतीर्थसेवा च नवेज्याकर्म उच्यते।
पञ्चसंस्कारसम्पन्नो नवेज्याकर्मकारकः ॥१४४
आकारत्रयसम्पन्नो महाभागवतोत्तमः।
श्राद्धानाम्यलाभे तु एकं नारायणं बलिम् ॥१४५
कुर्वीत परया भक्त्या वैकुण्ठपदमाप्नुयात्।
नित्यञ्च प्रतिमासञ्च पित्रोः श्राद्धं विधानतः ॥१४६
सोदकुम्भं प्रदद्यात्तु याव (द्वादिके) दिष्ट्यान्विकं द्विजः।
प्रत्यब्दं पार्वणश्राद्धं मातापित्रोर्मृतेऽहनि ॥१४७
अर्चयित्वाऽच्युतं भक्त्या पश्चात् कुर्याद्विधानतः।
वैष्णवानेव विप्रांस्तु सर्वकर्मसु योजयेत् ॥१४८
सर्वत्रावैष्णवान् विप्रान् पतितानिव सन्त्यजेत्।
शङ्खचक्रविहीनास्तु देवतान्तरपूजकाः।
द्वादशीविमुखा विप्राः शैवाश्चावैष्णवाः स्मृताः ॥१४९
अवैष्णवानां संसर्गात् पूजनाद्वन्दनादपि।
यजनाध्यापनात्सद्यो वैष्णवत्वाच्च्युतो भवेत् ॥१५०
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मं नातिक्रम्याऽऽचरेत्सदा।
स्वशाखोक्तविधानेन वैकुण्ठार्चनपूर्वकम् ॥१५१

कर्तृत्वफलसङ्गिस्ते परित्यज्य समाचरेत् ।
धर्मस्य कर्ता भोक्ता च परमात्मा सनातनः ॥१५२
अधर्मं मनसा वाचा कर्मणाऽपि त्यजेत्सदा ।
अकृत्यकरणाद्विप्र कृत्यस्याकरणादपि ॥१५३
अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां सद्य पतनमृच्छति ।
अनिशं मनसा यस्तु पापमेवाभिचिन्तयेत् ॥१५४
कल्पकोटिसहस्राणि निरयं वै स गच्छति ।
यस्तु वाचा वदेत्पाप मसत्यकथनादिकम् ॥१५५
कल्पायुतसहस्राणि तिर्यग्योनिषु जायते ।
यस्त्वघं कुरुते नित्यं पापस्याचरणादिभि ॥१५६
युगकोटिसहस्राणि विष्ठ यां जायते क्रिमि ।
दान्त शुचि स्तपस्वी च सत्यवाग्विजितेन्द्रिय ॥१५७
स सात्त्विक शमयुत सुरयोनिषु जायते ।
धर्मार्थकामनिरत सदा विषयचापल ॥१५८
स राजसो मनुष्येषु भूयो भूयोऽभिजायते ।
क्रोधी प्रमादवान् क्रूरो नास्तिको विपरीतवाक् ॥१५९
निद्रालु स्तामसो याति बहुशो मृगपक्षिताम् ।
महापापस्यातिपापं पातकस्योपपातकम् ।
प्रायश्चित्तं नर कृत्वा नरकान् याति दारुणान् ॥१६०
तामिस्र मन्धतामिस्र महारौरवरौरवौ ।
सङ्घात कालसूत्रश्च पूयशोणितकर्दमम् ॥१६१

कुम्भीपाकं लोहशङ्कुस्तथा विण्मूत्रसागरः ।
तप्तायसाश्रयो घोरा तप्तायसमयं गृहम् ॥१६२
शय्या तप्तायसमयी पानकश्चाग्निसन्निभम् ।
शूलमुद्गरसङ्घातं काककङ्कोलदंशितम् ॥१६३
सिंहव्याघ्रमहानागभीकरं सम्प्रतापनम् ।
क्रिमिराशिमहाज्वालं तथा विण्मूत्रभोजनम् ॥१६४
असिपत्रवनं घोरं तप्ताङ्गारमयी नदी ।
सञ्जीवनं महाघोरमित्याद्या नरकाः स्मृताः ॥१६५
महापातकजैर्घोरैरुपपातकजैरपि ।
प्रजतीमान् महाघोरान् दुष्कृतैरन्वितश्च यः ॥१६६
प्रायश्चित्तपरैरेनो यदकार्यकृतं महत्।
कामतस्तु कृतं यत्तु मरणात्सिद्धि मृच्छति ॥१६७
ब्रह्महत्या सुरापानं विप्रस्वर्णस्य हारणम् ।
गुरुदाराभिगमनं तत्संयोगश्च पञ्चमः ।
संलापात् स्पर्शनाद्वासा(सोद)देकशय्यासनाशनात् ॥१६८
सौहार्दाद्वीक्षणाद्दानात्तेनैव समतां व्रजेत् ।
गुर्वाक्षेपस्त्रयीनिन्दा सुहृदाम्वध एव च ॥१६९
ब्रह्महत्यासमं ज्ञेयमधीतस्य च नाशनम् ।
यागस्थं क्षत्रियं वैश्यं विशिष्टं शूद्रमेव च ॥१७०
शरणागतं स्वामिनं च पितरं भ्रातरं गुरुम् ।
पुत्रं तपस्विनं शिष्यं भार्यां तेषां च सर्वतः ॥१७१

अन्तर्वत्नीं स्त्रियो गाश्च तथाऽऽत्रेयीं रजस्वलाः ।
देवताप्रतिमां साध्वीं बालाश्चैव तपस्विनीम् ॥१७२
घातयित्वा समाप्नोति ब्रह्महत्यां न संशयः ।
जैह्म्यमात्मस्तवं क्रूरं निषिद्धानां च भक्षणम् ॥१७३
रजस्वलामुखास्वादः पञ्चयज्ञादिवर्जनम् ।
अनृतं कूटसाक्षी च महायन्त्रप्रवर्तनम् ॥१७४
आकर्षणादि षट्कर्म लाक्षालवणविक्रयः ।
पाषण्डपतनगुह्यकनेद्याह्यविधिक्रिया ॥१७५
यक्षराक्षसभूतानामर्चनं वन्दनं तथा ।
वर्षर्तैणेयाम्बुपानश्च सुरापस्त्रीनिषेवणम् ॥१७६

मातामही पितामही पितुर्मातुश्च सोदरा ।
अन्या मा(भ्रा)तृव्यदुहिता मातुलानी पितृष्वसा ॥१८३
जननी भगिनी धात्री दुहिताऽऽचार्यभामिनी ।
स्नुषाऽऽचार्यसुता चैव तत्पत्नी सुमहातपाः ॥१८४
मातुः सपत्नी सार्वभौमी दीक्षिता चैव भामिनी ।
कपिला महिषी धेनुर्देवताप्रतिमा तथा ॥१८५
आसामन्यतमाङ्गच्छेद् गुरुतल्पग उच्यते ।
महापातकिनामत्र तत्संयोगिन एव च ॥१८६
प्रायश्चित्तं नास्ति तेषां भृगुरग्निपतनं स्मृतम् ।
हीनवर्णाभिगमनं गर्भेन भर्तृहिंसनम् ॥१८७
विशेषपतनीयानि स्त्रीणां पुंसां च यानि तु ।
स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधो गोबालहननं तथा ॥१८८
फलपुष्पद्रुमाणां हि चोषधीनाञ्च हिंसनम् ।
वापीकूपतडागानां ध्वंसनं ग्रामघातनम् ॥१८९
अभिचारादिकं कर्म सस्यध्वंसनमेव च ।
उद्यानारामहननं प्रपाविध्वंसनं तथा ॥१९०
मातापितृसुतत्यागो दारत्यागस्तथैव च ।
स्वाध्यायाग्निगुरुत्यागस्तथा धर्मस्य विक्रयः ॥१९१
कन्याया विक्रयश्चैव स्वाध्यायमद्यविक्रय ।
परस्त्रीगमनञ्चैव परद्रव्यापहारणम् ॥१९२
तथा पुंसोऽभिगमनं पशूनां गमनं तथा ।
वृषक्षुद्रपशूनाञ्च पुंस्त्वविध्वंसनं तथा ॥१९३

तच्छावणं परान्नं च दिवामैथुनमेव च ।
रजस्वला सूतिकां च परस्त्रीमभिदर्शनम् ॥२०५
उपवासदिने श्राद्धे दिवा पर्वणि मैथुनम् ।
शूद्रप्रेष्यं हीनसख्यमुच्छिष्टस्पर्शनादिकम् ॥२०६
स्त्रीभिर्हास्यं कामजल्पं मुक्तकेश्यादिवीक्षणम् ।
इत्यादयो ये च दोषाः प्रकीर्णाः परिकीर्तिताः ।
महापापं पातकञ्च अनुपातकमेव च ॥२०७
उपपापं प्रकीर्णञ्च पञ्चधा तत्र कीर्तितम् ।
महापातकतुल्यानि पापान्युक्तानि यानि तु ॥२०८
तानि पातकसंज्ञानि तन्न्यून मनुपातकम् ।
उपपापं ततो न्यूनं ततो हीनं प्रकीर्णकम् ॥२०९
संसर्गेस्तु तथा तेषां प्रसङ्गात्सम्प्रकीर्तितम् ।
क्रमेण वक्ष्यते तेषां प्रायश्चित्तं विशुद्धये ॥२१०
यो येन सम्वसेत्तेषां तस्यैव व्रतमाचरेत् ।
संसर्गिणस्तु संसर्गस्तत्संसर्गस्तथैव च ॥२११
चतुर्थस्य न दोषस्तु पतत्येषु यथाक्रमम् ।
प्रकीर्णकादिदोषाणां प्रासङ्गिक मविद्यते ॥२१२
स्वल्पत्वात्पतनाभावात्तत्संसर्गान्न दुष्यति ।
स्नानच्च शुद्धिर्दोषस्य संसर्गात्पतितं विना ॥२१३
सान्निध्या वाऽपि शुध्येत कर्तुरेव व्रतक्रिया ।
कृते पापे यस्य पुंस. पश्चात्तापोऽनुजायते ॥२१४

प्रयागे सेतुबन्धादिपुण्यक्षेत्रेषु पापकृत् ।
तत्र वर्षादि विज्ञाप्य स्वस्वकल्पमशेषतः ॥२२६
तत्रस्थैर्ब्राह्मणैरेवानुज्ञातो व्रतमाचरेत् ।
चत्वारो ब्राह्मणाः शिष्टाः पर्षदित्यभिधीयते ॥२२७
स एकमाचरेद्धर्मज्ञेको वाऽध्यात्मवित्तमः ।
जटी वल्कलवासाश्च बहिरेव समाविशन् ॥२२८
स्नानं त्रिषवणं कुर्वन् क्षितिशायी जितेन्द्रियः ।
एकभुक्तेन नक्तेन फलैरनशनेन च ॥२२९
समापयेत्कर्मफलं यथाकालं यथाबलम् ।
राममिन्दीवरश्यामं पौलस्त्यकुलमर्दनम् ॥२३०
ध्यात्वा षडक्षरं मन्त्रं नित्यं जायदहर्निशम् ।
एवं द्वादशवर्षाणि पुण्यतीर्थे समाचरन् ॥२३१
मुच्यते ब्रह्महत्याया स्तपसा वीतकल्मषः ।
चरितव्रत आयाते यवसं गोषु दापयेत् ॥२३२
स स्नातश्च सुसंस्काराः कर्तव्या बान्धवैर्जनैः ।
विप्रमुख्याय गां दत्वा ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ॥२३३
प्रारम्भव्रतमध्ये तु यदि पञ्चत्वमाप्नुयात् ।
विशुद्धिस्तस्य विज्ञेया शुभाङ्गतिमवाप्नुयात् ॥२३४
असंस्कृतस्तु गोषु स्यात् पुनरेव व्रतं चरेत् ।
अशक्तस्तु व्रते दद्याद् गोसहस्रं द्विजन्मनाम् ॥२३५
पात्रे धनं वा पर्याप्तं दत्त्वा शुद्धिमवाप्नुयात् ।
ब्रह्महत्यासमेष्वेवं कामतो व्रतमाचरेत् ॥२३६

प्रायश्चित्तन्तु तस्यैव कर्तव्यं नेतरस्य तु।
जातानुतापस्य भवेत्प्रायश्चित्तं यथोदितम् ॥२१५
नानुतापस्य पुंसस्तु प्रायश्चित्तं न विद्यते।
नाश्वमेधफलेनापि नानुतापी विशुद्ध्यते ॥२१६
तस्माज्जातानुतापस्य प्रायश्चित्तं विशुद्ध्यते।
चरेदकामतः कृत्वा पतनीयं महत् पुमान् ॥२१७
न कामतश्चरेद्धर्मं भृग्वग्निपतनं विना।
य. कामतो महापापं नर कुर्यात्कथञ्चन ॥२१८
न तस्य शुद्धिर्निर्दिष्टा भृग्वग्निपतनं विना।
इत्युक्तं ब्रह्मणा पूर्वं मनुना च महर्षिभिः ॥२१९
पातकेषु च सर्वत्र कामतो द्विगुणं व्रतम्।
कामत. पतनीयेषु मरणाच्छुद्धिमृच्छति ॥२२०
हयमेधाय न (त) शुद्धिः सर्वभौमस्य भूपतेः।
कामतस्त्वनुपातेषु लोके न व्यवहार्यता ॥२२१
महत्सु चातिपापेषु प्रदीप्तज्वलनं विशेत्।
प्रायश्चित्तैरपैत्येनो यदकामकृतं भवेत् ॥२२२
कामतो व्यवहारस्तु वचनादिह जायते।
इति योगेश्वरेणोक्त मुपपापेषु तत्र तत् ॥२२३
तस्मादकामत पापं प्रायश्चित्तेन शुध्यति।
तेषां क्रमेण वक्ष्यामि प्रायश्चित्तं विशुद्धये ॥२२४
शिर. कपालध्वजवान् भिक्षाशी कर्म वेदयन्।
ब्रह्महा द्वादशाब्दानि पुण्यतीर्थे समाविशेत् ॥२२५

प्रयागे सेतुबन्धादिपुण्यक्षेत्रेषु पापकृत् ।
तत्र वर्षादि निश्चाप्य स्वस्वकल्पमशेषतः ॥२२६
तत्रस्थैर्ब्राह्मणैरेवानुज्ञातो व्रतमाचरेत् ।
चत्वारो ब्राह्मणाः शिष्टाः पर्षदित्यभिधीयते ॥२२७
स व्रतमाचरेद्धर्मसेको वाऽध्यात्मवित्तम ।
जटी चररल्वासाश्च बहिरेव समाविशन् ॥२२८
स्नानं त्रिषवणं कुर्वन् क्षितिशायी जितेन्द्रियः ।
एकभुक्तेन नक्तेन फलैरनशनेन च ॥२२९
समापयेत्स्वरूफल यथाकालं यथाबलम् ।
राममिन्दीवरश्यामं पौलस्त्यनमरक्षमयम् ॥२३०
ध्यात्वा षडक्षरं मन्त्रं नित्यं सावदहर्निशम् ।
एवं द्वादशवर्षाणि पुण्यतीर्थे समाचरन् ॥२३१
मुच्यते ब्रह्महत्याया स्तपसा वीतकल्मषः ।
चरितव्रत आयाते यवसं गोषु दापयेत् ॥२३२
[redacted]स्तस्य च सुसंस्कारा कर्तव्या बान्धवैर्जनैः ।
विप्रमुत्थाय गा दत्वा ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ॥२३३
प्रारम्भव्रतमध्ये तु यदि पञ्चत्वमाप्नुयात् ।
विशुद्धिस्तस्य विज्ञेया शुभाङ्गतिमवाप्नुयात् ॥२३४
असमर्थस्तु गोषु स्यात् पुनरेव व्रतं चरेत् ।
अशक्तस्तु व्रते दद्याद् गोसहस्रं द्विजन्मनाम् ॥२३५
पात्रे धनं वा पर्याप्तं दत्त्वा शुद्धिमवाप्नुयात् ।
ब्रह्महत्यासमेष्वेवं कामतो व्रतमाचरेत् ॥२३६

मरणाच्छुद्धिमाप्नोति जीवन्यदि विशुध्यति ।
मद्यस्य प्रतिषिध्यर्थं घृतं क्षीरमथाम्बु वा ॥२७६
प्राशयित्वाऽग्निवर्णन्तु तद्धत्ता शुद्धिमाप्नुयात् ।
दत्त्वा सुवर्णं विप्राय गाश्च दत्त्वा विशुध्यति ॥२७७
क्षत्रविट्शूद्रजातीनां सुवर्णं तु यथाक्रमम् ।
पादोनमर्द्धं पादं वा चरेद् व्रतं यथोक्तवत् ॥२७८
समेष्वर्धं प्रकुर्वीत कामतः पूर्णमाचरेत् ।
कामतः स्वर्णहारी तु राज्ञे मुसलमर्पयेत् ॥२७९
स्वकर्म ख्यापयंश्चैव हतो मुक्तोऽपि वा शुचिः ।
राज्ञा यदि विमुक्तः स्यात् पूर्ववद् व्रतमाचरेत् ॥२८०
आत्मतुल्यसुवर्णं वा दद्याद्विप्रस्य तुष्टिकृत् ।
तत्समन्यतिरिक्तेषु पादमेव चरेद् व्रतम् ॥२८१
चान्द्रायणं पराकं वा कुर्यादल्पेषु सर्वशः ।
द्रव्यप्रत्यर्पणं कर्तुस्तन्मूल्यद्रव्यमेव वा ॥२८२
व्रतं समाचरेत् कृत्वा यथा परिषदीरितम् ।
बलाच्चौर्येण वा स्नेहाद् व्यवहारादिनाऽपि वा ॥२८३
समाहरति यद् द्रव्यं तत्सर्वं स्तेयमुच्यते ।
देशं कालं वयः शक्तिं पापञ्चावेक्ष्य सर्वतः ॥२८४
प्रायश्चित्तं प्रदातव्यं धर्मविद्भिर्मनीषिभिः ।
भगिनीं मातरं पुत्रीं स्नुषामाचार्ययोषितम् ॥२८५
अकामतः सकृद् गत्वा चरेत् पूर्णव्रतं नरः ।
पश्चिमाभिमुखां गङ्गां कालिन्द्या सह सङ्गताम् ॥२८६

प्रश्नप्रस्रवणे पुण्यं द्वारकां सेतुमेव वा ।
चन्द्रपुष्करणीं वाऽपि वेणीं सागरसङ्गमम् ॥२८७
गोदावर्याः शवर्यां वा गत्वा तत्राऽऽचरेद् व्रतम् ।
पूर्ववत् द्वादशाब्दानि चरेद् व्रतमनुत्तमम् ॥२८८
कृष्णाय नम इत्येष मन्त्रः सर्वाघनाशनः ।
इममेव जपन्मन्त्रं ध्यात्वा हृदि सनातनम् ॥२८९
त्रिसन्ध्यास्वयुतं भक्त्या नित्यं द्वादशवत्सरम् ।
चान्द्रायणैः पराकैर्वा कृच्छ्रैर्वा शमयेत् समाः ॥२९०
जीवे क्षीणेऽथवा पुण्यकामी मण्डपपाटलैः ।
निवसित्वा बहिर्ग्रामात् क्षितिशायी जितेन्द्रियः ॥२९१
मनः सन्तापकरणशुद्धहेच्छोकमन्ततः ।
सदा कृष्ण हरिं ध्यायन् जपन्मन्त्रमनुत्तमम् ॥२९२
द्वादशाब्दाद्विमुच्येत पापादस्मात्तपो बलात् ।
भगिन्यादिषु योषित्सु यो गच्छेत्कामतो नरः ॥२९३
प्रतप्तासमयोयेन समाश्लिष्य हुताशने ।
शयित्वा सुमहद्वह्नौ दग्धः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥२९४
एतासु मतिपुष्टासु कामतो बहुशो व्रजेत् ।
एवमपि विशेद्धीमान् पापं विज्ञाप्य पर्षदि ॥२९५
अकामतः सकृद् गत्वा चरेद्धर्मव्रतं नरः ।
अभ्यासे तु चरेत् पूर्णं कामतः सकृदेव च ॥२९६
कामतोऽभ्यासविषये तत्रापि मरणान्तिकम् ।
समेष्वयं प्रकुर्वीत सकृदेव ह्यकामतः ॥२९७ -

कामतस्तु चरेत् पूर्णमभ्यासे मरणान्तिकम् ।
अकामतो वाऽभ्यासे तु पूर्णमेव व्रतं चरेत् ॥२९८
अन्यास्वपि च नारीषु सकृद्गत्वाऽप्यकामत ।
पादमेवाऽऽचरेद्विद्वानभ्यासे त्वर्धमाचरेत् ॥२९९
साधारणासु सर्वासु चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ।
कामतो द्विगुणं तासु अभ्यासे व्रतमाचरेत् ।
स्वदारागम्यगमने पुंसि तिर्यक्षु कामत ॥३००
चान्द्रायण पराकं वा प्राजापत्यमथापि वा ।
उदक्या सूतिकां गत्वा चरेत्सान्तपनं व्रतम् ॥३०१
चान्द्रायण तथाऽन्यासु कामतो द्विगुणं चरेत् ।
अष्टम्याश्च चतुर्दश्यां दिवा पर्वणि मैथुनम् ॥३०२
कृत्वा सचैलं स्नात्वा च वारुणीभिश्च मार्जयेत् ।
चण्डाली पुश्चली म्लेच्छा पाषण्डी पतितामपि ॥३०३
रजकीं बुरुडीं व्याधां सर्वा मासान्त्यजा स्त्रिय ।
अकामत सकृद् गत्वा चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥३०४
अभ्यासे तु व्रतं पूर्णन्ताभिश्च सह भोजने ।
कामतस्तु सकृद् गत्वा भुक्त्वा त्वर्धव्रतं चरेत् ॥३०५
तत्र भूयश्चरेत् पूर्णमभ्यासे मरणान्तिकम् ।
यो येन सम्वसेदेषान्तत्पापं सोऽपि तत्समं ॥३०६
संलापस्पर्शनादेव शय्याशनासनादिभि ।
सद्यदेवाऽऽचरेत् सर्वं व्रतं द्वादशवार्षिकम् ॥३०७

अकामतश्चरेदर्द्धं षण्मासात्पादमाचरेत्।
मासत्रये द्विवर्षं स्यान्मासमात्रे तु वत्सरम् ॥३०८
कामतो द्विगुणं तत्र चरेदब्दादिकं व्रतम्।
ऊर्द्ध्वन्तु वत्सरात्पूर्वं द्वैगुण्यात्क्रमतः क्रमात् ॥३०९
कामतो वत्सरादूर्ध्वं द्विगुणव्रतमाचरेत्।
ऊर्ध्वं द्विवर्षात्तस्यापि मरणान्तिकमुच्यते ॥३१०
यजनाध्यापनाद्दानात्पानाच्च सह भोजनात्।
सद्य एव पतत्यस्मिन् पतितेन सहाऽऽचरन् ॥३११
तत्राप्यकामतस्त्वर्धं कामतः पूर्णमाचरेत्।
षण्मासे वत्सरेऽप्यत्र द्विगुणं त्रिगुणं स्मृतम् ॥३१२
ऊर्ध्वं तु निष्कृतिर्न स्याद् भृग्वग्निपतनं विना।
द्वितीयस्य तृतीयस्य नेष्यते मरणान्तिकम् ॥३१३
अर्द्धं पादं समुद्दिष्टं कामतो द्विगुणं तथा।
ब्रह्मकूर्चोपवासेन चतुर्थस्य विनिष्कृतिः ॥३१४
पञ्चमस्य न दोषः स्यादिति धर्मविदो विदुः।
अन्येषामपि संसर्गात्प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ॥३१५
पतनीयेषु नारीणां मरणान्तिकमुच्यते।
अकामतश्चरेदर्द्धमेतत् पृथु यथोदितम् ॥३१६
व्यभिचारे तु सर्वत्र कामतो मरणाच्छुचिः।
अकामतश्चरेत्पूर्णं प्रातिलोम्यं गता सती ॥३१७
अर्द्धमेवाऽऽनुलोम्येषु तथैव भ्रूणहादिषु।
यतिश्च ब्रह्मचारी च गत्वा स्त्रियमकामतः ॥३१८

गुरुतल्पगमुद्दिष्टं पूर्णमर्थं समाचरेत्।
नामतो ब्रह्मचारी तु पूर्णमेवाऽऽचरेद् व्रतम् ॥३१६
यतेस्तु मरणाच्छुद्धिः शिश्नः स्यात् कृन्तनेन वा।
तयोस्तु रेतः स्खलने कृच्छ्रं चान्द्रायणं चरेत् ॥३२०
जप्त्वा सहस्रं गायत्र्या गृहस्थः शुद्धिमाप्नुयात्।
द्विसहस्रं वनस्थस्तु जपेद्रेतो निपातने ॥३२१
तत्रापि कामतस्तेषां द्विगुणत्रिगुणादिकम्।
परिव्राजनकामस्तु नयनोत्पाटनं तथा ॥३२२
एवं समाचरेद्धीमान् प्रायश्चित्तं मतन्द्रितः।
प्रायश्चित्तमकुर्वाणः पापेषु निरतः सदा ॥३२३
कल्पायुतशतं गत्वा नरकं प्रतिपद्यते।
धृत्वा गोचर्ममात्रन्तु समसेकं निरन्तरम् ॥३२४
पञ्चगव्यं पिबन् गोघ्नो गुरुगामी विशुध्यति।
गोमूत्रेणैव च स्नात्वा पीत्वा चाऽऽचम्य वारिभिः ॥३२५
विष्णोः सहस्रनामानि जपन्नित्यं समाहितः।
शयीत गोव्रजे रात्रौ गवां हितमनुस्मरन् ॥३२६
व्याघ्रादिभिर्गृहीतां गां पङ्के निपतितां तथा।
स चरेदथवा प्राणान् तदर्थं वै परित्यजेत् ॥३२७
तेनैव हि विशुद्धः स्यादसम्पूर्णव्रतोऽपि वा।
व्रतान्ते गोप्रदो भूत्वा ततः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥३२८
गोस्वामिने च गां दत्त्वा पश्चादेवं व्रतं चरेत्।
दद्यात् त्रिरात्रमुपोष्य वृषमेकं च गा दश ॥३२९

योऽश्मेच गृहदाहाद्यैर्बन्धनैर्वा हता यदि ।
मतिपूर्वेण गां हत्वा चरेत्त्रैवार्षिकं व्रतम् ॥३३०
द्विवर्षं पूर्ववद्वाऽपि चर्मणाऽऽर्द्रेण वाससा ।
कपिलां गर्भिणीं वाऽपि वृषं हत्वा च कामतः ॥३३१
व्रतं द्वादशवर्षाणि चरेद्ब्रह्मव्रतोदितम् ।
आचार्यदेवविप्राणां हत्वा च द्विगुणं चरेत् ॥३३२
होमधेनुं प्रसूताञ्च दाने च समलङ्कृताम् ।
उपभुक्तां वृषेणापि ताञ्च द्वादशवार्षिकम् ॥३३३
निष्पीडनं वाऽपि तेषु दोषेष्वल्पमतन्द्रितः ।
शरणागतबालस्त्रीघातुकैः सम्वसेन्न तु ॥३३४
चीर्णव्रतानपि चरन् कृतघ्नानपि सर्वदा ।
अग्निदाङ्गरदां चण्डीं भर्तृघ्नीं लोकघातिनीम् ॥३३५
हिंस्रयंस्तु विधानज्ञो हत्वा पापं न गच्छति ।
गुरुं वा बालवृद्धान्वा श्रोत्रियं वा बहुश्रुतम् ॥३३६
आततायिन मायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ।
नाऽऽततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ॥३३७
प्रख्यातदोषः कुर्वीत परित्यक्तं यथोदितम् ।
अनभिख्यातदोषस्तु रहस्यव्रतमाचरेत् ॥३३८
कण्ठमात्रजले स्थित्वा राममन्त्रं समाहितः ।
जपेद्वा दशसाहस्रं ब्रह्महा शुद्धिमाप्नुयात् ॥३३९
सुरापः स्वर्णहारी तु जपेदष्टाक्षरं तथा ।
लक्षं जप्त्वा कृष्णमन्त्रं मुच्यते गुरुतल्पगात् ॥३४०

उपोष्यान्तजले स्थित्वा वासुदेवमनुं शुभम्।
जपेद्द्वादशसाहस्रं गोघ्नः प्रयतमानसः ॥३४१
असंख्यानि च पापानि अनुक्तान्यपि यानि च।
चित्तस्थो भगवान् कृष्णः सर्वं हरति तत्क्षणात् ॥३४२
एकादश्युपवासस्य फलं प्राप्नोति मानवः।
आषाढादिचतुर्मासे कृते भुक्त्वा जितेन्द्रियः ॥३४३
दुग्धाब्धौ शेषपर्यङ्के शयानं कमलापतिम्।
ध्यात्वा समर्चयेन्नित्यं महद्भिर्मुच्यते ह्यघैः ॥३४४

इति रहस्यप्रायश्चित्तवर्णनम्।

---

अथ महापापादिप्रायश्चित्तप्रकरणवर्णनम्।

रजस्वलां सूतिकाञ्च चण्डालं पतितं तथा ॥३४५
पाषण्डिनं विकर्मस्थं शैवं स्पृष्ट्वाऽप्यकामतः।
गोमयेनानुलिप्ताङ्गः सवासा जलमाविशेत् ॥३४६
गायत्र्यष्टशतं जप्त्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति।
स्पृष्ट्वा तु कामतः स्नात्वा चरेत्सान्तपनं व्रतम् ॥३४७
श्वपचं पतितं स्पृष्ट्वा गोपालव्यजनाहतम्।
विड्वराहं शुनद्वाकं गर्दभं यूपमेव च ॥३४८
मद्यं मांसं तथैवोष्ट्रं विण्मूत्रं दशमेव च।
करवञ्जलफेनञ्च वृक्षनिर्यासमेव च ॥३४९

चण्डालं पतित मद्य सूतिकाञ्च रजस्वलाम् ।
उच्छिष्टेन तु संस्पृष्ट परात्त्रयमाचरेत् ॥३६०
उच्छिष्टेन चिरं काल मुषित्वा स्नानमाचरेत् ।
उच्छिष्टाशौचमरणे चरेदब्द द्विजात्तय ॥३६१
रजस्वला सूतिका वा पञ्चत्व यदि चेद् गता ।
पञ्चगव्यै स्नापयित्वा पावमान्यैर्द्विजोत्तमा ॥३६२
प्रत्यृच कलशै स्नाप्य सपवित्रैर्जलै शुभै ।
शुभ्रवस्त्रेण सम्वेष्ट्य दाहं कुर्याद्विधानत ॥३६३
चण्डालात् ब्राह्मणात्सर्पात् क्रव्याद्‌दादुदकादिभि ।
हतानामपि कुर्वीत पूर्ववद्‌द्विजपुङ्गव ॥३६४
तत्रापि कामत कुर्यात् षडब्दं तस्य बान्धवा. ।
विषाद्यैर्घनशस्त्राद्यैरात्मानं यदि घातयेत् ॥३६५
गोशत विप्रमुख्येभ्यो दद्यादेक वृष तथा ।
नारायणवलिं कृत्वा सर्वमन्यौर्ध्वदेहिकम् ॥३६६
रजस्वला तु या नारी स्पृश चान्यां रजस्वलाम् ।
चण्डाल पतितं वाऽपि शुनं गर्दभमेव च ॥३६७
तावत्तिष्ठेन्निराहारा चरेत्सान्तपनं व्रतम् ।
स्पृष्ट्वाऽप्यकामत स्नात्वा पञ्चगव्यै शुभैर्जलै ॥३६८
चातुर्वर्ण्यस्य गेहेषु चण्डाल पतितोऽपि वा ।
अन्तर्वत्नी भवेत्सा चेत्कथं स्यात्तत्र निष्कृति ॥३६९
तद्‌गृहन्तु परित्यक्त्वा दग्ध्वा वाऽन्यत्र संस्थित ।
सम्सर्गोक्तप्रकारेण प्रायश्चित्त समाचरेत् ॥३७०

पृथक् पृथक् प्रकुर्वीरन् सव गृहनिवासिनः ।
दाराः पुत्राश्च सुहृदः प्रायश्चित्तं यथोदितम् ॥३७१
सभर्तृकाणां नारीणां वपनन्तु विवर्जयेत् ।
सर्वान् केशान् समुद्धृत्य च्छेदयेदङ्गुलित्रयम् ॥३७२
केशानां रक्षणार्थाय द्विगुणं व्रतमाचरेत् ।
प्रायश्चित्ते तु सम्पूर्णे कृत्वा सान्तपनं व्रतम् ॥३७३
ब्रह्मकूर्चोपवासं वा विशुध्यन्ति तदेनसः ।
अर्वाक्सम्वत्सरार्धात्तु गृहदाहं न चोदितम् ॥३७४
यद्गृहे पातकोत्पत्ति स्तत्र यत्नेन दाहयेत् ।
त्यजेद्वा संनिकृष्टाच शुद्धिश्चैवाऽऽत्मनस्तत ॥३७५
सन्त्यन्धाश्चैव संसर्गात्तुल्यमेव नृणामघम् ।
तस्मात्संसर्गसम्बधान् पतितेषु विवर्जयेत् ॥३७६
चण्डालपतितादीनां तोयं यस्तु पिबेन्नर ।
पराकं कामतः कुर्याद् ब्रह्मकूर्चमकामतः ॥३७७
अभ्यासे तु षडब्दं स्याचान्द्रायणमकामतः ।
चण्डालानां तडागे वा नदीनां तीर्थ एव वा ॥३७८
स्नात्वा पीत्वा जलं विप्रः प्राजापत्यमकामतः ।
कामतस्तु पराकं वा चान्द्रायणमथाऽपि वा ॥३७९
अभ्यासे तु व्रतं पूर्णं षडब्दं स्यादकामत ।
सर्वेषां प्रतिलोमानां पीत्वा सन्तापनं चरेत् ॥३८०
चान्द्रायणं पराकं वा त्र्यब्दं वाऽपि यथाक्रमम् ।
भोजने गमनेऽप्येवं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥३८१

चाण्डालपतितादीना गृहेष्वन्नमपि द्विजः ।
भुक्त्वाऽब्दमाचरेत् कृच्छ्रं चान्द्रायणमकामतः ॥३८२
चण्डालयादिकायान्तु सुप्त्वा भुक्त्वाऽप्यकामतः ।
चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रं चान्द्रायणमथाऽपि वा ॥३८३
चण्डालवाटिकायान्तु मृतस्याब्दं विशोधनम् ।
स्नापनं पञ्चगव्यैश्च पावमान्यै शुभैर्जलैः ॥३८४
शूद्रान्नं सूतिकान्नं वा शुना स्पृष्टञ्च कामतः ।
भुक्त्वा चान्द्रायणं कृच्छ्रं पराकं वा समाचरेत् ॥३८५
जलं पीत्वा तयोर्विप्रः पञ्चगव्यं पिबेद् द्व्यहम् ।
चण्डालः पतितो वाऽपि यस्मिन् गेहे समा(विशेत)चरेत् ।
त्यक्त्वा मृण्मयभाण्डानि गोभिः संक्रामयेत् त्र्यम् ॥३८६
मासादूर्ध्वं दशाहन्तु द्विमासं पक्षमेव तु ।
षण्मासात्तु तथा मासं गवां वृन्दं निवेशयेत् ॥३८७
ऊर्ध्वन्तु दहनं प्रोक्तं लाङ्गलेन च दारणम् ।
महाकृच्छ्रं तथा कृच्छ्रं चान्द्रायणमथापि वा ॥३८८
अतिकृच्छ्रं पराकञ्च त्र्यब्दं वाऽपि समाचरेत् ।
षडब्दमूर्ध्वं षण्मासात्प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥३८९
वत्सरादूर्ध्वसम्पूर्णं व्रतमेवाऽऽचरेद् बुधः ।
अमेध्यशवचण्डालमद्यमांसादिदूषितात् ॥३९०
कूपादुद्धृत्य कलशैः सहस्रं रेचयेज्जलम् ।
निक्षिप्य पञ्चगव्यानि वारुणैरपि मन्त्रयेत् ॥३९१

तडागस्यापि शुध्यर्थं गोभिः संक्रामयेज्जलम् ।
धान्यन्तु क्षालनाच्छुद्धिर्वोढुल्यं प्रोक्षणादपि ॥३६२
रसानान्तु परित्याग श्चाण्डालादिप्रदूषणात् ।
प्रासाददेवहर्म्याणां चण्डालपतितादिषु ॥३६३
अन्तः प्रविष्टेषु तत्र शुद्धिः स्यात्केन कर्मणा ।
गोभिः संक्रमणं कृत्वा गोमूत्रेणैव लेपयेत ॥३६४
पुण्याहं वाचयित्वाऽथ तत्तोयैर्मन्त्रसंयुतैः ।
सम्प्रोक्ष्य सर्वतः पश्चाद्देवं समभिषेचयेत ॥३६५
पश्चामृते पश्चगव्यैः स्नापयित्वाऽथ वैष्णवः ।
प्रत्यूचं पावमान्यैश्च वैष्णवैश्चाभिषेचयेत् ॥३६६
अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा ।
चतुर्भिर्वैष्णवैर्मन्त्रैः स्नाप्य पुष्पाञ्जलिं तथा ॥३६७
श्रीसूक्तेन तत्र दिव्यैर्द्व्याश्रीराजनं ततः ।
अवैष्णवस्पर्शनेऽपि एवं कुर्वीत वैष्णवः ।
भिन्ने विम्बे तथा दग्धे परित्यक्तवैव तं गृहे ॥३६८
वैदेही वैष्णवीमिष्ट्वा पुनः स्थापनमाचरेत् ।
चोराद्यपहृते नष्टे वासुदेवीं यजेच्चरुम् ॥३६६
स्थानान्तरगते विम्बे पुनः स्थापनमाचरेत् ।
तोयाधिवासनं वेद्यामधिरोहणमेव च ॥४००
नयनोन्मीलनं दीक्षां वर्जयित्वाऽन्यमाचरेत् ।
पश्चगव्यैः स्नापयित्वा पश्चत्वक्पल्लवाम्बितैः ॥४०१

मङ्गलद्रव्यसंयुक्तैरद्भिः समभिषेचयेत् ।
सूक्तैश्च ब्राह्मण स्पत्यै रविगैर्वैष्णवीस्तथा ॥४०२
चतुर्भिर्वैष्णवैर्मन्त्रैः पृथगष्टोत्तरं शतम् ।
वैष्णव्या चैव गायत्र्या शङ्खेन स्नापयेद् बुधः ॥४०३
ध्रुवसूक्तमृचं स्मृत्वा जपन् संस्थापयेद्धरिम् ।
ततस्तन्मूर्तिमन्त्रेण मूलमन्त्रेण वा द्विजः ॥४०४
दद्यान् पुष्पसहस्राणि देवतां स मनुं स्मरन् ।
पश्चात् सावरणं विष्णोरर्चयित्वा विधानतः ॥४०५
इन्द्रसोमं सोमपतेरिति सूक्तमनुत्तमम् ।
जपन् भक्त्याऽथ देवेस्तु दद्यान्नीराजनं द्विजः ॥४०६
प्रदक्षिण नमस्कारं कृत्वा विप्रांस्तु भोजयेत् ।
अवैष्णवेन विप्रेण शूद्रेणैवार्चिते हरौ ॥४०७
सहस्रमभिषेकं च पुष्पाञ्जलिसहस्रकम् ।
महाभागवतो विप्रः कुर्यान्मन्त्रद्वयेन च ॥४०८
देवतोत्तरसम्पर्कं विना स्वाहृणं हरौ ।
अवैष्णवाना मन्त्राणा पक्वान्नस्य निवेदने ॥४०९
कृत्वा नारायणीमिष्टिं पुनः संस्कारमाचरेत् ।
देशान्तरगते बिम्बे चिरकालमनर्चिते ॥४१०
अधिवासादिकं सर्वं पूर्ववद्वैष्णवोत्तमः ।
विष्णोरुत्सवमध्ये तु विद्युत् स्तनितसम्भवे ॥४११
रथे बिम्बे ध्वजे भग्ने बिम्बे च पतिते भुवि ।
ग्रामदाहेऽप्यवर्षे च गुरावृत्विजि वै मृते ॥४१२

नालङ्कृतेषु विधिषु परिणीते जनार्दने ।
अवैदिकक्रियोपेते जपहोमादिवर्जिते ॥४१३
कुर्वीत महतीं शान्तिं वैष्णवीं वैष्णवोत्तमः ।
अग्निनाशे तु तन्मध्ये पुनरादानमाचरेत् ॥४१४
कुर्वीत वैनतेयेष्टिं वैष्वक्सेनीमथापि वा ।
श्वशूकरादिसम्पर्के पवित्रेष्टिं समाचरेत् ॥४१५
वैष्णवेष्टिं प्रकुर्वीत पाषण्डादिप्रदूषिते ।
अथास्य संप्लवे विष्णोर्यत्र यत्र च सङ्करम् ॥४१६
तत्र तत्र यजेदिष्टिं पावमानीं द्विजोत्तमः ।
श्वापचारे तथाऽन्यैर्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥४१७
अवैष्णवेन विप्रेण स्थापिते मधुसूदने ।
तद्राष्ट्रं वा भूपतिर्वा विनाशमुपयास्यति ॥४१८
कुर्वीत वासुदेवेष्टिं सर्वं पापं प्रशामयेत् ।
महाभागवतेनैव पुनः संस्कारमाचरेत् ॥४१९
सेनेशवैनतेयादि नित्यानाञ्च दिवौकसाम् ।
मुक्तानामपि पूजार्थं बिम्बानि स्थापयेद्यदि ॥४२०
स निवेश्य करात्रन्तु गव्यैः स्नाप्याऽथ देशिकः ।
सर्ववैष्णवसूक्तैश्च तद्गायत्र्या सहस्रकम् ॥४२१
शङ्ख(कुम्भे)नैवाभिषिच्याथ भगवत्पुरतो न्यसेत् ।
स्थण्डिलेऽग्निं प्रतिष्ठाप्य यजेच्च पुरतो हरेः ॥४२२
अस्य वामेति सूक्तेन पायसं मधुमिश्रितम् ।
अष्टोत्तरशतं पश्चादाज्यं मन्त्रचतुष्टयात् ॥४२३

सु(प)र्णताक्ष्यसूक्ताभ्यां पृषदाज्यं यजेत्ततः ।
तिलैर्व्याहृतिभिर्हुत्वा पश्चादष्टोत्तरं शतम् ॥४२४
वैष्णवं पार्षदञ्चैव होमशेषं समापयेत्।
अहमस्मीतिसूक्तेन पीठे संस्थापयेद्बुधः ॥४२५
प्रणवादि चतुर्थ्यन्तनामभिस्तत्प्रकाशकैः ।
आवाह्य पूजयित्वाऽथ दद्यात्पुष्पाञ्जलिं ततः ॥४२६
द्वादशार्णेन मनुना सहस्रमथवा शतम्।
सोमरुद्रेति सूक्तेन दीपैर्नीराजयेत्ततः ॥४२७
भोजयित्वा ततो विप्रान् गुरुं सम्यक् प्रपूजयेत्।
मत्स्यकूर्मादिमूर्तीनामेवं संस्थापनं चरेत् ॥४२८
तत्तत्प्रकाशकैर्मन्त्रैर्जपहोमादिकं चरेत्।
सहस्रनामभिर्दद्यात्पुष्पाणि सुरभीणि च ॥४२९
वापीकूपतडागानां तरुणां स्थापने तथा ।
वारुणीभिश्च सौम्यैश्च जपहोमादिकं चरेत् ॥४३०
तरूणां स्थापने गोपकृष्णं मातरमेव च ।
साम्यमेव तु मन्त्राभ्यां सहस्रं जुहुयाद् घृतम् ॥४३१
वैनतेयाङ्कितं स्तम्भं मध्ये संस्थापयेद्बुधः ।
अवैष्णवान्वये जातः कृत्वेष्टिं वैष्णवीं द्विजः ॥४३२
वैष्णवैः पञ्चसंस्कारैः संस्कृतो वैष्णवो भवेत् ।
देवतान्तरशेषस्य भोजने स्पर्शने तथा ॥४३३
अनर्चिते पद्मनाभे तथानर्पितभोजने ।
अवैष्णवानां विप्राणां पूजने वन्दने तथा ॥४३४

याजनेऽध्यापने दाने श्राद्धे चैपाञ्च भोजने।
अनर्चिते भागवते हरिवासरभोजने ॥४३५
प्रायश्चित्तं प्रकुर्व्वीत वैय्यूहो मिश्रिमुत्तमाम्।
पश्चाद्भागवतानाञ्च पिबेत् पादजलं शुभम् ॥४३६
एत समस्तपापाना प्रायश्चित्तं मनीषिभि.।
निर्णीतं भगवद्भक्तपादामृतनिषेवणम् ॥४३७
अङ्गीकृतं महाभागैर्महाभागवतैर्द्विजै.।
सर्वोपचारैर्मुच्येत परां धृतिञ्च विन्दति ॥४३८
प्रयश्चित्त तथा चीर्णे महाभागवताद् द्विजात्।
वैष्णवै. पञ्चसंस्कारै. संस्कृतो हरिमर्चयेत् ॥४३६

इति वृद्धहारीतस्मृतौ महापापादिप्रायश्चित्तप्रकरणं नाम षष्ठोऽध्याय.।

---

॥ सप्तमोऽध्यायः ॥

अथ नानाविधोत्सवविधानवर्णनम्।

अम्बरीष उवाच।

भगवन्! भवता प्रोक्ता विष्णोराराधनक्रिया।
प्रायश्चित्तमकृत्यानामसता दण्डमेव च ॥१
अधुना श्रोतुमिच्छामि शाश्वती वृत्तिमुत्तमाम्।
इष्टीनाञ्च विधानानि विशेषाश्चोत्सवान् हरे ॥२

हारीत उवाच।

शृणु राजन्! प्रवक्ष्यामि सर्वं निरवशेषतः।
इष्टीनाञ्च विधानञ्च हरेरुत्सवकर्मणाम् ॥३
नारायणी वासुदेवी गारुडी वैष्णवी तथा।
वैय्यूही वैभवी पाद्मी (ग्नी) पवित्री पावमानिका ॥४
सौदर्शिनी च सेनेशी आनन्ती च शुभाह्वया।
महाभागवतीत्येताः सर्वपापहराः शुभाः ॥५
प्रायश्चित्तार्थमपि वा भोगार्थं वा समाचरेत्।
पूर्वं विघनसे विष्णुः प्रोक्तवान् विघनसा भृगोः ॥६
प्रोक्तं ममेरितं तेन भृगुणा दिव्यमुत्तमम्।
गुह्यं तत्सर्ववेदेषु निश्चितं ते ब्रवीम्यहम् ॥७
अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुरीश्वरः।
तदन्तरेण वै सर्वा देवता इति ह श्रुतिः ॥८
निवसन्ति पुरोडाशमग्नौ वैष्णवमव्ययम्।
देवाश्च ऋषयः सर्वे योगिनः सनकादयः ॥९
अग्नौ यद्धूयते हव्यं विष्णवे परमात्मने।
तदग्नौ वैष्णवं प्रोक्तं सर्वदेवोपजीवनम् ॥१०
एतदेवहि कुर्वन्ति सदा नित्या अपीश्वराः।
विमुक्ता अपि भोगार्थमेतमेव मुमुक्षवः ॥११
एतदेव परं प्रीतिः सश्रियः परमा मनः।
एतद्विना न तुष्येत भगवान् पुरुषोत्तम ॥१२

यज्ञार्थमेव संसृष्टमात्मवर्गं चतुर्विधम् ।
यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्तु सदेर्षा वर्मबन्धनम् ॥१३
वह्निर्जिह्वा भगवतो वेदा अङ्गाः सदाऽध्वरे ।
अस्थीनि समिधः प्रोक्ता रोमा दर्भाः प्रकीर्तिताः ॥१४
स्वाहाकारः शिरः प्रोक्तं प्राणा एव हवींषि च ।
सर्ववेदक्रिया भोगा मन्त्राः पत्न्यः प्रकीर्तिताः ॥१५
एवं यज्ञवपुर्विष्णुर्विदित्वैनं हुताशने ।
जुहुयाद्वै पुरोडाशं अज्ञात्वैवम्पतेदथ ॥१६
यज्ञो यज्ञपति यज्वा यज्ञाङ्गो यज्ञवाहनः ।
यज्ञभृद्यज्ञकृद्यज्ञी यज्ञभुग्यज्ञसाधनः ॥१७
यज्ञान्तकृद्यज्ञगुह्यमन्नमन्नाद एव च ।
तस्मादेनं विदित्वैवं यज्ञं यज्ञेन पूजयेत् ॥१८
कोऽयं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कथं स्यात्परतः शुचिः ।
द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथा परे ॥१९
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च सदा कुर्वन्ति योगिनः ॥२०
हरेर्भोगतया कुर्यान्न साधनतया क्वचित् ।
साधनं भगवान् विष्णुः साध्याः स्युर्वैदिकाः क्रियाः ॥२१
शेषभूतश्च जीवस्य तद्दास्यैकफलाः क्रियाः ।
श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म तद्दास्यं परिकीर्तितम् ॥२२
नैसर्गिकं तथा कुर्यात्तद्दास्यकं निवीर्तितम् ।
वैदिकेनैव मार्गेण पूजयेत्परमेश्वरम् ॥२३

अन्यथा नरकं याति कल्पकोटिशतत्रयम् ।
तस्माच्छ्रुत्युक्तमार्गेण यजेद्विष्णुं हि वैष्णवः ॥२४
अर्चायामर्चयेत्पुष्पैरग्नौ च जुहुयाद्धविः ।
ध्यायेत्तु मनसा वाचा जपेन्मन्त्रान् सुवैदिकान् ॥२५
एवं विदित्वा सत्कर्म भोगार्थं परमात्मनः ।
कुर्वीत परमैकान्ती पत्युः पत्नी यथा प्रिया ॥२६
इदं प्रसङ्गेणोक्तं स्याद्विधानं तद् ब्रवीमि ते ।
पूर्वपक्षदशम्यान्तु स्नात्वा सम्पूज्य केशवम् ॥२७
स्वस्तिवाचनपूर्वेण कुर्यादङ्कुरार्पणम् ।
हरिं नारायणेऽभ्यर्थमिति सङ्कल्प्य पूजयेत् ॥२८
विष्णुप्रकाशकै राज्यं भूसूक्ताभ्यां शतं ततः ।
मन्त्रेण चैव वैकुण्ठं पार्षदं हुत्वा समापयेत् ॥२९
अयुतं तु जपेन्मन्त्रं होमञ्चाष्टोत्तरं शतम् ।
शेषं निवेद्य देवाय भुञ्जीयात् स्वयमेव च ॥३०
ततो मौनी जपेन्मन्त्रं शयीत पुरतो हरेः ।
प्रभाते च नदीं गत्वा स्नात्वा सन्तर्प्य देवताः ॥३१
सन्ध्यामन्वास्य चाऽऽगत्य स्वगेहे समलङ्कृते ।
वेद्यां संपूज्य देवेशं मन्त्ररत्नविधानतः ॥३२
सप्तावरणसंयुक्तं महिषीभिः समन्वितम् ।
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्धूपदीपनिवेदनैः ॥३३
अर्चयित्वा विधानेन कुण्डं दक्षिणभागतः ।
विस्तारायामनिम्नञ्च हस्तमात्रन्त्रिमेखलम् ॥३४

तत्र वह्निं प्रतिष्ठाप्य इध्माधानान्तमाचरेत् ।
ओङ्कारः स्यात्परं ब्रह्म सर्वमन्त्रेषु नायकः ॥३५
त्र्यक्षरः तत्त्रयाणाञ्च वेदानां बीजमुच्यते ।
अजायन्त ऋचः पूर्वमकाराद्विष्णुवाचकात् ॥३६
श्रीवाचकादुकारात्तु यजूंषि तदनन्तरम् ।
अजायन्त तयोः सङ्घात्सामान्यन्यान्यनेकशः ॥३७
तयोर्दासो मकारेण प्रोच्यते सर्वदेहिनः ।
कारणं सर्ववर्णानामकारः प्रोच्यते बुधैः ॥३८
अकारो वै च सर्वा वाक् सैषा स्पर्शोष्मभिः सदा ।
बह्वी सा व्यज्यमानाऽपि नानारूपा इति श्रुतिः ॥३९
अकारं एव लुप्यन्ति सर्वमन्त्राक्षराणि हि ।
अकारो वासुदेवः स्यात्तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥४०
मन्त्रो हि बीजं सर्वत्र क्रिया तच्छक्तिरुच्यते ।
मन्त्रतन्त्रसमायुक्तो यज्ञ इत्यभिधीयते ॥४१
मन्त्रः पुमान् क्रिया स्त्री च तदुक्तं मिथुनं स्मृतम् ।
तस्माद्यजूंषि तन्त्राणि ऋचो मन्त्राणि चाध्वरे ॥४२
मन्त्रक्रियाख्यमेतत्तु मिथुनं यज्ञ उच्यते ।
मन्त्रतन्त्रांशमेते ऋग्यजुषी यज्ञकर्मणि ॥४३
तद्गीतं तु भवेत्साम तस्मात्तद्वैष्णवं परम् ।
ऋग्भिरेव तमुद्दिश्य पुरोडाशं यजेद् बुधः ॥४४
ताभिरेव तु पुष्पाणि दद्यात्तस्मै तु शार्ङ्गिणे ।
इन्द्राग्निवरुणादीनि नामान्युक्तानि यत्र [illegible] ।
ज्ञेयानि विष्णोस्तान्यत्र नान्येषां स्युः कथञ्चन ॥४५

अकारे रुद्रइत्यग्निमिन्द्रत्व वर ईश्वरे ।
आत्मना प्रसवे सूय मौम्यत्वात्साम इत्यत ॥४६
वायु स्याज्जीवत प्राणाद्वरुण सर्वजीवन' ।
मित्र स्यात्सर्वमित्रत्वादात्मैकत्वाद् बृहस्पति ॥४७
रोगनाशो भवेद्रुद्रो यम स्यात्तु नियामक ।
हिरण्यत्वमिति प्रोक्त नेति प्राप्यत्वमुच्यते ॥४८
नित्यसत्त्वाद्धिरण्य स्यात्तद्गर्भत्वाद्धिरण्मय ।
हिरण्यगर्भ इत्युक्त सत्वगर्भो जनार्दन ॥४६
हिरण्मय स भूतेभ्यो ददृशे इति वै श्रुति ।
सर्वान् स त्राति सविता पिता च पितृतत्पिता ॥५०
स्वर्भूर्भुव इति प्रोक्तो वेदवेद्येति चोच्यते ।
यस्य छन्दांसि चाङ्गानि स सुपर्ण मिहोच्यते ॥५१
अत्राङ्ग वर्णमित्युक्तं छन्दोमयमुदाहृतम ।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पङ्क्तिरेव च ॥५२
त्रिष्टुप् च जगती चैव छन्दास्येतान्यनुक्रमात् ।
एतानि यस्य चाङ्गानि स सुपर्ण इहोच्यते ॥५३
यस्माज्जातास्त्रयो वेदा जातवेदा स उच्यते ।
पवमान पावयित्वा शिव स्यात्सवदा शुभात् ॥५४
सुजनं सेव्यते यस्तु अतो वै शम्भुरित्यज ।
सर्व्वान्यस्यैव नामानि वैदिकानि विवेचनात् ॥५५
पुनामानि यानि विष्णो स्त्री नामानि श्रियस्तथा ।
परस्य वैदिका शब्दा समावृत्त्येतरेष्वपि ॥५६

व्यवह्रियन्ते सततं लोकवेदानुसारतः ।
न तु नारायणादीनि नामान्यन्यस्य कर्हिचित् ॥५७
एतन्नाम्ना गतिर्विष्णुरेक एव प्रचक्षते ।
शब्दब्रह्मत्रयी सर्वं वैष्णवं तदिहोच्यते ॥५८
देवतान्तरशङ्का तु न कर्तव्या हि वैदिकैः ।
यपदक्तं यद्वेदेन तदत्यन्तप्रियं हरेः ॥५६
स्वाहास्वधाभ्यां नमसा हुतं तद्वैष्णवं स्मृतम् ।
समिदाज्यै र्या आहुतीर्यं वेदेनैव जुह्वति ।
यो मनसा सवर इत्यृचा प्रोक्त सदाऽध्वरे ॥६०
वेदेनैव हरिं तस्माद्यजेत द्विजसत्तमः ।
प्रसङ्गादेव युक्तं स्याद्विधानं तद् ब्रवीमि ते ॥६१
ऋग्वेदसंहितायान्तु मण्डलानि दश क्रमात् ।
एकैकमिष्ट्या होतव्यं चरुणा पायसेन वा ॥६२
घृतेन वा तिलै र्वाऽपि विल्वपत्रैरथापि वा ।
अग्निमीळ इति पूर्वं मण्डलं प्रत्यृचं यजेत् ॥६३
पुष्पाणि च तथा दद्यात् सुगन्धीनि जनार्दने ।
विष्णुसूक्तैर्हविर्हुत्वा चतुर्मन्त्रैः शतं यजेत् ॥६४
वैष्णवान् भोजयेन्नित्यमग्निश्चापि सुसंग्रहेत् ।
उपोषितो दीक्षितश्च यावदिष्टिः समाप्यते ॥६५
अन्ते चावभृथेष्टिश्च पुष्पयागश्च पूर्ववत् ।
आचार्यं ब्राह्मणांश्चापि दक्षिणाभिः प्रपूजयेत् ॥६६

इमान्नारायणेष्टिञ्च सकृद्वाऽपि यजेत्तु यः।
अनधीतवेदश्चेष्टिमयुतं मूलमन्त्रतः ॥६७
होमं पुष्पाञ्जलिं वाऽपि तथैवायुतमाचरेत्।
पूजयित्वा ततो विप्रान्निष्टयाः सम्यक्फलो भवेत्।
अथाप्यपौरुषं सूक्तमष्टोत्तरशतं चरुम्।
हुत्वा चतुर्भिर्मन्त्रैश्च लभेदिष्टिं न संशयः ॥६८

अथ वासुदेवेष्टिरुच्यते।

एकादश्यां कृष्णपक्षे समुपोष्य जनार्दनम्।
समर्चयेद्विधानेन रात्रौ जागरणान्वितः ॥७०
द्वादश्यां प्रातरुत्थाय स्नायान्नद्यां तिलैः सह।
द्वादशार्णेन मनुना सिञ्चेदष्टोत्तरं शतम् ॥७१
अभिमन्त्र्य जलं पश्चात्तुलसीमिश्रितं पिबेत्।
सर्वकर्मस्वभिहित एतदेवाघमर्षणः ॥७२
तत्तत्कर्मणि तन्मन्त्रो यो जपेदघमर्षणे।
स्नात्वा सन्तर्प्य देवर्षीन् कृतकृत्यः समाहितः ॥७३
गृहं गत्वाऽर्चयेद्देवं वासुदेवं सनातनम्।
द्वादशार्णविधानेन कस्तूरीचन्दनादिभिः ॥७४
जातिकेतकबुन्दाद्यैः सुकृष्णतुलसीदलैः।
सुधाब्धौ शेषपर्यङ्के समासीनं श्रिया सह ॥७५
इन्दीवरदलश्यामं चक्रशङ्खगदाधरम्।
सर्वाभरणसम्पन्नं सदायौवनमच्युतम् ॥७६

अनन्तं विहगाधीशं शौनकाद्यैरुपासितम् ।
त्रिदशेन्द्रैर्विमानस्थैर्ब्रह्मरुद्रादिभि स्तथा ॥७७
स्तूयमानं हरिं ध्यात्वा अर्चयेत्प्रयतात्मवान् ।
सर्वमावरणे पश्चादर्चयेत् कुसुमादिभिः ॥७८
प्रथमं महिषीसङ्घं लक्ष्मीभूम्यौ सनीलया ।
अनन्तरञ्च गरुडधर्मसेनादिभि स्तथा ॥७६
ऐश्वर्यज्ञानवैराग्याः पूजनीया यथाक्रमम् ।
सनन्दनश्च सनकः सनत्कुमार सनातनः ॥८०
औडुश्च सोमकपिलः पञ्चमो नारद स्तथा ।
भृगुर्विधनसोऽत्रिश्च मरीचिः कश्यपोऽङ्गिराः ॥८१
पुलहः स्वायम्भुवो दाल्भ्यो वशिष्ठाद्यास्ततः क्रमात् ।
वशिष्ठो वामदेवश्च हारीतश्च पराशरः ॥८२
व्यास शुकश्च प्रह्लादः शौनको जनक स्तथा ।
मार्कण्डेयो ध्रुवश्चैव पुण्डरीकश्च मारुतः ॥८३
रुक्माङ्गदः शिवो ब्रह्मा पूजनीया यथाक्रमम् ।
तथा लोकेश्वराः पूज्याः शङ्खचक्रादिहेतयः ॥८४
वेदाश्च साङ्गाः स्मृतयः पुराणं धर्मसंहिताः ।
राशयो ग्रहनक्षत्राः पूजनीया समं ततः ॥८५
एवं सम्पूज्य देवेशं मन्त्याधानादिपूर्वकम् ।
द्वितीयं मण्डलमृचा जुहुयात्सघृतं चरुम् ॥८६
ध्यात्वा वह्नौ वासुदेवं दद्यात्पुष्पाणि तत्र तु ।
वैष्णवाश्च यजेत्तत्रावभृथं पुष्पयागकम् ॥८७

ब्राह्मणान् भोजयेदन्ते गुरुञ्चापि प्रपूजयेत् ।
इमाञ्च वासुदेवेष्टिं यः कुर्याद्वैष्णवोत्तमः ॥८८
कुलकोटिं समुद्धृत्य स गच्छेत्परमं पदम् ।
अथवा वासुदेवस्य मन्त्रेणैव द्विजोत्तमः ॥८९
जुहुयादयुतं वह्नौ वैष्णवं प्रत्यृचं तथा ।
पुष्पाणि दत्त्वा देवेशे सम्यगिष्ट्वा लभेत्फलम् ॥९०
अथ वक्ष्यामि राजर्षे ! वैष्णवेष्ट्या विधिं सत. ।
श्रवणर्क्षे तु पूर्वाह्णे पूर्ववच्च समारभेत् ॥९१
उपोष्य पूर्वदिवसे पूजयेज्जागरे हरिम् ।
प्रभाते पूर्ववत् स्नात्वा तर्पयेज्जगतां पतिम् ॥९२
पञ्चक्षरविधानेन परव्योम्नि स्थितं हरिम् ।
पङ्कजके हेमविम्बाद्यैर्योगपीठसुसंस्थितम् ॥९३
चतुर्भुजं सुन्दराङ्गं सर्वाभरणभूषितम् ।
चक्रशङ्खगदाशार्ङ्गान् बिभ्राणं दोर्भिरायतैः ॥९४
वामाङ्कस्थश्रिया सार्द्धं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।
नैवेद्यैश्च फलैर्भक्ष्यैर्दिव्यैर्भोज्यैः सुपानकैः ॥९५
अर्चयेद्देवदेवेशं सर्वाभरण संयुतम् ।
श्रीर्लक्ष्मी. कमला पद्मा सीता सत्या च रुक्मिणी ॥९६
सावित्री परित पूज्या ततस्तु ते बलादय· ।
अनन्ततार्क्ष्यदेवेशासत्यधर्मदमा. शमा. ॥९७
बुद्धिश्च पूजनीयास्ते दिक्षु सर्वास्वनुक्रमात् ।
मतो लोकेश्वराः पूज्या स्ततश्चक्र दिहेतयः ॥९८

महाभागवताः पूजया होमकर्म समाचरेत् ।
चतुर्भिर्वैष्णवैः सूक्तैः प्रत्यृचं जुहुयाच्चरुम् ॥९९
व्यापका मन्त्ररत्नश्च चतुर्मन्त्रा उदाहृताः ।
तैरष्टयष्टोत्तरशतं पृथक् पृथगतो यजेत् ॥१००
तृतीयमण्डलं पश्चाज्जुहुयात्प्रत्यृचं ततः ।
तथा पुष्पैश्च सम्पूज्य कुर्यादवभृथं ततः ॥१०१
समाप्य पुण्ययोगेन वैष्णवान् भोजयेत्ततः ।
एवं कर्तुमशक्तश्चेद्वैष्णवो वैष्णवोत्तमः ॥१०२
वैष्णव्या चैव गायत्र्या पुष्पाञ्जल्ययुतं चरेत् ।
त्रिसहस्रं चरुं हुत्वा वैष्णवेष्ट्याः फलं लभेत् ॥१०३
इमां तु वैष्णवी मिष्टिं यः कुर्याद्वैष्णवोत्तमः ।
त्रिकोटिकुलमुद्धृत्य याति विष्णोः परं पदम् ॥१०४
प्रायश्चित्त मिदं कुर्याद् वृत्तिभङ्गेषु वैष्णवः ।
शान्त्यर्थं देवकार्येषु पापेषु च महत्स्वपि ॥१०५

अथ वैयूही इष्टिरुच्यते ।

शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां सङ्क्रान्तौ ग्रहणेऽपि वा ।
उपोष्य विधिवद्विष्णुं पूजयित्वा विधानतः ॥१०६
अभ्यर्चयेद् गन्धपुष्पैः केशवादीन् पृथक् पृथक् ।
सङ्कर्षणादीनपि च पूजयेत्प्रयतात्मवान् ॥१०७
तत्तन्मूर्तिं पृथक् ध्यात्वा पृथगेव समर्चयेत् ।
केशवस्तु सुवर्णाभः श्यामो नारायणोऽव्ययः ॥१०८

माधवः स्यादुत्पलाभो गोविन्दः शशिसन्निभः।
गौरवर्ण स्तथा विष्णु शोणो मधुजिदव्ययः ॥१०६
त्रिविक्रमोऽग्निसङ्काशो वामनः स्फटिकप्रभः।
श्रीधरस्तु हरिद्राभो हृषीकेशो शुभ न्यथा ॥११०
पद्मनाभो घनश्यामो हैमो दामोदरः प्रभु।
सङ्कर्षणः मुक्ताभो वासुदेवो घनद्युतिः ॥१११
प्रद्युम्नो रक्तवर्णः स्यादनिरुद्धो यथोत्पलम्।
अधोक्षजः शाद्वलाभो रक्ताङ्गः पुरुषोत्तम. ॥११२
नृसिंहो मणिवर्णः स्यादच्युतोऽर्कसमप्रभ।
जनार्दन कुन्दवर्ण उपेन्द्रो विद्रुमद्युति ॥११३
हरिर्वै सूर्यसङ्काश. कृष्णोऽभिन्नाञ्जनद्युतिः।
आयुधानि ब्रुवे येषां दक्षिणाधः कराद्दितः ॥११४
पद्मं शङ्खं गदाचक्रं गदां दधाति केशवः।
शङ्खं पद्मं गदाचक्रं धत्ते नारायणोऽव्यय ॥११५
माधवस्तु गदां चक्रं शङ्खं पद्मं बिभर्त्ति च।
चक्रं गदां तथा पद्मं शङ्खं गोविन्द एव च ॥११६
गदा पद्मं गदाशङ्खं चक्रं विष्णुर्बिभर्त्ति हि।
चक्रं शङ्खं तथा पद्मं गदा च मधुसूदन. ॥११७
पद्मं गदां तथा चक्रं शङ्खं स्व त्रिविक्रम।
शङ्खं चक्रं गदापद्मं वामनो बिभृयात्तथा ॥११८
पद्मं चक्रं गदाशङ्खं श्रीधर श्रीपतिर्दधत्।
गदां चक्रं हृषीकेशः पद्मं शङ्खं बिभर्त्ति हि ॥११९

पद्मनाभस्तथा शङ्खं पद्मं चक्रं गदां धरेत्।
पद्मं शङ्खं गदा चक्रं धत्ते दामोदरस्तथा ॥१२०
सङ्कर्षणो गदा शङ्खं पद्मं चक्रं दधाति हि।
वासुदेवो गदां शङ्खं चक्रं पद्मं बिभर्त्ति हि ॥१२१
चक्रं शङ्खं गदा पद्मं प्रद्युम्नो बिभृयात्तथा।
अनिरुद्धस्तथा चक्रं गदा शङ्खं च पङ्कजम् ॥१२२
चक्रं पद्मं तथा शङ्खं गदा च पुरुषोत्तम ।
पद्मं गदां तथा शङ्खं चक्रं चाधोक्षजो हरिः ॥१२३
चक्रं पद्मं गदां शङ्खं नरसिंहो बिभर्त्ति हि।
अच्युतश्च गदां पद्मं चक्रं शङ्खं बिभर्त्ति हि ॥१२४
जनार्दन स्तथा पद्मं शङ्खं चक्रं गदां धरेत्।
उपेन्द्रस्तु तथा शङ्खं गदां चक्रं च पङ्कजम् ॥१२५
हरिस्तु शङ्खं चक्रं च पद्मं चैव गदां धरेत्।
शङ्खं गदां पङ्कजं च चक्रं कृष्णो बिभर्त्ति हि ॥१२६
एवं चतुर्विंशतिस्तु मूर्त्ती र्ध्यात्वा समर्चयेत्।
तत्तद्बिम्बेषु वा राजन्! शालग्रामशिलासु वा ॥१२७
गन्धैः पुष्पैश्च ताम्बूलैर्धूपैर्दीपैर्निवेदनैः।
फलैश्च भक्ष्यभोज्यैश्च पानीयैः शर्करान्वितैः ॥१२८
नामभिस्तश्चतुर्थ्यन्तैर्मूलमन्त्रेण वा यजेत्।
देवानावरणीयांश्च पूजयेत्परितः क्रमात् ॥१२९
यं हेदयाद(नह्री त्वने)तिसूक्तेन कुर्यान्नीराजनं शुभम्।
पुरतोऽग्निं प्रतिष्ठाप्य स्वगृह्योक्तविधानतः।
मण्डलेन चतुर्थेन प्र यचं जुहुयाचरम् ॥१३०

पुण्यं सम्पूरयेद्भक्त्या कुर्यादवभृथं नरः ।
इमां वैयूहिकीमिष्टिं सम्यक् प्राहुर्महर्षयः ॥१३१
प्रायश्चित्तमिदं प्रोक्तं पातकेषु महत्स्वपि ।
अनघस्त्वपि च विप्राणां शान्त्यर्थं वा समाचरेत् ॥१३२
प्रायश्चित्तं विशिष्टं स्यादेवं प्रत्यूचकर्मसु ।
अनघोऽपि कथं कुर्याद्वैयूहीं वैष्णवीं द्विजः ॥१३३
प्रत्येकं शतमष्टौ च मन्त्रैस्तेषां यजेद्बुधः ।
सर्वत्रावभृथेष्टिश्च पुण्ययागश्च वैष्णव. ॥१३४
द्वयेन मूलमन्त्रेण कुर्वीत सुसमाहित ।
वैष्णवान् भोजयेद्भक्त्या कर्मान्ते सत्वसिद्धये ॥१३५
चतुर्विंशतिसंख्यान्वै महाभागवतान् द्विजान् ।
एकं वा भोजयेद्विप्रं महाभागवतोत्तमम् ।
सर्वं सम्पूर्णतामेति तस्मिन् संपूजिते द्विजे ॥१३६
यः करोति शुभामिष्टिं वैयूहीं वैष्णवोत्तमः ।
अनन्तस्यानुतापाच्च विशिष्टोऽन्यस्तमो भवेत् ॥१३७
वैभवीमथ वक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम् ।
पावनीं सर्वलोकानां सर्वकामप्रदां शुभाम् ॥१३८
भगवज्जन्मदिवसे वारे सूर्यसुतस्य वा ।
स्वजन्मर्क्षेऽपि वा कुर्याद्वैभवीं मङ्गलाह्वयाम् ॥१३९
पूर्वेद्युरभ्युदयं कुर्यादङ्कुरार्पणपूर्वकम् ।
उपोष्य पूजयेद्विष्णुं मन्त्रा च जं समाचरेत् ॥१४०

स्नात्वा परेऽहि विधिना सन्तर्प्य पितृदेवताः ।
विशिष्टैर्ब्राह्मणैः सार्द्धमर्चयित्वा जनार्दनम् ॥१४१
मत्स्यं कूर्मं च वाराहं नारसिंहं च वामनम् ।
श्रीरामं बलभद्रञ्च कृष्णं कल्किनमव्ययम् ॥१४२
हयग्रीवं जगद्योनिं पूजयेद्वैष्णवोत्तमः ।
नार्चयेद्भार्गवं बुद्धं सर्वत्रापि च कर्मसु ॥१४३
कुशग्रन्थिषु बिम्बेषु शालग्रामशिलासु वा ।
अर्चयेद्गन्धपुष्पाद्यैः प्रागुदक्प्रवणेन च ॥१४४
पृथक् पृथक् च नैवेद्यं विविधं वै समर्पयेत् ।
मोदकान् पृथुकान् सक्तूनपूपान् पायसांस्तथा ॥१४५
हविष्यमन्नमुद्गान्न मण्डकान् मधुसंयुतान् ।
दध्यन्नञ्च गुडान्नञ्च भक्त्या तेभ्यो निवेदयेत् ॥१४६
कर्पूरसंयुतं दिव्यं ताम्बूलञ्च निवेदयेत् ।
इमा विश्वेतिसूक्तेन दद्यान्नीराजनं तथा ॥१४७
सहस्रनामभिः स्तुत्वा भक्त्या च प्रणमेद्बुधः ।
इध्माधानादिपर्यन्तं कृत्वा होमं समाचरेत् ॥१४८
सयत्तु देवगवैः सूक्तैर्हुत्वा पूर्वं शुभं हविः ।
पञ्चमं मण्डलं पश्चात्सम्पूर्णं जुहुयाद्द्विजः ॥१४९
इमान्तु वैभवीमिष्टिं कुर्याद्विष्णुपरायणः ।
अकृत्वा वैभवीमन्त्रं योऽध्यापयति देशिकः ॥१५०
रौरवं नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम् ।
होमं विना स शूद्राणां कुर्यात् सर्वमशेषतः ॥१५१

मन्त्रैर्वा जुहुयादाज्यं तत्तन्मूर्तिप्रकाशकैः ।
पूजयित्वा द्विजवरान् पश्चान्मन्त्रं प्रदापयेत् ॥१५२
अशक्तो यस्तु वेदेन कर्तुमिष्टिं द्विजोत्तम ।
तत्तन्मूर्तिमयैर्मन्त्रैः पृथगष्टोत्तरं शतम् ॥१५३
हुत्वा चरुं घृतयुतं सम्यगिष्ट्या फलं लभेत् ।
वैष्णवश्चाच्युतस्यापि कारयेदिष्टिमुत्तमाम् ॥१५४
उद्दिश्य वैष्णवान् स्वस्वपितॄनपि च वैष्णवः ।
यः कुर्याद्वैष्णवीमिष्टिं भक्त्या परमया युतः ॥१५५
वैष्णवस्य कुलं सर्वं लभेत स न संशयः ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि आनन्तीमयनाशनीम् ॥१५६
पौर्णमास्यां प्रकुर्वीत पूर्वोक्तविधिना नृप ! ।
आदानं पूर्ववत्कृत्वा अङ्कुरार्पणपूर्वकम् ॥१५७
उपोष्याभ्यर्चयेद्देवमनन्तं पुरुषोत्तमम् ।
सहस्रशीर्षं विश्वेशं सहस्रकरलोचनम् ॥१५८
सहस्र(किरणे)चरणं श्रीशं सदैवाश्रितवत्सलम् ।
पौरुषेण विधानेन पूजयेत् पुरुषोत्तमम् ॥१५९
गन्धपुष्पैश्च धूपैश्च दीपैश्चापि निवेदनैः ।
पूजयित्वा जगन्नाथं पश्चादावरणं यजेत् ॥१६०
पार्श्वयोश्च श्रियं भूमिं नीलाञ्च शुभलोचनाम् ।
हिरण्यवर्णा हरिणी जातवेदा हिरण्मयी ॥१६१
चन्द्रा सूर्या च दुर्धर्षा गन्धद्वारा महेश्वरी ।
नित्यपुष्टा सहस्राक्षी महालक्ष्मी सनातनी ॥१६२

पूजनीया समस्ताश्च गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।
संकर्षणस्तथाऽनन्तः शेषो भूधर एव च ॥१६३
लक्ष्मणो नागराजश्च बलभद्रो हलायुधः ।
तच्छक्तयः पूजनीया प्रागादिषु यथाक्रमम् ॥१६४
रेवती वारुणी कान्तिरैश्वर्या च इला तथा ।
भद्रा सुमङ्गला गौरी शक्तयः परिकीर्तिताः ॥१६५
अष्टान् लोकेश्वरान् पूज्य पश्चाद्धोमं समाचरेत् ।
पश्चात्तु मण्डलं पद्मं प्रत्यृचं जुहुयाच्चरुम् ॥१६६
पुष्पाणि च तथा दत्वा कुर्य्यादवभृथादिकम् ।
अशक्तश्चेन्नृसूक्तेन शतमष्टोत्तरं चरुम् ॥१६७
इष्ट्वैवेष्ट्या फलं सम्यगाप्नोत्येव न संशयः ।
आनन्तीयामिमामिष्टिं वैकुण्ठपदमाप्नुयात् १६८
न दास्यमीशस्य भवेद्यस्य दास्यं नृणामसत् ।
तत्र कुर्यादिमामिष्टिं दास्यैकफलसिद्धये ॥१६९
अधुना वैनतेयेष्टिं वक्ष्यामि नृपसत्तम । ।
पञ्चम्यां भानुवारे वा कस्मिंश्चिच्छुभवासरे ॥१७०
उपोष्य पूर्ववत्सर्वं कुर्य्यादभ्युदयादिकम् ।
स्नात्वाऽर्चयित्वा देवेशं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥१७१
लक्ष्म्या सह समासीनं वैकुण्ठभवने शुभे ।
सर्वं मन्त्रमये दिव्ये वाङ्मये परमासने ॥१७२
मन्त्राक्षरै रक्षरैश्च साङ्गैर्वेदैः समन्वितः ।
तारेण सह सावित्र्या सङ्कीर्णे शुभवर्चसि ॥१७३

ईश्वर्या च समासीनं सहस्रार्कसमद्युतिम् ।
चतुर्भुजमुदाराङ्गं कन्दर्पशतसन्निभम् ।
युवानं पद्मपत्राक्षं चक्रशङ्खगदाङ्किनम् ॥१७४
वैष्णव्या चैव गायत्र्या पूजयेद्धरिमव्ययम् ।
श्रियं देवीं नित्यपुष्टां सुभगाञ्च सुलक्षणाम् ॥१७५
ऐरावतीं वेदवतीं सुकेशीञ्चसुमङ्गलाम् ।
अर्चयेत्परितो देवीं सुरूपा नित्ययौवनाः ॥१७६
ततः समर्चयेत्तार्क्ष्यं गरुडं विनतासुतम् ।
सुपर्णञ्च चतुर्दिक्षु विदिक्षु शक्तयस्तथा ॥१७७
श्रुतिस्मृतीतिहासाश्च पुराणानीति शक्तयः ।
अस्त्रादीनीश्वरान् पश्चादर्चयेत् कुसुमाक्षतैः ॥१७८
धूपं दीपञ्च नैवेद्यं ताम्बूलञ्च समर्चयेत् ।
अयं हि ते चार्यमिति दद्यान्नीराजनं शुभम् । ॥१७९
प्रदक्षिणं नमस्कारं कृत्वा होमं समाचरेत् ।
पशि(मि)ष्टेन च संहृष्टं सप्तमं मण्डलं धु(हु)नेत् ॥१८०
पुष्पाणि च ततो दत्त्वा कुर्यादवभृथादिकम् ।
रद(थ)यानादिभङ्गे च वाहनध्वंसने तथा ॥१८१
अवेदिरक्रियाजुष्टे कुर्यादिष्टिमिमां शुभाम् ।
अरिष्टे चोपपातेषु शान्त्यर्थमपि वा यजेत् ॥१८२
इष्ट्वाऽनया पूजितेशो रोगसर्पाग्निभिः शमेत् ।
वैनतेयसमो भूत्वा भवेदनुचरो हरेः ॥१८३

घैष्वक्सेनीं ततो वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशिनीम् ।
उपोष्यैकादशी शुद्धां पूर्ववत् पूजतेद्धरिम् ॥१८४
तद्विष्णोरितिमन्त्राभ्यामुपचारैः समर्चयेत् ।
विष्वक्सेनश्च सेनेशं सेनान् पश्च चमूपतिम् ॥१८५
अर्चयित्वा चतुर्दिक्षु शक्तयश्च विदिक्षु च ।
त्रयीं सूत्रवतीं सौम्यां सावित्रीं चार्चयेद्द्विज ॥
अस्त्रान् (दिगीशान्)दीपांश्च सम्पूज्य होमं पश्चात् समाचरेत् । १८६
कृत्वेध्माधानपर्यन्तमष्टम मण्डल यजेत् ॥१८७
पायसेनाथ पुष्पाणि दद्यात् प्रयतमानस ।
अन्ते चायभृथेष्टिश्च प्रसूनयजन तथा ॥१८८
ब्राह्मान् भोजयेच्छक्त्या दक्षिणाभिश्च तोषयेत् ।
अशक्तो यस्तु वेदेन कर्तुमिष्टिश्च वैष्णव ॥१८९
तद्विष्णोरिति मन्त्राभ्यां सहस्रं जुहुयाच्चरुम् ।
हुत्वा पुष्पाञ्जलिश्चापि सम्यगिष्टि लभेन्नर ॥ १९०
वैष्वक्सेनी मिमां हुत्वा विष्वक्सेनसमो भवेत् ।
प्रभूतधनधान्याढ्यमैश्वर्यं चैव विन्दति ॥१९१
यक्षराक्षसभूत नां तामसानां दिवौकसाम् ।
अभ्यचने तदोपस्य विशुद्ध्यर्थमिदं यजेत् ॥१९२
सौदर्शनीं प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम् ।
व्यतीपाते वैधृतौ वा सम्प्राप्याचयेद्धरिम् ॥१९३
अखण्डबिल्वपत्रैर्वा वै मलैस्तुलसीदलै ।
अर्चयित्वा हृषीकेशं गन्धपुष्पाक्षतादिभि ॥१९४

पश्चात्समर्चनीयाः स्युः श्रीभूनीलादिमातरः।
सुदर्शनसहस्रारं पवित्रं ब्रह्मण स्पतिम् ॥१९५
सहस्रार्कं शतोद्यामं लोकद्वारं हिरण्मयम्।
अभ्यर्चयेत् क्रमाद्दिक्षु तथा शक्तीः समर्चयेत् ॥१९६
अनिरुद्धध्वंसिनी माया लज्जा पुष्टिः सरस्वती।
प्रकृतीर्जगदाधारा कामधुक् चाष्टशक्तयः ॥१९७
तथा ताश्चैव लोकेशाः पूज्या दिक्षु यथाक्रमात्।
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्नैवेद्यैर्विविधैरपि ॥१९८
ऋग्वेदोक्तस्य सूक्तेन ततो नीराजनं हरेः।
नवमं मण्डलं पश्चाद्धोतव्यं चरुणा नृप ! ॥१९९
आज्येन वा तिलैर्वाऽपि बिल्वैर्वाऽपि सरोरुहैः।
हुत्वा पुष्पाञ्जलिं दत्वा कुर्यादवभृथादिकम् ॥२००
ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाद् गुरुश्चापि समर्चयेत्।
उद्वाह्य वैष्णवीं कन्यां याचित्वा वैष्णवीं तथा ॥२०१
हुत्वा वा वैष्णवेनैव तथैवाऽऽदित्यभुज्यपि।
अन्यलिङ्गधृतो चापि कुर्यादिष्टिमिमां द्विजः ॥२०२
सौदर्शनेन मन्त्रेण सहस्रं जुहुयाच्चरुम्।
पुष्पाणि दत्वा साहस्रं सम्यगिष्ट्याः फलं लभेत् ॥२०३
अथ भागवतीमिष्टिं प्रवक्ष्यामि नृपोत्तम ॥
उपोष्यैकादशीं शुद्धां द्वादश्यां पूर्ववद्धरिम् ॥२०४
अर्चयित्वा विधानेन गन्धपुष्पाक्षतादिभिः।
पौरुषेण तु सूक्तेन श्रीमदष्टाक्षरेण वा ॥२०५

अर्चयेज्जगतामीशं सर्वाभरणसंयुतम् ।
ततो भागवतान् सर्वानर्चयेत्त्वरितो द्विजः ॥२०६
पुष्पैर्वा तुलसीपत्रैः सलिलै रक्षतैरपि ।
प्रह्लादं नारदञ्चैव पुण्डरीकं विभीषणम् ॥२०७
रुक्माङ्गदं तत्सुतञ्च हनूमन्तं शिवं भृगुम् ।
वशि(सि)ष्ठं वामदेवञ्च व्यासं शौनकमेव च ॥२०८
मार्कण्डेयं चाम्बरीषं दत्तात्रेयं पराशरम् ।
रुक्मदाल्भ्यौ कश्यपञ्च हारीतञ्चात्रिमेव च ॥२०६
भरद्वाजं बलिं भीष्मं शुद्धवाक्रूरपुष्कराम् ।
गुहं सूतञ्च वाल्मीकं स्वायम्भुवमनुं ध्रुवम् ॥२१०
वैणञ्च रोमशञ्चैव मातंगं शबरीं तथा ।
सनन्दनञ्च सनकं निधनञ्च सनातनम् ॥२११
योदु(द्धं)पञ्चशिलञ्चैव गजेन्द्रञ्च जटायुषम् ।
सुशीलां विजटां गौरीं शुभां सन्ध्यावलिं तथा ॥२१२
अनसूयां द्रौपदीञ्च यशोदां देवकीं तथा ।
सुभद्राञ्चैव गोपीश्च शुभा नन्दव्रजे स्थिताः ॥२१३
नन्दं च वसुदेवञ्च दिलीपं दशरथं तथा ।
कौसल्याञ्चैव जनककन्यामपि च वैष्णवान् ॥२१४
अर्चयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्धूपैर्दीपैर्निवेदनैः ।
ताम्बूलैर्भक्ष्यभोज्यैश्च दीपैर्नीराजनैरपि ॥२१५
अहं मुरेति सूक्तेन दद्यान्नीराजनं हरेः ।
पश्चाद्धोमं प्रकुर्वीत अग्न्याधानादिपूर्ववत् ॥२१६

दशमं मण्डलं सप्त प्रत्यृचं जुहुयाद्धविः।
तिलमिश्रेण साज्येन चरुणा गोघृतेन वा ॥२१७
सर्वैश्च वैष्णवैः सूक्तैश्चतुर्भिश्चाष्टोत्तरं शतम्।
नामभिश्च चतुर्थ्यन्तैः स्तान सर्वान् वैष्णवान् यजेत् ॥२१८
पुष्पैरिष्ट्वा चावभृथं प्रसूनेष्टिश्च कारयेत्।
होमं कर्तुमशक्तश्चेद्वेदेन नृपनन्दन ! ॥२१६
चतुर्भिर्वैष्णवैर्मन्त्रैः साहस्रं वा पृथक् पृथक्।
इमां भागवतीमिष्टिं य. कुर्याद्वैष्णवोत्तम. ॥२२०
अनन्तगरुडादीनामयमन्यतमो भवेत्।
पायमानैर्यदा ऋग्भिरिज्यते मधुसूदनः ॥२२१
सस्तायमानो मुनिभि· प्रोच्यते मधुसूदनः।
यदा तु द्वादशी शुक्ला भृगुवासरसंयुता ॥२२२
तस्यामेव प्रकुर्वीत पाद्मोमिष्टिं द्विजोत्तमः।
महाप्रीतिकरं विष्णो. सद्योभुक्तिप्रदायकम् ॥२२३
तस्यां कृतायामिष्ट्या तु लक्ष्मीभर्त्ता जनार्दनः।
प्रत्यक्षो हि भवेत्तत्र सर्वकामफलप्रदः ॥२२४
श्रीधरं पूजयेत्तत्र तन्मन्त्रेणैव वैष्णवः।
सुवर्णमण्डपे दिव्ये नानारत्नप्रदीपिते ॥२२५
उदयादित्यसङ्काशे हिरण्ये पङ्कजे शुभे।
लक्ष्म्या सह समासीनं कोटिशीतांशुसन्निभम् ॥२२६
चक्रशङ्खगदापद्मपाणिनं श्रीधरं विभुम्।
पीताम्बरधरं विष्णुं वनमालाविराजितम् ॥२२७

अर्चयेज्जगतामीशं सर्वाभरणभूषितम् ।
पद्मां पद्मालया लक्ष्मीं कमलां पद्मसम्भवाम् ॥२२८
पद्ममाल्यां पद्महस्तां पद्मनाभीं सनातनीम् ।
प्रागादिषु तथा दिक्षु पूजयेत् कुसुमादिभिः ॥२२९
अष्टाङ्गेनेश्वरान् पूज्य नमस्कुर्वीत भक्तितः
ततो नीराजनं दत्त्वा श्रीसूक्तेन तु वैष्णवः ॥२३०
पुरतो जुहुयादग्नौ पायसं घृतमिश्रितम् ।
तन्मन्त्रेणैव साहस्रं सूक्ताभ्यां सकृदेव हि ॥२३१
हुत्वा मन्त्रेण साहस्रं दद्यात् पुष्पाणि शार्ङ्गिणे ।
वष्णवं विप्रमिथुनं पूजयेद्भोजयेत्तथा ॥२३२
इमां पाद्मीं शुभामिष्टिं यः कुर्याद्वैष्णवोत्तमः ।
प्रभूतधनधान्याढ्यो महाश्रियमवाप्नुयात् ॥२३३
सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णुलोकं स गच्छति ।
लक्ष्म्यायुक्तो जगन्नाथः प्रत्यक्षः समभूद्धरिः ॥२३४
ददाति सफलान् कामानिह लोके परत्र च ।
पुण्यैः पवित्रदैवत्यैरिज्यते यत्र केशवः ॥२३५
तां पवित्रेष्टिमित्याहुः सर्वपापप्रणाशिनीम् ।
यत्ते पवित्रमित्यादि ऋग्भिर्येन्न यजेद्द्विजः ॥२३६
प्रायश्चित्तार्थं सहसा शान्त्यर्थं वा समाचरेत् ।
एवं विधानमिष्टीनां सम्यगुक्तं महर्षिभिः ॥२३७
वैदिकेनैव विधिना यथाशक्त्या समाचरेत् ।
अवैदिकक्रियाजुष्टं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥२३८

क्षीराब्धौ शेषपर्यङ्के बुध्यमाने सनातने ।
अत्रोत्सवं प्रकुर्वीत पञ्चरात्रं निरन्तरम् ॥२३९
नद्याश्च पुष्करिण्या वा तीरे रम्यतले शुचौ ।
मण्डपं तत्र कुर्वीत चतुर्भिस्तोरणैर्युतम् ॥२४०
वितानपुष्पमालादि पताकाध्वजशोभितम् ।
अङ्कुरार्पणपूर्वेण यज्ञवेदिञ्च कल्पयेत् ॥२४१
ऋत्विग्भिः सार्द्धमाचार्यो दीक्षितो मङ्गलस्वनैः ।
रथमारोप्य देवेशं छत्रचामरसंयुतम् ॥२४२
पठन्वैशाकुनान् मन्त्रान् यज्ञशालां प्रवेशयेत् ।
स्वस्तिवाचनपूर्वेण कुर्यात्कौतुकबन्धनम ॥२४३
पूर्णकुम्भान् शस्ययुतान् पालिकाः परितः क्षिपेत् ।
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैः पश्चादावरणं यजेत् ॥२४४
वासुदेवमनन्तञ्च सत्यं यज्ञं तथाऽच्युतम् ।
महेन्द्रं श्रीपतिं विश्वं पूर्णकुम्भेषु पूजयेत् ॥२४५
पालिकाः सद्दिगीशांश्च दीपिकास्तथ हेतयः ।
तोरणेषु च चण्डाद्याः पूजनीया यथाक्रमम ॥२४६
वेद्याश्च दक्षिणे भागे कुण्डं कुर्यात्सलक्षणम् ।
निक्षिप्याग्निं विधानेन इध्माधानान्तमाचरेत् ॥२४७
आचार्योपासनाग्नौ वा लौकिके वा नृपोत्तम ! ।
आधानं पूर्ववत् कृत्वा पश्चात्कर्म समाचरेत् ॥२४८
प्रातः स्नात्वा विधानेन पूजयित्वा सनातनम् ।
प्रत्यृचं पावमानीभिर्जुहुयात्पायसं शुभम् ॥२४९

वैष्णवैरनुवाकैश्च मन्त्रैः शवला पृथक् पृथक् ।
चतुर्भिर्व्यापकैश्चान्यै प्रत्येकं जुहुयाद् घृतम ॥२५०
वैकुण्ठं पार्षदं हुत्वा होमशेषं समाचरेत् ।
ताभिरेव च पुष्पाणि दद्याच्च जगताम्पतेः ॥२५१
उद्बोधयित्वा शयने देवदेवं जनार्दनम् ।
पश्चात् सर्वमिदं कुर्यादुत्सवार्थं द्विजोत्तमः ॥२५२
अथ नावं सुविस्तीर्णां कृत्वा तस्मिन् जले शुभे ।
पुष्पमण्डपचिह्नादि समास्तीर्णसमन्विताम ॥२५३
सुतोरणवितानाढ्यां पताकाध्वजशोभिताम् ।
तस्मिन् कनकपर्यङ्के निवेश्य कमलापतिम ॥२५४
अर्चयित्वा विधानेन लक्ष्म्या सार्द्धं सनातनम ।
पुष्पाञ्जलिशतं तत्र मन्त्ररत्नेन कारयेत् ॥२५५
श्रीपौरुषाभ्यां सूक्ताभ्यां दद्यात्पुष्पाञ्जलिं ततः ।
परितः शक्तयः पूज्या स्तथाऽऽवरणदेवताः ॥२५६
दीपैर्नीराजनं कृत्वा वलिं द त् समन्ततः ।
नौभिः सम त द् बहुभि र्गीतवादित्रसंयुतम ॥२५७
दीपिकाभिरनेकाभि स्तोत्रैरपि मनोरमैः ।
प्लावयन्तो भगन्नाथं तत्र तत्र जलाशये ॥२५८
फलैर्भक्ष्यैश्च ताम्बूलं कलशैर्दधिमिश्रितै ।
कुङ्कुमैः कुसुमैर्लाजैर्विकिरन्तः परस्परम् ॥२५९
गानैर्वेदैः पुराणैश्च सेवेत निशि केशवम् ।
ऋत्विजो वारुणान् सूक्तान् जपेयुस्तत्र भक्तितः ॥२६०

जपेच भगवन्मन्त्रान् शान्तिपाठश्चरेत्तथा।
एवं संसेव्य बहुधा रात्रावस्मिन् जलाशये ॥२६१
प्रदेवत्रेति सूक्तेन यज्ञशालां प्रवेशयेत्।
तत्र नीराजनं दत्त्वा कुर्यादर्घ्यादिपूजनम् ॥२६२
घृतवतेति सूक्तेन तत्र नीराजनं द्विजः ॥२६३
स्नात्वा पूर्ववदभ्यर्च्य हुत्वा पुष्पाञ्जलिं तथा।
आशिषोवाचनं कृत्वा भोजयेद् ब्राह्मणान् शुभान् ॥२६४
शाययित्वाऽथ देवेशं भुञ्जीयाद्वाग्यतः स्वयम्।
एवं प्रतिदिनं कुर्यादुत्सवं पञ्चवासरम् ॥२६५
अन्ते चावभृथेष्टिं च पुष्पयागञ्च कारयेत्।
आचार्यं मृत्विजो विप्रान् पूजयेद्दक्षिणादिभिः ॥२६६
एवं क्षीराब्धियजनं प्रत्यब्दं कारयेन्नृप!।
स्वसम्यगर्थवृद्ध्यर्थं भोगाय कमलापतेः ॥२६७
वृद्ध्यर्थमपि राष्ट्रस्य शत्रूणां नाशनाय च।
सर्वधर्मविवृद्ध्यर्थं क्षीराब्धियजनं चरेत्।
तत्र दुर्भिक्षरोगाग्निपापबाधा न सन्ति हि ॥२६८
गावः पूर्णदुघा नित्यं बहुलस्य फलाधरा।
पुष्पिताः फलिता वृक्षा नार्यो भर्तृपरायणाः ॥२६९
आयुष्मन्तश्च शिशवो जायते भक्तिरच्युते।
यः करोति विधानेन यजनं जलशायिनः ॥२७०
क्रतुकोटिफलं तत्र प्राप्नोत्येव न संशयः।
यस्त्विदं शृणुयान्नित्यं क्षीराब्धियजनं हरेः ॥२७१

सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णुलोकञ्च विन्दति ।
पुष्पिते तु रसाले तु तत्राप्युत्सवमात्मनः ॥२७२
त्रिवासरं प्रकुर्वीत दोलानाम महोत्सवम् ।
उपोषितः संयतात्मा दीक्षितो माधवं हरिम् ॥२७३
छत्रचामरवादित्रैः पताकैः शिविकां शुभाम् ।
आरोप्यालङ्कृतं विष्णुं स्वयञ्च समलङ्कृतः ॥२७४
हरिद्रां विकिरन्तो वै गायन्तः परमेश्वरम् ।
गच्छेयुराद्रुमं प्रातर्नरनारीजनैः सह ॥२७५
तत्राऽऽम्रवृक्षच्छायायां वेद्यांसम्पूजयेद्धरिम् ।
चूतपुष्पैः सुगन्धीभिर्माधवीभिश्च यूथिकैः ॥२७६
मरीचिमिश्रं दध्यन्नं मोदकञ्च समर्पयेत् ।
शष्कुल्यादीनि भक्ष्याणि पानकञ्च निवेदयेत् ॥२७७
सकर्पूरञ्च ताम्बूलं पूगीफलसमन्वितम् ।
सर्वमावरण पूज्य होमं पश्चात्समाचरेत् ॥२७८
कृत्वेध्मानादिपर्यन्तं विष्णुसूक्तैश्चरुं यजेत् ।
माधवेनैव मनुना शर्करासंयुतान् तिलान् ॥२७९
सहस्रं जुहुयाद्वह्नौ भक्त्या वैष्णवसत्तमः ।
वैकुण्ठं पार्षदं हुत्वा होमशेषं समापयेत् ॥२८०
प्रत्यृचं पावमानीभिर्दद्यात् पुष्पाञ्जलिं हरेः ।
अथ दोलां शुभाकारां वद्धारश्मिन् समलङ्कृताम् ॥२८१
वस्त्रवैदूर्यमाणिक्यमुक्ताविद्रुमभूषिताम् ।
तस्यां निवेश्य देवेशं लक्ष्म्या सार्द्धं प्रपूजयेत् ॥२८२

गन्धैः पुष्पैर्धूपदीपैः फलैर्भक्ष्यैर्निवेदनैः ।
कुसुमाक्षतदूर्वाग्रतिलसर्पिर्मधूदकम् ॥२८३
सर्षपाणि च निक्षिप्य अष्टाङ्गार्घ्यं निवेदयेत् ।
पादेषु चतुरो वेदान् मन्त्राण्योक्तेषु चान्तरे ॥२८४
नागराजञ्च दोलायां पीठे सर्वस्वरैरपि ।
व्यजनैर्वैनतेयञ्च सावित्रीं चामरे तथा ॥२८५
द्विनिशामर्चयेद्दिक्षु ऊर्ध्वं ब्रह्म बृहस्पतिः ।
अधस्ताच्चण्डिकां रुद्रं क्षेत्रपालविनायकौ ॥२८६
विताने चन्द्रसूर्यौ च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा ।
वेदाश्च सेतिहासांश्च पुराणं देवता गणा ॥२८७
भूधराः सागराः सर्वे पूजनीयाः समन्ततः ।
एवं सम्पूज्य दोलाया लक्ष्म्या सह जनार्दनम् ॥२८८
दोलयेच्च ततो दोलां चतुर्वेदैश्चतुर्दिशम् ।
सूक्तैश्च ब्रह्मणोऽपत्यैः सामगानैः प्रबन्धकैः ॥२८९
नामभिः कीर्तयन् देवमेव मन्दं प्रदोलयेत् ।
स्त्रियं स्वलङ्कृताः सर्वा गायन्त्यो विभुमच्युतम् ॥२९०
चरितं रघुनाथस्य कृष्णस्य चरितं तथा ।
दोलयेयुर्मुदा भक्त्या दोलायां परमेश्वरम् ॥२९१
दोलाया दर्शनं विष्णोर्महापातकनाशनम् ।
भक्तिप्रसादनं नृणां जन्ममृत्युनिकृन्तनम् ॥२९२
देवाः सर्वे विमानस्था दोलायामर्चितं हरिम् ।
दर्शयन्ति ततः पुण्यं दोलानामोत्सवं हरेः ॥२९३

अथवा नीराजनं दद्यात् श्रीसूक्तेन वैष्णव ।
ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाद्दक्षिणाभिश्च तोषयेत् ॥२९४
एव त्रिवासरं कुर्यादुत्सवं वैष्णवोत्तम ।
प्रद्युम्नमेवं कुर्वीत तत्तत्काले तु वैष्णव ॥२९५
श्रौतेनैव च मार्गेण जपहोमपुर सरम् ।
उत्सव वासुदेवस्य यथाशक्त्या समाचरेत् ॥२९६
यत्र यत्रोत्सवं विष्णो कर्तुमिच्छति वैष्णव ।
होम कुर्यात्तत्र मन्त्रै स्तथाविष्णुप्रकाशकै ॥२९७
अतो देवेतिसूक्तेन तथा विष्णोर्नुकेन च ।
परोमात्रेति सूक्ताभ्या पौरुषेण च वैष्णव ॥२९८
नारायणानुवाकेन श्रीसूक्तेनापि वैष्णव ।
प्रत्यृच जुहुयाद्धवी चरुणा पायसेन वा ॥२९९
चतुर्भि वैष्णवैर्म-त्रै पृथगष्टोत्तरं शतम् ।
आज्यहोम प्रकुर्वीत गायत्र्या विष्णुसंज्ञया ॥३००
वैकुण्ठपार्षद हुत्वा शेष पूर्ववदाचरेत् ।
अनादिष्टेषु सर्वेषु कुर्यादेव विधानत ॥३०१
ब्राह्मणान् भोजयेद्विप्रान् सर्वं सम्पूर्णतां व्रजेत् ।
अथवा मन्त्ररत्नेन सहस्रं प्रतिवासरम् ॥३०२
हुत्वा पुष्पाणि दत्वा च शेषं पूर्ववदाचरेत् ।
होमं विना न कर्तव्य मुत्सवं परमात्मन ॥३०३
जपहोमविहीनन्तु न गृह्णाति जनार्दन ।
तस्माच्छ्रौत प्रवक्ष्यामि विष्णोराराधनं नृप। ॥३०४

अश्वयुक्कृष्णपक्षे तु सम्यगभ्युदिते रवौ ।
आदर्शात् सप्तरात्रन्तु पूजयेत्प्रभुमव्ययम् ॥३०५
स्नात्वा नद्यां विधानेन कृतकृत्यः समाहितः ।
गृहीत्वा जलकुम्भन्तु वारुणान् प्रवरान् व्रजेत् ॥३०६
पञ्चत्वक्पल्लवान् पुष्पाण्यभिमन्त्र्य विनिक्षिपेत् ।
सौरभेयीं तथा मुद्रां दर्शयित्वा च पूजयेत् ॥३०७
त्रिवारं वैष्णवैर्मन्त्रैः शङ्खेनैवाभिषेचयेत् ।
पूजयित्वा विधानेन गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥३०८
अपूपान् पायसं शक्तून् कृसरञ्च निवेदयेत् ।
मन्त्रैरष्टोत्तरशतं दत्त्वा पुष्पाणि चक्रिणः ॥३०९
पश्चाद्धोमं प्रकुर्वीत साज्येन चरुणा ततः ।
कस्य वा नतिसूक्तेन वैष्णवैरपि वैष्णवः ॥३१०
हुत्वा तु मन्त्ररत्नेन घृतमष्टोत्तरं शतम् ।
वैकुण्ठं पार्षदं हुत्वा वैष्णवान् भोजयेत्ततः ॥३११
सकृद्भोजनसंयुक्तः क्षितिशायी भवेन्निशि ।
सायाह्नेऽपि समभ्यर्च्य जातीपुष्पैः सुगन्धिभिः ॥३१२
बहुभिर्दीपदण्डैश्च सेवेरन् पुरवासिनः ।
एवं महोत्सवं कृत्वा धनधान्ययुतो भवेत् ॥३१३
तत्तत्कालोचितं विष्णोरुत्सवं परमात्मनः ।
द्रव्यहीनोऽपि कुर्वीत पत्रपुष्पैः फलादिभिः ॥३१४
समिद्भिर्बिल्वपत्रैर्वा होमं कुर्वीत वैष्णवः ।
सन्तर्पयेच्च विप्रांस्तु कोमलैस्तुलसीदलैः ॥३१५

भक्त्या वै देवदेवेशः परितुष्टो भवेद् ध्रुवम् ।
आस्तिक्यः श्रद्दधानश्च वियुक्तमदमत्सरः ॥३१६
पूजयित्वा जगन्नाथं यावज्जीवमतन्द्रितः ।
इह भुक्त्वा मनोरम्यान् भोगान् सर्वान् यथेप्सितान् ॥३१७
सुखेन देहमुत्सृज्य जीर्णत्वच मिवोरगः ।
स्थूलसूक्ष्मात्मिकाञ्चेमां विहाय प्रकृतिन्त्रुतम् ॥३१८
सारूप्यमीश्वरस्याऽऽशु गत्वा तु स्वजनैः सह ।
दिव्यं विमानमारुह्य वैकुण्ठं नाम भास्करम् ॥३१६
दिव्याप्सरोगणैर्युक्तो दिव्यभूषणभूषितः ।
स्तूयमानः सुरगणैर्गीयमानश्च किन्नरैः ॥३२०
ब्रह्मलोकमतिक्रम्य गत्वा ब्रह्माण्डमण्डपम् ।
विष्णुचक्रेण वै भित्त्वा सर्वानावरणान् घनान् ॥३२१
अतीत्य वीरजामाशु सर्ववेदस्रवा नदीम्
अभ्युद्गच्छद्भिरव्यग्रैः पूज्यमानः सुरोत्तमैः ॥३२२
सम्प्राप्य परमं धाम योगिगम्यं सनातनम् ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं हरेः ॥३२३
तद्विष्णोः परमं धाम सदा पश्यन्ति योगिनः ।
शीतांशुकोटिसङ्काशैः सर्वैश्च भवनैर्युतम् ॥३२४
आरूढयौवनैर्दिव्यैः पुंभि. स्त्रीभिश्च सङ्कुलम् ।
सर्वलक्षणसम्पन्नैर्दिव्यभूषणभूषितैः ॥३२५
अक्षरं परमं व्योम यस्मिन्देवा अधिष्ठिताः ।
इरावती धेनुमती व्यस्तभ्नासूयवासिनी ॥३२६

यत्र गावो भूरिशृङ्गा साऽयोध्या देवपूजिता ।
अनन्तसूहलोकैश्च तथा तुल्यशुभावहे ॥३२७
सर्वरत्नमयं तत्र मण्डपं सुमनोहरम् ।
सहस्रस्थूणसदसि ध्रुवे रम्योत्तरे शुभे ॥३२८
तस्मिन् मनोरमे पीठे धर्माद्यैः सूरिभिर्वृते ।
सहाऽऽसीनं कमलया दृष्ट्वा देवं सनातनम् ॥३२९
स्तुतिभिः पुष्कराभिश्च प्रणम्य च पुनः पुनः ।
प्रहृष्टपुलको भूत्वा तेन चाऽऽलिङ्गितः क्रमात् ॥३३०
पूजितः सर्वभोगैः श्रिया चापि प्रपूजितः ।
अनन्तविहगेशाद्यैः रचितः सर्वदैवतैः ॥३३१
तेषामन्यतमो भूत्वा मोदते तत्र देववत् ।
एषु केषु च लोकेषु तिष्ठते कमलापतिः ॥३३२
तेषु तेष्वपि देवस्य नित्यदासो भवेत्सदा ।
दासवत्पुत्रवत्तस्य मित्रवद् बन्धुवत् सदा ॥३३३
अश्नुते सकलान् कामान् सह तेन विपश्चिता ।
इमान् लोकान् कामभोगः कामरूप्यनुसञ्चरन् ॥३३४
सर्वदा दूरविध्वस्तदुःखावेशलवांशकः ।
गुणानुभवजप्रीत्या कुर्याद्दानमशेषतः ॥३३५
इदमेव परं मोक्षं विदुः परमयोगिनः ।
काङ्क्षन्ति परमं दासा मुक्तमेकं महर्षयः ॥३३६
हरेर्दास्यैकपरमां भक्तिमालम्ब्य मानवः ।
इहैव मुक्तो राजर्षे । सर्वकर्मनिबन्धनैः ॥३३७

इति वृद्धहारीतस्मृतौ विशिष्टपरमधर्मशास्त्रे नानाविधोत्सवविधानं नाम सप्तमोऽध्यायः ।

## ॥ अष्टमोऽध्यायः ॥

## अथ विष्णुपूजाविधिवर्णनम् ।

हारीत उवाच ।

अथ वक्ष्यामि राजेन्द्र ! विष्णुपूजाविधिं परम् ॥१
श्रौतं महर्षिभिः प्रोक्तं वसिष्ठाद्यैः पुरातनैः ।
वैखानसैश्च भृग्वाद्यैः सनकाद्यैश्च योगिभिः ॥२
वैष्णवैः वैदिकैः पूर्वैर्यश्च सदाचरितं पुरा ।
तत्ते वक्ष्यामि राजेन्द्र ! महाप्रियतमं हरेः ॥३
ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय सम्यगाचम्य वारिणा ।
ध्यात्वा हृत्पङ्कजे विष्णुं पूजयेन्मनसैव तु ॥४
तं प्रत्यैवेति सूक्तेन बोधयेत्कमलापतिम् ।
वनस्पतेति सूक्तेन तूर्यघोषं निनादयेत् ॥५
कुर्यात्प्रदक्षिणं विष्णोरतोदेवेत्यनेन तु ।
तद्विष्णोरिति मन्त्राभ्यां च प्रणम्याऽऽचरेत्ततः ॥६
कृतशौचस्तथाऽऽचान्तो दन्तधावनपूर्वकम् ।
स्नानं कुर्याद्विधानेन धात्रीश्रीतुलसीयुतम् ॥७
नारायणानुवाकेन कृत्वा तत्राघमर्षणम् ।
कृतकृत्यः शुचिर्भूत्वा तर्पयित्वा च पूर्ववत् ॥८
धृतोर्ध्वपुण्ड्रदेहश्च पवित्रकर एव च ।
प्रविश्य मन्दिरं विष्णोः संमार्जन्या विशोधयेत् ॥९

वास्तोष्पतेति वै सूक्तं जपन् संमार्जयेद् गृहम् ।
आगाय इति सूक्तेन गोमयेनानुलेपयेत् ।
आनोभद्रेति सूक्तेन रङ्गवल्लिश्च निक्षिपेत् ॥१०
ततः कलशमादाय जपन्वै शाकुनीमृचः ।
गत्वा जलाशयं रम्यं निर्म्मलं शुचि पाण्डुरम् ॥११
इमं मे गङ्गेति मृचा जलं भक्त्याऽभिमन्त्रयेत् ।
आपो अस्मानिति मृचा कलशं क्षालयेद् द्विजः ॥१२
समुद्र ज्येष्ठमन्त्रेण गृह्णीयात्प्रयतो जलम् ।
ततस्मेनं वस्तुभिरिति मन्त्रेणाऽऽहृत्य वैष्णवः ॥१३
प्रसम्राजेति सूक्तं वै जपन् सम्प्रविशेद् गृहम् ।
धान्योपरि तथा कुम्भं न्यसेद्दक्षिणतो हरेः ॥१४
इमं मे वरुणेत्यृचा मङ्गलद्रव्यसंयुतम् ।
अञ्जन्ति (मित्र)त्वेति सूक्तेन कुर्य्यात्पुष्पस्य सञ्चयम् ॥१५
अर्व्वाचि सुभगे द्वाभ्यां गन्धांश्च पेषयेत्तथा ।
यात्यतः प्रयतो भूत्वा श्रीसूक्तेनैव वैष्णवः ।
विश्वानि न इति मृचा दीपं दद्यात्सुदीपितम् ॥१६
ततत्पात्रेषु सलिलं दत्वा गन्धां स्तु निक्षिपेत् ।
शन्नो देव्या च सलिलं गायत्र्या च कुशांस्तथा ॥१७
आयनेति च पुष्पाणि यवोऽसीति मृचाऽक्षतान् ।
गन्धद्वारेति वै गन्धा नौषध्या तिलसर्षपान् ॥१८
काण्डात्काण्डेति दूर्वाग्रान् सद्विरण्येति रत्नकम् ।
हिरण्यरूपेति मृचा हिरण्यं निक्षिपेत्तथा ॥१९

एवं द्रव्याणि निक्षिप्य तुलस्या च समर्दयेत् ।
सवितुश्चेत्यादि ऋचा दद्यादर्घ्योदकं हरेः ॥२०
श्रियेति पादेति ऋचा दद्यात् पादजलं तथा ।
भद्रन्ते हस्तेत्यनेन हस्तप्रक्षालनं चरेत् ॥२१
वयः सुपर्णेति ऋचा मुखसम्मार्जनं तथा ।
आपो अस्मानिति ऋचा वक्त्रगण्डूषमेव च ॥२२
हिरण्यदन्तेत्यनेन दन्तकाष्ठं निवेदयेत् ।
बृहस्पते प्रथमेति जिह्वालेखनमेव च ॥२३
आपयित्वा च भेषजीरिति गण्डूषमाचरेत् ।
आपो हि ष्ठा इत्यनेन कुर्य्यादाचमनीयकम् ॥२४
मूर्धामय इत्यनेन तैलाभ्यङ्गं समाचरेत् ।
मूर्धानन्दीव इत्यनेन गन्धान् केशेषु लेपयेत् ॥
तद्विष्णस्त्र्यौ केशवन्ते केशान् वै क्षालयेत्पुन. ।
श्रिये पुश्न(ह)ति ऋचा तद्वचोद्वर्तनादिकम् ॥२६
आपोयम्यः प्रथममिति सूक्तेनाभ्यङ्गसूचनम् ।
कृत्वाऽदः स्नापयेत्सूक्तैर्वैष्णवैर्गन्धवारिणा ॥२७
ततः पञ्चामृतैर्गव्यैः स्नापयेत्तत्प्रकाशकैः ।
आप्यायस्वेत्यृचा क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि ॥२८
घृतमामिक्षेति घृतं मधुवातेति वै मधु ।
तत्ते वयं यथा गोभिरित्यृचेक्षुरसं शुभम् ॥२९
एभिः पञ्चामृतैः स्नाप्य चन्दनञ्च निवेदयेत् ।
श्रीसूक्तपुरुषसूक्ताभ्यां पुनः संस्नापयेद्धरिम् ॥३०

वनस्पतेति सूक्तेन कुर्य्याद् घोषसमन्वितम् ।
श्रिये जात इति ऋचा दद्यान्नीराजनं ततः ॥३१
युरा सुरासेति ऋचा वस्त्रेणाङ्गं प्रमार्जयेत् ।
प्रसेनानेति मन्त्रेण वस्त्रं सम्प्रेरयेत्ततः ॥३२
युवं वस्त्राणीति ऋचा उत्तरीयं तथैव च ।
सर्वत्राऽऽचमनं दद्याच्छन्नो देवीत्यृचा च तु ॥३३
उपवीतं ततो दद्याद् ब्राह्मणानिति वै ऋचा ।
ऋतस्य तन्तुविततेः दद्यात्कुशपवित्रकम् ॥३४
पश्चादाचमनं दद्याद् भूषणैर्भूषयेद्धरिम् ।
विश्वजित्सूक्तेन दद्याद् भूषणानि शुभानि वै ॥३५
हिरण्यकेशेति ऋचा केशान् संशोधयेत्तथा ।
सुपुष्पैः कबरीं दद्याद्धिहिसोतेत्यनेन वै ॥३६
कृपायमिन्द्र ते रथ इत्यृचा तिलकं शुभम् ।
गन्धश्च लेपयेद् गात्रे गन्धद्वारेति वै ऋचा ॥३७
त्रातारमिन्द्र इत्यृचा पुष्पमाला समर्पयेत् ।
चक्षुषः पितेति ऋचा चक्षुषो रञ्जनं शुभम् ॥३८
सहस्रशीर्षेति ऋचा किरीटं शिरसि क्षिपेत् ।
ऋक्सामाभ्यामिति श्रोत्रे कुण्डले मकरेऽर्पयेत् ॥३९
दमूनसो अपस इति केयूरादिविभूषणम् ।
आशेते यशेति ऋचा हाराणि विमलानि च ॥४०
हस्ताभ्यां दशशाखाभ्या मित्यृचा चाङ्गुलीयकम् ।
अस्य त्रिसूत्रमधुना सूर्याके विन्यसेच्छुभे ॥४१

इदन्त्वदुत्तर इति कटिसूत्रं सुरोचिषम् ।
स्वस्तिदा विशस्पतिरित्यायुधानि समर्पयेत् ॥४२
यौनेय इन्द्रेति दद्याच्छत्रं सुविमलं तथा ।
सोमः पवर्ततेत्यृचा चामरं हैममुत्तमम् ॥४३
सोमापूषणेत्यृचा तालवृन्तौ सुवर्चसौ ।
रूपं रूपमिति ऋचा दद्यादादर्शनं शुभम् ॥४४
इन्द्रमेव धीषणेति ऋचा ऽऽसने विनिवेशयेत् ।
इहैवास्तमेति ऋचा दद्याच्च कुशविष्टरम् ॥४५
आपस्वन्तरिति ऋचा पाद्यं दद्याच्च भक्तितः ।
गौरीर्मिमाय सूक्तेन अर्घ्यं हस्ते निवेदयेत् ॥४६
नतमंहो न दुरितमित्याचमनं समर्पयेत् ।
पिबासोममित्यनेन मधुपर्कञ्च प्राशयेत् ॥४७
अप्स्वग्ने सधिष्टवेति पुनराचमनं चरेत् ।
अर्चन्तस्त्वाहवामहेत्यक्षतैरर्चयेच्छुभैः ॥४८
तण्डुलाः सहरिद्रास्तु अक्षता इति कीर्तिताः ।
विष्णोर्नुकमिति सूक्तेन धूपं दद्याद् घृतान्वितम् ॥४९
भावामितेति सूक्तेन दीपान्नीराजयेच्छुभान् ।
इदन्ते पात्रमिति(च)भाजनं विन्यसेच्छुभम् ॥५०
तस्मा अरङ्गमामवेति पात्रप्रक्षालनं चरेत् ।
अस्मिन् पदे पर(मेतञ्छिवास)मिति गव्याज्येनाभिपूरयेत् ।
पितुं नुस्तोषमिति सूक्तेन दद्यादन्नादिकं हविः ॥५१

तद्‌त्यानिकमिति ऋचा सहिरण्यं घृतं तथा।
तस्मिन् रायवतय इति दद्यादापोशने घृतम् ॥५२
ततः प्राणाद्याहुतयो होतव्याः परमात्मनि।
अग्ने विवस्वदुषस इति पञ्चभिश्च यथाक्रमम् ॥५३
समुद्रा दूर्मीति सूक्तेन घृतधाराः समाचरेत्।
परोमात्रेति सूक्तेन भोजयेत्सश्रियं हरिम् ॥५४
तुभ्यं हिन्वान इत्यनेन वयः सर्वं निवेदयेत्।
इन्द्र पीबेत्यनेन दद्यादापोशनं पुनः ॥५५
प्रत आश्विनि पवमानेत्यृचा हस्तप्रक्षालनं चरेत्।
सरस्वतीं देवयन्त इति (तिसृभि)र्गण्डूषमेव च ॥५६
वृष्टिं दिवीशः तद्वारेति (द्वाभ्यां) दद्यादाचमनं ततः।
शिशुं जिज्ञाग्निमिति ऋचा मुखहस्तौ च मार्जयेत् ॥५७
दक्षिणावतामिति ऋचा दद्यात्ताम्बूलमुत्तमम्।
स्वादुः पयस्वेति ऋचा दद्यादाचमनं पुनः।
आइयं गौरिरिति सूक्ताभ्यां दद्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः ॥५८
दीपन्नीराजयेत्पश्चाद् घृतसूक्तेन वैष्णवः।
यत इन्द्रेत्यादि षड्भिर्दिक्षु रक्षां प्रदापयेत् ॥५९
यज्ञा देवानामिति सूक्तेन उपस्थानजपं चरेत्।
तद्विष्णोरिति (च)द्वाभ्यां प्रणमेच्चैव भक्तितः ॥६०
गौरीमिमायेति ऋचा दद्यादाचमनन्ततः।
सहस्रनामभिः स्तुत्वा पश्चाद्धोमं समाचरेत् ॥६१
प्रातरौपासनं हुत्वा तस्मिन्नग्नौ जनार्दनम्।
ध्यात्वा संपूज्य जुहुयाद्वैष्णवैः प्रत्यृचं हविः ॥६२

श्रीभूसूक्ताभ्यामपि च हुत्वा घृतयुतं हविः।
याभिः सोमो मोदतेत्यनेन मातृभ्यो जुहुयाद्बलिः ॥६३
किंस्विद्वनमित्या(तिऋचाअ)न्नन्तं जुहुयाद्धविः।
सुपर्णं विप्रा इति ऋचा सुपर्णाय महात्मने ॥६४
चमूष च्छ्येन इति च सेनेशायापि हूयताम्।
पवित्रन्त इति द्वाभ्याञ्चक्रायामिततेजसे ॥६५
स्वादुषं स इति ऋचा हेतिभ्यो जुहुयाद्धविः।
इन्द्रश्रेष्ठानितीन्द्राय अग्निमूर्धेति पावकम्॥६६
यमाय सोमेति यमञ्चैऋं तं मोषुणेत्यृचा।
यच्चिद्धितेति वरुणं वायवायाहीति मारुतम्।
द्रविणोदा ददातु नाद्रविणायाशमेव च ॥६७
त्र्यम्बकम्ऋ(कमित्यृ)चा रुद्रं मानः प्रजां प्रजापतिम्।
यज्ञेनेत्यृचा साध्येभ्यो मरुतो यद्धेति च ॥६८
योनः सपत्नेति ऋचा वसुरुद्रेभ्य एव च।
विश्वेदेवाः स च (वाश्च)तस्मिंश्च देवा स ऋचा तथा ॥६६
सर्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो जुहुयादन्नमुत्तमम्।
नासत्याभ्यामिति ऋचा अश्विच्छन्दोभ्य एव च ॥७०
सोम(मा)पूषे(षणे)ति ऋचा सूर्याचन्द्रमसोस्तथा।
संसमियुद(व)सूक्तेन वैष्णवेभ्यस्तथापुनः ॥७१
तत स्विष्टकृतं हुत्वा भुक्तेभ्यश्च बलिं क्षिपेत्।
नमो महद्भ्य ऋ(इत्यृ)चा बलिं भुवि विनिक्षिपेत् ॥७२

आचम्य वारिणा पश्चान्मन्त्रयागं समाचरेत् ।
एतच्छ्रौतं नृपश्रेष्ठ ! मुनिभिः सम्प्रकीर्तितम् ॥७३
सम्यगुक्तं मया तेऽद्य निश्चितं मतमुत्तमम् ।
एतत्प्रियतमं विष्णो श्रि(श्रि)यो नाथस्य सर्वदा ॥७४
श्रौतेनैव हरिं देवमर्चयन्ति मनीषिणः ।
श्रौतस्मार्त्तागमैर्विष्णो त्रिविधं पूजनं स्मृतम् ॥७५
एतच्छ्रौतं ततः स्मार्त्तं पौरुषेण च यत् स्मृतम् ।
मन्त्रैरष्टाक्षराद्यैस्तु तद्दिव्यागममुच्यते ॥७६
श्रौतमेव विशिष्टं स्यात्तेषां नृपवरोत्तम ! ।
श्रौतमेव तथा विप्राः प्रकुर्वन्ति जनार्दने ॥७७
यजन्ति केचित्त्रितयन्त्रिसन्ध्यासु च देशिकाः ।
यजन्ति केचित्त्रितयन्त्रयो वर्णा द्विजोत्तमाः ॥७८
शुश्रूषा च तथा नामकीर्तनं शूद्रजन्मनः ।
अपि वा परमैकान्ति यात्कृष्णवपुर्हरिम् ॥७९
स्त्रीणामप्यर्चनीयः स्यात्स्ववर्णस्याऽनुरूपतः ।
मन्त्ररत्नेन वै पूज्यो हित्वा श्रौतं विधानतः ॥८०
एतभभ्यर्चनं विष्णोर्मुनिभिः सम्प्रकीर्तितम् ।
श्रौतस्मार्तागमात्ताश्च नित्यनैमित्तिका क्रिया ॥८१
प्रायश्चित्तमकृत्यानां दण्डमप्याततायिनाम् ।
अधुना सम्प्रवक्ष्यामि वृत्तिमैकान्तिलक्षणाम् ॥८२
नारीणामपि कर्तव्या अहन्यहनि शाश्वतीम् ।
उत्थाय पश्चिमे यामे भर्तुः पूर्वमतन्द्रिताः ॥८३

कृत्वा शौचं विधानेन दन्तधावनमाचरेत् ।
कृत्वाऽथ मङ्गलस्नानं धृत्वा शुक्लाम्बरं तथा ॥८४
आचम्य धारयेदूर्ध्वपुण्ड्रं शुभ्रं मृदैव तु ।
चन्दनेनापि कस्तूर्याः कुङ्कुमेनापि वा सति ॥८५
जप्त्वा मन्त्रं गुरुं पश्चादभिनन्द्य च वैष्णवान् ।
नमस्कृत्वा जगन्नाथं जप्त्वा च शरणागतिम् ॥८६
आत्मानं समलङ्कृत्य चिन्तयेन्मधुसूदनम् ।
गृहभाण्डादिकं सर्वं वाग्दत्ता नियतेन्द्रियाः ॥८७
संशोधयेत्प्रतिदिनं यज्ञार्थं परमात्मनः ।
मार्जयित्वा गृहं पश्चाद् गोमयेनानुलिप्य च ॥८८
रङ्गवल्ल्यादिभिः पश्चादलङ्कृत्य समन्ततः ।
चतुर्विधानां भाण्डानां क्षालनन्तु समाचरेत् ॥८९
पाचकानि वहिष्ठानि जलस्याऽऽनयनानि च ।
स्थापनानि जलार्थं वा चतुर्विधं मुदाहृतम् ॥९०
पृथक् पृथगुदस्थानि तेषु तेष्वपि विन्यसेत् ।
नान्योन्यं सङ्करं कुर्याद्भाण्डानां सर्वकर्मसु ॥९१
तानि तानि स्पृशेत्पाणि प्रक्षाल्यैव पुनः पुनः ।
सम्यक् प्रक्षाल्य भाण्डानि दाहयेद्यज्ञियैस्तृणैः ॥९२
पुनः प्रक्षाल्य सन्तप्त्वा पश्चात्पचनमाचरेत् ।
रसभाण्डानि सर्वाणि क्षालयेद्ब्रह्मचारिणा ॥९३
चतुर्भिः पञ्चभिर्ध्यात्वा मुकुन्दौ क्षालयेत्तदा ।
वह्निर्न निष्कामयीत पाचकानि गृहान्तिकात् ॥९४

ताभिरेव तु दद्यात्तु भुञ्जीत हि कथञ्चन ।
दत्त्वा पात्रान्तरे दद्यात्कांस्येवा मृण्मयेऽपि वा ॥९५
पुटे पणमये चाऽपि दद्यादत्र तु वैष्णवे ।
स्रुवं दारुमयं कांस्यं कुर्व्वीतायोमयं न तु ॥९६
न दद्यादारनालस्य घटं तस्मिन् महाध्वने ।
आरनालस्य यत् कुम्भन्त्यजेन्मद्यघटं यथा ॥९७
आरनालञ्चारशाकं करञ्जं तिलपिष्टकम् ।
लशुनं मूलकं शिग्रुं छत्रां (त्रं) कोशातकीफलम् ।
अलाबुश्चान्त्रं शाकञ्च करनिर्मथितं दधि ॥९८
बिम्वं बिल्वजञ्च निर्यासं पीलुं श्लेष्मातकं फलम् ।
आरग्वधञ्च निर्गुण्डीं कालिङ्गनालिकां तथा ॥९९
नालिकेर्य्याख्यशाकञ्च श्वेतवृन्ताकमेव च ।
उष्ट्राविमानुषीक्षीरमयस्सानिर्दशाहगोः ॥१००
एतान्यकामतः स्पृष्ट्वा सवासा जलमाविशेत् ।
मत्या जग्ध्वा व्रतं कुर्यान्मुर्ज जग्ध्वा पतेदधः ॥१०१
केशानां रञ्जनार्थं वा न स्पृशेदारनालकम् ।
चन्दनं घनसारं वा मकरन्दमथापि वा ॥१०२
माषमुद्गादिचूर्णं वा तक्रं जाम्बीरमेव वा ।
तिन्तिडूञ्च कलायं वा केशरञ्जनमाचरेत् ॥१०३
ऊर्ध्वं मासात्त्यजेत्सर्वं मृद्भाण्डं वैष्णवोत्तमः ।
न त्यजेल्लोहभाण्डानि तापयेच्च हुताशने ॥१०४

दारूणां सन्त्यजेद्वाऽपि तक्षणं वा समाचरेत् ।
अश्मनामश्मभिर्घृष्ट्वा गोवालैर्घर्षयेत्तथा ॥१०५

सूतके मृतके चाऽपि शुनादिस्पर्शने तथा ।
स्पर्शने वाऽप्यभक्ष्याणां सद्य एव परित्यजेत् ।
एवं संशोध्य भाण्डानि यज्ञार्थं याचयेद्बुधः ॥१०६

सम्प्रोक्ष्याद्भिः शुचौ देशे धान्यं संशोधयेद् बुधः ।
अवहन्याच्छुभतरं गायन्ति मधुसूदनम् ॥१०७

संशोध्य तण्डुलान् पश्चादद्भिः संक्षालयेत्त्रिभिः ।
अम्भस्त्रिवारं वस्त्रेण शोधयित्वा घटान्तरे ॥१०८

कुशेनैव पवित्रेण तण्डुलान् निर्वपेच्छुभान् ।
अन्तर्धाय कुशं तत्र मन्त्ररत्नं मनुस्मरन् ॥१०९

पाचयेत्सपवित्रेण वाग्यतो नियतेन्द्रियः ।
उपविश्य शुभे कुण्डे वह्निं प्रज्वालयेत्ततः ॥११०

अवैष्णवस्य शूद्रस्य पतितस्य तथैव च ।
पाषण्डस्याप्यशुद्धस्य गृहेष्वग्निं विवर्जयेत् ॥१११

सम्प्रोक्ष्य मन्त्ररत्नेन वह्निं कुशजलैस्त्रिभिः ।
यज्ञियैर्विमलैः काष्ठैर्व्यजनेन प्रदीपयेत् ॥११२

सान्तर्धानमुखेनापि धमयित्वा प्रदीपयेत् ।
पालाशैर्खादिरैर्बिल्वैर्गोशकृत्पिष्टकैरपि ॥११३

अन्यैर्वा यज्ञियैः काष्ठैस्तृणैर्वा यज्ञियैः शुभैः ।
वर्जयेन्मशदग्धानि तथा वैभीतकानि च ॥११४

आरग्वधानि शिग्रूणि तथा नैर्गुण्डिकानि च।
नैपानि च कपित्थानि कार्पासैरण्डकानि च ॥११५
अमेध्यानि सकीटानि दौर्गन्ध्यानि तथैव च।
असद्ग्राह्यानि चैतानि काक्सद्वासनानि च ॥११६
देवालयानि यौप्यानि तथोपकरणानि च।
महिषोष्ट्रखरादीनां कारीषपीटकानि च ॥११७
अन्यानां पाकशेषाणि वर्जयेद्यज्ञकर्म्मणि।
प्रदीप्याग्नि ततो ऽऽज्याद्यं पच्यान्नियतमानसः ॥११८
चिन्तयन् परमात्मानं जपन्मन्त्रद्वयं तथा।
शुद्धं हृद्यं तथा रुच्यं पश्चादन्यन्तरं शुभम् ॥११९
निषिद्धानि च शाकानि फलमूलानि वर्जयेत्।
अतिरूक्षञ्चातिदुष्टमतिरक्तञ्च वर्जयेत् ॥१२०
भावदुष्टं क्रियादुष्टं कालदुष्टं तथैव च।
संसर्गदुष्टमपि च वर्जयेद्यज्ञकर्म्मणि ॥१२१
रूपतो गन्धतो वाऽपि यथाभक्ष्यं समम्भवेत्।
भावदुष्टञ्च यत्प्रोक्तं मुनिभिर्धर्म्मपारगैः ॥१२२
आरनालञ्च मद्यञ्च करनिर्म्मथितं दधि।
हस्तदत्तञ्च लवणं क्षीरं घृतपयांसि च ॥१२३
हस्तेनोद्धृत्य यत्तोयं पीतं वक्त्रेण वैकदा।
शब्देन पीतं भुक्तञ्च गव्यं ताम्रेण संयुतम् ॥१२४
क्षीरञ्च लवणान्मिश्रं क्रियादुष्टमिहोच्यते।
एकादश्यां तु यथान्नं यथान्नं राहुदर्शने।
सूतके मृतके चान्नं शुष्कं पर्युषितं तथा ॥१२५

अनिर्दशाहगोःक्षीरं पष्ठ्यां तैलं तथाऽपि च।
नदीष्वसमुद्रगासु सिंहकर्कटयोर्जलम् ॥१२६
निःशेषजलवाप्यादौ यन्त्रविष्टं नवोदकम्।
नातीतपञ्चरात्रं तत्कालदुष्टमिहोच्यते ॥१२७
शैवपाषण्ड पतितैर्विकर्मस्थैर्निरीश्वरैः।
अवैष्णवैर्द्विजैः शूद्रैर्हरिवासरभोक्तृभिः ॥१२८
श्वकाकसूकरोष्ट्राद्यैरुदक्यासूतिकादिभिः।
पुंश्चलीभिश्च नारीभिर्वृपलीपतिभिस्तथा ॥१२९
दृष्टं स्पृष्टं च दत्तं च भुक्तशेषं तथैव च।
अभक्ष्याणां च संयुक्तं संसर्गं दुष्टमुच्यते ॥१३०
बिम्बं शिग्रु च कालिङ्गं तिलपिष्टञ्च मूलकम्।
कोशातकीमलाबुञ्च तथा कटूफलमेव च ॥१३१
शा(याली)लिका ना(रि) लिकेत्यादिजातिदुष्टमिहोच्यते।
एवं सर्वाण्यभक्ष्याणि तत्सङ्गान्यपि संत्यजेत् ॥१३२
तथैवाभक्ष्यभोक्तॄणां हरिवासरभोजिनाम्।
लोकायतिकविप्राणां देवतान्तरसेविनाम् ॥१३३
अवैष्णवानामपि च संसर्गं दूरतस्त्यजेत् ॥१३४
पकान्नाद्यं यथा पक्वं वाग्यतो नियतेन्द्रियः।
सम्मार्जयेच्छुभतरं वारिणा वाससैव च ॥१३५
करकैरपिधायाथ चक्रैर्वाङ्कयेत्ततः।
गन्धेन वा हरिद्रेण अरैनाप्यथ वा लिखेत् ॥१३६

सुदर्शनं पाञ्चजन्यं भाण्डाना यद्ययोगिनाम् ।
कुशोत्तरे शुचौ देशे विन्यस्य कुशवारिणा ॥१३७
संप्रोक्ष्य मन्त्ररत्नेन वस्त्रेणाऽऽच्छादयेत्ततः ।
क्षालयित्वाऽथ देवस्य भाजनानि शुभैर्जलैः ॥१३८
अभिपूर्य ततो दद्याद्भोजयेच्च विशेषतः ।
भोजयेदागतान् काले सखिसम्बन्धिबान्धवान् ॥१३६
बालान् वृद्धान् भोजयित्वा भर्तारं भोजयेत्ततः ।
स्वयं हृष्टा ततोऽश्नीयाद्भर्तुर्भुक्तावशेषितम् ॥१४०
पशाचिकाना यक्षाणा शक्ताना लिङ्गधारिणाम् ।
द्वादशीविमुखानां च संलापादि विवर्जयेत् ॥१४१
शैवबौद्धस्कान्दशाक्तस्थानानि न विशेत् क्वचित् ।
वर्जयेत्तत्समीपस्थं जलपुष्पफलादि च ॥१४२
न निरीक्षेत देवानामुत्सवादि कदाचन ।
स्तुतिं वाऽप्यन्यदेवाना न कुर्याच्छृणुयान्न च ॥१४३
कामप्रसङ्गसंलापान् परिहासादि वर्जयेत् ।
अन्यचिह्नाङ्कितं वस्त्रं भूषणासनभाजनम् ॥१४४
वृक्षं पशुं कूपगृहान् भाण्डं चैव विवर्जयेत् ।
अन्यालये हरिं दृष्ट्वा देवतान्तरसंसदि ॥१४५
नार्चयेन्नमणमेष तीर्थसेवा विवर्जयेत् ।
अवैष्णवस्य हस्तात्तु दिव्यदेशादुपागतम् ॥१४६
हरेः प्रसादतीर्थादिं यत्नेन परिवर्जयेत् ।
आकारत्रयसम्पन्नो नवेज्याकर्म्मणि स्थितः ॥१४७

प्राप्त्युपायं फलञ्चैव तथा प्राप्तिविरोधि च ।
ज्ञातव्यमेतदर्थस्य पञ्चकं मन्त्रवित्तमैः ॥१५१
जगतः करणत्वं च तथा स्वामित्वमेव च ।
श्रीशत्वं सगुणत्वञ्च ब्रह्मणो रूपमुच्यते ॥१५२
देहेन्द्रियादिभ्योऽन्यत्वं नित्यत्वादिगुणौघता ।
श्रीहरेर्दास्य धर्मत्वं स्वरूपं प्रत्यगात्मनः ॥१५३
उपायाध्यवसायेन त्यक्त्वा कर्मौघमात्मनः ।
हरेः कृपावलम्बित्वं प्राप्त्युपायमिहोच्यते ॥१५४
सर्वैश्वर्यफलं त्यक्त्वा शब्दादिविषयानपि ।
दास्यैकसुखसङ्गित्वं विष्णोः फलमिहोच्यते ॥१५५
सज्जनस्यापराधित्वं शब्दादिष्वनुरक्तता ।
कृत्यस्य च परित्यागो ह्यकृत्यकरणं तथा ॥१५६
द्वादशीविमुखत्वं च विरोधि स्यात् फलस्य हि ।
अर्थपञ्चकमेतद्धि ज्ञातव्यं स्यान्मुमुक्षुभिः ॥१५७
विहितं सकलं कर्म विष्णोराराधनं परम् ।
निबोध तन्नृपश्रेष्ठ ! भोगार्थं परमात्मनः ॥१५८

धृत्याऽस्यस्य तरोरस्य सुदृढं मूलमुच्यते।
त्यागेन चैव धर्मस्य निषिद्धाचरणेन च ॥१५९
आज्ञातिक्रमणाद्विद्वान् पतत्येव न संशयः।
ज्योतिष्टोमादयः सर्वे यज्ञा वेदेषु कीर्तिताः ॥१६०
पुण्यव्रताः पुराणोक्ता दाना नैमित्तिकादिषु।
विष्णोर्भोगतया सर्वाः कर्तव्या वैष्णवोत्तमैः ॥१६१
यस्तूपायतया कुर्यं नित्यनैमित्तिकादिकम्।
सत्कर्म कुरुते विष्णोर्वैष्णवः स उदीरितः ॥१६२
विष्णो रक्षतया यस्तु सत्कर्म कुरुते बुधः।
स एकान्तीति मुनिभिः प्रोच्यते वैष्णवोत्तमः ॥१६३
यस्तु भोगतया विष्णोः सत्कृत्यं कुरुते सदा।
स भवेत्परमैकान्ती महाभागवतोत्तमः ॥१६४
वर्जनीयमकृत्यन्तु सर्वेषा करणै स्त्रिभिः।
अकामतस्तु यत्पापं प्रायश्चित्ताद्विनश्यति ॥१६५
अकृत्यं वैष्णवैः पापबुध्या शास्त्रविरोधितः।
एकान्त परमैकान्ति रुच्यभावाच्च सन्त्यजेत् ॥१६६
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मं यस्त्यजेद्वैष्णवाधम.।
स पाषण्डोति विज्ञेयः सर्वलोकेषु गर्हितः ॥१६७
अकृत्यकरणाद्वाऽपि कृत्यस्याकरणादपि।
द्वादशीविमुखत्वेन पतत्येव न संशयः ॥१६८
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सत्कृत्यं सर्वदा चरेत्।
आज्ञातिक्रमणाद्विष्णो र्मुक्तोऽपि विनिपात्यते ॥१६९

समस्तयज्ञभोक्तारं ज्ञात्वा विष्णुं सनातनम्।
दैवं पैत्रं तथा यज्ञं कुर्यान्नतु परित्यजेत् ॥१७०
त्रिदण्डमवलम्बन्ते यतयो ये महाधियः।
तेषामपि हि कर्तव्यं सत्कृत्यमितरेषु किम् ॥१७१
ब्रह्म ब्रह्मा ब्राह्मणाश्च त्रितयं ब्राह्ममुच्यते।
तस्माद् ब्राह्मेणविधिना परं ब्रह्माणमर्चयेत् ॥१७२
समस्तयज्ञभोक्तारमज्ञात्वा विष्णुमव्ययम्।
वेदोदितं यः कुरुते स लोकायतिकः स्मृतः ॥१७३
यस्तु वेदोदितं धर्मन्त्यक्त्वा विष्णुं समर्चयेत्।
स पाषण्डत्वमापन्नो नरकं प्रतिपद्यते ॥१७४
वेदाः प्राणा भगवतो वासुदेवस्य सर्वदा।
तदुक्तकर्माकुर्वाणः प्राणहर्ता भवेद्धरेः ॥१७५
विष्णोराराधनाद्वेदं विना यस्त्वन्यकर्मणि।
प्रयुञ्जीत विमूढात्मा वेदहन्ता न संशयः ॥१७६
वत्सं माता लेढि यथा तथा लेढि स मातरम्।
श्रुतं विष्णोः प्रियं ज्ञात्वा विष्णुं वेदेन वै यजेत् ॥१७७
तस्माद्वेदस्य विष्णोश्च संयोगो यस्तु दृश्यते।
स एव परमो धर्मो वैष्णवानां यथा नृप ! ॥१७८
कश्चित् पुरा नृपश्रेष्ठ ! काश्यपो ब्राह्मणोत्तमः।
शाण्डिल्य इति विख्यातः सर्वशास्त्रविशारदः ॥१७९
स तु धर्मप्रसङ्गेन विष्णोराराधनं प्रति।
अवैदिकेन विधिना कृतवान् धर्मसंहिताम् ॥१८०

अवलम्ब्य मतं तस्य केचिदत्र महर्षयः ।
अवैदिकेन मार्गेण पूजयन्ति स्म केशवम् ॥१८१
अशास्त्रविहितं धर्मं सर्वे कुर्वन्ति मानवाः ।
स्वाहास्वधावषट्कारवर्जितं स्यान्महीतलम् ॥१८२
तत क्रुद्धो जगन्नाथः शङ्खचक्रगदाधरः ।
इदमाह मुनिश्रेष्ठं शाण्डिल्यममितौजसम् ॥१८३
दुर्बुद्धे ! मामकं धर्मं परमं वैदिकं महत् ।
अवैदिकक्रियाजुष्टं प्रागल्भ्यात् कृतवानसि ॥१८४
यस्मादवैदिकं धर्मं प्रवर्तयसि मां द्विज ! ।
तस्मादवैदिकं लोकं निरयं गच्छ दारुणम् ॥१८५
तद्वाक्यादेव देवस्य शाण्डिल्योऽभूद्भयाकुलः ।
स्तुवन् प्राह जगन्नाथं प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥१८६
त्राहि त्राहीहि लोकेश ! मां विभो ! सापराधिनम् ।
ततः स कृपया विष्णुर्भगवान् भूतभावनः ॥१८७
दिव्यवर्षशतं विप्र ! भुक्त्वा नरकयातनाम् ।
उत्पत्स्यसे भृगोर्वंशे जमदग्निरितीरितः ॥१८८
तत्राऽऽराध्य पुनर्मां तु वैदिकेनैव धर्मतः ।
गच्छ तस्मिन् मुनिश्रेष्ठ ! मम लोकं सुनिर्मलम् ॥१८९
इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत ।
शाण्डिल्यो निरयं प्राप्य पुनरुत्पद्य भूतले ॥१९०
वेदोक्तविधिना विष्णुमर्चयित्वा सनातनम् ।
विशुद्धभावात् सम्प्राप्य तद्धाम परमं हरेः ॥१९१

तस्माद्वैदिकं धर्मं दूरतः परिवर्जयेत् ।
वैदिकेनैव विधिना भक्त्या सम्पूजयेद्धरिम् ॥१६२
श्रौतेन विधिना चक्रं धृत्वा वै बाहुमूलयोः ।
धृतोर्ध्वपुण्ड्रः शुद्धात्मा विधिनैवार्चयेद्धरिम् ॥१६३
कर्मणा मनसा वाचा न प्रमाद्येत् सनातनात् ।
न प्रमाद्येत्परं धर्मात् श्रुतिस्मृत्युक्तगौरवात् ॥१६४
सुशीलन्तु परं धर्मं नारीणां नृपसत्तम ! ।
शीलभङ्गेन नारीणां यमलोकः सुदारुणः ॥१६५
मृते जीवति वा पत्यौ या नान्यमुपगच्छति ।
सैव कीर्तिं मवाप्नोति मोदते रमया सह ॥१६६
पतिं या नातिचरति मनोवाक्कायकर्मभिः ।
सा भर्तृलोकमाप्नोति यथैवारुन्धती तथा ॥१६७
आर्तार्ऽऽर्ते मुदिते हृष्टा प्रोषिते मलिना कृशा ।
मृते म्रियेत या पत्यौ सा स्त्री ज्ञेया पतिव्रता ॥१६८
या स्त्री मृतं परिष्वज्य दग्धा चेद्धव्यवाहने ।
सा भर्तृलोकमाप्नोति हरिणा कमला यथा ॥१६६
ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा कृतघ्नं वाऽपि मानवम् ।
यमादाय मृता नारी तं भर्तारं पुनाति हि ॥२००
साध्वीनामिह नारीणामग्निप्रपतनादृते ।
नान्यो धर्मोऽस्ति विज्ञेयो मृते भर्तरि कुत्रचित् ॥२०१
वैष्णवं पतिमादाय या दग्धा हव्यवाहने ।
सा वैष्णवपदं याति यत्र गच्छन्ति योगिनः ॥२०२

मृते भर्तरि या नारी भवेद्यदि रजस्वला ।
चिताग्निं संग्रहे तावत् स्नात्वा तस्मिन् प्रवेशयेत् ॥२०३
गर्भिणी नानुगन्तव्या मृतं भर्तारमव्ययम् ।
ब्रह्मचर्यव्रतं कुर्याद्यावज्जीवमतन्द्रिता ॥२०४
केशरञ्जनताम्बूलगन्धपुष्पादिसेवनम् ।
भूषितं रङ्गवस्त्रञ्च कांस्यपात्रे च भोजनम् ॥२०५
द्विवारं भोजनञ्चाक्ष्णोरञ्जनं वर्जयेत्सदा ।
स्नात्वा शुक्लाम्बरधरा जितक्रोधा जितेन्द्रिया ॥२०६
न कल्क कुहका साध्वी तन्द्रालस्य विवर्जिता ।
सुनिर्मला शुभाचारा नित्यं सम्पूजयेद्धरिम् ॥२०७
क्षितिशायी भवेद्रात्रौ शुचौ देशे कुशोत्तरे ।
ध्यानयोगपरा नित्यं सतां सङ्ग व्यवस्थिता ॥२०८
तपश्चरणसंयुक्ता यावज्जीवं समाचरेत् ।
यावत्तिष्ठेन्निराहारा भवेद्यदि रजस्वला ॥२०९
सभर्तृका सती याऽपि पाणिपूरान्नभोजनम् ।
एकवारं समश्नीयाद्रजसा च परिप्लुता ॥२१०
एवं सुनियताहारा सम्यग्व्रतपरायणा ।
भर्त्रा सह समाप्नोति वैकुण्ठपदमव्ययम् ॥२११
दग्धव्या साऽग्निहोत्रेण भर्तुः पूर्वं मृता तु या ।
स्वाश्रमाग्निं समादाय भर्त्ता पूर्ववदाचरेत् ॥२१२
कृत्वा कुशमयीं पत्नीं यावज्जीवमतन्द्रितः ।
जुहुयादग्निहोत्रं तु पञ्चयज्ञादिकं तथा ॥२१३

अथ च प्रव्रजेद्विद्वान् कन्थां वाऽपि समुद्वहेत्।
प्रव्रज्यामपि कुर्वीत धर्म वेदोदितं महत् ॥२१४
आत्मन्यग्निं समारोप्य जुहुय द् स्सवान् सदा।
मनसा वा प्रकुर्वीत नित्यनैमित्तिक क्रियाः ॥२१५
गृहस्थो वा वनस्थो वा यतिर्वाऽपि भवेद् द्विजः।
अनाश्रमी न तिष्ठेत यावज्जीवं द्विजोत्तमः ॥२१६
वर्णाश्रमेषु सर्वेषा पूजनीयो जनार्दनः।
न व्यापकेन मन्त्रेण सदैव च महीपते ॥२१७
व्यापकाना च सर्वेषा ज्यायानष्टाक्षरो मनुः।
अष्टाक्षरस्य जप्ता तु साक्षान्नारायण. स्वयम् ॥२१८
सन्यासं च समुद्रध्य सर्पिश्छन्दोऽधि दैवतम्।
न (स) दीक्षा विधि न(स)न्यासं सार्थ म. मकुद् हृतम् ॥२१९
स्नात्वा शुद्धः प्रसन्नात्मा कृतकृत्यो जनार्दनम्।
मनसाऽभ्यर्चयित्वा वा जपेन्म न्त्रं सदा बुधः ॥२२०
दानप्रतिग्रहौ यागं स्वाध्यायं पितृतर्पणम्।
पितृक्रियाष्टाक्षरस्य जप्ता कुर्यादतन्द्रितः ॥२२१
धृतोर्ध्व पुण्ड्रदेहश्च चक्राङ्कितभुजस्तथा।
अष्टाक्षरं जपन्नित्यं पुनाति भुवनत्रयम् ॥२२२
जपेद्योगतया मन्त्रं सततं वैष्णवोत्तमः।
न साधनतया जप्यं कर्तव्यं विष्णुतत्परैः ॥२२३
अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरन्तु वा।
त्रिसन्ध्यासु जपेन्मन्त्रं तदर्थमनु चिन्तयन् ॥२२४

उपोष्य पूर्वदिवसे तथा स्नात्वा विधानतः।
आचार्यं संश्रयेत् पूर्वं महाभागवतं द्विजः ॥२२५
आचार्यो विष्णुमभ्यर्च्य पवित्रं चापि पूजयेत्।
पुरतो वासुदेवस्य ह्यग्न्याधानान्समाचरेत् ॥२२६
प्रजपेद्दस्य सूक्तेन पवित्रन्तेवतेत्यृचा।
पवमानस्य आद्येन ऋग्भिश्चतसृभिः क्रमात् ॥२२७
आज्यं हुत्वा ततश्चक्रं तदग्नौ प्रतपेद् गुरुः।
चरणं पवित्रमिति यजुषा तच्चक्रेणाङ्कयेद्भुजम् ॥२२८
वामां सम्प्रतपेत्पश्चात्ताञ्च जन्येन देशिकः ॥२२९
अग्निर्मन्थेति यजुषा तद्धोमाग्नौ प्रतप्य वै।
ततस्तु पार्थिवैर्मृ भिर्हुत्वा पुण्ड्राणि धारयेत् ॥२३०
अतो देवेति सूक्तेन विष्णोर्नुकमणेन च।
पूजयेद्द्वादशभिर्वं केशवादीननुक्रमात् ॥२३१
कुशग्रन्थिषु संपूज्य जुहुयात्ताभिरेव तु।
हुत्वाऽथ चरुणा सम्यक् मृदा शुभ्रेण देशिकः ॥२३२
ललाटादिषु चाङ्गेषु ऋग्भिस्ताभि क्रमेण वै।
नामभिः केशवाद्यैश्च सच्छिद्राण्येव धारयेत् ॥२३३
श्रिये जात इति ह्यृचा कुङ्कुमङ्केषु धारयेत्।
परोमात्रेति सूक्तेन उपस्थाय जनार्दनम् ॥२३४
होमशेषं समाप्याय मूर्त्युद्वापनमाचरेत्।
एवं पुण्ड्रक्रियां कृत्वा नाम दद्यात्तत. परम् ॥२३५

प्रवः पान्तमिति सूक्तेन नाममूर्ति समर्चयेत् ।
गवाज्यं प्रत्यृचं हुत्वा नाम दद्याच वैष्णवः ॥२३६
अभिप्रियाणीति सूक्तेनोपस्थाय जनार्दनम् ।
प्रदक्षिण नमस्कारौ कृत्वा शेषं समाचरेत् ॥२३७
मन्त्रदीक्षा विधानन्तु श्रौतं मुनिभिरीरितम् ।
नैवाहिता भवेद्दीक्षा न पृथक्तेन वक्ष्यते ॥२३८
अदीक्षितो भवेद्यस्तु मन्त्रं वैष्णवमुत्तमम् ।
अर्चनं वाऽपि कुरुते न संसिद्धिमवाप्नुयात् ॥२३९
नादीक्षितः प्रकुर्वीत विष्णोराराधनक्रियाम् ।
श्रौतं वा यदि वा स्मार्त्तं दिव्यागममथापि वा ॥२४०
तस्मादुत्तमकारेण दीक्षितो हरिमर्चयेत् ।
पूर्वेद्युरुपोष्य गुरुणा नद्यां स्नात्वा कृतक्रियः ॥२४१
आचार्यः पूजयेद्विष्णुं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।
ईशान्यादि चतुर्दिक्षु संस्थाप्य कलशान् शुभान् ॥२४२
तेषु गन्धानि निक्षिप्य चतुर्मूर्तीन् समर्चयेत् ।
वाराहं नारसिंहञ्च वामनं कृष्णमेव च ॥२४३
तद्विष्णोरिति च द्वाभ्यां वाराहं पूजयेत्ततः ।
प्रतद्विष्णु इति ऋचा नारसिंहमनामयम् ॥२४४
न ते विष्णो रित्यनेन वामनं पूजयेत्तथा ।
वषट्तेविष्णव इति कृष्णं संपूजयेत् द्विजः ॥२४५
संपूज्याऽऽवरणं सर्वं गन्धपुष्पैर्विधानतः ।
प्रतिष्ठाप्य ततो वह्निमिध्माधानान्तमाचरेत् ।
चतुर्भिर्वैष्णवैः सूक्तैः पायसं मधुमिश्रितम् ॥२४६

हुत्वाऽऽज्यं जुहुयात्पश्चाच्छ्रीसूक्तेन समाहितः।
अग्निमील इत्यनुवाकेन सावित्र्या वैष्णवेन च ॥२४७
सर्वेश्च वैष्णवैर्मन्त्रैः पृथगष्टोत्तरं शतम्।
हुत्वा वेदसमाप्तिश्च जुहुयाद्देशिकोत्तमः ॥२४८
ततो भद्रासने शिष्यमुपविश्याभिषेचयेत्।
चतुर्भिर्वैष्णवैर्मन्त्रैः सूक्तैस्तत्कलशोदकैः ॥२४९
ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैः शिष्यमभिषिच्याऽथ देशिकः।
कौपीनं कटिसूत्रञ्च तथा वस्त्रञ्च धारयेत् ॥२५०
ऊर्ध्वपुण्ड्राणि पद्माक्ष तुलसीमालिकेऽपि च।
कुशासने समासीनमाचान्तं विनयान्वितम् ॥२५१
अध्यापयेद्वैष्णवानि सूक्तानि विमलानि च।
व्यापकान् वैष्णवान् मन्त्रानन्यांश्चापि विधानतः ॥२५२
तदर्थन्यासमुद्रादि सर्षिश्छन्दोऽधिदैवतम्।
सन्निविश्य सद्वृत्तौ शासयेच्छासनाच्युतैः ॥२५३
शासितो गुरुणा शिष्यः सद्वृत्तौ सत्पथे स्थितः।
अर्चयेत्परमैकान्त्य सिद्धये हरिमव्ययम् ॥२५४
आचार्यालयमनु प्राप्तं पिप्रहं सुमनोहरम्।
लब्ध्वाऽथ विधिना विष्णोः पूजयेत्तदनुज्ञया ॥२५५
पूर्वं हि पूर्ववत्पूज्यः श्रोतैर्वेवोपचारकैः।
ताभिरेव च हुत्वाऽथ ऋग्भिराज्यं तथ क्रमात् ॥२५६
शाल्यामृतान्नमाज्येन हुत्वाऽग्नि वैष्णवोत्तमः।
अध्यापयित्वा तान् मन्त्रान् वैदिकान् वैदिकोत्तमः ॥२५७

सा दुर्गतिं नयत्येन वैष्णवं वीतकल्मषम् ।
अर्चयित्वा जगन्नाथं वैष्णवः पुरुषोत्तमम् ॥२६९
तदाधरजल्पेण यजेद्देवान् समन्ततः ।
अन्यथा नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम् ॥२७०
वासुदेवं जगन्नाथमर्चयित्वैव मानवः ।
प्राप्नोति महदैश्वर्यं ब्रह्मेन्द्रत्वादिकं क्षणात् ॥२७१
मनसाऽपि जलेनापि जगन्नाथं जनार्दनम् ।
सम्प्राप्नोत्यमलां सिद्धिं जगत्सर्वं समश्रितम् ॥२७२
हृषीकेशं त्रयीनाथं लक्ष्मीशं सर्वदं हरिम् ।
तं विना पुण्डरीकाक्षं कोऽर्चयेदितरान् सुरान् ॥२७३
नारायणं परित्यज्य योऽन्यं देवमुपासते ।
स्वपतिं नृपतिं हित्वा यथा स्त्री पुरुषाधमम् ॥२७४
विष्णोर्निवेदितं द्रव्यं देवेभ्यो जुहुयात्तथा ।
पितृभ्यश्चैव तद्दद्यात्सर्वमानन्त्यमश्नुते ॥२७५
निर्माल्यमितरेषां तु यदन्नाद्यं दिवौकसाम् ।
उपभुज्य नरो याति ब्रह्महत्यां न संशयः ॥२७६
नैवेद्य भोजनं विष्णोस्तत्पादाम्बु निषेवणम् ।
तुलसी स्वादनं नृणां पापिनामपि मुक्तिदम् ॥२७७
एकादश्युपवासश्च शङ्खचक्रादिधारणम् ।
तुलस्या पूजनं विष्णोस्त्रितयं वैष्णवं स्मृतम् ॥२७८
अवैष्णवः स्याद्यो विप्रो वहुशास्त्रज्ञोऽपि वा ।
सजीवन्नेव चण्डालो मृतः श्वानोऽभिजायते ॥२७९

क्रतुसाहस्रिणं चाऽपि लोके विप्रमवैष्णवम्।
चण्डालमिव नेक्षेत वर्जयेत्सर्वकर्मसु ॥२८०
भगवद्भक्तिदीप्ताग्निदग्धदुर्जातिकल्मषः।
चण्डालोऽपि बुधैः श्लाघ्यो न तु पूज्यो ह्यवैष्णवः ॥२८१
शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रादिरहितं ब्राह्मणाधमम्।
पूजयिष्यति यः श्राद्धे सर्वकर्मास्य निष्फलम् ॥२८२
तिर्यक्पुण्ड्रधरं विप्रं यः श्राद्धे भोजयिष्यति।
पितरस्तस्य यान्त्येव कालसूत्रं सुदारुणम् ॥२८३
ऊर्ध्वपुण्ड्रधरं विप्रं चक्राङ्कितभुजं तथा।
पूजयिष्यति यः श्राद्धे गयाश्राद्धायुतं लभेत् ॥२८४
शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्राद्यैरन्वितं वैष्णवं द्विजम्।
भक्त्या सम्पूजयेद्यस्तु दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥२८५
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च।
वासयन्ति पितरस्तस्य विष्णुलोकं सुनिर्मलम् ॥२८६
ऊर्ध्वपुण्ड्रधरं विप्रं तप्तचक्राङ्कितांसकम्।
श्राद्धे सम्पूजयेद्यस्तु गयाश्राद्धायुतं लभेत् ॥२८७
तप्तचक्रेण विधिना बाहुमूलेन लाञ्छितः।
पुनाति सकलं लोकं नारायण इवाघभित् ॥२८८
अविद्यो वा सविद्यो वा शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रधृत्।
ब्राह्मणः सर्वलोकेषु पूज्यमानो हरिर्यथा ॥२८९
दुराशी वा दुराचारी शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रधृत्।
नृणां हन्ति समस्ताघं तमः सूर्योदये यथा ॥२९०

सा दुर्गतिं नयत्येव वैष्णवं वीतकल्मषम्।
अर्चयित्वा जगन्नाथं वैष्णवः पुरुषोत्तमम् ॥२६९
तदावरणरूपेण यजेद्देवान् समन्ततः।
अन्यथा नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम् ॥२७०
वासुदेवं जगन्नाथमर्चयित्वैव मानवः।
प्राप्नोति महदैश्वर्यं ब्रह्मेन्द्रत्वादिकं क्षणात् ॥२७१
मनसाऽपि जलेनापि जगन्नाथं जनार्दनम्।
सम्प्राप्नोत्यमलां सिद्धिं जगत्सर्वं समर्चितम् ॥२७२
हृषीकेशं त्रयीनाथं लक्ष्मीशं सर्वदं हरिम्।
तं विना पुण्डरीकाक्षं कोऽर्चयेदितरान् सुरान् ॥२७३
नारायणं परित्यज्य योऽन्यं देवमुपासते।
स्वपतिं नृपतिं हित्वा यथा स्त्री पुरुषाधमम् ॥२७४
विष्णोर्निवेदितं द्रव्यं देवेभ्यो जुहुयात्तथा।
पितृभ्यश्चैव तद्दद्यात्सर्वमानन्त्यमश्नुते ॥२७५
निर्माल्यमितरेषां तु यन्नाद्यं द्विजसत्तम।
उपभुज्य नरो याति ब्रह्महत्यां न संशयः ॥२७६
नैवेद्य भोजनं विष्णोः स्तत्पादाम्बु निषेवणम्।
तुलसी स्वादनं नृणां पापिनामपिमुक्तिदम् ॥२७७
एकादश्युपवासश्च शङ्खचक्रादिधारणम्।
तुलस्या पूजनं विष्णोः त्रितयं वैष्णवं स्मृतम् ॥२७८
अवैष्णवः स्याद्यो विप्रो बहुशास्त्रश्रुतोऽपि वा।
सजीवन्नेव चण्डालो मृतः श्वानोऽभिजायते ॥२७९

महासाहस्रिणं वाऽपि लोके विप्रमवैष्णवम् ।
चण्डालमिव नेक्षेत वर्जयेत्सर्वकर्मसु ॥२८०
भगवद्भक्तिदीप्ताग्निदग्धदुर्जातिकल्मषः ।
चण्डालोऽपि बुधैः श्लाघ्यो न तु पूज्यो ह्यवैष्णवः ॥२८१
शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रादिरहितं ब्राह्मणाधमम् ।
पूजयिष्यति यः श्राद्धे सर्वकर्मास्य निष्फलम् ॥२८२
तिर्यक्पुण्ड्रधरं विप्रं यः श्राद्धे भोजयिष्यति ।
पितरस्तस्य यान्त्येव कालसूत्रं सुदारुणम् ॥२८३
ऊर्ध्वपुण्ड्रधरं विप्रं चक्राङ्कितभुजं तथा ।
पूजयिष्यति यः श्राद्धे गया श्राद्धायुतं लभेत् ॥२८४
शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्राद्यैरन्वितं वैष्णवं द्विजम् ।
श्रद्धया सम्पूजयेद्यस्तु दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥२८५
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ।
यास्यन्ति पितरस्तस्य विष्णुलोकं सुनिर्मलम् ॥२८६
ऊर्ध्वपुण्ड्रधरं विप्रं तप्तचक्राङ्कितांसकम् ।
श्राद्धे सम्पूजयेद्यस्तु गयाश्राद्धायुतं लभेत् ॥२८७
तप्तचक्रेण विधिना बाहुमूलेन लाञ्छितः ।
पुनाति सकलं लोकं नारायण इवाघमित् ॥२८८
अविद्यो वा सविद्यो वा शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रधृक् ।
ब्राह्मणः सर्वलोकेषु पूज्यमानो हरिर्यथा ॥२८९
दुराशी वा दुराचारी शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रधृत् ।
नृणां हन्ति समस्तार्घं तमः सूर्योदये यथा ॥२९०

चक्राङ्कितस्य विप्रस्य पादप्रक्षालितं जलम् ।
पुनाति सकलं लोकं यथा त्रिपथगानदी ॥२९१
तिस्रः कोट्यर्द्ध कोटी च तीर्थानि भुवनत्रये ।
चक्राङ्कितस्य विप्रस्य पादे तिष्ठन्त्यसंशय. ॥२९२
चक्राङ्कितस्य विप्रस्य पादप्रक्षालितं जलम् ।
पीत्वा पातकसाहस्रैर्मुच्यन्ते नात्र संशयः ॥२९३
श्राद्धे दाने व्रते यज्ञे विवाहे चोपनायने ।
चक्राङ्कितं विप्रमेव पूजयेदितरान्न तु ॥२९४
विष्णुचक्राङ्कितो विप्रो भुञ्जानोऽपि यतस्ततः ।
न लिप्यते स पापेन तमसैव प्रभाकर· ॥२९५
चक्राङ्कित भुजो विप्रः पङ्क्ति मध्ये तु भुञ्जते ।
पुनाति सकलां पङ्क्तिं गङ्गे वोत्तरवाहिनी ॥२९६
चक्राङ्कित भुजं विप्रं यो भूम्यामभिवादयेत् ।
ललाटे पांशु संख्यानि विष्णुलोके महीयते ॥२९७
ब्राह्मण क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा वैष्णव पुमान् ।
अर्चयित्वेतरान् देवान् निरयं यान्त्यसंशयम् ॥२९८
निजगोत्रावरणं हित्वा पूजयित्वेतरान् सुरान् ।
वैष्णवः पुरुषो याति कालसूत्रमधोमुख. ॥२९९
महापापी महापातकैरन्वितो यदि वैष्णव· ।
मन्वादि धर्मशास्त्रोक्तं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥३००
प्रायश्चित्तविशेषं तु पश्चात् कुर्वीत वैष्णवः ।
वयासिरीं वैष्णवीं च पविश्रीश्च समाचरेत् ॥३०१

षण्णवानान्तु विप्राणां पश्चात्पादजलं पिबेत् ।
पूर्तौ न परिपूर्णोऽथ कर्मस्वधिकृतो भवेत् ॥३०२
मन्त्ररत्नाथविच्छान्त नवेज्याव मंसंयुतः ।
द्वादशी नियतो विप्रः स एव पुरुषोत्तमः ॥३०३
किमत्र बहुनोक्तेन सारं वक्ष्यामि ते नृप ! ।
एकादश्युपवासश्च शङ्खचक्रादिधारणम् ॥३०४
तदीयानां पूजनञ्च वैष्णवं त्रितयं स्मृतम् ।
पुण्याद्विष्णुदिनादन्यन्नोपोष्यं देवमवै सदा ॥३०५
तथा भागवतादन्यो नार्चनीयो हि कुत्रचित् ।
भगवन्तमनुद्दिश्य न दद्या न यजेत् क्वचित् ॥३०६
नावैष्णवान्नं भुञ्जीत दद्यान्ना वैष्णवाय च ।
नार्चयेदितरान् देवान्न तिर्यग्धारयेत्तथा ॥३०७
एकादश्यान्न भुञ्जीत वसेन्नावैष्णवैः सह ।
अष्टाक्षरस्य जप्तारं शङ्खचक्रधरं द्विजः ॥३०८
अथमत्य विमूढात्मा सद्यश्चण्डालतां व्रजेत् ।
वैष्णवं ब्राह्मणं गाश्च तुलसीं द्वादशीं तथा ॥३०९
अनर्चयित्वा मूढात्मा नित्यं दुर्गतिं व्रजेत् ।
विष्णोः प्रधानतनयो विप्रा गावश्च वैष्णवाः ॥३१०
शक्त्या संपूज्य तानेव याति विष्णोः परं पदम् ।
एकादश्युपवासश्च द्वादश्यां विप्रपूजनम् ॥३११
नित्यमामलकस्नानं पापिनामपि मुक्तिदम् ।
पक्षे पक्षे हरि दिने चक्राङ्कितभुजे नृप ! ॥३१२

संपूज्यमाने विप्रेन्द्रे हरिस्तेषां प्रसीदति ।
अभावे वैष्णवे विप्रे संप्राप्ते हरि वासरे ॥३१३
तद्वत्सम्पूजयेद् गावं तुलसीं वाऽपि वैष्णवः ।
अग्निहोत्रन्तु जुहुयात्सायं प्रातर्द्विजोत्तमः ॥३१४
पञ्चयज्ञांश्च कुर्वीत वैष्णवान् विष्णुमर्चयेत् ।
तदर्पितं स भुञ्जीत पिवेत्तत्पादवारि वै ॥३१५
एकादश्या न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ।
पूजयेद्वैष्णवं विप्रं द्वादश्यामपि वैष्णवः ॥३१६
विष्णोः प्रसाद तुलसीं तीर्थं वाऽपि द्विजोत्तमः ।
उपवासदिने वाऽपि प्राशयेदविचारयन् ॥३१७
उपवासदिने यस्तु तीर्थं वा तुलसीदलम् ॥३१८
न प्राशयेद्विमूढात्मा रौरवं नरकं व्रजेत् ।
हर्य्यर्पितन्तु यश्चान्नं तीर्थं वा पितृकर्मणि ॥३१९
दद्यात् पितॄणां यद्भक्ष्यं गयाश्राद्धायुतं लभेत् ।
हरेर्निवेदितं भक्त्या यो दद्याच्छ्राद्धकर्मणि ॥३२०
पितरस्तस्य यान्त्येव तद्विष्णोः परमं पदम् ।
तीर्थं वा तुलसीपत्रं यो दद्यात्पितृदैवतम् ॥३२१
आकल्पकोटि पितरः परितृप्ता न संशयः ।
यः श्राद्धकाले मूढात्मा पितॄणाञ्च दिवौकसाम् ॥३२२
न ददाति हरेर्भुक्तं तस्य वै नारकी गतिः ।
हर्यर्पितन्तु यच्चान्नं यच्च पादोदकं हरेः ॥३२३

तुलसीं वा पितृणाञ्च दत्त्वा श्राद्धायुतं लभेत् ।
सर्वं यज्ञमयं विष्णुं मत्वा देवं जनार्दनम् ।
आमन्त्र्य वैष्णवान् विप्रान् कुर्याच्छ्राद्धमतन्द्रितः ॥३२४
प्रत्यब्दं पार्वणश्राद्धं कुर्यात्पित्रोर्मृतेऽहनि ।
अन्यथा वैष्णवो याति ब्रह्महत्यां न संशयः ॥३२५
अमायां कृष्णपक्षे च पित्र्ये वाऽभ्युदये तथा ।
कुर्यात् श्राद्धं विधानेन विष्णोराज्ञामनुस्मरन् ॥३२६
न कुर्यात् यो विधानेन पितृयज्ञं नराधमः ॥३२७
आज्ञातिक्रमणाद्विष्णोः पतत्येव न संशयः ।
शङ्खचक्रोर्ध्वपुण्ड्रादिचिह्नैः प्रियतमैर्हरेः ॥३२८
अन्वितान् ब्राह्मणानेव पूजयेत्सर्वकर्मसु ।
अश्वत्थिनोऽप्ययज्ञस्य कर्मत्यागिन एव च ॥३२९
वेदस्याप्यनधीतस्य संसर्गं दूरतस्त्यजेत् ।
पित्रोः श्राद्धं प्रकुर्वीत नैकादश्यां द्विजोत्तमः ॥३३०
द्वादश्यान्तत्प्रकुर्वीत नोपवासदिने क्वचित् ।
विष्णोर्जन्मदिने वाऽपि गुरूणाञ्च मृतेऽहनि ॥३३१
वैष्णवेष्टिं प्रकुर्वीत वैदिकं वैष्णवोत्तमः ।
अगम्यागमनं हिंसा मभक्ष्याणाञ्च भक्षणम् ॥३३२
असत्यकथनं स्तेयं मनसाऽपि विवर्जयेत् ।
तप्तचक्राङ्कनं विष्णोरेकादश्यामुपोषणम् ।।३३३
धृतोर्ध्वं पुण्ड्रदेहत्वं तन्मन्त्राणां परिग्रहः ।
नित्यमग्न्यल्कस्नानं देवतान्तरवर्जनम् ।
ध्यानं मन्त्रं जपो होमस्तुलस्याः पूजनं हरेः ॥३३४

अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयः ।
हारीतमेतच्छास्त्रन्तु परमां धर्म्मसंहिताम् ॥३४६
आलोक्य पूजयन् विष्णुं पारमैकान्त्यमश्नुते ।
एतच्छ्रुत्वाम्बरीषस्तु हारीतोक्तिं नृपोत्तमः ॥३४६
ववन्दे परया भक्त्या तमृषिं वैष्णवोत्तम. ।
त्वमेव परमोधर्म्मस्त्वमेव परमं तपः ॥३४७
त्वदङ्घ्रि युगलं प्राप्य सर्वसिद्धिमवाप्नुयाम् ।
महामुनिमिति स्तुत्वा राजर्षिः स महातपाः ॥३४७
प्राप्तवान् परमैकान्त्यं तत्प्रसादात्सुसिद्धिदम् ।
वैशिष्ट्यं पारमैकान्त्य मेतच्छास्त्रं ममाव्ययम् ॥३४८
भारद्वाजादयः सर्वे नृपाश्च जनकादयः ।
योगिनः सनकाद्याश्च नारदाद्याः सुरर्षयः ॥३४६
वसि(शि)ष्ठाद्या वैष्णवाश्च विष्वक् सेनादयः सुराः ।
एतच्छास्त्रानुसारेण पूजयामासुरच्युतम् ॥३५०
परमं वैदिकं शास्त्रमेतद्वैष्णवमुत्तमम् ।
ज्ञात्वैव परमैकान्ती पूजयेद्विष्णुमीश्वरम् ॥३५१

इति वृद्धहारीतस्मृतौ विशिष्टधर्म्मशास्त्रे वृत्त्यधिकारो नाम अष्टमोऽध्याय. ॥

समाप्ताचेयं वृद्धहारीतस्मृतिः ।

समाप्तश्चायं धर्मशास्त्रस्य ( स्मृतिसन्दर्भस्य ) द्वितीयोभागः ।
ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ।

॥ श्रीगणेशायनम ॥

# विनम्र निवेदन

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥

शुक्ल यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र १

ईश्वर का आदेश है कि सृष्टि के सारे प्राणी मेरी ही आत्मा है। ज्ञान के द्वारा प्राणीमात्र की पूर्णरूपेण रक्षा का ध्यान रखते हुए अपना भोग—जो कि प्रकृति द्वारा निर्दिष्ट किया हुआ है—भोगो। (किसी की भी हिंसा मत करो। सभी प्राणी सृष्टि की परिचर्या में पूर्णरूपेण सहायक हैं)। किसी भी प्राणी की शक्ति (दूध) को हरण करने की मन में भावना भी न आने दो इसी में अपना कल्याण है। "अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्त पुरुषार्थ" परमात्मा के आदेश का पालन करने से ही त्रिविध दुःखों की निवृत्ति होगी इसी में मानव जीवन की सार्थकता एवं सफलता निहित है। "तस्माच्छास्त्र प्रमाणम्"

सत्त्व रजस् और तमो गुण की साम्यावस्था के गुणों का अधिष्ठान होने से प्रकृति परमा शक्ति के रूप में और प्रधान पुरुष सदाशिव के रूप में अभिव्यक्त होते हैं, उन्हीं की इच्छानुसार त्रिगुणात्मिका सृष्टि का क्रम बराबर चलता रहता है। इस सृष्टि में सत्त्व गुण प्रधानता से मानव की, रजोगुण प्रधानता से पशुपक्षी की और तमोगुण प्रधानता से कीट पतङ्गादि की उत्पत्ति हुई। ये सब मानव के अविभाज्य अङ्ग हैं।

अत प्राणीमात्र की पूर्णरूपेण रक्षा करते हुए अपनी शक्ति (आत्मबल) की वृद्धि करना ही मानवजीवन का परमलक्ष्य है।

"कामये दुःखतप्ताना प्राणिनामार्तिनाशनम्"

५, ब्राइट रो,
कलकत्ता।

आपका सेवक —
मनसुखराय मोर।

॥ श्री ॥

# अथ द्वितीयभागस्य शुद्धा-शुद्धि-पत्रम्

| पत्राङ्कम् | पङ्क्ति | अशुद्धपाठ | शुद्धपाठ |
|---|---|---|---|
| ६२५ | १ | द्वह्मणे | द्रुमह्मणे |
| ६२६ | ८ | शक्तिपुत्र | शक्तिपुत्र |
| ६२८ | १ | प्रमथो | प्रथमो |
| ६२८ | १६ | सामथ्य | सामर्थ्यं |
| ६२८ | १८ | सद्धम | सद्धर्म |
| ६२६ | ६ | मूर्ख | मूर्ख |
| ६२६ | १७ | दत्वा | दत्त्वा |
| ६३३ | ४ | दत्वा | दत्त्वा |
| ६३४ | ६ | एकपिण्डारस्तु | एकपिण्डास्तु |
| ६३४ | २३ | द्र्वाक् | दर्वाक् |
| ६४१ | ४ | परिवित्तेरस्तु | परिवित्तेस्तु |
| ६४२ | १५ | प्रक्षालाता | प्रक्षालना |
| ६४३ | २१ | तृव | सव |
| ६४५ | २३ | स्प्ठे | स्तिष्ठे |
| ६४६ | ७ | यरस्तु | यस्तु |
| ६४८ | ५ | २८ | ३८ |

| पत्राङ्कम् | पङ्क्तिः | अशुद्धपाठः | शुद्धपाठः |
|---|---|---|---|
| ६४६ | ३ | शुष्यति | शुध्यति |
| ६४६ | १३ | कुर्वन्त्यनुहं | कुर्वन्त्यनुग्रहं |
| ६५० | ४ | तीथं | तीर्थं |
| ६५० | १४ | रतथैव | स्तथैव |
| ६५१ | ७ | घ्वायः | ध्यायः |
| ६५४ | ११ | रपृष्ट्वा | स्पृष्ट्वा |
| ६५५ | ४ | स्वदेहादि | स्वदेहादि |
| ६५७ | ६ | अनाहितास्वयो | अनाहिताग्नयो |
| ६५८ | १७ | निष्कति. | निष्कृतिः |
| ६६८ | १५ | निष्कृमिर्न | निष्कृतिर्न |
| ६७२ | ६ | क वेत् | कथं भवेत् |
| ६७३ | ३ | मृवा | मृचा |
| ६७३ | ६ | घृय | धृत्य |
| ६७४ | २२ | सवाा | सर्वेषा |
| ६७५ | १८ | स्वावम्भुवो | स्वायम्भुवो |
| ६७७ | ३ | दानमतेपु | दानमेतेपु |
| ६७७ | ५ | नान्यदा | नान्यथा |
| ६७८ | ६ | जुहुयाद्धविः | जुहुयाद्धविः |
| ६७८ | १७ | तिष्ठतु | तिष्ठतु |
| ६८४ | ८ | कल्पान्रान्तरे | कल्पान्तरान्तरे |
| ६८६ | १६ | युत्रस्य | पुत्रस्य |

| पत्राङ्कम् | पङ्क्तिः | अशुद्धपाठः | शुद्धपाठः |
| --- | --- | --- | --- |
| ६८६ | १४ | वा | वा |
| ६६१ | १४ | रतथां | स्तथा |
| ६६१ | १४ | यरतस्यां | यस्तस्यां |
| ६६१ | १६ | प्रक्षSSल्या | प्रक्षाSSल्या |
| ६६५ | २ | दूदूध्व | दूदूध्वं |
| ६६५ | २१ | विस्मय | विस्मयः |
| ६६६ | १८ | मान्त्रं | मन्त्रं |
| ६६६ | २१ | बुधैः | बुधैः |
| ६६६ | २ | रवप्सु | स्वप्सु |
| ६६६ | ६ | नंवाभिनि | नयाभिर्नि |
| ६६६ | १० | | तं |
| ७०२ | ६ | विष्ण | विष्णु |
| ७०३ | १४ | मूर्धेनि | मूर्धनि |
| ७०५ | १८ | पितृनेते | पितृनेतै |
| ७०७ | १ | २०७ | ७०७ |
| ७०६ | २ | पितन् | पितृन् |
| ७०६ | ४ | पितणा | पितृणा |
| ७०६ | १२ | ब्रह्मण | ब्रह्मणः |
| ७११ | ८ | मानुपम् | मानुपम् |
| ७१२ | ४ | पुन्नपुंसकं | पुन्नपुंसकं |
| ७१६ | ७ | ब्राह्मणा | ब्राह्मणा |

| पत्राङ्कम् | पङ्क्तिः | अशुद्धपाठः | शुद्धपाठः |
|---|---|---|---|
| ६४६ | ३ | शुष्यति | शुध्यति |
| ६४६ | १३ | कुर्वन्त्यनुहं | कुर्वन्त्यनुग्रहं |
| ६५० | ४ | वीथं | वीर्य |
| ६५० | १४ | रतयैव | स्तयैव |
| ६५१ | ७ | ध्याय. | ध्यायः |
| ६५४ | ११ | रपृष्ट्वा | स्पृष्ट्वा |
| ६५५ | ४ | स्वदेहादि | स्वदेहादि |
| ६५७ | ६ | अनाहिताग्वयो | अनाहिताग्नयो |
| ६५८ | १७ | निष्कति. | निष्कृतिः |
| ६६८ | १५ | निष्कुनिर्न | निष्कृतिर्न |
| ६७२ | ६ | क वेत् | कथं भवेत् |
| ६७३ | ३ | मृवा | मृचा |
| ६७३ | ६ | धृय | धृत्य |
| ६७४ | २२ | सवाा | सर्वेषा |
| ६७५ | १८ | स्वावम्भुवो | स्वायम्भुवो |
| ६७७ | ३ | दानमतेषु | दानमेतेषु |
| ६७७ | ५ | नान्यदा | नान्यथा |
| ६७८ | ६ | जुहुयाद्ववि: | जुहुयाद्धविः |
| ६७८ | १२ | तिष्ठत्सु | तिष्ठत्सु |
| ६८४ | ८ | कल्पान्रान्तरे | कल्पान्तरान्तरे |
| ६८६ | १६ | युत्रस्य | पुत्रस्य |

| पत्राङ्कम् | पङ्क्तिः | अशुद्धपाठः | शुद्धपाठः |
|---|---|---|---|
| ६८६ | १४ | वा | वा |
| ६६१ | १४ | रतथां | स्तथा |
| ६६१ | १४ | यरतस्यां | यस्तस्यां |
| ६६१ | १६ | प्रक्षऽऽल्या | प्रक्षाऽऽलया |
| ६६५ | २ | दूदूश्व | दूदूःवं |
| ६६५ | २१ | विस्मय | विस्मयः |
| ६६६ | १८ | मान्त्रं | मन्त्रं |
| ६६६ | २१ | बुधैः | बुधैः |
| ६६६ | २ | रयप्सु | स्वप्सु |
| ६६६ | ६ | नवाभिनि | नवाभिर्नि |
| ६६६ | १० | १ | सं |
| ७०२ | ६ | विष्ण | विष्णु |
| ७०३ | १४ | मूघेनि | मूर्धनि |
| ७०५ | १८ | पितृनेते | पितृनेतै |
| ७०७ | १ | २०७ | ७०७ |
| ७०६ | २ | पितन् | पितृन् |
| ७०६ | ४ | पितणां | पितृणां |
| ७०६ | १२ | ब्रहणः | ब्रह्मणः |
| ७११ | ८ | मानुपम् | मानुपम् |
| ७१२ | ४ | पुंन्नपुंसकं | पुन्नपुंसकं |
| ७१६ | ७ | ब्राहणा | ब्राह्मणा |

| पत्राङ्कम् | पङ्क्तिः | अशुद्धपाठः | शुद्धपाठः |
|---|---|---|---|
| ७२० | १८ | गघमत्र | गन्धमन्त्र |
| ७२२ | १ | पराश | पराशर |
| ७२४ | २० | न्यरत्वा | न्यस्त्वा |
| ६२६ | २ | दर्शामीं | दर्शामीं |
| ७२६ | ५ | पञ्चदशी | पञ्चदशी |
| ७२६ | १८ | द्विवानत | द्विधानतः |
| ७२६ | १ | ऽध्याय | ऽध्याय |
| ७३१ | ६ | पाथसा | पयसा |
| ७३३ | १ | वर्णनम | वर्णनम् |
| ७३३ | ६ | कश्वि | कश्चि |
| ७३३ | २१ | वैश्देवान्ते | वैश्वदेवान्ते |
| ७३३ | २३ | कर्तव्यं | कर्तव्यं |
| ७३३ | १५ | २०२०६ | २०६ |
| ७३४ | ५ | तस्मान्नदातुरत्व | तस्मान्नदातुरत्व |
| ७३६ | २ | व्याघियुक्तं | व्याधियुक्तं |
| ७३७ | २१ | दवलुप | दवलुप्त |
| ७४२ | १६ | ध्रवम् | ध्रुवम् |
| ७४५ | १२ | ध्वानं | ध्यानं |
| ७४६ | ५ | स्थि ो | स्थितो |
| ७४७ | १६ | वाह्मा | वाह्या |
| ७८४ | २० | ग्रीष्म | ग्रीष्म |

| पत्राङ्कम् | पंक्ति. | अशुद्धपाठः | शुद्धपाठः |
|---|---|---|---|
| ७५० | २३ | प्रकाराय | पकाराय |
| ७५१ | १ | कारवर्णनम् | करणवर्णनम् |
| ७५१ | ५ | क्षुत्तष्णा | क्षुत्तृष्णा |
| ७६० | २ | भतु | भर्तुं |
| ७६५ | १० | त्वग्जिह्वा | त्वग्जिह्वा |
| ७६८ | ५ | दृशंनात् | दर्शनात् |
| ७७० | ५ | स्नाति | स्नाति |
| ७७१ | २२ | तीथ | तीर्थ |
| ७७२ | ६ | स्वर्गो | स्वर्गो |
| ७७४ | १६ | कतव्यं | कर्तव्यं |
| ७७५ | ७ | शौच | शौचै |
| ७७६ | २० | प्राक्त | प्रोक्त |
| ७८२ | २० | कुयु | कुयुः |
| ७८३ | २१ | बुधाः | वुधाः |
| ७८४ | १ | पष्टो | पष्ठो |
| ७८४ | १३ | वत्ति | वृत्ति |
| ७८५ | १० | धर्म | धर्म |
| ७८५ | २१ | दच्छन्ति | दिच्छन्ति |
| ७८७ | ११ | वित्रो | विप्रो |
| ७८६ | ८ | ह्युत्थित | ह्युत्थित |
| ७८६ | १३ | फलप्रद्राः | फलप्रदाः |

| पत्राङ्कम् | पंक्तिः | अशुद्धपाठः | शुद्धपाठः |
| --- | --- | --- | --- |
| ८२९ | २ | रत्नैर | रत्नैर् |
| ८३२ | ११ | मेत्तारा | भेत्तारा |
| ८३२ | १२ | सन्ये | सैन्ये |
| ८३२ | १२ | पराङ्खुखे | पराङ्मुखे |
| ८३३ | २२ | पितर्णा | पितॄर्णां |
| ८३८ | ५ | कतव्यो | कर्तव्यो |
| ८४५ | १५ | स्नात्वा | स्नात्वा |
| ८४७ | १६ | शुद्ध्यय | शुद्ध्यथ |
| ८४८ | ४ | वामहरतेन | वामहस्तेन |
| ८४९ | ११ | पिबच्छुचिः | पिबञ्छुचिः |
| ८५० | १४ | पादमाचरे | पादमाचरेत् |
| ८५१ | ३ | संशुद्ध्य | संशुद्धेय |
| ८५३ | २३ | शुद्ध्य | शुद्धेय |
| ८५४ | २३ | स्पृष्टा | स्पृष्ट्वा |
| ८५८ | २ | रत्वनातुरः | स्त्वनातुरः |
| ८५९ | २२ | घं सीरिण· | घ सीरिणः |
| ८६२ | २१ | कृच्छ्र. | कृच्छ्रः |
| ८६४ | १९ | निप्न्नं | निष्पन्नं |
| ८६८ | ५ | करतु | कस्तु |
| ८६८ | १४ | युक्तं | युंक्तं |
| ८६८ | २० | गारुड | गारुडै |

| पत्राङ्कम् | पंक्तिः | अशुद्धपाठः | शुद्धपाठः |
|---|---|---|---|
| ८७१ | ७ | सर्पैः | सर्पैः |
| ८७३ | ६ | मपपि | मपि |
| ८७५ | ६ | तस्मि | गस्मिन् |
| ८७६ | ६ | दानादा | दानाला |
| ८७७ | ६ | फारयकम् | फारयकम् |
| ८७७ | १२ | मंस्तुति | संस्तुतिः |
| ८७८ | १३ | विपजयेन | नियर्जयेन |
| ८७८ | २० | हेम्रा | हेम्ना |
| ८७६ | १५ | दुष्कतम् | दुष्कृतम् |
| ८८१ | १ | दलोदक | दय गज |
| ८८१ | ८ | दवतैः | दैवतैः |
| ८८४ | ८ | स्वर्गो | स्वर्गो |
| ८८४ | १७ | चतुर्द्वाराः | चतुर्द्वाराः |
| ८८४ | २० | स्तव | स्तैव |
| ८८७ | ६ | कर्परं | कर्पूरं |
| ८६५ | १० | परिक्षिप्ता | परिक्षिप्ता |
| ८६५ | २३ | घंट. | घंटः |
| ८६६ | १ | ८६ | ८६६ |
| ८६८ | ११ | गृहीत | गृहीत |
| ८६६ | ५ | घृतार्च. | घृतार्चैः |
| ९०० | ११ | कथितं | कथितं |

| पत्राङ्कम् | पंक्तिः | अशुद्धपाठः | शुद्धपाठः |
|---|---|---|---|
| ६०१ | १४ | प्रकतव्य | प्रकर्तव्य |
| ६०१ | २२ | शुमवृक्षः | शुभवृक्षैः |
| ६०२ | ६ | भलो | फलो |
| ६०२ | १५ | यावन्त्ति | यावन्ति |
| ६०२ | १५ | मूर्ल्नि | मूर्ध्नि |
| ६०२ | १६ | वृक्षौदिय | वृक्षैर्दिय |
| ६०६ | ६ | विपिना | विधिना |
| ६०६ | १२ | शिनानन्दन | शिवानन्दन |
| ६०७ | १५ | शुकं | शुक्रं |
| ६०६ | १५ | वुध्यर्व | वुधयर्त्रं |
| ६१० | १६ | भूमिपुत्रंस्य | भूमिपुत्रस्य |
| ६१२ | १७ | ० | च |
| ६१४ | १२ | ह्यतन् | ह्येतन् |
| ६१४ | १८ | प्रकोष्ठके | प्रकोष्टके |
| ६१५ | ६ | मुर्ध्नि | मूर्ध्नि |
| ६१५ | ६ | कवचं | कवच |
| ६१६ | १५ | सहिण्यान् | सहिरण्यान् |
| ६२२ | १८ | स्त्रिष्टुम् | त्रिष्टुभ् |
| ६२२ | २२ | श्रद्धया | श्रद्धया |
| ६२३ | ८ | निर्दश | निर्दश |
| ६२३ | १२ | पञ्चेद्रं | पञ्चेन्द्रं |

| पत्राङ्कः | पंक्तिः | अशुद्धपाठः | शुद्धपाठः |
|---|---|---|---|
| ६२४ | १८ | पातपा | पत्राका |
| ६२४ | २० | यथायच्छं | यथाकाव्छं |
| ६३१ | १३ | वह्न्य: | या_वृपः |
| ६३३ | ४ | ययन्तूंप. | येयेन्तू पैः |
| ६३५ | १५ | आर्यं | आर्यं |
| ६३६ | ३ | हम्यां | हम्या |
| ६३६ | ११ | मरुन्यान् | मरुन्यान् |
| ६३६ | १६ | धात्रोक्तं | धात्रोक्तः |
| ६३९ | १५ | वयादीनां | व्यादीनां |
| ६३९ | २३ | सत्य | मदैय |
| ६४१ | १४ | सर्यं | मर्यं |
| ६४१ | १८ | माशा | माशो |
| ६४४ | ७ | दयपौरुय संयोगो | दैयपौरुपसंयोगे |
| ६४४ | २३ | गम | गर्म |
| ६४५ | १० | स्वामि: | स्वामि |
| ६४५ | २० | स्यस्तु | यस्तु |
| ६४५ | २३ | कार्ति | कीर्ति |
| ६४६ | २३ | करतस्य | कस्तस्य |
| ६५१ | १४ | वतेत | वर्तेत |
| ६५२ | १४ | वर्जयेन् | वर्जयेन् |
| ६५३ | २० | कृत | कृतः |

| पत्राङ्कम् | पंक्तिः | अशुद्धपाठः | शुद्धपाठः |
|---|---|---|---|
| ६५७ | १३ | सवः | सर्वैः |
| ६५७ | १७ | सस्यक् | सम्यक् |
| ६५७ | २३ | ।त्ररूपं | त्रिरूपं |
| ६५८ | ६ | द्धायंते | द्धार्यते |
| ६५८ | १८ | समरता | समत्ता |
| ६६२ | ६ | तुय | तुर्यं |
| '६६४ | १८ | धर्जयेन् | धर्जयेत् |
| ६६५ | ८ | तत्द् | सद् |
| ६६५ | ११ | तदूध्व | तदूर्ध्वं |
| ६६७ | ३ | त्रविध | त्रैविद्य |
| ६६७ | ८ | ब्रह्म | ब्रह्म |
| ६६७ | १४ | मध्यस्यं | मध्यस्थं |
| ६६८ | ११ | उपाघि | उपाधि |
| ६६८ | १६ | वपुष्पान् | वपुष्मान् |
| ६६६ | ४ | घूपः | घूपः |
| ६७१ | ६ | पुत्रः- | पुत्र |
| ६७१ | १६ | प्रत्याहरश्च | प्रत्याहारश्च |
| ६७५ | १ | ऽध्याय | ऽध्यायः |
| ६७५ | १३ | वाह्रो | वाह्रो |
| ६७५ | १४ | तेप | तेपा |
| ६७७ | १२ | चतुवर्णानां | चतुर्वर्णानां |

| पत्राङ्कम् | पंक्तिः | अशुद्धपाठः | शुद्धपाठः |
|---|---|---|---|
| ६७६ | ३ | मुनीद्राः | मुनीन्द्राः |
| ६७६ | ७ | मानवको | माणवको |
| ६७६ | १० | चेधनानि | चेन्धनानि |
| ६७६ | १५ | तस्म | तस्मा |
| ६८१ | ८ | वहवः | बहवः |
| ६८१ | २२ | मदन्वान्यवातेन | मथवातेन दन्वान् |
| ६८३ | १ | धम | धर्मं |
| ६८४ | १ | स्मृति | स्मृतिः |
| ६८४ | १० | विचक्षण | विचक्षणः |
| ६८५ | १२ | पिवे | पिवे |
| ६८५ | १३ | ज्ञांत्या | ज्ञात्वा |
| ६८६ | ३ | शुचिव | शुचिप |
| ६८८ | १ | हारित | हारीत |
| ६९० | १४ | तपयित्वा | तर्पयित्वा |
| ६९२ | १७ | जनर्ज्ञेयं | जनैर्ज्ञेयं |
| ६९४ | १० | स्मृति | स्मृतिः |
| ६९४ | १८ | विदाम्वर | विदाम्वर |
| ६९६ | ४ | त | तं |
| ६९६ | ५ | सवपा | सर्वेषां |
| ६९६ | १० | यपा | येषां |
| ६९७ | ८ | धम्म | धर्म्मं |

| पत्राङ्कम् | पंक्तिः | अशुद्धपाठः | शुद्धपाठः |
|---|---|---|---|
| ६६८ | ७ | सपत्रं | संपत्रं |
| ६६८ | १२ | आस्तीक्य | आस्तिक्य |
| ६६८ | १४ | प्ररीक्ष्यार्थे | प्रतीक्ष्यार्थे |
| ६६६ | ७ | सर्वेश्च | सर्वैश्च |
| १००१ | ३ | समन्तरा | मनन्तरा |
| १००१ | ६ | विभृया | विभूया |
| १००२ | १३ | हुत्वो | हुत्वा |
| १००३ | ६ | सव | सर्वं |
| १००३ | १८ | मूर्व्ने | मूर्ध्वे |
| १००५ | २० | विद्युद्वर्णा | विद्युद्वर्णो |
| १००६ | ७ | वैष्णवानो | वैष्णवानां |
| १००७ | १५ | सर्वेप | सर्वेषां |
| १००६ | ८ | चार्येण | चार्येण |
| १००६ | १५ | जत्वा | जप्त्वा |
| १००६ | २० | तमै | तस्मै |
| १००६ | २१ | धैवतम् | दैवतम् |
| १०१२ | १८ | सवपा | सर्वेपा |
| १०१३ | २० | वेङ्कय | कैङ्कर्यं |
| १०१४ | १७ | लिपाङ्गं | लिप्ताङ्गं |
| १०१५ | १७ | दन्मुखो | दङ्मुखो |
| १०१६ | ५ | उत्तनं | उत्तानं |

| पत्राङ्कम् | पंक्तिः | अशुद्धपाठः | शुद्धपाठः |
|---|---|---|---|
| १०१६ | ५ | प्राणायमं | प्राणायामं |
| १०१६ | ८ | वाचये | वार्थये |
| १०१६ | २० | मटाक्षरं | मन्त्राक्षरं |
| १०१७ | २ | लौकिकम | लौकिकम् |
| १०१७ | ६ | पापकम् | पातकम् |
| १०१७ | ११ | सथेवच | तथैवच |
| १०१७ | १३ | शतयारं | शतवारं |
| १०१७ | १६ | चतुर्यां | चतुर्ध्यां |
| १०१९ | २ | मनुप | मनप |
| १०१९ | ६ | स्तवै | स्तथै |
| १०२० | १० | सवदा | सर्वदा |
| १०२० | १३ | मृपिसत्तमेः | मृपिसत्तमैः |
| १०२१ | ८ | ेक्षते | वेक्षते |
| १०२१ | ८ | देह्निनाम | देह्निनाम् |
| १०२१ | १५ | सव | सर्वे |
| १०२१ | १८ | तस्मातु | तस्मात्तु |
| १०२२ | १८ | चतुर्द्धां | चतुर्द्धा |
| १०२२ | २३ | विप्णो | विष्णो |
| १०२३ | ७ | मत्र | मन्त्र |
| १०२४ | ११ | सङ्कशं | सङ्काशं |
| १०२६ | ७ | नर | नरः |

| पत्राङ्कम् | पंक्तिः | अशुद्धपाठः | शुद्धपाठः |
|---|---|---|---|
| १०२८ | १७ | समस्तं | समस्तं |
| १०२८ | १६ | कैङ्कर्याथं | कैङ्कर्यार्थं |
| १०२८ | २३ | निवतन्ते | निवर्तन्ते |
| १०२६ | २ | द्वादशाणं | द्वादशार्णं |
| १०२६ | १२ | ध्रव | ध्रुव |
| १०३० | ११ | विप्राणं | विप्राणां |
| १०३० | १६ | स्थाण्व | स्थानेष्व |
| १०३० | २१ | वष्णवं | वैष्णवं |
| १०३३ | १२ | चतुभुजं | चतुर्भुजं |
| १०३६ | ८ | टदले | षट्दले |
| १०४० | ५ | कृणतः | कृष्णतः |
| १०४० | ६ | कृणेति | कृष्णेति |
| १०४० | ९ | एवमथं | एवमर्थं |
| १०४० | ११ | मणो | मनो |
| १०४० | १६ | कुर्रात | कुर्वीत |
| १०४० | २१ | मुख | मुखे |
| १०४० | २४ | भरणनि | भरणानि |
| १०४१ | ८ | विराजितम् | विराजितम् |
| १०४२ | १० | शुभ्र | शुभ्रैः |
| १०४३ | २२ | शाश्यती | शाश्वती |
| १०४४ | ५ | जहुयाच | जुहुयाच्च |

| पत्राङ्कम् | पंक्तिः | अशुद्धपाठः | शुद्धपाठः |
|---|---|---|---|
| १०४५ | २ | महत्राप्रि. | महापं |
| १०४६ | ५ | वृत्ताय | वृत्तायन |
| १०४६ | १६ | लम्मी | लक्ष्मी |
| १०४६ | २१ | स्वग | स्वर्गं |
| १०४६ | २१ | माक्षश्च | मोक्षश्च |
| १०४७ | १ | यर्णनम | वर्णनम् |
| १०४७ | ७ | ममर्ग | समर्पये |
| १०४७ | १३ | पुष्पा | पद्मा |
| १०४७ | २३ | पड्ग्राघं | पट्कार्यं |
| १०४८ | २ | पायशं | पायसं |
| १०४८ | ११ | जप्त्रा | जपया |
| १०४९ | २ | निजितेन्द्रियः | विजितेन्द्रियः |
| १०५० | १ | तृतीयो | चतुर्थो |
| १०५० | ३ | ० | ३६२ |
| १०५१ | १ | समारधन। | समाराधन |
| १०५२ | १ | तृतीयो | चतुर्थो |
| १०५२ | २ | उपविष्टः | उपविष्टः |
| १०५३ | १६ | लालाटादिषु | ललाटादिषु |
| १०५४ | १६ | सम्ध्या | सन्ध्या |
| १०५७ | १२ | प | धूप |
| १०५७ | २३ | तैन्नार्द्धत्तं | तैलोद्धृतं |
| १०५८ | २२ | सुदन्धा | सुगन्धा |

| पत्राङ्कम् | पंक्तिः | अशुद्धपाठः | शुद्धपाठः |
|---|---|---|---|
| १०६० | १४ | वजये | वर्जये |
| १०६० | १६ | शिम्र | शिम्रु |
| १०६२ | २ | दचमनं | दाचमनं |
| १०६३ | ७ | सवर्पा | सर्वेपां |
| १०६३ | ७ | सवेंश्च | सर्वेश्च |
| १०६३ | ६ | वकुण्ठ | वैकुण्ठ |
| १०६४ | ३ | वश्या | वैश्या |
| १०६४ | ५ | वैशाया | वैश्या |
| १०६६ | ३ | स्कारा | संस्कारा |
| १०६८ | २ | शुद्धयथ | शुद्धयर्थं |
| १०६६ | ५ | सवस्व | सर्वस्व |
| १०७० | १५ | स्वसन्य | स्वसैन्य |
| १०७१ | १३ | कथाकालं | यथाकालं |
| १०७४ | १८ | धमं | धर्मं |
| १०७५ | २३ | सवस्य | सर्वस्य |
| १०७६ | २१ | लोकयतिक | लोकायतिक |
| १०७७ | १७ | त्यजेचै | त्यजेचे |
| १०७६ | १६ | कौपी | कौपीनं |
| १०८० | ३ | परित्यजेन् | परित्यजेन् |
| १०८० | ११ | तुष्ट्यथं | तुष्ट्यर्थं |

| पत्राङ्क | पंक्ति | अशुद्धपाठ | शुद्धपाठ |
|---|---|---|---|
| १०८० | १६ | दुपायस | दुरापर्स |
| १०८१ | ४ | घट्टोड्यम | घट्टोड्यम |
| १०८२ | ११ | विंध्युणो | विंध्युंगो |
| १०८२ | १७ | यण्गय | यैण्गय |
| १०८३ | ६ | पोतं | भ्रोणं |
| १०८४ | १७ | मध्यगन | मध्यगम |
| १०८४ | १६ | त्रिष्णु | यिष्णु |
| १०८४ | २० | ष्यण | ष्यचर्य |
| १०८५ | ४ | कुम्दक | कुण्दक |
| १०८५ | ८ | यथाश्विधि | यथानिधि |
| १०८५ | ११ | विसजयेन् | निमर्जयेत् |
| १०८५ | १३ | स्वचयेद् | स्वर्चयेद् |
| १०८५ | २० | सम्पर्णं | सम्पूर्णं |
| १०८६ | १६ | यण्गयस्य | वैण्गनस्य |
| १०८६ | १६ | तिले | तिलै |
| १०८७ | ७ | ष्यम | चतुष्यम |
| १०८७ | ११ | गात | गीत |
| १०८७ | १३ | सह | सह |
| १०८८ | ४ | स्नापयेन्त्र | स्नापयेन्मन्त्र |
| १०८८ | १३ | पुष्पाञ्चलि | पुष्पाञ्जलि |
| १०८६ | १ | त्रित्य | त्रित्य |

| पत्राङ्कम् | पंक्तिः | अशुद्धपाठः | शुद्धपाठः |
|---|---|---|---|
| १०८६ | १ | धम | धन |
| १०८६ | २१ | पश्च | पश्चा |
| १०८६ | ११ | ५४ | १५४ |
| १०६० | ४ | मन्त्रेण | मन्त्रेणै |
| १०६० | ५ | सवश्च | सर्वैश्च |
| १०६० | ११ | ू क्तै | सूक्तै |
| १०६२ | ६ | द्विष्ग | द्विष्णु |
| १०६२ | २० | दथा | दंथा |
| १०६४ | १४ | तथ | तथा |
| १०६५ | ५ | वैकूण्ठ | वैकुण्ठ |
| १०६५ | ११ | वकुण्ठ | वैकुण्ठ |
| १०६५ | ८ | विधानत | विधानतः |
| १०६५ | १७ | ताम्बूले | ताम्बूलै |
| १०६७ | १० | मन्त्र्याभ्या | मन्त्राभ्यां |
| १०६६ | ३ | सव | सर्वै |
| ११०३ | ५ | ब्राह्मेति | ब्राह्मे |
| ११०४ | ४ | चारुणा | चरुणा |
| ११०५ | ८ | मालायं | मालाय |
| ११०५ | १३ | वैष्णयोत्तम· | वैष्णवोत्तमः |
| ११०६ | १५ | भ्रै | शुभ्रै |
| ११०७ | ६ | दाला | दोला |

| पत्राङ्कम् | पंक्तिः | अशुद्धपाठः | शुद्धपाठः |
|---|---|---|---|
| ११०८ | ५ | शाकर | शार्कर |
| ११०६ | २ | यजेत् | र्यजेत् |
| १११० | १० | ययश्च | यर्यश्च |
| ११११ | ७ | नवेन्तं | नॆंवन्तं |
| ,, | १३ | यकुलै: | र्यकुलैः |
| ,, | २२ | रामायणं | मायणं |
| १११२ | ७ | पुष्पा | पुष्पा |
| १११३ | २ | विल्वं | विल्व |
| ,, | ११ | केनावाचश्च | केशवार्चश्च |
| ,, | २१ | अथयित्वा | अर्थयित्वा |
| १११७ | १५ | वराग्र्या | वैराग्र्या |
| १११८ | १३ | चर्यैव | र्यैव |
| ११२० | १८ | सयश्च | सर्वैश्च |
| ११२१ | ८ | शुभाभिवतः | शुभान्वितः |
| ,, | २१ | दोलाश्च | दोलाश्च |
| ११२२ | ७ | सुचरः | सुचरैः |
| ,, | ६ | दोलाय | दोलाया |
| ,, | १६ | ेष्णवः | वैष्णवः |
| ११२४ | २ | सर्वेश्च | सर्वैश्च |
| ,, | १८ | शष्कुली | शष्कुलीः |
| ,, | २२ | पादश्च | पादैश्च |

| पत्राङ्कम् | पंक्तिः | अशुद्धपाठः | शुद्धपाठः |
|---|---|---|---|
| ११२४ | २३ | धुशुमा | कुसुमा |
| ११२५ | १२ | वष्णवान् | वैष्णवान् |
| ११२८ | १६ | यार्च्य | यार्च |
| ११३० | १६ | नृत्यैश्च | नृ त्यैश्च |
| ११३१ | १ | शव | सव |
| " | ३ | मार्गेपु | मार्गेपु |
| ११३३ | १६ | अध्यान्ते | अध्यायान्ते |
| ११३५ | ३ | पश्चत्प | पश्चत्त्र |
| ११३८ | ११ | दृग्व्वा | दृष्ट्वा |
| ११३६ | ६ | सतिलाक्षत: | सतिलाक्षतैः |
| ११४० | १६ | स्वग | स्वर्ग |
| ११४१ | १ | क्रियात | क्रियातः |
| ११४२ | २ | ससाचरेत् | समाचरेत् |
| ११४३ | १ | महातका | महापातका |
| ११४४ | १६ | मानकूट | मानकूटं |
| ११४५ | १ | महातका | महापातका |
| " | १६ | धम्मस्य | धम्मस्य |
| ११४६ | ७ | पत्न्ययास्ये | पत्न्यास्ये |
| ११४७ | ३ | रजास्वला | रजस्वला |
| " | २० | स्नानाघ | स्नानाघ |
| ११४६ | ६ | त | ते |

| पत्राङ्कम् | पंक्ति. | अशुद्धपाठ | शुद्धपाठः |
|---|---|---|---|
| ११०८ | ५ | शवर | शर्वर |
| ११०६ | २ | यजेत् | यंजेत् |
| १११० | १० | यनश्च | यवंश्च |
| ११११ | ७ | नरेशं | नरेशं |
| ,, | १३ | धनुर्ल्ठः | धंनुर्ल्ठ. |
| ,, | २२ | रामायणं | मायणं |
| १११२ | ७ | पुप्पा | पुष्पा |
| १११३ | ३ | विल्वं | विल्व |
| ,, | ११ | पेशावाश्च | पेशावार्श्च |
| ,, | २१ | अशयित्वा | अर्शयित्वा |
| १११७ | १५ | यशाप्त्वा | पैशाप्त्वा |
| १११८ | १३ | वस्यैव | स्यैव |
| ११२० | १८ | सनश्च | सर्वश्च |
| ११२१ | ८ | शुभान्वितः | शुभान्वितः |
| ,, | २१ | दोलाश्च | दोलाश्च |
| ११२२ | ७ | नुचरः | नुचरः |
| ,, | ६ | दोलाय | दोलाया |
| ,, | १६ | ैष्णव. | वैष्णवः |
| ११२४ | २ | सर्वेश्च | सर्वेश्च |
| ,, | १८ | शप्कुली | शप्कुलीः |
| ,, | २२ | पादश्च | पादैः |

| पत्राङ्कम् | पंक्ति. | अशुद्धपाठः | शुद्धपाठः |
|---|---|---|---|
| ११२४ | २३ | कुशुमा | कुसुमा |
| ११२५ | १२ | वष्णवान् | वैष्णवान् |
| ११२८ | १६ | यार्च्य | यार्चं |
| ११३० | १६ | नृत्यैश्च | नृ॑त्यैश्च |
| ११३१ | १ | शव | सव |
| " | ३ | मागेपु | मार्गेपु |
| ११३३ | १६ | अभ्यान्ते | अध्यायान्ते |
| ११३५ | ३ | पश्चत्प | पश्चत्त |
| ११३८ | ११ | दग्व्वा | दग्ध्वा |
| ११३६ | ६ | सतिलाक्षतः | |
| ११४० | १६ | स्नग | |
| ११४१ | १ | क्रियात | |
| ११४२ | २ | ससाप्तरेत् | |
| ११४३ | १ | महातका | |
| ११४४ | १६ | मानमूट | |
| ११४५ | २ | महातका | |
| " | १६ | धम्मस्य | |
| ११४६ | ७ | परन्ययास्ये | |
| ११४७ | ३ | रजसयला | |
| " | २० | स्नानम | |
| ११४६ | ६ | ग | |

| पत्राङ्क | पं० | अशुद्धपाठ | शुद्धपाठ |
|---|---|---|---|
| ११८८ | ६ | नर्रा | नैर्ऋ |
| " | ८८ | अपविघा | अर्पविघ्रा |
| ११८६ | १४ | थप्र | थैव |
| ११६० | ८ | र्म्य | मृन्मी |
| " | १० | भृत्र | भृगु |
| ११६१ | ६ | मडोणेव | मन्योणेव |
| ११६३ | १६ | भगग्नार्थं | जगग्नाथं |
| ११६५ | ११ | पूतपुपै | पूतपुर्वै |
| ११६७ | १० | विणो | विष्णो |
| ११६८ | ७ | अदनयुव | अदनयुव् |
| " | ७३ | सन्तपयेश | सन्तर्पयेश |
| ११६६ | ७३ | इरावमी | इरावती |
| १२०० | ६ | भद्दप | भद्दप |
| " | १४ | सल्यान | मयन्यान् |
| " | ७३ | सवकम | सर्वकर्म |
| १२०१ | ६ | रानेंद्र | राजेन्द्र |
| १२०७ | ५ | इरते | इरते |
| १२०८ | १० | वरात्तम | वरोत्तम |
| १२०६ | ५ | वासति | वाऽसति |
| " | ८ | समलड् | समलड् |
| " | १५ | जराथ | जलार्थं |